श्री गुरु गोबिन्द सिंह और निर्मल सन्त परम्परा

(हिन्दी साहित्येतिहास : विशेष सन्दर्भ)



डॉ. निर्मल कौशिक

BVP – ૨૧૯૪

૨/૪/૧૪

1/11

श्री गुरु गोबिन्द सिंह
और
निर्मल सन्त परम्परा

1699-1999

खालसा-सृजन-त्रिशती

डॉ॰ निर्मल कौशिक
विभागाध्यक्ष, हिन्दी–विभाग,
सरकारी बृजेन्द्र कालेज,
फरीदकोट – 151203

SHRI GURU GOBIND SINGH
AUR
NIRMAL SANT PRAMPRA

By : Dr. NIRMAL KAUSHIK

श्री गुरु गोबिन्द सिंह
और
निर्मल सन्त परम्परा

लेखक : डॉ. निर्मल कौशिक

प्रथम संस्करण – 1999 (खालसा–सृजन–त्रिशती)

सहयोग राशि : सजिल्द – रु. 200/–
अजिल्द – रु. 150/–

प्रकाशक : श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट (रजि), कोटकपूरा (पंजाब)
मुद्रक : मंदाला आर्ट प्रिंटरज़, फरीदकोट – 151203
दूरभाष : 50121, 55777

खालसा–स्थापना–त्रिशती के पुण्य अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएँ

केशव कुंज
झण्डेवाला,
नई दिल्ली . 110055

बन्धुवर,
श्री ओम प्रकाश जी ग्रोवर,

सप्रेम नमस्कार ।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह और निर्मल सन्त परम्परा लिखित द्वारा डॉ॰ निर्मल कौशिक फरीदकोट और प्रकाशित द्वारा श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट कोटकपूरा देखने का सौभाग्य मिला । श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी देश की 17वीं शताब्दी में अपने देश के महान राष्ट्रीय नेता हुए । इसी कारण समाज की आवश्यकता के अनुसार जहाँ समाज में धर्म संरक्षण के लिए खालसा पंथ का निर्माण कर देश को एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण दिया और "सकल जगत में खालसा पंथ गाजे, जगे धर्म हिन्दु सकल भण्ड भाजे।" पांच प्यारे देश की चारों दिशाओं से लिये, वहीं गुरु परम्परा तथा देश की संस्कृति से पंथ का नाता जुड़ा रहे, यह सुनिश्चित पग उठा कर पांच बन्धुओं को काशी में संस्कृत अध्ययन के लिए योजनापूर्वक भेजा । बिना संस्कृत के ज्ञान के न गुरुवाणी, न देश का प्राचीन इतिहास, न देश की संस्कृति और न जीवनमूल्य समझ आ सकते हैं । आज देश में अलगाव के वातावरण में कुछ स्वार्थी लोग अपने को भारत देश की संस्कृति, जीवनधारा से अलग करना चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिये, यह विद्वान लेखक की पुस्तक देश के विचारशील लोगों को ठीक दिशा देगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है ।

श्री निर्मल कौशिक जी को मेरा धन्यवाद । इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये शुभ कामना करता हूँ ।

दिनांक
20.08.1999

आपका,
विश्वनाथ,
प्रमुख धर्म जागरण ।
प्रमुख राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ।

जिस

खालसा पंथ

का सृजन भारत की

सांस्कृतिक विरासत तथा राष्ट्रीय एकता

की

सुरक्षा के लिए किया गया

उसी

खालसा के जन्म की

त्रिशती के पावन अवसर

पर

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के

श्री चरणों में

कोटि कोटि नमन ।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह
और
निर्मल सन्त परम्परा

अनुक्रम

कृतज्ञता – ज्ञापन

1. डॉ. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, डी. लिट् प्रौफेसर एवं पूर्वाध्यक्ष हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर जिनकी प्रेरणा से मैं शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ।
2. डॉ. ओम प्रकाश ग्रोवर, संस्थापक श्री गुरु गोबिन्द सिंह, ट्रस्ट, कोटकपूरा जिन्होंने प्रस्तुत परियोजना को चार खण्डों में प्रकाशित करने का संकल्प लिया।
3. साहित्यिक मित्र प्रो. ब्रह्मजगदीश सिंह, अध्यक्ष स्नातकोत्तर पंजाबी विभाग, सरकारी बृजेन्द्र कालेज, फरीदकोट जो सदैव मंगलाकांक्षी रहे है।
4. जीवन–पथ हमराही धर्मपत्नी श्रीमती कामापनी कौशिक अध्यक्ष हिन्दी विभाग, केद्रीय विद्यालय फरीदकोट छावनी का जो मेरे प्रत्येक लेखन एवं प्रकाशन कार्य में सहयोगिनी सिद्ध हुई।
5. अध्ययन यात्रा के संगी पथिक मित्रवर जसबीर सिंह जस प्रवक्ता, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छईटा, अमृतसर जिन्होंने साहित्यिक अभिरुचि को निरन्तर बनाए रखने में अविस्मरणीय सहयोग दिया।
6. श्री पवन गोयल, गोयल कप्यूटर्ज कोटकपूरा जिन्होंने अपने अथक परिश्रम से पाण्डुलिपि को पुस्तकाकार प्रदान किया।

भूमिका

हिन्दी भाषा अब केवल राष्ट्रभाषा ही नहीं बल्कि सम्पर्क भाषा भी है। हिन्दी भाषा के माध्यम से सम्पूर्ण देश अपनी जातीय एवं भौगोलिक पहचान भी सुरक्षित रखता है। भारत में राष्ट्रभाषा का यह संकल्प अतीत और वर्तमान को ऐसी कड़ियों में बाँधता है जिसके सूत्र देश के कई प्रांतों में फैले हुए हैं। इसी महायज्ञ का एक सूत्र मध्यकाल में उत्तरी भारत में न केवल फैला बल्कि उसके अंकुर आज तक पेड़ पौधे बनकर फल, फूल और सुगन्धि फैला रहे हैं। देश में संस्कृत, अपभ्रंश, पालि, प्राकृत, ब्रज और अवधि तथा फिर खड़ी बोली के रूप में यह साहित्य विकसित हुआ। इसी समय ब्रज भाषा में देवनागरी के साथ–साथ गुरुमुखी लिपि में भी साहित्य रचा गया। गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य अब अपना अलग अस्तित्व बना चुका है। यह साहित्य हिन्दी के समानान्तर ही पनपा बढ़ा और कई परिवर्तनों को अपने साथ लेकर विकसित होता गया। इसके विकास के कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पड़ाव हैं। 1604 ई. में गुरु अर्जुन देव ने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का सम्पादन किया। यह एक बहुत बड़ी साहित्यिक और सांस्कृतिक घटना थी। गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन के पश्चात् पंजाब का साहित्य नई दिशा की ओर बढ़ा। यह दिशा थी सांझे भाईचारे की, धर्म निरपेक्षता की और जाति पांति से ऊपर उठ कर इन्सान को पहचानने की। मेरे विचार में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को नमन करने का अर्थ है हिन्दुस्तान को प्रणाम करना। शेख फरीद, रविदास, नामदेव, सेन, मरदाना आदि आदि किसी एक जाति विशेष के नहीं थे और न ही किसी एक क्षेत्र से बंधे हुए थे बल्कि अपनी वाणी के द्वारा पूरे भारत को चित्रित करने वाले महापुरूष थे। इनके महत्त्व को पहली बार गुरु कवियों ने पहचाना।

डॉ. निर्मल कौशिक ने इसी पृष्ठभूमि में रचे गए गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य को रेखाकित करने का प्रयास किया है। शोधार्थी के रुप में उन्होंने भाई गुरदास के कबित्त सवैयों तथा पुनः निर्मल सन्तों की परम्परा और उनके गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य पर शोध करते समय अनेक महत्त्वपूर्ण सवाल उठाए हैं। यह सवाल भारतीय साहित्ये तिहास लेखन की समस्याओं एवं सम्भावनाओं को उजागर करते है। बीसवीं शती के अन्त में हम अब यह भी सोचने लगे हैं कि आखिर हिन्दी के माध्यम

से पैदा हुई इस सांझी विरासत को भावी पीढ़ियों के सामने किस तरह रखा जाए। गुरुमुखी लिपि में रचित साहित्य हिन्दी साहित्य का अटूट हिस्सा बने ताकि भक्ति काल के अन्य सम्प्रदायों के साथ–साथ निर्मल पन्थ (निर्मल सन्त परम्परा) अपना उचित स्थान ग्रहण कर सके।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर शास्त्रोक्त ज्ञानार्जन हेतु जिन शिष्यों को संस्कृत अध्ययनार्थ काशी भेजा था उन्हें 'निर्मल' कह कर पुकारा गया। यह उस समय की परिस्थितियों की मांग थी जिसे गुरु जी ने पूर्ण कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। अध्ययन–अध्यापन का कार्य सौपें जाने पर यह वर्ग परम्परागत रूप से विकसित हुआ और एक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित हुआ। डॉ कौशिक ने इस परम्परा का गहन अध्ययन किया है। उसने निर्मल सन्तों के आश्रमों व डेरों में जाकर निर्मल सन्तों से भेंट करके इस वर्ग से सम्बन्धित भौतिक जानकारी को उद्‌घाटित करने का सफल प्रयास किया है। इतना ही नहीं निर्मल सन्तों द्वारा रचित साहित्य पर भी उसने महत्त्वपूर्ण शोधकार्य सम्पन्न किया है। निर्मल सन्तों के इस अमूल्य साहित्य का अध्ययन करते समय यह प्रश्न अनायास ही जन्म लेता है कि हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों ने गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी भक्ति साहित्य को अपने अध्ययन का विषय क्यों नहीं बनाया ? शायद इसलिए कि वे इसे पंजाबी का साहित्य समझते रहे या फिर पंजाबी के अध्येता ब्रजभाषा में रचित होने के कारण इसे हिन्दी का साहित्य समझते रहे। कारण कुछ भी रहा हो इस साहित्य की हजारों पाण्डुलिपियां दीपक की भेंट होती रही।

संयोग से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पंजाब में आए और यहां के विद्वानों का ध्यान उन्होंने 'गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध ब्रज (हिन्दी) के साहित्य की ओर आकृष्ट किया। सन् 1960 के बाद इस साहित्य की और न केवल लोग आकृष्ट ही हुए बल्कि अनेक ऐसी पाण्डुलिपियों का सामना हुआ जिनकी तुलना हिन्दी की महाकृतियों से हो सकती है। मैंने और डॉ. कौशिक ने भी भाई गुरदास के सम्पूर्ण (675) कबित्त सवैयों का लिप्यन्तरण एवं सम्पादन कर इस दिशा में एक लघु प्रयास किया है।

मेरे लिए यह खुशी की बात है कि डॉ. कौशिक गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य के रचयिताओं की एक परम्परा को उजागर करने में भिरन्तर प्रयत्नशील है। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने आशीर्वाद

से जिस विद्वान वर्ग को गुरुवाणी के प्रचार–प्रसार का कार्य सौंपा था उन निर्मल सन्तों की परम्परा को सामान्य पाठक तक पहुंचाने हेतु उन्होनें अपने परिश्रम को 'पुस्तक रूप प्रदान किया है। 'श्री गुरु गोबिन्द सिंह और निर्मल सन्त परम्परा 'पुस्तक भारतीय संस्कृति के संरक्षक दशम–पिता की दूरदर्शिता की परिचायक तो सिद्ध होगी ही साथ ही निर्मल सन्तों की परम्परागत मान्यताओं को स्पष्ट करने भी सक्षम सिद्ध होगी।

मुझे प्रसन्नता इस बात की भी है कि डॉं. निर्मल कौशिक ने मेरी आशा के अनुरूप इस संवाद को निरन्तर जारी रखा है। इस के लिए वे बधाई के पात्र है। मुझे उम्मीद है कि वे भविष्य में भी इस शलाका को रोशन किए रहेंगे ताकि इसके प्रकाश से अन्य लोग भी इस मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

हरमहेन्द्र सिंह बेदी (डॉं.)
डी. लिट्.

प्रोफैसर (पूर्वाध्यक्ष) हिंदी विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर (पंजाब)

लेखकीय

पांच प्रियजनों (पंज प्यारों) के रूप में खालसा की सृजना कर स्वयं को उनके समक्ष समर्पित करने वाले महान बलिदानी, अनन्य देशभक्त, दृढ़–प्रतिज्ञ, महापराक्रमी एवं महाकवि दशम–पिता श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। शैशव काल से ही वे भक्ति और शक्ति अर्जित करने में लीन रहते थे। इन्हीं गुणों के कारण वे 'सन्त सिपाही' की संज्ञा से अलंकृत हुए। आपका स्वर्णरूपी व्यक्तित्व तत्कालीन विषम परिस्थितियों रूपी आंच में तप कर ही कुन्दन बनकर निखरा। उस समय समूचे भारत में अन्याय, अधर्म, भय, आडम्बर, भ्रटाचार और अत्याचार का बोलबाला था। लोग अपनी अमूल्य विरासत एवं भारत के सांस्कृतिक गौरव को भूलते जा रहे थे। भारतीय संस्कृति की गौरव की गाथाएं आपको पारिवारिक परिवेश एवं संस्कार स्वरूप प्राप्त हुई थी। फलतः आपके मन में राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रबल भावना बचपन से ही पनप चुकी थी। यही कारण था कि आप अपने पिता नवमेश श्री गुरु तेग बहादुर जी के राष्ट्र की सुरक्षा हेतु किए गए बलिदान के प्रेरणा स्रोत बने।

इतिहासकार कनिंघम ने (ए हिस्ट्री आफ दी सिक्खस) में लिखा है कि 'गोबिन्द के हृदय पर अपने पूज्य पिता के त्याग का अत्यन्त गहन प्रभाव पड़ा। देश की विच्छिन्न दशा को सुधारने के लिए बालक गोबिन्द ने अपने आपको दाव पर लगा दिया। इस संघर्ष में उन्होंने अपना सारा वंश कुर्बान कर दिया। उन्होंने प्रजातन्त्रात्मक भावना और एकता के बल पर राष्ट्र की सेवा की। उनकी वीरता और बलिदान की भावना के साथ–साथ उनकी साहित्यिक अभिरुचि भी उनके व्यकि्त्व का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उन्होंने स्वयं संस्कृत, अरबी, फारसी, ब्रज और पंजाबी आदि में रचित साहित्य का अध्ययन किया था। वे स्वयं कवि भी थे और अनेक कवियों के आश्रय दाता भी थे। इनके 52 दरबारी कवियों की अनेक रचनाऐं आज भी उपलब्ध होती है। गुरु गोबिन्द सिंह जी की सभी रचनाऐ 'दशम ग्रन्थ' में संकलित है। आपकी रचनाऐं संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, फारसी आदि भाषाओं में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ की लिपि गुरुमुखी है। आपने युग और परिस्थितियों

के दृष्टिगत (भक्ति) शान्त, शक्ति और वीररस प्रधान रचनाऐं ही रची। गुरु जी के अनुसार जिस देश की जनता में भक्ति और शक्ति की समन्वित भावनाऐं होगी, वही देश सुदृढ़ और सुरक्षित होगा। जहां वीरता के प्रतीक खालसा के रूप में पांच प्यारों का सृजन करके उन्होंने एक तरफ की निर्जीव जनता में बल का संचार किया वही दूसरी ओर गुरुवाणी को गुरु स्वरूप प्रदान कर तथा इसके प्रचार प्रसार हेतु अपने शिष्यों को वेद–पुराणों के पठन पाठन की विधिवत् शिक्षा भी दिलाई।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इस संकल्प की पूर्ति हेतु अपने पांच शिष्यों गंडा सिंह, कर्म सिंह, सेना सिंह, राम सिंह और वीर सिंह को संस्कृत विद्या और वेद–वेदांगों के अध्ययनार्य काशी भेजा। इन्हें निर्मल कह कर सम्बोधित किया तथा लौटने पर गुरु जी ने इन्हें गुरुवाणी के प्रसार और व्याख्या का कार्य सौंपा। इस विद्वान वर्ग ने अपने डेरों की स्थापना कर गुरु शिष्य परम्परा द्वारा गुरुवाणी के सन्देश को हिन्दी संस्कृत भाषियों तक पहुंचाने के लिए संस्कृत और ब्रज में साहित्य रचा। इस साहित्य की लिपि अधिकाशंतः गुरुमुखी थी। ऐसा बहुत सा अप्रकाशित साहित्य निर्मल डेरों में दीमक की भेंट हो रहा है।

इस साहित्य रूपी अमूल्य निधि को प्रकाश में लाने पर साहित्य की रूप रेखा को नई दिशा मिलेगी। इस दिशा में शोधकरने की आवश्यकता है। निर्मल विद्वानों के गुरुमत प्रचार हेतु रचे गए इस साहित्य में समन्वयात्मक पद्धति के माध्यम से वेदों और पौराणिक सन्दर्भों के उद्धरणों द्वारा गुरुवाणी की व्याख्या को पुष्ट किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में हमने गुरु गोबिन्द सिंह जी द्वारा अपने जिन विद्वान शिष्यों को निर्मल संज्ञा प्रदान कर 'सन्त' की वेशभूषा से भूषित किया था उन्हीं की 'परम्परा' की जानकारी हेतु विनम्र प्रयास किया है। प्रथम 'खण्ड' में निर्मल सन्तों की परम्परा और विकास के अन्तर्गत 'सन्त' शब्द के अर्थ और नामकरण पर प्रकाश डालते हुए निर्मल सन्तों के परिचय और मूल्यांकन तथा इतिहास और संस्कृति के अनन्तर प्रमुख सन्तों का परिचय भी दिया गया है। द्वितीय खण्ड में निर्मल सन्तों की दार्शनिक दृष्टि, तृतीय खण्ड में निर्मल सन्तों की साहित्यिक पृष्ठभूमि, तथा चतुर्थ खण्ड में निर्मल सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन विषयों पर चर्चा की गई है।

मैं आभारी हूँ डाँ. ओम प्रकाश ग्रोवर, संस्थापक श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट (रजि.) कोटकपूरा का जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण शोध कार्य को प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया है। इससे उन्होंने 'गुरुवाणी साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के प्रति सच्ची निष्ठा का परिचय दिया है। मैं धन्यवादी हूँ श्री पवन गोयल, गोयल कम्पूटर्ज, कोटकपूरा का जिन्होंने अत्यन्त लगन और परिश्रम से इस नाचीज़ की पाण्डुलिपि को पुस्तकाकार प्रदान कर आप तक पहुंचाने में सहायता की । अस्तु

विदुषामनुचरः
निर्मल कौशिक (डॉ.)

इस ग्रंथ को प्रकाशित करने में सहयोगी बन्धू

1. **M/s Modern Marble**
   Jiwan Nagar,
   (Backside Vishavkarm House Dharmshala)
   Kotkapura. Ph. (O) 21401, R-23449, 20449
   Fac. 23401.
2. **Bharat Ice Factory**
   Lajpat Nagar, Kotkapura Ph. F-20299, R-20254
3. **M/s Bhag Mal Rajinder Kumar**
   Grain Market, Kotkapura Ph. 20218
4. **M/s Sethi Cloth House**
   Shastry Market, Kotkapura
   Ph. O-20783, R-20483
5. **Sh. A.K. Mangla Advocate**
   Kotkapura Ph. 20715, R-20714
6. **M/s. Satluj Engineers**
   Faridkot Road, Kotkapura
   Ph. O-20142, R-20364
7. **Lahoria Motors**
   Faridkot Road, (Smadhi Seth Kedar Nath)
   Kotkapura Ph. 20177
8. **Dr. Dev Raj**
   Jaitu Chungi, Kotkapura
   Ph. 21329
9. **Dr. Dharam Pal Chawla**
   Factory Road, Kotkapura Ph. 22966
10. **Monga Nursing Home**
    Faridkot Road, Kotkapura
    Ph. 20525 & 21495.
11. **Kataria Nursing Home**
    Near Railway Station
    Kotkapura.
    Ph. 20260, 20360.

आज का ट्रस्ट

1. संरक्षक – डा. ओम प्रकाश ग्रोवर फोन 25288
2. संरक्षक – श्री सुरिन्द्र कुमार सचदेवा फोन 20883,20881
3. संरक्षक – श्री गेन्दा लाल गुप्ता फोन 20177
4. प्रधान – श्री कृष्ण कुमार सचदेवा फोन 20229, 20254
5. उपप्रधान – श्री जसवन्त सिंह कटारिया फोन 21313
6. महामन्त्री – श्री सेवा सिंह चावला फोन 21418 KKP, 50057 FDK
7. मन्त्री – श्री सतपाल गोयल फोन 23910
8. कोषाध्यक्ष – श्री चन्द्र मोहन मित्तल फोन 24722
9. व्यवस्था प्रमुख – श्री गणेश दास गुलाटी फोन 23412
10. स्टोर इन्चार्ज – श्री बाल कृष्ण मित्तल फोन 23101

श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट (रजि.)

हरीनौ रोड़, कोटकपूरा–151204

ॐ

समर्पण

੧ੳ



1936 – 1991
स्व. ओम प्रकाश कटारिया

व्यक्ति जैसा देखता है, सुनता है, पढ़ता है वैसी मनोभावना बनती है। उसी विचार धारानुसार मनोवृति के मार्ग दर्शन पर कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा फल, मान सम्मान, प्रभाव, प्रतिष्ठा एवम् दुख सुख अनुभव करता है, मिलता है, जीवन बनता है। यह एक सिद्धांत ही कहना चाहिये।

गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट ऐसे सिद्धांत को लेकर 1959 से काम करता चला आ रहा है। अपने ट्रस्ट के बानी उप प्रधान श्री ओम प्रकाश जी कटारिया के अचानक निधन के पश्चात उन के नाम और विचारों को दृष्टिगोचर रखते हुये प्रकाश पथ द्वारा बाल एवं युवा पीढ़ी को संस्कारित करना, प्रेरणा देना, राष्ट्रीय, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और देश भक्ति का प्रचार, प्रसार, उदेश्य लेकर उसी कड़ी का यह पुष्प नः 12 प्रकाशित करके पथ प्रदर्शक श्री ओम प्रकाश की कटारिया को समर्पित :

जीवन पर्यन्त लक्ष्य के पीछे दे दिय प्राण ।
है कटारिया तुम से कौन महान ।।
तुम सा कौन महान कह रहा इस को ज़ग सारा।
परिवार, मित्र, दीन हीन गाते यश गान तुम्हारा ।।
हे वीर सिपाही तुम वीर बने।
तुम्हे समर्पित ओम पाश ये भाव श्रद्धा सने ।

— डा. ग्रोवर

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक तन में जान रगों में लहू रहे
तेरा हो जिक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे।।



पूजा के योग्य श्री निर्मल जी कौशिक के परिश्रम एवम् लगन से यह ग्रंथ प्रकाश पथ पुष्य नं. 12 श्री गुरू गोबिन्द सिंह ट्रस्ट (रजि.) कोटकपूरा द्वारा प्रकाशित हो रहा है। जहां ट्रस्ट डा. निर्मल जी का ब अभारी है वहा श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के दर्शाये मार्ग पर एक पग और आगे बढ़ने का हर्ष अनुभव कर रहा है। आशा है समाज इस ग्रंथ से भरपूर लाभ उठायेगा। इस ग्रंथ के साथ समाज सेवी पुण्य आत्माओं को श्रद्धा सुमन चित्र रूप में प्रकाशित करना भी परिवार को नातृ–पितृ–गुरू–समाज एवम् देव ऋण चुकाने के लिए संस्कार युत्त कर कर्तव्य पूर्ति का पाठ पढ़ाने में मातृशक्ति का ही हाथ होता है, जिस परिवार का वातावरण घर में धार्मिक समाजिक अतिथि सत्कार और सेवा भाव का होगा उनकी सन्तान चरित्रवान परिश्रमी और सुशील होगी। (इतिहास साक्षी है) ऐसे ही केवल कुछ बन्धूओं के जो स्वयं सेवा कार्यो में रत थे उनकी सन्तान इसी मार्ग पर उनके पदचिन्हों पर अग्रसर है। चित्रों को श्रद्धाजली एवम् आर्शिवाद प्राप्त करने हेतू प्रकाशित किया गया है।

ट्रस्ट को ऐसे बन्धूओं के सहयोग द्धारा ही निशुल्क सिलाई केन्द्र शिक्षा मन्दिर अपेक्षित बच्चों को स्कूल की पढ़ाई पुस्तकालय और संस्कार केन्द्र चलाने का अवसर प्राप्त है। वास्तव में उन महान आत्माओं की इच्छापूर्ति हेतू ही उनकी सन्तान और ट्रस्ट कर्यारत है। यही कहा जा सकता है।

– डा. औम प्रकाश ग्रोवर
कोटकपूरा–151204
फोन 25288

खण्ड-एक

निर्मल सन्त परम्परा और विकास

भारतवर्ष आदिकाल से ही धर्मप्रधान देश रहा है। धर्म और दर्शन भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व है। किसी न किसी रूप में उक्त दोनों भाव अक्षुण्ण बने रहते हैं तथा आज भी भारतवासियों की आत्माओं में स्थायी रूप से विद्यमान हैं। इतिहास साक्षी है कि विदेशी जातियों के आक्रमण व आगमन से भी इसका दमन नहीं हुआ। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक यह प्रवृत्ति भारतवासियों को अपने अस्तित्व का स्मरण कराती रही। आचार्य शुक्ल के अनुसार'--धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति,जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्त्तन पुराण काल में हुआ था,कभी कहीं दबती कभी कहीं उभरती और किसी प्रकार चली जा रही थी ।[1] समय-समय पर भारत पर अनेक आक्रमणकारियों ने यहां शासन किया और अनेक रूपों में यहां की सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को प्रभावित किया । भारतीयों ने इसे सहर्ष स्वीकार भी किया । क्योंकि भारतीय संस्कृति न संघंर्ष मूलक है और न उसके विकास के लिए संघंर्ष ही अपेक्षित है,अर्थात् वर्ग,जाति या सम्प्रदाय का संघंर्ष हमारी संस्कृति विकास के मूल में नहीं रहा है । वास्तव में भारतीय जीवन और संस्कृति का भूल केन्द्र बिन्दु समन्वय है । [2] मगर कभी कायरता भी नहीं दिखाई,मात्र समन्वय ही नहीं किया, कभी-कभी विघ्न या गतिरोध पैदा करने वाले कारणों को कुचला भी है ।' वास्तव में समन्वय के मार्ग में जो शक्तियां गतिरोध उपस्थित करती हैं, उनके विरुद्ध अवश्य भारतीय संस्कृति ने अभियान किया है ।[3]

इस उत्थान पतन के परिणाम स्वरूप भारत में भक्ति काव्यधारा ने जन्म लिया । इसका समय लगभग ईसा पूर्व प्रथम शती माना जाता है । कोई भी विचारधारा अथवा प्रवृत्ति एक ही दिन में जन्म नहीं लेती । उसके लिए कालावधि और अनुकूलता की आवश्यकता होती है और काव्यधारा पर किसी अन्य विचारधारा का प्रभाव या प्रतिक्रिया करना और उसका एकाएक उत्पन्न होना मान लेना अत्यन्त हास्यास्पद सी बात है । यह कहना तो और भी उपहासास्पद है कि जब मुसलमान हिन्दू मंदिरों को नष्ट करने लगें, तो निराश होकर हिन्दू लोग भजन-भाव में जुट गए ।[4] मगर सोचने की बात तो यह है कि मुसलमानों से पूर्व भी तो अनेक विदेशियों ने भारतीय सभ्यता को नष्ट करने का प्रयास किया था । उनकी प्रतिकिया स्वरूप भक्ति का उदय क्यों नहीं हुआ ? मुसलमानों के आगमन से ऐसा क्या हुआ ? जो भक्ति काव्य धारा के प्रस्फुटन का कारण बना ?

इसका उत्तर यह है कि भक्ति का बीज तो भारत की पुण्य भूमि पर बहुत पहले से ही पड़ चुका था लेकिन उसे अंकुरित होने एवं विकसित होने के लिए जिस अनुकूल जलवायु की आवश्यकता थी, वह मुसलमानों के आगमन से ही सुलभ हुआ । इसने उसे बढ़ने में अत्यधिक सहायता प्रदान की । दो संस्कृतियों के सुमेल से भक्ति काव्य–धारा रूपी लता स्वच्छन्द रूप से फैलने लगी ।' सांस्कृतिक समन्वय के जो प्रयत्न भारतीय इतिहास में चल रहे थे, उनसे भक्ति आन्दोलन की उदार मानवीय दृष्टि को बल मिला ।[5] फलस्वरूप भक्ति आन्दोलन की लहर सारे भारत में फैलने लगी ।

वास्तव में भक्ति आन्दोलन का आरंभ ही दक्षिण से हुआ था 'वैष्णव धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में प्रथमतः व्याप्त होकर उतर भारत में वृद्धि पाने लगा।[6] धीरे धीरे इस भक्ति का प्रचार विभिन्न आचार्यो व सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों द्वारा होने लगा। फलस्वरूप उन्होने अपने अपने सिद्धातों की स्थापना की। इस प्रकार उन्होने भारत की तत्कालीन दुर्दशा में सुधार करने एवं भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने का सतत प्रयास किया। दक्षिण भारत को भी उतर भारत के निकट तथा सम्पूर्ण भारत में भक्ति आन्दोलन का व्यापक प्रचार एवं भक्ति की शास्त्रीय स्थापना करने की दृष्टि से भी इन आचार्यों का अपना महत्त्व है।[7] अनेकानेक आचार्यो की स्वतंत्र धाराएं क्षेत्र एवं जनता की चित्तवृति के अनुरूप विभिन्न सम्प्रदायों का रूप धारण कर गई। जिनमें रामानुजाचार्य का श्री सम्प्रदाय, निम्बार्काचार्य का सनक सम्प्रदाय, हवाचार्य का मध्व सम्प्रदाय और वल्लभाचार्य का रूद्र सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हैं। आगे चल कर 14 वीं, 15 वीं शती के लगभग जब मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुए और उन्होने भारत में अपने डेरे डाल लिए तो उनके धार्मिक सिद्धातों से तथा भारतीय अद्वैतवाद के सुमेल से एक नए मत का सूत्रपात हुआ, जिसे 'सन्तमत' की संज्ञा दी गई। वस्तुतः यह मत अद्वैतवाद का एक ऐसा संशोधित एवं वैज्ञानिक रूप है, जो भक्ति मार्ग के अनुकूल पड़ता है।[8] इन्होनें भक्ति और साधना को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बनाया। पूर्व कालीन मतों में एकांगीं दृष्टिकोण है। अन्य सभी मतों की अपेक्षा संन्तमत में भक्ति और साधना की चरम अमिव्यक्ति है।[9] सन्त मत ने ही भक्ति को जटिलता की बेडियो से मुक्त किया और सामान्य जनता के लिए उपयोगी बनाया। भारतीय चिन्तन में

भक्ति का विकास सहज रूप में हुआ। प्राचीन काल में यह भक्ति व्यावहारिक और जनता की आवश्यकताओं के अनुसार सरल बन गई। इसे यह सरलता सन्त कवियों ने प्रदान की। सन्त कवियों ने भक्ति को मानव प्रेम की धुरी से जोड़ा ।[10]

पूर्व मध्य काव्य में भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई, उसने सम्पूर्ण भारत में अपना प्रभाव एकाएक जमा लिया। जनता ने उसे सहर्ष अपना लिया। इसका मूल कारण यह था कि उसमें किसी न किसी रूप में कोई न कोई तत्त्व वैदिक अथवा पौराणिक, औपनिष्दिक, आरण्यक एवं आगम परम्परा की कड़ी के प्रौढ़ रूप धारण कर लेने पर ही भक्ति आन्दोलन का या साहित्य एवं धर्म क्षेत्र में स्वर्ण युग कहलाने का अधिकारी हुआ। इसने सब से महान कार्य भारतीय जनता के हृदय में एकता का बीजारोपण करने का किया। उत्तर भारत में भक्ति का संन्देश लाने वाले आचार्य रामानुज का सम्बन्ध दक्षिण के आलवार भक्तों से था। दक्षिण में उपजने वाली जिस भक्ति को रामानंद14 वीं शती में उतर भारत में ले आए थे और कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड में प्रकट किया था, वह भक्ति वस्तुतः उतर भारत के लिए नई नहीं थी। हां, राम मन्त्र प्रचारक रामानंद ने उसे गति और विस्तार दिया।[11] जिस समय मुसलमानों ने अपने पांव भारत वर्ष में जमा लिए थे, उस समय भी भारत में धर्म का प्रचार परम्परित रूपों में हो रहा था। भले ही विदेशियों के आगमन से उस समय भारत की राजनैतिक अवस्था अस्त–व्यस्त हो गई थी। मगर भक्ति आन्दोलन में मुसलमान कवियों और भक्तों ने अपना योगदान दिया। भारतीय पुरातन धर्म साधना भी विभिन्न रूप में क्रमशः अग्रसर हो रही थी। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति, जिसका सूत्रपात महाभारत काल में, विस्तृत, प्रवर्तन पुराण काल में हुआ था कभी दबती कभी उभरती किसी प्रकार चली आ रही थी।[12] इसका मूलाधार भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति के मूलतत्त्व थे। आगे चल कर वैष्णवों के भागवत धर्म ने ही विकसित होकर परम्पराबद्ध रूप में ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूपों को तो प्रतिपादित किया ही लेकिन अपनी पूर्व परम्परा को त्यागने में कदापि समर्थ सिद्ध न हुआ।

मध्यकाल से पूर्व भारत में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों ने अपने अपने सिद्धान्तों की स्थापना कर एक आदर्श धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया किन्तु 12 वीं शताब्दी के आसपास दक्षिण में सुप्रसिद्ध शंकराचार्य

के दार्शनिक मत अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया शुरू हो गई थी। चार प्रबल सम्प्रदाय अद्वैतवाद के विरोध में आर्विभूत हुए, जो आगे चल कर सम्पूर्ण भारतीय साधना के रूप को बदल देने में समर्थ हुए। चार सम्प्रदाय हैं —— रामानुजाचार्य, का श्री सम्प्रदाय, मध्वाचार्य का ब्रह्म सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी का रूद्र सम्प्रदाय और निम्चार्काचार्य (निम्बादित्य) का सनकादि सम्प्रदाय[13] —— भक्त और कवि तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप जनता को मार्गदर्शन करने पर तत्पर थे। जनता को एक सफल नेतृत्व की आवश्यकता थी। अतः भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से उतर भारत की और पहले से ही आ रहा था, उसे राजनैतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।[14] श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य के चौथी–पांचवी परम्परा के शिष्य रामानंन्द किसी कारणवश उतर भारत चले आए और यहाँ आकर भक्ति का प्रचार आरम्भ कर दिया। जो हो, इतना स्पष्ट है कि रामानंन्द निर्गुण भक्ति और योग के प्रति आस्थाशील थे और उतरी भारत में पहले से ही स्वरूप ग्रहण करने वाला निर्गुण भक्ति को राम की दिशा में मोड़ने का श्री गणेश उन्ही के हाथों हुआ था।[15] बाद में अनेक सन्तों ने इन्ही के सिद्धान्तों के आधार पर अपने इष्ट को मानने का मार्ग निश्चित किया और अनुभवगत विशेषताओं के आधार पर विशिष्ट सम्प्रदाय स्थापित किए।

दक्षिण के आलवर भक्तों की भक्ति भावना उतर में आकर एक नए रंग में रंग गई। इसलाम धर्म की प्रतिकिया ने उसमें कुछ नया मोड दिया। ऐसे ही उतरी भारत में जितने भी छोटे छोटे धर्म प्रचलित थे, या उनकी शाखाएँ उपशाखाएँ थी सभी ने भक्ति के इस अजस्र धारा के प्रवाह में डुबकी लगाई। मध्यकाल के धार्मिक आन्दोलनों को आगे बढाने एवं उनकी सुदृढ़ दार्शनिक पीठिका तैयार करने में सभी सम्प्रदायों का बहुत कुछ योगदान रहा है।[16] कुछ धर्मो में मतैक्य न होने के कारण वे एक धर्म होते हुए भी अनेकनेक नामों से प्रचलित हुए हैं। बौद्धधर्म का उदाहरण इसका स्पष्ट प्रमाण है। नवीनता में एक आकर्षण होता है। भले ही वस्तु वही हो, मात्र थोड़े परिवर्तन से प्रस्तुत की जाए, तो उसका महत्व बढ़ जाता है और उसे सर्वथा नवीन समझा जाता है। सन्त मत के साथ भी ऐसा ही हुआ। कबीर ने हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों को मुसलमानी धर्म के मूल सिद्धान्तों से मिलाकर एक नये पंथ की कल्पना की थी, जिसमें ईश्वर एक

था .... माया अद्धैतवाद की ही माया थी जिससे आत्मा और परमात्मा में भिन्नता का आभास होता है।[17] समन्वयात्मक प्रवृत्ति वाले सम्प्रदाय ने जनता को अपनी और आकृष्ट किया और नई दिशा प्रदान की ।

निर्गुण भक्ति काव्य–धारा का निरन्तर प्रचार इसलिए अपनी विशेष महत्ता रखता है क्योंकि यह जीवन की सत्यानुभूति पर टिका हुआ है। भक्तिकालीन इस काव्यधारा को प्रस्फुल्लित व विकसित करने का श्रेय रामानंन्द को ही दिया जा सकता है। रामानंन्द से ही प्रेरणा ग्रहण कर कबीर ने साधना एवं भक्ति को सभी वर्गो के लिए सुलभ कर दिया था।[18] उन्होने उत्तर भारत में दक्षिण की भक्ति लहर को पाकर एकसूत्रता का परिचय दिया। वे भारतीय संस्कृति को अमर देखना चाहते थे। उतर के योग के पाले में भक्ति का बीज इन्ही रामानंन्द ने डाला था। इन दोनों धार्मिक मतों भक्ति और योग के संयोग से निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय के संन्तो की परम्परा पुष्ट और पल्लवित हुई।[19] भले ही भक्ति द्राविड़ में उपजी थी और रामानन्द ही इसे उत्तर की ओर लाए थे । मगर इसका प्रचारक,प्रसारक और प्रवर्त्तक कबीर को ही माना जाता है । कबीर जी ने समन्वयात्मक पद्धति अपना कर सामाजिक,राजनैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से एक ऐसी भूमि तैयार की,जिसे सभी ने कड़वी औषधि के समान स्वीकार किया 'इन्होने खरी बातें बहुत उत्कृष्ट और साफ साफ कही है, इनकी कविता में हर जगह सच्चाई की झलक दिख पड़ती है । कबीर जी का अनुभव खूब बढ़ा चढ़ा था,इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी ।[20] इनसे पूर्व निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में भक्ति का प्रचार हो रहा था । मगर ईश्वर के निर्गुण रूप की प्रौढ़तापूर्ण वकालत कबीरदास ने ही की थी ।' उन्होंने सगुणवाद,अवतारवाद, और मूर्तिपूजा आदि को सर्वथा त्याज्य बताया और केवल निर्गुणब्रह्म की सत्ता को ही स्वीकार किया।[21] अतः कबीरदास को ही निर्गुण भक्ति काव्य–धारा का प्रवर्त्तक माना जाता है ।

गुरु नानक देव निर्गुण भक्ति काव्य–धारा में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं । कबीर के समान इन्होंने भी खण्डन–मण्डन पद्धति को अपना कर निर्गुण ईश्वर की स्थापना क़ी एवं प्रौढ़ता प्रदान की । कबीर के समान ही जहां जहां भी उन्हें धार्मिक,सामाजिक और राजसी जीवन में कुरीतियां और अभाव दिखाई दिए, वहां–वहां उन्होंने जोरदार आवाज उठाई और उन्हें दूर करने का प्रयास किया ।[22] नानक देव ने स्वंय जनता के सम्पर्क

में आकर उनकी समस्याओं को जाना और उन्हें रूढ़ियों संकीर्णताओं तथा अनाचारों से मुक्त किया । इनका नानक पंथ आज कल सिक्ख मत के नाम से प्रचलित है,जो एक विशाल सम्प्रदाय के रूप में विकास एवं प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है । ' गुरू नानक ने घोर तपस्या देशाटन चिन्तन आदि करके नानक पंथ खास करके अपने मस्तिष्क से निकाला।[23] इनकी उदारता एवं मान्यताओं को देख कर ऐसा लगता है कि ये मानों सभी धर्मों के समन्वित रूप को ही सिक्ख धर्म के रूप में लेकर धार्मिक क्षेत्र में अवतरित हुए थे । निंरजनी सम्प्रदाय भी निर्गुण काव्यधारा का महत्त्वपूर्ण मत है । इस सम्प्रदाय के सन्तों ने महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि नाथपंथ और सन्तमत के मध्य की दूरी को समाप्त कर दिया । सन्त हरिदास को इसका प्रवर्त्तक माना जाता है । उत्तरी भारत के सन्तकवि अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से उच्च कोटि के सन्त महात्मा थे । कथनी और करनी के अन्तर को इन्होने अपने जीवन में सम्पूर्ण करके दिखाया । सन्तकाव्य भक्ति आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।'' [24]

भारतीय मत मतान्तरों के अतिरिक्त ' हिन्दी के निर्गुण साहित्य और मत में एक विदेशी मत का भी बहुत गहरा प्रभाव है वह मत है सूफी सम्प्रदाय । सूफी सम्प्रदाय इस्लाम की ही एक शाखा के रूप में था । '[25] सूफी सम्प्रदाय भले ही एक स्वतंत्र मत के रूप में आया था मगर यह अपने समकालीन प्रौढ़ रूप में विकसित सन्त साहित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका । सन्तों के समान ही सूफियों ने गुरु को ईश्वर की तरह महत्त्व दिया है । वही प्रेम पंथ का मार्गदर्शक है और प्रेमप्रभु से मिलन कराने वाला भी वही है ।[26] इसके सिद्धान्त संत मत से हूबहू मिलते थे । इन दोनों ने पारस्परिक आदान प्रदान से एक दूसरे को विकसित होने में सहायता की । संत मत और सूफीमत दोनों का लक्ष्य एक ही था । अतः इन्होने एक दूसरे के आदर्शों को अपनाने में ज़रा भी संकोच नहीं किया। निर्गुणियां सन्तों ने तत्कालीन प्रचलित अनेकानेक धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं से हट कर एकेश्वरवाद का सन्देश दिया । इतना ही नहीं उन्होंने अन्य मतों के आदर्शों को जो उनके सिद्धान्तों की पुष्टि करते थे सहर्ष अपनाया । योगियों के ज्ञान को निर्गुण सतों ने अपने लक्ष्य का मूलाधार माना । सच तो यह है कि इसी ज्ञान–प्रवण व नैतिकता प्रधान योग मार्ग के खेत में भक्ति का बीज पड़ने से जो मनहर लता उत्पन्न

हुई,उसी का नाम निर्गुण भक्ति मार्ग है ।[27] दार्शनिक क्षेत्र में माया को इन्होने ईश्वर प्राप्ति में बाधक माना है । जीव तत्त्वतः ब्रह्म ही है मगर माया के आवरण के कारण ही जीव ब्रह्म से अलग हो गया है । इन्होने आध्यात्मिकता के साथ–साथ ईश्वर पूजा के प्रचलित बाह्याडम्बरों का खण्डन भी किया तथा समाज सुधार का बीड़ा भी उठाया । मूर्तिपूजा, जातिपांति, असत्यभाषण,मांसाहार,मघपयान,अवतारवाद,आदि का उन्होंने विरोध किया ।'[28] ईश्वर की ओर उन्मुख होने हेतु गुरू के उपदेश और मार्गदर्शन की नितान्त आवश्यकता है । इन सन्तों ने गुरू के उपदेश के साथ ही आत्मानुभूति की स्थिति में निरन्तर टिके रहने को ही सहजसमाधि में रहना कहा है । '[29] संतों ने अपने सिद्धान्तों को भारतीय पद्धति एवं परम्पराओं से बिल्कुल अलग नहीं किया उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की सबसे बड़ी संख्या योग और तन्त्रों के पारिभाषिक शब्दों की है । अतः निश्चित है कि योग और तंत्र सन्तों की दार्शनिक विचार परम्परा से घने भाव से सम्बद्ध है ।[30] निर्गुणिये सन्त और कवि कोई विद्वान नहीं । जीवन के अनुभव व सत्संगति के द्वारा ही उन्होंने सब सीखा और गुरु की अपार कृपा से ही अपने लक्ष्य को पा सके । समाज सुधारक के रूप में उपासना के ब्रह्म स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकाण्ड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लाओं दोनों को उन्होंने खरी–खरी सुनाई और राम–रहीम की एकता समझा कर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया ।[31] इन सन्तों ने अपनी साधारण बोलचाल की भाषा में अपने सिद्धान्तों को जनता तक पहुंचाया और बाधाओं को दूर कर उनका मार्ग प्रशस्त किया । ईश्वर सम्बन्धी उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं । ' वह किसी भी दार्शनिक मानदण्ड से परे है, तार्किक बहस से ऊपर है, पुस्तकीय विद्या से अगम्य है परप्रेम से प्राप्त है, अनुभूति का विषय है । सहज भाव भावित है । जगत को सभी सन्त कवियों ने झूठा और नश्वर कहा है । दार्शनिक क्षेत्र में इनके ब्रह्म सम्बन्धी सिद्धान्तों को अद्वैतवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया है । ' उनकी दृष्टि में विश्व में जो कुछ है वह ब्रह्म ही है । वह ब्रह्म से ही उत्पन्न है और अन्त में ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है ।[33] सन्तों के सिद्धान्त भारतीय संस्कृति को अपनाने तथा जन जीवन के अधिक निकट होने के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए । दूसरे भ्रमणशील प्रवृत्ति के कारण इन्होंने स्थान–स्थान पर जा कर अपनी साधना पद्धति का मुक्त कण्ठ से प्रचार किया ।

निर्मल सन्त : अर्थ और नामकरण

भारतवर्ष सन्तों ,पीरों ,फकीरों ,ऋषियों ,मुनियों एंव दार्शनिकों की धरती है । यहां समय–समय पर अनेक महापुरूषों ने जन्म लिया । ज्यों–ज्यों परिस्थितियों में बदलाव आया बाह्य आक्रमणकारियों ने भारतभूमि पर अधि ाकार जताया तभी जनता पर कुठाराघात आरम्भ हुए तब ऐसे ही विषम समय में महापुरूषों ने जनता को ढ़ांढ़स बधाया । उनका मार्गदर्शन किया । एक विचार के अनुसार या तो ईश्वर स्वंयं अवतरित होता है या फिर अपनी शक्ति प्रदान कर किसी महापुरूष को यह काम सोंप देता है, जैसा कि भारत का पुरातन इतिहास साक्षी है । भगवान राम से कृष्ण, बुद्ध तथा गुरू नानक देव से लेकर गुरू गोबिंदसिंह दशमेश तक अनेक महापुरूषों ने पीड़ित जनता को साहस एवं बल प्रदान कर संघर्षरत होने की प्रेरणा दी तथा कष्टों से मुक्ति दिलाई । धर्म की रक्षा की । मगर यह सारा काम उस परमपिता सच्चे गुरू की प्रेरणा से ही सम्पन्न होता है। जैसा कि गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा है....

हम इह काज जगत मो आए
धर्म हेत गुरु देव पठाए ।।[34]
.........मैं हों परम पुरूष को दासा।
देखन आयो जगत तमासा ।।[35]

उस परम पुरूष के दास संसार में उसी के अनुसार काम करतें हैं। पुनः उसी के हुक्म से काम समाप्त होने पर उसी ज्योति में विलीन हो जाते हैं। जब–जब संसार में धर्म का शासन डगमगाने लगता है और अधर्म कां बोलबाला होने लगता है तब जनता किसी ऐसे महापुरूष को ढूंढती है, जो उनका मार्गदर्शन कर सके। तब इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने तथा धर्म की स्थापना करने अधर्म का नाश करने हेतु किसी न किसी महापुरूष का अवतरण होता है। जब सज्जनों, सन्तों का अपमान होता है और दुर्जनो का सम्मान होता है तब वह ईश्वर किसी न किसी रूप में स्वयं प्रकट होता है। गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है।

यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मन सृजाम्यहम् 114–711 [36]

सन्तों की रक्षा करना एवं नाश करना ही इनका मुख्य घ्येय होता है। समाज को सही दिशा दिखाना, मानवीय गुणों का संचार करना एवं धर्म का प्रचार

करना ही इनके अस्तित्व की सार्थकता है। अनेक ऐसे महान व्यक्ति हुएं हैं, जिन्होने लोक मर्यादा एवं जीवन को सही दिशा देने में ही आत्म सर्म्पण कर दिया। अपने सद् साहित्य के द्वारा वे अपनी अनुभूति की अमिव्यक्ति कर आने वाले पीढ़ियों तक के लिए प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हुए। उनकी वाणी अपनी सार्वभौमिकता एवं सार्वलौकिकता लिए हुए आज भी अमर है।

वैदिक काल में संस्कृत साहित्य पर्याप्त मात्रा में रचा गया। ऋग्वेद जैसे आदि ग्रन्थ आज भी विश्वभर के लोगों का मार्गदर्शन करने में सक्षम है।। इसी प्रकार मध्यकालीन साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों में रचा जाने पर भी आज भी उतना ही लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण है। भले ही उस समय भारत की सामाजिक, राजनैतिक एवं परिस्थितियां अत्यंन्त विश्रृंखल अवस्था में थी तथापि उस समय सभी प्रचलित मतमतान्तर एक ही लक्ष्य सिद्धि के लिए तत्पर थे। वह लक्ष्य था भारतीय संस्कृति की सुरक्षा। धर्म सम्प्रदाय या दर्शन का इतना महत्त्व न था प्रश्न था भारतीयता को, हिन्दुत्व को सुरक्षित रखने का यही कारण था कि दक्षिण में फैली भक्ति एकाएक उतर में पहुँच गई।

कबीर ने इन भक्ति को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप उत्तरी भारत में प्रसारित किया तदनन्तर अनेक सम्प्रदायों का उद्भव हुआ। सगुण एवं निर्गुण के मध्य एक विभाजक रेखा खिंच गई। किसी ने ज्ञान को माध्यम बनाया, किसी ने प्रेम को तो किसी ने भक्ति को। आगे चल कर अनेकानेक मतमतान्तरों का प्रचलन हुआ। धर्म प्रचारक के लिए 'सन्त' शब्द रूढ़ हो गया क्योंकि उससें यह अपेक्षा की जाती थी कि उसका जीवन उच्चादर्शों से युक्त हो और वह चिन्तन के माध्यम से उस ब्रह्म को जानने में प्रयासशील हो। इतना ही नहीं उसे ब्रह्म का स्वरूप मान लिया गया था। राजदेव सिंह लिखते है ——

..सगुण भक्ति का साहित्य हो या निर्गुण भक्ति का इस विशाल वाड़्मय में संन्त शब्द सदाचारी, सदसद, विवेकशील, अराग, अलेप और मायातीत महापुरूष के अर्थ में निर्विवाद, रूप से व्यवहृत हुआ और सर्वत्र संन्तों को परब्रह्म प्रतिरूप माना गया है।[37] इन्ही सन्तों में आध्यात्मिक चेतना के तत्कालीन विषम परिस्थितियों को नियंत्रित करने का सफल प्रयास किया। सन्तों ने अपने अन्दर एक ऐसी शक्ति को प्रकट किया, जो, अन्धकार में भटकती जनता के लिए प्रकाशस्तम्भ प्रमाणित हुई। तब सन्तवर्ग

समाज में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित भी हुआ। 'सन्त' शब्द का व्युत्पति परक अर्थ जानने से ही सन्त के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

संस्कृत–हिन्दी कोश अनुसार......'सम्प्रदाय प्रद्योतक–वैदिक परम्परा को दर्शाने वाला सम्प्रदाय प्रद्योत को अनुग्राह रचेति , सम्प्रदाय निगम[38] सन्त किसी सम्प्रदाय का प्रचारक एवं परम्परा अनुगामी होता है।

हिन्दी साहित्य कोष भाग–1 में लिखा है... –'सन्त शब्द का प्रयोग साधारणतः किसी भी पवित्रात्मा और सदाचारी पुरुष के लिए किया जाता है और कभी–कभी यह 'साधु एवं महात्मा शब्दों का पर्याय भी समझ लिया जाता है। [39] सन्त शब्द वास्तव में एक ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो अपने आचरण एवं व्यवहार से शुद्ध हृदयी एवं परोपकारी हो उसमें ऐसे गुण हों, जिससे उनकी आत्मा महान हो गई हो। अंग्रेजी में इसके लिए 'सेण्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'सेण्ट' शब्द वस्तुत : लेटिन सैंशियों (पवित्र कर देना) के आधार पर निर्मित सैण्टस शब्द से बनता है, जिसका अभिप्राय इसी कारण पवित्र होता है और वह ईसाई धर्म के कतिपय प्राचीन महात्माओं के लिए पवित्रात्मा के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।[40] कुछ संस्कृत विद्वान सन्त शब्द की व्युत्पति 'सत्' से मानते हैं। उनका कथन है कि ईश्वर जिस प्रकार सत + चित + आनन्द स्वरूप है, उसी प्रकार सन्त भी सत् गुणों से युक्त उस ब्रह्म का ही स्वरूप है। तो भी अर्थ विस्तार की दृष्टि से इसका व्यापक अर्थ साधु या सज्जन के रूप में किया जा सकता है।

प्रयोगगत बहुलता के हिसाब से संस्कृत के साहित्य में सन्त एक सामान्य सा शब्द है, बहुत कम प्रयुक्त हुआ है और मुख्यतः सज्जन का अर्थ देता है।[41]

तैत्तरीय उपनिषद के अनुसार उस सत् रूप ब्रह्म को जानने वाला सन्त ही वह सत् स्वरूप स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मैति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मैति चेत वेद, संन्त मेन ततोविदुरिति।।[42]

अर्थात यदि कोई पुरुष ब्रह्म असत् है जानता है, तो वह स्वयं भी असत् हो जाता है और यदि ऐसा जानता है कि ब्रह्म सत् है तो ब्रह्म वेता लोग उसे भी सत् समझा करते हैं। इसी सन्दर्भ में पंचमेश गुरू अर्जुन देव जी ने अपनी प्रसिद्ध रचना सुखमनी में लिखा है।....

सति पुरूष जिनि जानिया
सतगुरु तिस का नाऊ......[43]

उस परम सत्ता सत् ईश्वर को जान लेने के बाद उस पुरूष की आत्मा महान हो जाती है, इन्द्रियों सयंमित एवं एकाग्र वह ब्रह्ममयी हो जाता है, उसके लिए सारा संसार ब्रह्म का स्वरूप हो जाता उसका सम्पूर्ण जीवन दूसरों के लिए हो जाता है, दूसरों का थोडा सा कष्ट देखकर भी उसके दूर करने के लिए तत्पर हो जाता है राम चरित मानस के अनुसार.

सन्त ह्रदय नवनीत समाना
कहा कबिनह परि कहें न जाना
निज परिताप द्रवह नवनीता
परदु:ख द्रवहि संत सुपुनीता। [44]

कबीर जी ने सन्त को एक लाक्षणिक पुरुष चित्रित करते हुए लिखा है.....

निरबैरी निहकामता, साई सेती नेह
विषिया सू न्यारा रहे, सन्तनि का अंग सेह।। [45]

वास्तव मे सन्त ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसने आपने को साध लिया हो सत् स्वरूप हो गया हो। 'सन्त' शब्द का मौलिक अर्थ शुद्ध अस्तित्व मात्र का ही बोधक है और इसका प्रयोग भी इसी कारण उस वस्तु व परमतत्व के लिए अपेक्षित होगा, जिसका नाश कभी नही होता जो सदा एक रस तथा अविकृत रूप में विद्यमान रहा करता है और जिसे सत्य के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है।[46] मगर बाद में यह शब्द मध्ययुगीन सम्प्रदाय विशेष के लिए रूढ़ हो गया.. कबीर ने अपनी परम्परित रूढियों का निराकरण कर एक नए एवं स्वस्थ दृष्टिकोण की नींव रखी । उन्होने अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु सर्वस्व त्याग कर जनता की सेवा की और एक सही दिशा प्रदान की। तब उस परिवेश में ऐसा लगता था कि सन्त शब्द ऐसे ही लोगों के लिए उपयुक्त है । राजदेवसिंह लिखते हैं--सन्त शब्द आजकल अपनी पूर्ववर्ती उदात्त अर्थ मर्यादा से विच्छिन्न होकर ऐसे ज्ञानी भक्तों की पारिभाषिक और साम्प्रदायिक संज्ञा बन गई है, जो नीची जातियों में उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण में और सगुण ब्रह्म में आस्था नहीं रखते । जातिपांति के बन्धनों को अस्वीकार करतें हैं'।[47]

भले ही यह कोई निर्धारित कसौटी नहीं है और न ही समूचे सन्त

वर्ग पर लागू होती है । मगर इतना तो निश्चित ही है कि इन्होने जिस लक्ष्य से अपने आपको मानसिक रूप से सामाजिक राजनैतिक एंव धार्मिक रूढ़ियों के खण्ड़न हेतु तैयार किया था उस पर बिल्कुल क्रियात्मक रूप से क्रियाशील साबित हुए । ' जिस प्रकार इसाइयों में कैथोलिक धर्म की दुर्वृत्तियों, दुराचारों और कुटिलताओं के विरोध में उसी धर्म का निखरा हुआ रूप प्रोटैस्टैंट धर्म पैदा हो गया था ठीक इसी प्रकार ब्राह्मणों और पुरोहितों के पाखण्ड बाह्याचारों दुर्नीति तथा अनेकेश्वर वाद के विरूद्ध इस आन्दोलन में उसी धर्म का निखरा रूप सिक्ख मत स्थापित कर दिया।[48] इसी धर्म ने बाद में हिन्दू धर्म की सुरक्षा हेतु एक नया मानदण्ड स्थापित किया । परम्पराओं का परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप प्रस्तुत कर धर्म की एक नई परिभाषा स्थापित की । गुरू नानक देव जी ने अपने युग को परिस्थितियों को आंक कर पुनः अपने अन्दर एक अद्वितीय शक्ति पैदा कर एक ऐसे मार्ग का प्रतिपादन किया जो बाद में आने वाली 10 गुरू गद्दियों का अधिष्ठाता हुआ। भले ही पंचम गुरू अर्जुनदेव, छठे गुरू हरगोबिन्दराय, नव्म गुरू तेगबहादुर तथा दशमेश गुरू गोबिन्दसिंह जी द्वारा इसमें कुछ मौलिक दृष्टि भी की गई मगर मूल भावना रही एकता एवं सांस्कृतिक सुरक्षा की । इन सिक्ख गुरूओं ने अपने अनुभव के आधार पर अमर वाणी रच कर आने वाली पीढ़ियों का भी उद्धार किया। यही कारण है कि आज भी सिक्ख धर्म उसी रूप में अपना अक्षुण्ण स्थान बनाए हुए हैं। इस अमर साहित्य के द्वारा ही सिक्ख गुरूओं ने जनता का मार्ग दर्शन किया भ्रम निवारण किया और अमर सन्देश दिया।

पंजाब की संस्कृति को सुरक्षित रखने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया यहां तक कि उनके बाद भी यह सांस्कृतिक आन्दोलन चलता रहा। यद्यपि बाद में सिक्ख भी कई सम्प्रदायों में बंट गए परन्तु इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकों ने सांस्कृतिक आन्दोलन को क्षीण नहीं होने दिया वरन् उसे सशक्त और दृढ़ ही किया, जिसके प्रभाव स्वरूप यहां ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाण में लिखा गया । जिसमें उस युग के राजनैतिक एंव सांस्कृतिक संघर्ष का चित्रण हुआ है—' ।[49]

ऐसे ही वातावरण में एक और राज महलों में विलासिता का वातावरण पनप रहा था । श्रृंगार प्रधान रचनाओं के माध्यम से कविगण अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करने में तत्पर थे, तो दूसरी ओर महलों

के बाहर पूर्व मध्यकाल की भक्ति का प्रभाव आच्छादित था । साथ ही वीरता,नीति,रीति की रचनाएं अत्यधिक मात्रा में रची जा रही थी । पंजाब भी इस परम्परा से अछूता न रह सका । सभी गुरूओं,सन्तो,फकीरों ने इस यज्ञ में अपनी लेखिनी की आहुति डाली । पंजाब भी पूर्व मध्यकाल के इस प्रभाव को उत्तरमध्यकाल तक बनाए रखने में सफल रहा । ' पंजाबेत्तर हिन्दी प्रदेश में जब कविता भक्ति युगीन पुनीत वातावरण से निकल कर रीतिकालीन सभाकक्षों में प्रविष्ट हो रही थी पंजाब में उसी समय हिन्दी कविता दशमेश गुरू गोबिन्दसिंह जी के रूप में तब ऐसी स्वनाम धन्य प्रतिभा से उपकृत हो रही थी, जिसमें कबीर और नानक, सूर और तुलसी तथा नरपति और भूषण एक साथ साकार हो उठे । '[50] यह समानान्तर लेखन कार्य भारत के अनेक प्रान्तों में उद्भूत हुआ । हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों का ध्यान अभी भले ही इस ओर न गया हो,मगर इसके बिना हिन्दी साहित्येतिहास लेखन भी अपूर्ण ही माना जाएगा । अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य जिस प्रकार हिन्दी साहित्येतिहास की आपूर्ति करते हैं ठीक उसी प्रकार पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य भी उसका एक महत्त्वपूर्ण अंग है । वीरगाथाकाल हो या भक्तिकाल,रीतिकाल हो या आधुनिक काल,पंजाब में भी हिन्दी साहित्य की एक समानान्तर धारा अवश्य प्रवाहित रही है । हां इतना अवश्य है कि सोलहवीं–सत्रहवीं शती में यहां गुरुमुखी लिपि का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था । जिसके कारण तत्कालीन साहित्य की लिपि, गुरुमुखी हो गई । मगर भाषा उस समय की साहित्यिक ब्रज ही रही । इसी सन्दर्भ में सत्यपाल गुप्त के विचार द्रष्टव्य है । पंजाब आदि काल से ही अन्न के साथ–साथ साहित्य के लिए भी बहुत उर्वर भूमि रहा है यहां के वीरों ने शत्रुओं से लोहा लिया तो यहां के ऋषियों ने संसार को ज्ञान का मार्ग दिखाया । इस भूमि पर मानव ने खड्ग और लेखिनी के संतुलन द्वारा जीवन की पूर्णता के उल्लास का अनुभव किया था । यहां रचे गए साहित्य के अज्ञात् अप्रकाशित और अछूता रहने का मुख्य कारण इसका बड़ी मात्रा में गुरुमुखी लिपि में होना है,इसी कारण पंजाब के सम्बन्ध में यह गलत धारणा बनी रही कि यहां हिन्दी साहित्य के लिए कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ ।'[51] अब नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिर्पोटों एंव शोध कार्यो ने यह सिद्ध कर दिया है कि पंजाब में गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है विशेषतया उत्तर मध्य कालीन हिन्दी

साहित्येतिहास में पंजाब के इस साहित्य की अपनी अलग पहचान है –भक्ति भावना, रीति, नीति व्यंग्य एंवं शास्त्रीय परम्परा को अपना कर चलने वाली इस युगीन परम्परा ने हिन्दी साहित्य को अत्यधिक समृद्ध किया है । पंजाब के इस साहित्य के कारण ही आज हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की सम्भावनाएं बनती जा रही हैं । इससे एक नऐ अध्याय के जुड़ जाने की आशा है । ' प्रत्येक नवीन उपलब्धि की भांति इस साहित्य को भी पहले आग्रह दुराग्रहवश पर्याप्त उपेक्षित रहने का अभिशाप झेलना पड़ा परन्तु अब स्थिति बदल रही है । हिन्दी के नवीनतम सन्दर्भ ग्रन्थों, शोध प्रबन्धों तथा आज की पत्र पत्रिकाओं में पंजाब की इस विभूति को उचित सम्मान दिया जा रहा है, वस्तुतः इस साहित्य पर विचार किए बिना हिन्दी के सार्वभौम रूप तथा हिन्दी की सार्वदेशिकता को रेखांकित कर पाना सम्भव ही नहीं है ।

दुर्भाग्य से पंजाब के इस साहित्य का विधिवत् एवं सम्पूर्ण विवेचन विश्लेषण अभी तक सम्भव नहीं हुआ । इस साहित्य के शोधकर्ता अभी तक प्रायः सीमित क्षेत्रों में पर्याप्त संकीर्णता के साथ काम कर रहें हैं ।[52] चौदहवीं शती से लेकर 19वीं शती तक का समूचा हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा की अमीर विरासत है । मगर पंजाब में दस गुरूओं एवं गुरू घर के अनेक सेवकों के द्वारा गुरुमुखी लिपि के प्रचार एवं प्रसार के कारण ब्रज–भाषा का महत्त्व और भी बढ़ा । गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब का हिन्दी–साहित्य विषयवस्तु की विविधता,तथ्य की सरलता तथा कथ्य की अनन्त गरिमा से सम्पन्न है ।[53] फलस्वरूप गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रजभाषा एक नया रूप लेकर प्रस्तुत हुई । 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' इस साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है ।

'––जिस समय पंजाबेतर हिन्दी कवि अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्ति गान एवं उनके मनोरंजन के लिए वासना वर्धक कृतियों का निर्माण कर रहे थे, लगभग उसी समय गुरू गोबिन्द सिहं के आश्रित कवि इष्ट आराधना, गुरु महिमा, नवोदित खालसा सम्प्रदाय विषयक सिद्धान्तों भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों के भाषानुवाद तथा वीर रस पूर्ण कर रहे थे। [54] गुरू गोबिन्द सिंह ज़ी के समान अन्य कवियों, गुरुओं, सेवकों और प्रचारकों ने भी इस परम्परा को विकसित किया । इससे सिक्ख धर्म एवं गुरुवाणी साहित्य भी पुष्ट होता है । अल्प समय में ही इस साहित्य

ने अपनी अलग पहचान द्वारा अपना महत्त्व स्थापित कर लिया। गुरुमुखी लिपि में विरचित होने पर भी ब्रजभाषा के अस्तित्व को आंच न आने दी। इस साहित्य की यह अनन्य विशेषता है कि इससे दो भाषाएं समृद्ध हुई है। मगर इससे एक भ्रामक स्थिति भी पैदा हो गई थी। कुछ लोग इसे केवल गुरुमुखी लिपि में होने के कारण ही पंजाबी साहित्य का अंग समझते रहे और भाषा की दुरूहता के कारण दूसरे लोग इसे पंजाबीतर भाषा का अंग मानते रहे। मगर अब स्थिति कुछ स्पष्ट हो गई प्रतीत होती है। ' पंजाब में न केवल पंजाबी साहित्य का निर्माण ही हुआ है बल्कि संस्कृत हिन्दी,उर्दू,फारसी आदि से भी इसका प्राचीन काल से विशिष्ट सम्बन्ध रहा है। पंजाब में गुरू नानक देव से लेकर रीतिकाल के अन्तिम चरण तक विशाल साहित्य का प्रतिपादन ब्रजभाषा में हुआ। '[55] केवल इतना ही नहीं पंजाब में रचित इस समूचे साहित्य में अनेक विषयों से सम्बंधित साहित्य का प्रतिपादन ब्रजभाषा में हुआ। ' केवल इतना ही नहीं पंजाब में रचित इस समूचे साहित्य में अनेक विषयों से सम्बंधित साहित्य उपलब्ध होता है। गुरूवाणी की रचना के साथ–साथ गुरुवाणी से सम्बंधित अनेक विषयों पर अनेक विद्वानों द्वारा रचित टीकाएं भाष्य,अनुवाद आदि का कार्य उस समय में ही शुरू हो गया था। इस साहित्य ने उस समय के समूचे साहित्य को इस प्रकार प्रभावित किया कि पूरे पंजाब में उस समय गद्य और पद्य दोनों रूपों में ब्रज भाषा की लिपि गुरुमुखी हो गई। गुरुवाणी को उस समय सर्वाधिक सम्मान प्राप्त था क्योंकि ' गुरुवाणी पंजाब के इतिहास को ही रेखांकित नहीं करती बल्कि पंजाब की सांस्कृतिक परम्परा को भी रेखांकित करती है।

गुरुवाणी साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव बहुमुखी है। पंजाब में गुरुओं की वाणी की व्याख्या के लिए कई ग्रन्थों की रचना हुई। इन रचनाओं में वाणी की टीकाएं, गुरुमत दर्शन की व्याख्या तथा गुरुओं की वाणी सम्बन्धी साहित्य आता है—'[56] गुरुवाणी साहित्य के अतिरिक्त उस समय का परम्परित रीतिकालीन साहित्य भी गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध होता है विशेष तौर पर उस समय के रियासती राजाओं ने इस क्षेत्र में अधिक रुचि दिखाई। इस समय रियासती राजदरबारों में अनेक ऐसे महान व्यक्ति कवि हुए हैं,जिन्होंने अमर साहित्य की रचना की। रियासत पटियाला,नाभा,जीन्द, कपूरथला, फरीदकोट आदि में इतने अधिक कवि

हुए हैं और उन्होंने इतने प्रचुर परिमाण में गुरुमुखी लिपि में हिन्दी पुस्तकों का निर्माण किया है कि यदि उनके सम्बन्ध में ब्योरे वार लिखा जाए, तो एक वृहद्ग्रन्थ तैयार हो सकता है । '[57] दर्शन,संगीत और साहित्य की त्रिवेणी गुरुवाणी ने जिस प्रकार जनता के उस समय के कष्टों का निवारण किया, वह अपने आप में एक उदाहरण है । विभिन्न सम्प्रदायों का समन्वित एवं स्वाभाविक प्रारूप गुरुवाणी आज भी जनता का मार्ग दर्शन कर रही है। गुरुवाणी में साम्प्रदायिक सद्भावना की ओजस्विनी शक्ति तो है ही साथ ही साहित्यिक प्रौढ़ता भी है । पंचमेश गुरु अर्जुन देव द्वारा सम्पादित आदि गुरू ग्रन्थ साहिब बाद में गुरू पद पर आसीन हुआ और आज सिक्ख धर्म के प्रकाश स्तम्भ के रूप में विद्यमान है ।' गुरुवाणी को गुरू गोबिन्द सिंह के समय ऐसी विरासत का रूप दे दिया गया कि वह मात्र साहित्य न रह कर साक्षात् गुरु रुप हो गई । विश्व के पंथक इतिहास में जब तक सिक्ख मत का अस्तित्व है,पंजाब की इस विरासत का अद्वितीय महत्त्व बना रहेगा । गुरुवाणी एक और साहित्य और संगीत का सगंम है,तो दूसरी और आध्यात्मिकता और दार्शनिकता की पावन स्रोतस्विनी भी है ।[58] गुरु गोबिन्दसिंह ने गुरुवाणी को गुरु का पद प्रदान कर पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य के लिए एक मील पत्थर का काम किया है । गुरु गोबिन्दसिंह स्वंय एक बहुत बड़े विद्वान् दार्शनिक,साहित्यकार,एंव कलाकार थे । उनके दरबार में 52 कवि थे,जो अनेक प्रकार की रचनाओं का सर्जन करके ब्रजभाषा के साहित्य में श्रीवृद्धि कर रहे थे । उन्हें स्वयं अध्ययन का शौक था । अतः उन्होनें ,संस्कृत,अरबी,फारसी,पंजाबी अनेक भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया । उनके साहित्य में अनेक विचारधाराओं का समन्वित रूप परिलक्षित होता है । उन्होंने प्राचीन वैदिक एंव पौराणिक साहित्य का अध्ययन स्वंय ही नहीं किया अपितु अपने शिष्यों को भी इस कार्य के लिए तैयार किया । अपने कुछ शिष्यों एवं दरबारी कवियों से उन्होंने अनेक ग्रन्थों के अनुवाद भी कराए ताकि लोग अपनी इस अमीर सांस्कृतिक विरासत से अनभिज्ञ न रह जाएं ।

'– दशमगुरू ने अपने कुछ शिष्यों को विशेष रूप से संस्कृत अध्ययन हेतु काशी आदि वैष्णव केन्द्रों में भेजा जहां से पौराणिक सगुण भक्ति के संस्कारों का ग्रहण स्वाभाविक था । यह इसी प्रक्रिया का सुफल था कि दशम गुरू ने संस्कृत के अनेक पौराणिक ग्रन्थों के सरल ब्रज पद्य

में अनुवाद की योज़ना बनाई ।[59]

इतना ही नही गुरू गोबिन्द सिंह जी ने एक वीर योद्धा के रूप में तत्कालीन परिस्थितियों को आंका और खालसापंथ की स्थापना करके तत्कालीन निर्जीव समाज में प्राण फूंक दिए ।'––इस नई प्रणाली का तात्पर्य यह था कि कोई भी व्यक्ति वैयक्तिक रूप से गुरु नही होगा । गुरु (गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित वाणी) शब्द द्वारा प्रेरित एवं निदेशित होगा ।[60]

इस प्रकार गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरू का रूप प्रदान कर गुरु जी ने गुरु–गद्धी के लिए होने वाले झगड़े को सदा के लिए समाप्त कर दिया। उन्होने अपने आपको खालसा के समक्ष प्रस्तुत कर अपने अस्तित्व का विलय कर दिया। अगर वे चाहते तो अपने चारों पुत्रों में से किसी एक को गुरु–गद्धी का अधिकारी बना सकते थे। मगर उन्होने समय को पहचाना और परिस्थितियों के अनुरूप कायर एवं दुर्बल जनता को बल प्रदान करने के लिए चेतना लाने का दुरूह कार्य किया।

बैसाखी के दिन सन् 1699 में गुरु जी ने एक जनसभा बुलाई। उस सभा को सम्बोधित करके गुरु जी ने पाँच लोगों के सिरों की मांग की। ....गुरु गोबिन्द सिंह सुबह उठे और नित्य नियम के अनुसार बंदगी में लीन हो गए। फिर आपने वस्त्र और शस्त्र सजाए और संगत को दर्शन दिए। दर्शन करते ही संगत ने जयकारों से धरती और पाताल गुँजा दिए। नित्य प्रति की कथा जो सिक्ख बड़ी श्रद्धा से सुनते थे, के स्थान पर अपनी कृपाण म्यान में से बाहर निकाल ली और विशाल दीवान को सम्बोधन करके कहा.. 'मुझे एक शीश चाहिए। आओ मेरे सच्चो सिक्खो में से कोई मुझे एक सिक्ख की प्रतीक्षा है, जो गुरु और धर्म की खातिर अपना शीश भेंट चढ़ाए।'[61] इतना सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। लोग दहल गए। कोई भी इस रहस्यपूर्ण परिवर्तन को समझ नही सका। सभी सिक्ख सिर झुकाए बैठे थे। गुरू जी ने तीन बार यह मांग दोहराई। कोई साहस न करता था। अन्ततः लाहौर का खत्री दयाराम उठा और कहने लगा, 'मेरा शीश आपकी भेंट है, मेरे सच्चे पातशाह आपकी कृपाण से मरने से बढ़ कर और बड़ी खुशी मेरै लिए क्या हो सकती है...।'[62] गुरु जी उसे अपने साथ एक तम्बू में ले गए ओर खून से सनी तलवार लेकर बाहर आ गए। सिक्ख कुछ भी समझ पाने में असमर्थ थे। गुरु जी ने पुनः ललकारा। इस

बार हस्तिनापुर का जाट धर्मदास खड़ा हो गया और हाथ जोडकर कहने लगा आपका सेवक उपस्थित है। हे सच्चे पातशाह। इसने तो अपना शीश उसी दिन भेंट कर दिया था, जिस दिन यह आपका सिक्ख बना था। गुरु गोबिन्द सिंह ने तीन बार और शीश मागे द्वारिका का मोहक्म चंद जगन्नाथ का हिम्मत, विद्दुर का साहिब चन्द खुशी खुशी एक दूसरे के बाद अपने शीश भेंट करने के लिए आगे बढ़े ।[63] सभा आश्चर्य चक्ति रह गई जब गुरु जी थोडी देर बाद पांचो सिक्खों सहित तम्बू से बाहर आए। पांचों सिंह नए वेश में कृपाण धारण किए हुए थे, गुरू जी ने पांचों सिक्खों को सभा के सामने प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् उन्होने थोड़ा सा जल लोहे के एक बर्तन में डाल कर दोधार वाले खण्डे से हिलाया , थोड़े से बताशे उसमे डाले, पुन : वाणी का पाठ किया। बाद में वह 'अमृत' उन पांचों को दिया और उनसे स्वयं ग्रहण किया। इस प्रकार....गुरु गोबिन्द सिंह ने जिस शूरवीर जाति का गठन किया उसे 'सिंह की उपाधि से विभूषित किया। गुरू जी ने आदेश दिया कि सभी सिक्ख अमृतपान करें। उन्हे पांच (ककार) 'केश, कड़ा, कच्छा, कंघा तथा कृपाण रखने के लिए कहा गया। उन्हे सिंह कहा जाने लगा।[64] परिस्थितियों के अनुरूप ऐसा आवश्यक भी था। क्योंकि भारतीय लोग विदेशी आक्रमणकारियों की शक्ति के आगे दुबक गए थे। उनमें साहस और पौरुष का अभाव हो गया था। उन्हे एक नई चेतना की आवश्यकता थी। निडरता भुजबल और प्रेरणा की आवश्यकता थी, जो गुरु जी ने इस घटना के बाद प्रदान की।

...इस 'अमृत और खड़ग दीक्षा से भारतीय सुधारवादी लहर में एक नए युग का सूत्रपात हुआ गुरु गोबिन्द सिंह से पूर्व इतने उच्च कुल और इतने श्रेष्ठ किसी भी व्यक्ति में ऐसा साहस नहीं किया था और न ही इसके परिणाम स्वरूप आने वाले खतरों का सामना किया था। एक ही फटके में तेजस्वी गुरु में उन सभी भेदभावों को समाप्त कर दिया जिनके कारण हिन्दू राजनैतिक और आध्यात्मिक दासता में फंस चुका था। यह नया (वर्ग) पंथ नये विश्वासों और नई प्रेरणाओं के साथ और बलशाली व्यक्ति के नेतृत्व में नए जीवन पथ पर अग्रसर होने लगा।[65]

इस कार्य के पीछे गुरू जी की मौलिक विचारधारा के साथ साथ भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि की पुनर्स्थापना भी एक उद्देश्य था। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना तो जातीयता और वर्ग वैषम्य दूर करके

ही स्थापित हो सकती थी। इसलिए सब से पहला कार्य गुरु जी ने यही किया। इसीलिए सभी जातियों के लोग गुरू जी के सिक्ख बन गए। भले ही सारा आदर्श नया था । ढांचा अभी तैयार ही हुआ, उसका आधार पुराना ही था । खालसा के सभी सिद्वान्त सिक्ख धर्म के रूप में विकसित हुए । गुरु जी ने अपने पाँच सिक्खों (शिष्यों) को खालसा के रूप में प्रतिनिधित्व प्रधान किया –'[66]

निर्मल सन्त : अर्थ और नामकरण

तदनन्तर एक विशाल सेना एकत्रित करके,पहाड़ी राजाओं को पराजित कर गुरु जी ने सिक्खधर्म के प्रचार के लिए तथा राष्ट्रीय एकता के लिए भ्रमण आरम्भ किया । स्थान–स्थान पर जा कर लोगों का मार्ग दर्शन किया । भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पुजारी ने एक ऐसा विद्वान वर्ग तैयार किया जो गुरूवाणी का सन्देश घर–घर पहुंचा सके । उन्होंने सगुण,निर्गुण,ज्ञान,भक्ति सांसारिकता विरक्तता का समन्वित रूप प्रस्तुत किया । उन्होंने बताया कि बाह्याडम्बरों एवं पाखण्डों से ईश्वर प्राप्ति असम्भव है । केवल प्रेम द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है । उन्होंने अपने शिष्यों को पुरातन साहित्य का अध्ययन करने के लिए काशी भेजा । जो बाद में 'निर्मल सन्त' कहलाए और उनका 'निर्मल–पन्थ' आज भी प्रचलित है । '– दशम गुरू द्वारा संस्कृत अध्ययनार्थ काशी भेजे गए शिष्यों ने ही पंजाब लौट कर 'निर्मल पन्थ' की रूपरेखा तैयार की थी । इसी पन्थ के अधिकांश हिन्दी कवियों ने उपनिषदों पुराणों महाभारत और रामायण आदि ग्रन्थों के हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत किए ।[67] गुरु गोबिन्दसिंह स्वंयं पुरातन साहित्य के प्रेमी थे । इसीलिए उन्होंने संस्कृत का ज्ञान अर्जित किया था । उन्होंने इस साहित्य के महत्त्व को समझते हुए ही अपने शिष्यों को वेदों,उपनिषदों पुराणों के अध्ययनार्थ काशी भेजा । दूसरे वे जानते थे कि भारतीय दर्शन को समझने के लिए इस साहित्य का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । जिन सन्तों,भक्तों गुरुओं की वाणी गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित है, उनका मूल आधार भी भारतीय दर्शन ही है, अतः गुरुवाणी को समझने के लिए भी यह अनिवार्य था । गुरु जी ने अपने पाँच शिष्यों को जो कि शुद्ध मन से विद्या प्राप्त कर सकें । योग्य समझ कर उन्हें गैरिक वस्त्र प्रदान कर ब्रह्मचर्य वेश में काशी भेजा ।

' जैसे बैरागी सन्यासी
पूज हिन्द के सन्त अनासी
तैसे सिंघ पन्थ के ऐहे
मानन पूजन जोग रचे हैं—'[68]

इस प्रकार गुरु जी ने एक तरफ क्षत्रियों के समान योद्धा सिक्ख वर्ग तैयार किया । दूसरी तरफ सन्यासी विद्वान वर्ग । ताकि भक्ति और शक्ति दोनों का समन्वित रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सकें । 'खालसा' के समान ही इन्हें 'निर्मल ' संज्ञा से सम्बोधित किया गया । 'खालसा' फारसी का शब्द है जबकि 'निर्मल' संस्कृत का दोनों का अर्थ है शुद्ध,पवित्र, । अपने–अपने क्षेत्र में दोनों वर्ग मानसिक शुद्धता से काम करते हैं । दोनों गुरु के प्रति निष्ठावान है ।

गेही सिक्ख मम छत्री जानो
ब्रह्मचार आश्रम तुम मानो
या विधि जब गुरु वचन उचारे
माने सही सिंघन दिढ़ धारे —'[69]

वास्तव में दोनों वर्गों में कोई विशेष अन्तर नहीं है केवल कार्यक्षेत्र भिन्न होने से दोनों को अलग संज्ञा प्रदान की गई । कोशगत अर्थों के अनुसार भी 'निर्मल शब्द 'खालसा ' का ही अर्थ देता है ।

निर्मल :— मैल रहित, स्वच्छ, पवित्र, साफ शुद्ध–खालिस ।[70]

'खालसा' शब्द भी खालिस शुद्ध से ही बना है 'निर्मल' संज्ञा शब्द बाद में प्रचलित रूप में 'निर्मला' वर्ग विशेष के लिए रूढ़ हो गया । जिन्हें सिक्ख धर्म की गुरु परम्परा में स्वीकृत कर नानक पन्थी कहा गया ।

'निर्मले : का अर्थ स्वच्छ,निर्दोष,शुद्ध,पवित्र,निष्कंलक, (निरमल) किया गया है जबकि निर्मला' का अर्थ (निर्मल) ।

नानक पन्थी (एक प्रकार के साधु) यह साधु भी अपनी कोटि के ही हैं गैरिक वस्त्र अवश्य पहनते हैं मगर सिक्ख वेशभूषा के कारण इन्हें पंथ का नाम दे दिया गया । हिन्दू धर्मकोश के अनुसार 'निर्मल पन्थ ' : सिक्खों के विरक्त सम्प्रदाय का नाम ।........निर्मल सन्यासियों का दल है ।[72] श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में अनेक स्थानों पर निर्मल शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । कुछ विद्वानों ने इन्हें पन्थ के स्थान पर सम्प्रदाय कहा है । ऐसे विद्वान पन्थ और सम्प्रदाय को पर्यायवाची ही

मानते हैं । 'निर्मला' : एक नानक पन्थी सम्प्रदाय । ....इस सम्प्रदाय के लोग गेरूए वस्त्र पहनते हैं और साधु सन्यासियों की भान्ति रहते हैं––'।[74] वास्तव में 'पन्थ' और सम्प्रदाय में मौलिक अन्तर अवश्य है । 'पन्थ' या मार्ग उसी के प्रवर्त्तक के नांम पर प्रचलित होता है, जबकि सम्प्रदाय किसी अनुयायी या वर्ग विशेष द्वारा प्रचलित होता है । परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं । ' पन्थ या सम्प्रदाय का प्रयोग ठीक एक ही ढंग से होता हुआ नहीं दीख पड़ता । जिस धार्मिक वर्ग ने अपनी संज्ञा अपने मूल प्रवर्त्तक के नाम से ग्रहण की है,उसे साधारणतः उसके द्वारा चलाया गया पन्थ अर्थात् प्रदर्शित मार्ग कहा जाता है,जैसा कबीर पन्थ, नानक पन्थ, दादू पन्थ,बावरीपन्थ,मलूक पन्थ,दरिया पन्थ और पानप पन्थ आदि । परन्तु जिस ऐसे वर्ग का नामकरण उसके अनुयायियों के किसी विशिष्ट नाम व विशेषता के आधार पर हुआ है वह बहुधा सम्प्रदाय कहा जाता है जैसे साध सम्प्रदाय,सतनामी सम्प्रदाय,निरजंनी सम्प्रदाय,शिवनारायणी सम्प्रदाय और नागी सम्प्रदाय '।[75] सम्प्रदाय वास्तव में गुरु या प्रवर्त्तक द्वारा प्रदत्त उपदेश या सन्देश को निरन्तर ग्रहण करते रहने का ही नाम है । किसी धर्म के कुछ लोग जब विशेष सिद्धान्तों का निर्माण कर अपना अलग अस्तित्व या पहचान स्थापित करते हैं तब सम्प्रदाय की स्थापना होती है । कई बार यह विशेष सिद्धान्त गुरु द्वारा ही प्रदत्त होते हैं,।

'––सम्प्रदाय का अर्थ सीधे शब्दों में है धर्म का विशेष पथ । सम्प्रदाय साधक को तथा अनुयायी को एक मार्ग प्रदान करता है । '[76] परिस्थितियों के अनुरूप या पुनः धर्म की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए एक ही धर्म से अनेक सम्प्रदायों की स्थापना होती है । वास्तव में ये सम्प्रदाय धर्म का ही परिष्कृत रूप होते है । जब धर्म की परिभाषा बदलती है, तो वह नये सम्प्रदाय के रूप में ही प्रस्तुत होती है । उनमें देशकाल के अनुसार परिवर्तन होते हैं जिसके फल स्वरूप एक सम्प्रदाय में भी अनेक शाखांएं निकल पडती हैं । ठीक इसी प्रकार हिन्दू धर्म की स्थिति है । सनातन वैदिक धर्म की स्थिति है । सनातन वैदिक धर्म से अनेक सम्प्रदायों का उद्‌भव हुआ । पुन : उन सम्प्रदायों में से अनेक उपशाखाएं निकली ।[77] आज भारत में जितने भी सम्प्रदाय प्रचलित है, वह सब वैदिक धर्म से ही उद्‌भूत हैं । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि देशकाल एवं परिस्थिति वश उसका स्वरूप अवश्य परिवर्तित हो जाता है। मगर उस सम्प्रदाय का

अपने मूल धर्म का प्रभाव अवश्य रहता है ।

'गरु साहिबान के समय अखण्ड पाठों की प्रथा नहीं थी । अखण्ड पाठ बूढ़ा दल के त्यागी और विचारवान् सिंहो ने 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' का पाठ जल्दी से जल्दी करने और सुनने के लिए चलाई क्योंकि उन्हें हर समय जंगों,युद्धों में रहना पड़ता था और समय की कमी थी –निर्मल और उदासी सन्तों ने ब्राह्मणों की देखा–देखी अखण्ड पाठों का रिवाज पन्थ में प्रचलित किया । '[78] इस प्रकार निर्मल और उदासी सन्तों ने अपनी आवश्यकतानुसार सिक्ख धर्म के कुछ प्रचलित सिद्धान्तों में परिवर्तन कर लिया । वे अपने आपको सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव का अनुयायी तो स्वीकार करते हैं मगर अपनी अलग पहचान भी रखते हैं ।

'खालसा' योद्धा रूप हैं, जो धर्म की रक्षा के लिए है । पीड़ितों,दीनों,दुर्बलों की सहायता के लिए मन,वचन और कर्म से कटिबद्ध है । जो ओज गुण और वीर रस का साक्षात् अवतार हैं । मन की शुद्धता से निष्ठावान् होकर युद्ध में निरंत होते हैं । गुरू के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ ।

निर्मल :– विद्वान वर्ग है,अध्ययन–अध्यापन के द्वारा गुरुवाणी का प्रचार करते हैं । 'निर्मल' साधु बिल्कुल सन्त हैं, जो कि सिक्ख परम्परा के अन्तर्गत आते हैं ।[79] वास्तव में देखा जाए, तो जो अन्तर गृहस्थी और सन्यासी में होता है वही सामान्य सिक्ख और निर्मल साधु में है । अकाली अनासक्त होते हुए भी गृहस्थ जीवन यापन करने में स्वच्छन्द है । मगर निर्मल साधु गृहस्थी में न बन्धने के लिए बाध्य हैं । हिन्दू धर्म कोश के अनुसार 'निर्मल सन्यासिय़ों का दल है ।[80] वेशभूषा एंव रहन सहन की दृष्टि से भी निर्मल सन्त भिन्न है । इनके डेरों का अनुशासन निश्चय ही श्लाध्य है । ' सिक्खों की सिघं शाखा के 'निहंग भी कहे जाते हैं । वास्तव में संस्कृत निः संग का ही यह प्राकृत रूप है ,जिसका अर्थ है संग अथवा आसक्ति रहित ।'[81] जो लोग सिक्ख मर्यादा के अनुसार पाँच ककारों का उपयोग तो नहीं करते लेकिन 'अमृत' अवश्य ग्रहण करते हैं और सिक्ख गुरुओं द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों का पालन करते हैं । गुरू ग्रन्थ साहिब को गुरू के रूप में स्वीकार करते हैं । उन्हें सहजधारी कहा जाता है । ये दोनों वर्ग मिल कर गुरु घर की सेवा करते रहे हैं और करते रहेंगे । ' सेवा पन्थ' सिक्ख सम्प्रदाय धर्म का एक प्रमुख सम्प्रदाय हैं ।

जिसके प्रवर्तक भाई कन्हैया कहे जाते हैं । ' जैसे घर में माता–पिता के कर्त्तव्यों का स्वाभाविक ही वर्गीकरण किया जा सकता है परन्तु समूचे परिवार के लिए दोनों सहयोगी होते हैं, इसी प्रकार ही सिंह और सहजधारी गुरु सिक्खों का आपसी सम्बन्ध नाखून और मांस का है और एक दूसरे से अलगाव असम्भव है । '[83] इसी प्रकार अन्य वर्गों में भी सहजधारी सिक्ख सम्मिलित हुए । निर्मल सम्प्रदाय में भी अनेक सहजधारी सन्त हुए । गुरु घर के बहुत से सेवक ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने अमृतपान नहीं किया तो भी वे गुरु जी के लिए समान रूप से प्रिय थे । उनमें बहुत से सहजधारी सिक्ख भी शामिल हैं । उनकी गुरु घर एवं सिक्ख समाज के लिए देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

' सहजधारी सिक्खों ' में विद्वान ज्ञानी (पंडित) सतं,लेखक,और शहीद गुरमुख हुए हैं । सिक्ख धर्म में इनकी देन किसी तरह भी कम नहीं । सन् 1699 में 'खालसा' पन्थ की स्थापना के बाद यह बात मुख्य रूप से स्पष्ट हो गई कि 'खालसा' गुरु का कोई भी शिष्य हो सकता है, जिस पर गुरु की कृपा दृष्टि हो । इस प्रकार प्रमाणित हो जाता है कि सिक्ख धर्म में खालसा पंथ की स्थापना के पश्चात भी सहजधारियों के लिए पाँच ककारों का नियम अनिवार्य न था । कालान्तर में निर्मल सन्यासियों में भी सहजधारी सम्मिलित हो गए । ' आज निर्मल सम्प्रदाय के साधु विरक्त रूप में सामान्य सन्यासी साधुओं की भांति जीवन–यापन करते हैं ।[84] यह सम्प्रदाय सिक्ख धर्म का अभिन्न अंग होने पर भी अपनी अलग पहचान रखता है । यह विद्वान वर्ग अपनें डेरों में विद्या और गुरुवाणी का प्रचार और प्रसार एक साथ करता है । प्राचीन ऋषियों की सी वेश भूषा में सजे थे निर्मल सन्त अपने तनमन की निर्मलता से सबको मोहित से कर लेते हैं । इनके सम्प्रदाय की अपनी विलक्षणता और विशेषता है, जो इनके सही अर्थों में सन्त होने की परिचायक है ।

निर्मल सन्त : परिचय तथा मूल्यांकन

निर्मल सम्प्रदाय का परिचय जानने के लिए इस सम्प्रदाय का उद्‌भव और विकास जानना अनिवार्य है । इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक किन परिस्थितियों में हुआ । इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक कौन है इन सब बातों का उत्तर मिल जाने पर इस सम्प्रदाय का परिचय स्वयं मिल जाएगा । इस सम्प्रदाय के उद्‌भव के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं । कुछ विद्वान इस सम्प्रदाय का आरम्भ गुरु नानक देव से ही मानते हैं और कुछ गुरु गोबिन्दसिंह के काल से ।

जो विद्वान गुरूनानकदेव से निर्मल सम्प्रदाय का आरम्भ मानते हैं वे गुरू नानकदेव को ही इसका प्रवर्त्तक सिद्ध करने का दावा करते हैं । वे अपने मत की पुष्टि के लिए गुरुवाणी के उद्धरण देते हैं । उनका कथन है कि गुरु नानक देव जी ने ही निर्मल पंथ चलाया जैसा कि भाई गुरदास अपनी वार में लिखते हैं––

'मारया सिक्का जगति विचि
नानक निर्मल पंथ चलाया ।' 1–45 [85]

अर्थात् गुरु नानक देव ने अपने काल में ही अपना प्रभाव दिखा कर अन्य धर्मो से ऊपर उठा कर निर्मल पंथ का प्रारम्भ किया । यह ठीक है कि गुरु नानक देव जिस समय पैदा हुए उस समय अनेक सम्प्रदाय या पंथ प्रचलित थे । गुरु नानकदेव ने एक ऐसे मार्ग (पंथ) की स्थापना की जो लोगों के लिए मानसिक शान्ति प्रदान करने वाला था । आडम्बरों से रहित था । मगर उन्होंने इस पंथ को कोई नाम नहीं दिया था । न तो उन्होंने इसे स्वयं पंथ ही कहा और न ही सम्प्रदाय । यह तो सब बाद में उनके नाम के साथ जोड़ी गई बातें हैं । इतना अवश्य है कि नानक देव जी ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया था,जिस मार्ग (पंथ) की स्थापना की वह द्वेष भावना या मलिनता से रहित था इसी कारण यह पंथ निर्मल पंथ कहा जाता हो । मगर यह तो निर्मल सम्प्रदाय का द्योतक न हो कर 'पंथ' का विशेषण हुआ । अतः नानक ने एक पवित्र,स्वच्छ मार्ग (पंथ) चलाया न कि निर्मल सम्प्रदाय की स्थापना की । यह मान्य है कि गुरु नानकदेव के समय में सन्तमत प्रचलित था और गुरु नानकदेव के सिद्धान्तों में पर्याप्त साम्य भी है । मगर उनका लक्ष्य था लोगों का मार्ग दर्शन करना ।

दूसरे विद्वानों ने निर्मल सम्प्रदाय का सम्बन्ध गुरु नानकदेव से जोड़ने के लिए 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के कुछ पदों को आधार बताया है । जैसे गुरुवाणी में लिखा है । 'शब्द रते से निरमले'[86] भाव यह है कि प्रभु के रंग में साधुओं की संगति से मनुष्य निर्मल हो जाता है । अतः साधुओं की संगति का महत्व बताने के लिए इस निर्मल शब्द का प्रयोग किया गया है । निर्मल का अर्थ यहां विषय विकार को दूर करने से है न कि निर्मल सन्त या निर्मल सम्प्रदाय से । 'निर्मल' शब्द अपने कोशगत अर्थ में 'मल से रहित ' उज्ज्वलता,स्वच्छता,पवित्रता का प्रतीक है । इससे केवल अपने स्वार्थ हेतु अन्यत्र सन्दर्भगत संकीर्ण अर्थ ग्रहण करना सर्वथा अनुचित होगा । ऐसे तो गुरुवाणी में निर्मल शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है और अलग–अलग स्थानों पर उसका अलग–अलग अर्थ प्रकट होता है । सब जगह इसका अर्थ सम्प्रदाय विशेष से नहीं जोड़ा जा सकता । चूंकि कोश के अनुसार निर्मल शब्द के अनेक अर्थ हैं । अत : यह शब्द गुरुवाणी में विभिन्न अर्थ देता है । गुरुवाणी में इसे करतार,परमात्मा के अर्थ में भी लिया गया है । ' जो निरमल सेवे सु निरमल होवे ।'[87] अतः जो उस (निरमल) परमात्मा के नाम का सेवन करता है, वह उसी का रूप (निरमल) ही हो जाता है । वह ईश्वर चूंकि विषय–विकारों से रहित है, निर्लेप है, त्रिगुणातीत है । उस ईश्वर को सेवन करने वाला स्वंय उसी का स्वरूप हो जाता है । अतः आत्मा परमात्मा का ही रूप ले लेती है ।

कुछ विद्वानों ने निर्मल सन्तों की वेशभूषा को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए उसे गुरुवाणी के इस सन्दर्भ जोड़ने का प्रयास किया है कि उनकी वेशभूषा के कारण ही निर्मल सन्त कहलाने लगे हैं । इसी के कारण वे सन्त हैं । चूंकि इस वेश के बिना कोई दूसरा वेश ही नहीं है । यह वेश अपार है । ईश्वर भी अपार है । अत : यह वेशभूषा ईश्वरीय रूप है । इसी कारण निर्मल सन्त भी ईश्वरीय रूप को पाने में सक्षम है । गुरुवाणी के अनुसार निर्मल वेश अपार है और इसके बिना दूसरा कोई वेश ही नही है, जिसे धारण कर ईश्वर को पाना सम्भव हो । इसी कारण लिखा है कि यह अपार है । 'निरमल भेख अपार, तासु बिन अवर न कोई । '[88]

इतना ही नहीं । शब्द को ब्रह्म रूप माना गया है । जो इस शब्द में लीन हो जाते हैं । उस ईश्वर को पा लेते हैं । उन्हें निर्मल कहा जाता है । 'शब्द रते से निरमले ।[89]

जो गुरुवाणी (शब्द) में रंगे हैं वे निर्मल है। इन पदों में निर्मल शब्द का अर्थ कही भी निर्मल सन्त या निर्मल सम्प्रदाय का द्योतक नहीं है। निर्मल सम्प्रदाय के अर्थ में निर्मल शब्द संज्ञा के रुप में प्रयुक्त हुआ है जबकि गुरुवाणी के सनदर्म में यह निर्मल शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। लेकिन फिर भी कुछ विद्वान हठात् इस सम्प्रदाय को गुरु नानक देव की स्थापना मानते है। तथ्यों को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता । प्रामाणिकता के आधार पर दूसरा विद्वान वर्ग इसकी स्थापना गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा की गई मानता है। यहां उन विचारों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया जा रहा है जो इस सम्प्रदाय के स्थापक गुरु गोबिन्द सिंह को मानते है। उन्होंने विभिन्न कथानकों को निर्मल सन्तों के उद्‌भव के साथ जोड़ कर उन्हें गुरु गोबिन्द सिंह के समय से ही माना है। सिक्खों के एक दूसरे सम्प्रदाय की स्थापना वीर सिंह ने गुरु गोबिन्द सिंह के समय की थी। कहते हैं कि गुरु गोबिन्द सिंह को अनूप कौर नाम की रूपवती खत्राणी ने छल पूर्वक अपने प्रेमपाश में बांधना चाहा था, जिसकी प्रतिक्रिया में गुरु साहिब ने गैरिक वस्त्र धारण करके उससे भेट की थी और उसके प्रभावों से मुक्त हो चुकने के उपरान्त ही वस्त्र वीर सिंह को प्रदान कर उन्हें इस पन्थ की स्थापना के लिए आदेश दिया।[90] इस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने ही समय में अपने शिष्यों को गेरुए रंग के वस्त्र प्रदान कर उन्हें विरक्त रहने का सन्देश दिया। कारण चाहे कोई भी रहा हो इतना अवश्य है कि वे अपने सिद्धान्तों के प्रति उदार वृत्ति रखते थे। एक तरफ उन्होंने अत्याचार का दमन करमे के लिए 'खालसा पन्थ' की नीव रखी तो दूसरी और अपने शिष्यों को सन्यासियों की वेशभूषा प्रदान कर उन्हें चिन्तन, मनन हेतु प्रदान की। इतना ही नहीं उन्होंने उन्हें दर्शन शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान अर्जित करने की प्रेरणा भी दी । वे चाहते थे कि उनके शिष्य भारतीय दर्शन के गूढ रहस्य को जाने और अपनी पुरातंन संस्कृति के प्रति नतमस्तक हो और उसकी रक्षा कर गौरवान्वित हो। गुरु जी ने इन्हें मात्र गैरिक वस्त्र ही प्रदान नहीं किए अपितु इन्हें निर्मले संज्ञा से भी सम्बोधित किया। गुरु जी ने अपने ही समय में इस सन्यासी समुदाय को पन्थ की संज्ञा से भी अभिहित किया। 'पन्थ प्रकाश' में ज्ञानसिंह लिखते हैं..

निरमल पदवी साधू बेस
बख्शायों गुरु ज्यो इने विसेस ।[91]

सभी शिष्य के पूजनीय ये निर्मला सन्त या निर्मले गुरु के परम भक्त होने के कारण गुरु की विशेष कृपा के पात्र हुए।

निरमल उर इहु सह निरमले
हर गुरु भगत विरक्त पिरमिले
सब के मनन पूजन जोग
पंथ निरमला इह मम होग
भजन रतग्यान धियान जो करत हेरे
वचन गुरु जी टेरे, ऐ हे मेरे निरमले ।[92]

गुरु जी ने किसी योजनाबद्ध ढंग से या स्वाभाविक रूपेण इस पन्थ की स्थापना की इसके बारे में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का विचार है कि स्वााभाविक रूप से ही उन्होंने अपने शिष्यों को (निर्मल) पवित्र भावना से ओतप्रोत होने के कारण यह संज्ञा प्रदान की। जैसा कि विश्व कोष में लिखा है।

... एक कथा के अनुसार एक पानी पिलाने वाले गुरु गोबिन्द सिंह के सिपाही पकड़ कर लाए क्योंकि वह युद्धभूमि में शत्रुओं को भी पानी पिलाया करता था। लेकिन गुरु जी ने उसे द्वेष रहित 'निर्मल' कहा।[93] जब गुरु जी ने अपने शिष्यों की मनोवृत्तियों को आंका कि सभी सिक्ख परम्परा के अनुसार सिंह (खालसा) युद्ध कार्य में लिप्त हो गए तो फिर उनका उद्देश्य अपूर्ण रह जाएगा। अतः उन्होंने कुछ शिष्यों को सेवाकार्यो, कुछ को गृहस्थी रहने तथा कुछ को अध्यात्मन तथा गुरमत प्रचार के लिए नियुक्त किया। वे स्वयं इनके साथ प्रत्येक क्षेत्र में संलिप्त रहे। गुरु जी का व्यक्तित्व में बहुमुखी था । उन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थों की रचना की। युद्धों के वातावरण में भी वे कैसे इतना समय निकाल लेते थे यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। उनकी रचना 'दशम ग्रन्थ' के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने महाभारत, रामायण जैसे महाकाव्यों का पंजाबी में अनुवाद भी करवाया ताकि भाषा की दुरूहता को दूर किया जा सके और उनका सन्देश आम जनता तक पहुंचाया जा सके। एक विचारधारा के अनुसार इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक वीर सिंह नहीं थे। हिन्दी शब्द सागर में वीर सिंह के स्थान पर रामदास (महात्मा) का नाम मिलता है। इससे भी यह सन्देह व्यक्त होता है कि सम्भवतः रामदास महात्मा को ही अमृतपान करा कर उसे वीर सिंह की संज्ञा प्रदान की गई हो तथा उसके साथ अन्य शिष्यों का भी अमृतपान

करवा कर सिंह बना कर काशी भेजा ।

'निर्मला संज्ञा (निर्मल) एक नानक पन्थी सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के लोग गेरुए वस्त्र पहनते और साधू सन्यासियों की भान्ति रहते है।[94]

एक अन्य प्रसंग के अनुसार एक बार गुरु जी ने अपने सिक्खों में से कुछ को काशी संस्कृत अध्ययनार्थ भेजा। बाद में जब वे लौटे तो उन्होंने उन्हें निर्मल संज्ञा से पुकारा ।

'पुनः गुरु पांच सिंघ चुन लीए
गंडा सिंह, कर्म सिंह जीए
वीर मिरगेस, राम सिंह सैणा
इन पांचों को पिरव बुद्धि अैना।[95]

इतना ही नहीं गुरु जी ने इन्हें स्वयं कषाय वस्त्र पहनाए और साधु वेश में इन्हें काशी भेजा। काशी में चेतन मठ नामक गुरुकुल में इन्होंनें वेद विद्या अर्जित की और निर्मल साधु नाम सजाऐ गए।

'तब ही वसन करवाई सजे के
आगिखा वरसत गुरु ते लैके
पहुंचे कासी पुरे उदारे
चेतन मत में रहे विचारे
साधु निर्मले सो बिदताए
विद्या पढ़ी अधिक मनलाए ।[96]

बाद में जब ये गुरु जी के पास लौटे तो गुरु जी ने इन्हें संस्कृत का ज्ञान होने के कारण संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य सोंपा जिसे इन्होंने अत्यन्त निष्ठा के साथ किया था। साथ ही गुरुवाणी की व्याख्या भी की। स्थान-स्थान पर जा कर गुरुमत का प्रचार भी करते और ग्रन्थों की रचना भी। अन्य कवियों के समान ही इन विद्वानों ने भी रीति कालीन प्रभाव को ग्रहण किया। इस काल में उदासी निर्मले व अन्य साम्प्रदायिक कवियों में स्वधर्म सिद्धान्त निरूपण हेतु ग्रन्थ लिखे। उन्होंने पिंगल एवं अलंकार का विशद विवेचन भी किया।[97]' कुछ अन्य विद्वानों का आपोप है कि गुरु गोबिन्द सिंह ने इन्हें गेरुए वस्त्र प्रदान नहीं किए। उनके अनुसार 'अन्य वेषों की देखा देखी सिक्ख ही गेरुए वस्त्र धारण कर निर्मल कहलाए।[98]

मगर इस बात में सन्देह करना व्यर्थ है कि गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने शिष्यों को संस्कृत अध्ययनार्थ काशी नहीं भेजा। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं और यह सिद्ध किया जा चुका है कि गुरु जी ने अपने कुछ शिष्यों को काशी भेजा था वही बाद में 'निर्मल सन्त' कहे जाने लगे। विद्या मनुष्य को सुसंस्कृत और शुद्ध विचारों वाला बनाती है । अतः इनके परिष्कृत और शुद्ध मन होने के कारण ही सम्भवतः इन्हें 'निर्मल' कहा गया। जो ज्ञानवान् है और शुद्ध हृदय है वही 'निर्मल सन्त' है ।

'सिक्ख विवेकी गुरु के जे हैं
निरमल रिदै निरमले वे हैं ।'[99]

ये निर्मल सन्त सतोगुणी वृत्ति वाले, धर्म कर्म में निरत रहते है। केवल विद्या पढ़ना और पढ़ाना ही इनका कर्म है। इस प्रकार सिक्ख धर्म का विद्वान वर्ग ही निर्मल सन्त सम्प्रदाय है।

'सतो गुनी जो रहित पिरमिले
प्रगट थीए सोइ निरमले
भजन करम में निस दिन रहिते
सतगुरु उने निरमले कहते
और कभ नहीं तिने लगाते
विद्या पढ़न पढ़ान बताते।[100]

इनके अमृत ग्रहण के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ का कहना है कि इन्होंने अमृतपान काशी से लौटने के बाद किया जबकि दूसरे वर्ग·का कहना है कि गुरु जी ने काशी जाने से पूर्व इन्हें अमृतपान कराया था। सब से पहले निर्मलों ने पाहुल ग्रहण की और उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण किए। चूंकि उन्हें पुरातन हिन्दू ग्रन्थों का अध्ययन करना था। अतः उन्होंने सामान्य गेरु वस्त्र धारण किए जो भारतीय फकीरों के होते हैं .... सभी निर्मल केशधारी होते है .... वे एक सच्चे सिक्ख या सिंह के रूप में केश रखते है।[101] प्रसिद्ध निर्मल सन्त महन्त गणेशा सिंह का विचार है कि सब से पहले गुरु जी ने विरक्त निर्मल सन्तों को ही अमृतपान कराया क्योंकि उनकी दृष्टि में विरक्त लोग ही गुरु घर ही पूर्ण तन्मयता से सेवा कर सकते थे। वे ही लोभ मोह से रहित होने के कारण स्थान–स्थान पर जा कर गुरुमत प्रचार कर सकते थे ।

श्री दशमेश जी महाराज ने अमृत संस्कार से 2–3 वर्ष के बाद

जब खण्डे के अमृत का प्रचार पलटा, तो भी पहले निर्मले ही मुख्य छकने के अधिकारी हुए जो कभी विरक्त निर्मल सन्त न हो तो इनकी सन्तान आदि और परिवार का पता कोई इतिहासकार लिखता ।[102]

निर्मल सन्त : परम्परा और विकास

विरक्त सन्तों ने ही गुरु परम्परा के बनाए सिद्धान्तों को घर–घर तक पहुंचाने का कार्य किया। इसीलिए ये सिक्ख सम्प्रदाय के लिए पूजनीय है। गुरु जी ने स्वयं इनकी पूजा करने का उपदेश दिया क्योंकि संत और विद्वान दोनों ही पूजनीय होते है। गुरु जी ने एक प्रकार से अमृतपान करवा कर और केश दाढ़ी रखने का उपदेश देकर तथा भगवे वस्त्र प्रदान कर इन्हें विशेष उपाधि प्रदान कर दी थी .....

'ताते अमृत इनै छका के
सिंह नाम दिढ़ केस रखा के
बसन कखाय इने पहना के
सिंह निरमले सन्त बना के
हुक्म दियो गुरु सिंघन ताई।।
मानों पूजो इने सदाई ।।[103] '

पं. गुलाब सिंह निर्मला जो कि निर्मल साहित्यकारों में अग्रगण्य है उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इस सम्प्रदाय की उत्पति के बारे में वे 'मोक्ष पंथ प्रकाश' में लिखते है ....

श्री गोबिन्द सु सिंह हैं, पूर्ण हरि अवतार
रच्यो पंथ भव में प्रकट, दो विधि को विस्तार
एकन के कर खड्ग दै, भुज बल बहु विस्तार
पालन भूमी को क्यों, दुष्टन मूल उखार
औरन की पिख विमलमति, दीनो परम विवेक
निर्मल भाखे जगत तिन, हेरे ब्रह्म सु एक ।[104]

जो भी हो इतना तो सुनिश्चित ही है कि इस सन्त सम्प्रदाय का उद्‌भव गुरु गोबिन्द सिंह के समय में हुआ। लेकिन इस बात को मानते हुए भी अनेक लोगों ने इसका मूल (बीज) गुरु नानक देव से ही माना है। उनका कथन है कि गुरु नानक देव जी ने ही इस वेश का आरम्भ किया था और उन्होंने ही निर्मल पन्थ का आरम्भ किया था। जैसा कि हम पहले

कह चुके है कि गुरु नानक देव जी ने किसी पन्थ की स्थापना नहीं की थी, उन्होंने तो कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन इसलिए किया था ताकि भटके हुऐ लोगों का मार्गदर्शन किया जा सके। इसीलिए उन्होंने गुरु शिष्य परंपरा का अनुसरण करने की रीति चलाई ताकि उनका सन्देश आने वाली पीढ़ियों तक पहुंच सके। गुरु गोबिन्द सिंह ने भी गुरु नानक के इस निर्मल पन्थ को जीवित रखा। उन्होंने केवल अपने शिष्यों के वर्ग इसलिए बनाए ताकि वे काम सुचारु रूप से कर सकें ।

गुरु नानक और उनके नौ उत्तराधिकारी किसी भारतीय संस्कृति या अध्यात्म के एक पहलू के वकील नहीं थे। उनका सम्बन्ध सम्पूर्णता से था। इसीलिए हम देखते है कि गुरु नानक ने अपने बेटे श्री चन्द के द्वारा उदासीन परम्परा का अनुमोदन किया और (स्वयं) निर्मल पन्थ का जिसे बाद में गुरु गोबिन्द सिंह ने दो वर्गों में विभक्त किया। निर्मल सम्प्रदाय और खालसा सम्प्रदाय ताकि भारतीय सांस्कृतिक एकता की सुरक्षा की जा सके ।[105]

गुरु नानक से ही निर्मल पन्थ की परम्परा स्वीकार करने वाले विद्वानों ने तो पूर्ण सिक्ख सम्प्रदाय को ही इसके अनुयायी माना है। भले ही पन्थ और सम्प्रदाय का अर्थ भिन्न ग्रहण किया जाता है, तो भी इनके लिए दोनों में कोई विशेष अन्तर न होता। पुनः हम देख चुके है कि गुरु नानक के निर्मल पन्थ में पन्थ शब्द का विशेष सम्प्रदाय अर्थ कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। निर्मल शब्द भी कहीं ईश्वर के लिए कही पवित्रता के अर्थ में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। चूंकि गुरु गोबिंद सिंह जी ने कार्य के अनुसार इन्हें दो वर्गों में विभक्त कर दिया था। अतः उन्हीं के काल से निर्मल वर्ग, समुदाय बाद में सम्प्रदाय के रूप में सामने आया।

इस प्रकार गुरु गोबिंद सिंह ने निर्मल पन्थ की परम्परा को सम्पन्न करके दो वर्गों में विभक्त निर्मल आध्यात्मिक कार्यों के लिए और खालसा वीरता पूर्ण कामों के लिए यहां तक कि निर्मल ही अमृतपान करके खालसा बने।[106]

अतः निर्मल सम्प्रदाय के संस्थापक वास्तव में गुरु गोबिंद सिंह ही माने जा सकते हैं। मगर गुरु नानक देव जी के समान गुरु गोबिंद सिंह ने भी कहीं इस सम्प्रदाय की संस्थापना का उल्लेख नहीं किया। उन्होंने तो एक अच्छे नेता के रूप में अपने शिष्यों को लोक सेवा और सैनिक

सेवा जैसी दो सेवाओं के लिए नियुक्त किया। धर्मप्रचार और संस्कृति की सुरक्षा दोनों कार्य एक साथ निष्पन्न हुए।

जो भी हो गुरु गोबिंद सिंह से पूर्व निर्मल सम्प्रदाय की भूमिका अवश्य तैयार हो रही थी । गुरु जी ने इनकी प्रवृत्ति को पहचान कर ही इन्हें अध्ययन का कार्य सम्भाला। गुरु जी ने इस वर्ग में गुरु शिष्य परंपरा द्वारा प्राचीन शिक्षा पद्धति को बनाए रखा। ठीक वैसे ही वातावरण में ये निर्मल सन्त अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते हैं। काशी में पढ़े होने के कारण वहां की परम्पराओं का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा। गुरु घर की रीतियों को भी इन्होंने बनाए रखा। इसी कारण आज भी इनके डेरों में वही परम्पराएँ विद्यमान है, जो गुरु घर में प्रचलित थी। प्रत्येक डेरे में लंगर की व्यवस्था है। गुरुवाणी का पाठ होता है। शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन पूरी तन्मयता एवं श्रद्धा के साथ करते है। निर्मल सम्प्रदाय एक ऐसा सन्तों का वर्ग है, जिसमें गुरुमत के सिद्धान्तों का साक्षात्कार किया जा सकता है। भारतीय साधुओं की सी वेशभूषा में सजे ये सन्त गुरुवाणी का प्रचार करते हुए कई बार प्राचीन ऋषियों की याद दिलाते हैं, जो परोपकारी भावना से जनता का मार्ग दर्शन करते थे। विचार कर देखा जाए, तो गुरु शिष्य की सांगोपांग रीति रस्म, रिवाज, निर्मलों में आज तक वही चले आ रहे हैं, जो गुरु घर में प्रचलित थे। इस रीति का प्रचार स्थिर रखने हेतु ही निर्मल मत प्रसिद्ध हुआ...।[107]

निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी का प्रचार स्थान–स्थान पर जा कर वहां कुछ दिन रह कर जनता के बीच अपने स्वार्थों रहित होकर किया । वे केवल प्रचार ही न करते थे अपितु लोगों के साथ सहानुभूति पूर्वक उनकी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास भी करते थे। बिना किसी लालच के बच्चों को पढ़ाना, उन्हें अमृत छकाना, लंगर में से निर्धनों को भोजन देना। सत्संग करना यह सब इनकी दिनचर्या थी। उस समय देहातों में दूर–दूर तक आने जाने के तथा प्रचार के कोई साधन न थे। इन्होंने वहां पैदल चल कर और अपना सुख आराम छोड़ कर लोगों की सुविधा हेतु अनेक प्रकार से उनकी सेवा की। निर्मल भेष ने गुरुमत का प्रचार बड़े सहज ढंग द्वारा किया है। यह प्रचार उस समय किया जिस समय न कोई अखबार समाचार होता था, न कोई स्कूल, मदरसे आदि का प्रबन्ध था। उस समय अपना सुख, आराम छोड़कर देहाती बच्चों को पढ़ाना, अमृत छकाना, फिर

न कोई फीस, न बखशिश अपितु बीमारों को औषधियां देकर स्वस्थ करना सेवा करना आदि। उस समय शफाखाने आदि कहीं सपने में भी नहीं होते थे ।[108]

इन्हें भोजनादि की भी चिन्ता नहीं होती थी। ये प्राचीन गुरु कुल प्रणाली के शिष्यों के समान ही भिक्षाटन द्वारा भोजन मांग कर लाते और आपस में बांट कर खाते। अतिथि आदि को भी उसी में से भोजन खिलाते। भोजन मांग कर लाने का तात्पर्य यह था कि इनमें अहंकार का उद्‌भव न हो। मांगने से हमारे अन्दर नम्रता की भावना पैदा होती है और विनम्रता मानवीयता का सब से बड़ा गुण है। वैसे तो उन्हें भोजन मांगने की आवश्यकता ही न होती थी, लोग अपने आप ही इन्हें दे देते थे। अन्यथा आवश्यकता पड़ने पर ये मांग भी लाते थे ।

भोजन जहां मिलत तहि खाते
या मधुकड़ी मंग कर खाते ।[109]

भोजन में जो कुछ भी मिलता है, उसे सन्त भाषा में मधुकड़ी कहा जाता है। अतः ये भी मधुकड़ी से अपना निर्वाह करते थे। इसके अतिरिक्त ये लोग निर्धनों को भी सहायता करते थे। अति सत्कार इनका विशेण गुण है। अपने भोजन में से ही भोजन दे देते हैं। अपने शिष्यों के भोजन वस्त्र का प्रबन्ध करना, दिन, त्यौहार, आदि पर सत्संग करना। यह सब इनका कर्त्तव्य ही कहना चाहिए। इन्होंने अपना क्रिया कलाप इस प्रकार निर्धारित कर लिया था कि ये सब काम इनके जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग बन गए।

किसी भी प्रकार की आय का साधन न होते हुए भी मधुकड़ी द्वारा आए अतिथि के साथ बांट कर खाना। समय पर वस्त्र, भोजन देकर विद्या पढ़ाना निर्धनों को भोजन और विश्राम देना। स्वयं स्वतंत्र रहना तथा स्त्री रहित होकर अपना निर्वाह करना। दिन त्योहार संक्रान्ति, अमावस्या तथा पूर्णिमा आदि त्योहारों पर जोड़ मेला कर कथा सत्संग द्वारा गुरुमत धर्म सम्बन्धी प्रचार करना।[110] इन सब दैनिक क्रियाओं से निर्मल सन्तों की परोपकारी भावनाओं की अभिव्यक्ति तो होती ही है साथ ही उनका गुरुवाणी के प्रचारक होने का भी प्रमाण मिलता है। गुरुवाणी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए जीवनयापन करना ही मुख्य ध्येय है। यही उनके जीवन का क्रियात्मक रूप है। पहले आरम्भ में ये लोग रमते डेरों द्वारा स्थान–स्थान

पर घूम–घूम कर धर्म प्रचार करते थे जब सिक्ख राज्य की स्थापना हुई, तो अनेक सम्प्रदायों को जागीरे प्रदान की गई ताकि वे अपने–अपने डेरे स्थापित कर सके। चूंकि निर्मल सन्त निवृत्ति मार्ग के अनुगामी थे। अतः उन्होंने जागीरें लेना उचित न समझा।

राज सिंघन का होयो जबै
रहे जागीरा दे सिंघन सवै
किसे निरमले लीनी ना हे
जान परविरती दुखद महा है।[111]

निर्मल सन्तों ने इसे प्रवृत्ति मार्ग जान कर दुःख का कारण माना और साफ इन्कार कर दिया। कालान्तर में अन्य सम्प्रदायों के देखादेखी तथा अनुशासन की शिथिलता के कारण जागीरें लेनी आरम्भ कर दी। बहुत से राजाओं ने और जागीरदारों ने इन्हें भी जागीरें प्रदान की। जहां इन्होंने अपने डेरे स्थापित किए । सब से पहले दरगाहा सिंह निर्मल सन्त ने कनखल में अपना डेरा स्थापित किया ।

और निर्मल सिंह दारगाहै
डेरा थापियों कनखल माहै।[112]

डेरों की स्थापना के साथ ही इस समुदाय में कई प्रकार के परिवर्तन आने शुरु हो गए। कनखल में डेरा स्थापित होने के साथ ही इस संगठित वर्ग ने अनेक छोटे बड़े शहरों में अपनी शाखाएँ स्थापित की।

निर्मल सन्तों ने एक अनुशासित एवं सम्मानित उच्च संगठन तैयार किया एक गुरु अथवा कमेटी समय–समय पर उनकी सभाओं को देखने आती थी। उनका मुख्य अखाड़ा कनखल में है लेकिन उनकी स्थापनाएं अमृतसर तथा पंजाब के अन्य स्थानों पर भी है ।[113]

इनके डेरों का समुचित प्रबन्ध गुरु अथवा सभा की देखरेख में होता हैं। बाद में इन डेरों का प्रबन्ध एक सभा या संगठन के अन्तर्गत भी होने लगा। वन एवं जमीन आदि पर्याप्त मात्रा में दान में मिल जाने के कारण आय के साधन बढ़ गए और सिक्ख समुदाय के अन्य सम्प्रदायों से इनकी अवस्था में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था, जिसके फलस्वरुप आपसी फूट के कारण इन्हें अलग समझा जाने लगा। अनेक कारणों से निर्मल सम्प्रदाय का सम्बन्ध अन्य सम्प्रदायों से टूटने लगा। एक मुख्य कारण यह भी था कि यह सम्प्रदाय समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा था।

जब तक निर्मल विरक्त बने रहे काई जागीर जायदाद आदि लेने का संकल्प नहीं किया और अखाड़ा नहीं बना था तब तक पन्थ एक मुठ रहा। सिंह, निर्मल, निहंग और पुजारी आदि का कोई भेद न रहा। जब निर्मलो के डेरे प्रसिद्ध हुए और अखाड़ा बना तो निर्मलों का सितारा और चमका तो पुजारी आदि कितनों ही के मन में भी ईर्ष्या आई।[114]

निर्मल सन्तों ने अपने संस्कारों के अनुकूल वातावरण को अपनाया। उन्होने जिस परिवेश में रह कर अध्ययन अध्यापन किया था। वह एक सनातन परम्परा का रंग लिए हुए था। इसका प्रभाव उनकी रगों में समा चुका था। जिस गुरु शिष्य परम्परा में रह कर उन्होंने वेदों, उपनिषदों और पौराणिक ग्रन्थों के माध्यम से प्राचीन संस्कृति का ज्ञान अर्जित किया था उसका प्रभाव उनके लिए अत्याज्य था। भारतीय दर्शन की जिस परम्परा का उन्होंने साक्षात् दर्शन किया था वे उसके प्रति आस्थावान हो चुके थे । अतः उसी परिवेश का प्रभाव उसके वर्ग पर पड़ना स्वाभाविक ही था। उन्होंने जिस सनातन परम्परागत वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन किया था, उसी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना उनका स्वभाव बन गया था। वे गुरुवाणी की व्याख्या करते समय वेदों, उपनिषदों, पुराणों से उद्धरण दिया करते थे। जिसके अनुसार उनकी व्याख्या पद्धति अन्य सम्प्रदायों से भिन्न होती चली गई। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग उपनिषद है। औपनिषदिक साहित्य को इसीलिए वेदान्त कहा जाता है। वेदान्त का आदि स्रोत उपनिषद है, प्रारम्भ में उपनिषद को ही वेदान्त कहा जाता था क्योंकि उपनिषदों की रचना वैदिक साहित्य के अन्त में हुई थी।[115]

वेदान्त के अध्येता निर्मल सन्तों ने इसी प्रभाव को गुरुमत सिद्धान्तों का प्रचार करते समय अप्रत्यक्ष रूपेण ही जनता तक पहुंचाया। संभवतः वे स्वयं भी न जानते थे कि वे गुरुवाणी का प्रचार करते हुए एक साथ दो कार्य कर रहे है। वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं गुरुवाणी की व्याख्या। उन्होंने गुरुवाणी को हिन्दू ग्रन्थों के मूल सन्दर्भ से जोड़ कर एक बहुत बड़ा काम किया है। वे जानते थे कि भारतीय दर्शन शास्त्र की पृष्ठ भूमि को जाने बिना गुरुवाणी को समझना कठिन होगा। शायद गुरु गोबिन्द सिंह जी ने भी इस दूर दर्शिता के कारण उन्हें काशी अध्ययनार्थ भेजा हो। उनकी भाषा और उनके ज्ञान ने ही उन्हें सही दिशा प्रदान की।

निर्मल सन्त हिन्दू धर्म ग्रन्थों के ज्ञाता थे और संस्कृत के विद्वान।

इसीलिए यह स्वाभाविक था कि उन पर वेद शास्त्रों का प्रभाव हो। निर्मल विद्वानों ने जो गुरुमत कार्य किया, इसी प्रभाव के अधीन किया। वह वेदों को प्रमाण मानते हैं और गुरुवाणी को वेदों के समान मानते हैं। परमात्मा का हुकम वेद है। निर्मल वेदान्ती हुए है। उन्होंने गुरुवाणी व्याख्या में वेदान्ती शब्दावली और विचारधारा को ही प्रमुखता दी है।[116]

प्रारम्भ में जब निर्मल सन्तों ने गुरुमत का प्रचार प्रसार आरम्भ किया तो इनका काफी स्वागत हुआ। लोगों ने इनकी खूब सेवा की सिक्ख धर्म का अगर कोई लोक प्रिय सम्प्रदाय था तो निर्मल वर्ग । उसी समय उदासी सम्प्रदाय भी प्रचार कर रहा था। मगर उनके सिद्धान्त सिक्खधर्म से भिन्न थे। वे पूर्णतः योगियों की तरह जीवनयापन करते थे। गुरुवाणी का प्रचार अवश्य करते थे। मगर वेशभूषा की दृष्टि से सिक्ख न थे। सिंह सभा आंदोलन में वे सिक्खों से सहमत न हुए। मतभेद निरन्तर बढ़ता गया और उदासी सन्तों ने अपने आपको अलग कर लिया।

सिंघ सभा आन्दोलन के बाद उदासी सन्तों ने अपना अलग मत समझ कर सिक्खी के किसी भी समागम में अपने आपको सम्मिलित नहीं किया। उदासी सम्प्रदाय ने प्रारम्भ में ही अपनी एक अलग पहचान बना ली थी। वे अपने आपको गुरु नानक के सुपुत्र श्रीचन्द को ही अपना गुरु मानते थे। गुरुमत सिद्धान्तों का भी पूर्णतः पालन न करते थे । हां बाद में गुरुवाणी का पाठ इनके डेरों में होने लगा था। मगर अपनी स्वायत्तता बनाए रखने के लिए ओर अपने स्वाथों की पूर्ति हेतु यह राजनीति में प्रवेश कर गए और सिक्खों से इनके झगड़े प्रारम्भ हो गए। जिसके फलस्वरूप इन्होने सिंह सभा आन्दोलन में भी भाग नहीं लिया। सिंह सभा आन्दोलन के बाद उदासी साधुओं ने सिक्ख पन्थ के सभी चिन्ह हटा दिए। वस्तुतः राजनीति और निजी स्वार्थो ने उदासी सम्प्रदाय को न केवल गुरु नानक मत से दूर किया अपितु कई बार कई स्थानों पर सिंक्खों के साथ उदासियों के सशस्त्र संघर्ष भी हुए। इसी के कारण शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की स्थापना हुई और गुरुद्वारा कानून पास हुआ ।[117]

इसी कानून के अन्तर्गत उदासी सन्तों को सिक्ख धर्म से अलग माना गया। वैसे भी उदासी सिक्खों के साथ उदासीन साधु शब्द जोड़ा गया। निर्वाण प्रीतमदास जी उदासीन साधु हुए है, जिन्होंने इन्हें एक सूत्र में बांध कर इनके लिए डेरों अखाड़ों की व्यवस्था की। उदासीन साधु की

परिभाषा भी प्राचीन भारतीय सन्तों के समान इन्हें सिक्ख धर्म के अनुयायी सिद्ध नहीं करती। उदासीन साधु शब्द प्रयोग से उस व्यक्ति का तात्पर्य होगा जो आचार्य श्रीचन्द्र देव द्वारा स्थापित परम्परा तथा सिद्धान्तों के अनुसार उदासीन सम्प्रदाय में नियमानुसार दीक्षित हो। उसे विरक्त तथा जटाजूट धारी रहना होगा।[118]

सिक्खों ने जब उदासियों को सिक्ख मानने से इन्कार कर दिया तो उदासी सन्त अपनी पहचान स्थापित करने में स्वतन्त्र हो गए। चूंकि निर्मल सन्तों के सिद्धान्त इनसे मेल खाते थे अतः निर्मल और उदासीन एक साथ पारस्परिक सहयोग से एक दूसरे के निकट आने लगे। प्रारम्भ में भी दोनों एक ही थे मगर कुछ परिस्थितियों के कारण अपने–अपने सम्प्रदाय की सुरक्षा के लिए अलग हो गए। उदासीन साधु सिक्ख परम्परा से हट कर सनातन पद्धति से जुड़ गए तथा निर्मल साधु सांस्कृतिक परिवेश के मोह पाश में बन्ध कर भारतीय दर्शन की ओर झुक गए। बाद में दोनों को सिक्खों की ओर से अस्वीकारात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भ से यह दोनों सम्प्रदाय सिक्ख धर्म की जिन मान्यताओं से ओतप्रोत थे धीरे–धीरे लुप्त प्रायः होती चली गई। अपने–अपने मत की पुष्टि के लिए इन्होंने दृढ़ संकल्प लिया ओर स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में अस्तित्व में आए।

निर्मल वर्ग ने कालान्तर में गुरु नानक की दृष्टि से थोड़ा अलग होकर वेदान्त अपने ऊपर ओढ़ लिया। धीरे–धीरे गुरु नानक की विचार धारा अथवा सिक्ख पन्थ की प्रमुख मान्यताओं से भी निर्मल सम्प्रदाय का सम्बन्ध विच्छेद हो गया ।[119]

निर्मल सन्त काशी से पढ़ कर आए थे अतः संस्कृत साहित्य एवं परम्परा के प्रभावाधीन ही वे गुरुवाणी प्रचार एवं साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए निर्मल सन्त सिक्ख धर्म के विद्वान अध्यापक और प्रचारक थे। उन्होंने सामान्य जनता के अतिरिक्त संस्कृत और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ विद्वानों को भी सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों से अवगत कराया। उन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों की टीकाएं की और वेदान्त की अवधारणाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत किया।

गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं भारतीय संस्कृति को विकसित करना चाहते थे। उन्होंने सिक्खों की एक ऐसी श्रेणी का चयन किया जो संस्कृत साहित्य

के माध्यम से भारतीय दर्शन को अपना कर गुरुवाणी के सन्देश को घर–घर पहुंचा सके। उनके इस उद्देश्य को निर्मल सन्तों ने अक्षरक्षः पूरा किया। उसी परम्परा के अनुरूप आज की निर्मल सन्तों के डेरों में पठन–पाठन का कार्यकम चल रहा है। प्रारम्भ में ही गुरुमुखी और संस्कृत दोनों सिखाई जाती है। आज भी यह सन्त गुरुवाणी के प्रचार और प्रसार में योगदान दे रहे है। इनके ग्रन्थों की लिपि भले ही गुरुमुखी हो लेकिन भाषा ब्रज, संस्कृत या साधुभाषा है।

.... भारतीय साहित्य में निर्मल सम्प्रदाय के सन्त लेखकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है लेकिन साहित्य के इतिहास के विद्वानों ने इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों को केवल संस्कृत, हिन्दी और ब्रज के साहित्यकार ही माना है।[120]

निर्मल संस्कृत विद्यालय काशी, चेतन मठ काशी, निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल (हरिद्वार) गुरुवाणी और संस्कृत के अध्ययन अध्यापन के अपने उदाहरण स्वयं है। इन्हीं डेरों और अखाडों से अनेक विद्वान बड़ी बड़ी उपाधियां धारण कर चुके है और आज भी गुरुवाणी के प्रचार और प्रसार में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। आज इनके रहन सहन और खानदान में कुछ अन्तर अवश्य आ गया है। आधुनिकता का रंग इन पर भी चढ़ने लगा है। यथा सिले हुए वस्त्र पहनना, भगवे वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य रंगों के वस्त्र पहनना। राजनीति में रूचि लेना, जागीरों की सुरक्षा, धनादि संग्रह की भावना तथा डेरों का निर्माण आदि । यहां तक कि डेरों की जायदाद आदि कि लिए ये मुकद्दमे भी करते हैं ।

.... चेतन मठ काशी के महन्त स. इन्द्रजीत सिंह ने लाईसेंस धारी रिवाल्वर रखा हुआ है। सन्त (महन्त) के गले में रिवालवर देखकर मैने पूछा अपने इसे क्यों धारण किया हुआ है ? क्या पंजाब की वर्तमान स्थिति के कारण आपको सिक्ख होने के नाते उत्तर प्रदेश में कोई खतरा है। तो उन्होंने मुझे बताया कि ....[121]

... यह जो डेरे के बाहर दुकाने है यह सब डेरे की सम्पत्ति है लेकिन पुराने समय से यह कम किराए पर दी गई है। (किराया 5–10 रुपए महीना है) मैने इन्हें खाली कराने के लिए उन पर मुकद्दमा किया है। इसी कारण यह लोग मुझसे शत्रुता करते है और मुझे जान से मारने की धमकी देते है। मैने आत्म रक्षा के लिए इसे पहना है। उन्होंने बताया कि डेरे में मैंने

बहुत से सुधार किए हैं, इस डेरे के पास ही एक शिवालय है, जिसमें ग्यारह रुद्र स्थापित है। भारत में बहुत कम ऐसे शिव मन्दिर है, जिसमें एकादश रुद्र हो। मैंने उसे मन्दिर के पुजारियों से छुड़वा कर डेरे में सम्मिलित किया है। पुराने नक्शे से पता चला है कि जब गुरु जी ने निर्मलों को यहां पढ़ने भेजा था तब यह शिवालय चेतन मठ में ही शामिल था। अब मैं यह दुकानें खाली करवा कर नये किराए पर बढ़ा कर दूंगा तब डेरे की आमदन बढ़ेगी और डेरे का अधिक सुधार होगा ।[122]

इन्हीं कारणों से निर्मल सन्तों का अस्तित्व अपनी अलग पहचान रखता है। कुछ परिस्थितियों के परिवर्तित हो जाने तथा सिक्ख परम्पराओं का उल्लंघन करने के कारण ये सिक्ख धर्म की परिधि में नहीं आते। सब से बड़ा अन्तर यह है कि सिक्ख धर्म में गुरु ग्रन्थ साहिब को ही गुरु माना जाता है। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने आदि ग्रन्थ को ही गुरु का रूप प्रदान कर सब के लिए आदेश दिया था कि अब यही सब सिक्खों का गुरु होगा। निर्मल सन्तों ने देहधारी गुरु को ही गुरु माना और 'आदि ग्रन्थ' को केवल अन्य वेदों, उपनिषदों के साथ समान धार्मिक ग्रन्थ। 'आदि ग्रन्थ' का पाठ उनके डेरों में अवश्य होता है । मगर साथ ही सनातन पूजा पद्धति को भी वे अपना कर चलते हैं । दूसरे शब्दों में यह सिक्खों के पुरोहित कहे जा सकते हैं जो कथा कीर्तन पूजा पाठ आदि का काम करते हैं। हिन्दी प्रदेशों में बहुत से घरों में यह कथा कीर्तन पूजा पाठ करने जाते है। यह मूर्ति पूजा का निषेध नही करते। शिवलिंग पर जल भी चढ़ाते है। इसके बहुत से डेरों में शिव मन्दिर भी है। जहां व नियमित रूप से पूजा पाठ करते है। गुरु नानक देव जी को अपना गुरु मानते है, मगर कर्म काण्ड में विश्वास करते हैं । गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ तो करते हैं मगर आरती सनातन ढंग से। निर्मल वर्ग समन्वयात्मक मार्ग को अपना कर चला है इसी कारण अन्य सम्प्रदायों के लोग भी इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते है।

निर्मल लोग सच्चरित और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। ये लोग अधिकतर संस्कृत के विद्वान हुआ करते है और साधारणतः श्वेत (वस्त्र) परिधान धारण किया करते है। इनका अखाड़ा इनके किसी महन्त के शासनधीन रहा करता है। अविवाहित भी होते है .... ये धार्मिक बातों के साथ–साथ सांसारिकता का सम्बन्ध अधिक बनाए नहीं रखना चाहते। न इसी कारण राजनैतिक उथल–पुथल का प्रभाव इन पर कभी पड़ सकता

है। इनकी धर्म पुस्तक आदि ग्रन्थ ही है।[123] इनकी धर्म पुस्तक अवश्य आदि ग्रन्थ है मगर यह धर्म प्रचार करते समय इसकी व्याख्या अपने ही ढंग से करते है। इनकी यही पद्धति बाद में गुरुवाणी की निर्मल प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

निर्मल सन्त : इतिहास और संस्कृति

निर्मल सम्प्रदाय के रूप में जो आज एक सन्त समाज हमारे सामने है, इसके उद्‌मव को लेकर विद्वानों के तीन वर्ग सामने आते है .....

1. गुरु नानक देव को इस वर्ग का संस्थापक मानते हैं।
2. गुरु गोबिन्द सिंह को इस वर्ग का संस्थापक मानते है।
3. गुरु गोबिन्द के बाद इसका परिस्थिति वश स्वतः संगठित होना स्वीकार करते है।

जो वर्ग गुरु नानक देव को इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक मानते हैं, उनमें निर्मल सन्तों की बहुत बड़ी संख्या है, उनके अनुसार गुरु नानक देव जी ने ही प्रथमतः भगवे वस्त्र पहना कर इस परम्परा का सूत्रपात किया। इसीलिए आजतक वही वेश सन्त वर्ग की प्रथम पहचान बना हुआ है। उनके जिन अनुयायियों ने बाद में यही पहरावा स्थायी रूप से पहन लिया वहीं आज निर्मल सन्त कहलाते है। गुरु नानक देव जी का वेई का नदी का प्रवेश प्रसंग बहुत प्रसिद्ध है। तभी उन्होंने इस वेश में दर्शन देकर इसे महत्त्व प्रदान किया। इसी वेश के कारण ही आज तक निर्मल सन्त समुदाय गुरु नानक देव को अपने मत का प्रवर्त्तक मानते है। उनके अनुसार गुरु नानक देव जी ने ही इस वेश को प्रतीक के रुप में प्रदान किया।

इस प्रकार जब तीसरे दिन वेई में से बाहर निकले तो शरीर पर भगवे वस्त्र शोभायमान थे जो कि सन्त वेश का प्रथम चिन्ह है .... ।[124]

इनका विचार है कि गुरु नानक के समय में ही सिक्खों के दो वर्ग प्रचलित थे। एक गृहस्थी शिष्य और दूसरे विरक्त । जो अविवाहित थे और साधुओं सन्यासियों के समान जीवन यापन करते थे। मध्यकालीन निर्गुण सन्तों के समान ही ये भी भगवे रंग के वस्त्र पहनते थे। निवृत्ति मार्ग के अनुगामी यही साधु बाद में एक सम्प्रदाय के रूप में संगठित हुए। बाद में आने वाले सिक्ख धर्म के प्रचारकों और प्रसारकों ने भी इसी वर्ग को सिक्ख धर्म का प्रतिनिधि मान कर इसे पूरे सिक्ख पन्थ को निर्मल

पंथ की संज्ञा प्रदान की अथवा यूं कहना चाहिए कि निर्मल पन्थ (सिक्ख पंथ) का प्रतिनिधि वर्ग होने के कारण ही यह समुदाय निर्मल सम्प्रदाय कहलाया।

निर्मल पंथ के आरम्भ के विषय में सामान्यतः दो मत प्रचलित हैं । यह पन्थ दशम पातशाह के समय में आरम्भ हुआ। इस पंथ के आरम्भ कर्ता गुरु नानक देव जी है। पहले मत को मानने वाले अधिकतर निर्मले विद्वान ही है। उनका विचार है कि गुरु नानक देव जी के सिक्खों में कुछ विवाहित थे और कुछ विहंगम। विहंगम निरमले कहलाए । निरमले विद्वानों का विचार है कि गुरु नानक देव ने अपनी वाणी में 'निरमल' शब्द संज्ञा रूप में प्रयुक्त किया है।[125]

यह भी सम्भव है कि गुरु गोबिन्द सिंह ने इसी पंथ को आगे चल कर विकसित करने के उद्देश्य से सिक्खों को संगठित कर 'खालसा पन्थ' का निर्माण किया हो। चूंकि अमृत प्रचार के समय भी सब सिक्खो ने अमृतपान नहीं किया। जब 1699 में उन्होंने अमृतपान की प्रथा आरम्भ की, तो उससे पूर्व भी निर्मल सन्त विद्यमान थे भले ही पूरे सिक्ख सम्प्रदाय को ही निर्मल संज्ञा दी गई हो। गुरु नानक देव को प्रवर्त्तक मानने वालों में भाई गुरदास का नाम अग्रण्य है। उन्होंने अपनी बार प्रथम में लिखा भी है ....

मारिया सिक्का जाति विचि
बाबे नानक निरमल पंथु चलाया ।।[126]

1–45

जब निरमल पंथ पहले से ही चल रहा था तो फिर उसके अनुयायी भी निर्मल कहलाए। कुछ ही वर्षों के बाद गुरु साहिब ने अमृतप्रचार किया तो इन्होंने अमृतपान किया और सिंह बन गए। उस समय तक सिक्ख पंथ को प्रायः निर्मल (मल रहित) कहा जाता था। 1694 में गुरु जी ने सिक्ख पंथ का नया नाम अर्थात् 'खालसा' (पवित्र) पन्थ चुना। इन दोनों नामों खालसा और निर्मल के अर्थ एक ही है और बहुत समय तक एक ही अर्थ में और एक ही भाव को प्रकट करने के लिए प्रयोग में लाए गए ।[127]

इसका तात्पर्य यह है कि गुरु गोबिन्द सिंह ने केवल इनका नामकरण ही किया। इनका अस्तित्व पहले ही से विद्यमान था। मगर गुरु जी का प्रारम्भिक जीवन भ्रमण में बीता था। अतः वे इस ओर ध्यान दे सके थे।

1751–52 में हुसैनी का युद्ध हुआ। उसके बाद कुछ शान्ति का वातावरण बना रहा तब उनकी दृष्टि पंथ के अभावों को दूर करने की ओर गई। उन्होंने उनका सर्वागीण विकास करने का बीड़ा उठाया।

गुरु महाराज ने इस समय अपने सिक्खों की मानसिक और शारीरिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि वे चाहते थे कि सिक्ख ने केवल शूरवीर योद्धा ही हो बल्कि सन्त विद्वान और नीति निपुण भी हो।

गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने विद्रोह आन्दोलन के सांस्कृतिक आधार को परिपुष्ट करने के लिए संस्कृत के महत्त्व को पहचाना। इस आधार के बिना कोई भी आन्दोलन देश व्यापी रूप धारण न कर सकता था। संस्कृत प्रेम को वे सामयिक आवश्यकता के रूप में नहीं बल्कि स्थायी आधार के रूप में ग्रहण करना चाहते थे ।[128]

इसके लिए उन्होंने संस्कृत के साहित्य को उचित माध्यम जान कर संस्कृत भाषा के अध्ययनार्थ अपने कुछ शिष्यों को प्रेरित किया। मगर यह काम इतना सहज न था। गुरु गोबिन्द सिंह के शिष्यों में सभी जातियों के लोग थे । मगर उस समय संस्कृत के अधिकारी विद्वान (ब्राह्मण) केवल ब्राह्मणों को ही संस्कृत विद्या पढ़ाते थे वे अन्य लोगों को संस्कृत पढ़ाने में अपना अपमान समझते थे । कहा जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी के दरबार में एक अत्यन्त धुरन्धर विद्वान संस्कृत का महापंडित महाभारत आदि ग्रन्थों की व्याख्या करने वाला रघुनाथ नामक ब्राह्मण था। गुरु गोबिन्द सिंह ने उसे अपने शिष्यों को संस्कृत पढ़ाने के लिए कहा। उस दम्भी विद्वान ने गुरु जी के शिष्यों को पढ़ाने से साफ इन्कार कर दिया।[129] गुरु जी के पूछने पर उसने कहा ....

... महाराज आपके सिक्ख छोटी जाति के हैं इन्हें वेद और शास्त्र पढ़ने की छूट नहीं है। मैं इन्हें कैसे पढ़ा सकता हूं। गुरु जी ने हँस कर कहा 'पंडित जी एक दिन आएगा कि ब्राह्मण मेरे सिक्खों के चरणों में बैठ कर विद्या प्राप्त करने में गौरव और बड़प्पन समझेंगे ।[130]

इसी दिन से गुरु जी ने दृढ़ निश्चय किया कि वे किसी तरह से अपने शिष्यों को संस्कृत में निपुण कर सकें। गुरु जी ने सोचा अगर इन्हें काशी भेज दिया जाए, तो वहां सुविधा पूर्वक संस्कृत पढ़ सकेंगे। गुरु गोबिन्द सिंह ने एक उपाय सोचा । उन्होंने अपने शिष्यों को अध्ययनार्थ ब्रह्मचर्य वेश में काशी भेजने का निर्णय किया। ऐसा इसलिए भी करना

जरूरी था क्योंकि काशी के सिवा अन्यत्र संस्कृत की शिक्षा सुचारू रूप से प्राप्त नहीं की जा सकती थी। मगर इस बार भी निराशा ही हाथ लगी ।

.... सिक्खों में भी ऐसी विद्या के पढ़ने और प्रचार के विचार से दूरदर्शी गुरु जी ने पांच सिक्खों (भाई धर्म सिंह, राम सिंह, वीर सिंह, कर्म सिंह और गण्डा सिंह) को बनारस भेजा। परन्तु वहां के अभिमानी ब्राह्मण विद्वानों ने इन्हें शूद्र कह कर वापिस भेज दिया था।[131]

अब गुरु जी ने दृढ़ मन होकर अपने शिष्यों को एक उपाय बताया कि वे अपने आपको निर्मल सन्त कहें ओर गुरु नानक देव के अनुयायी बतावें। वे साधु वेश में जीवन व्यतीत करें। वे जानते थे कि संस्कृत के ज्ञान के बिना मेरे शिष्य अपनी पुरातन संस्कृति से अनभिज्ञ रह जायेंगे और विकास नहीं कर सकेंगे।

.... गुरु गोबिन्द सिंह पूर्ण युक्ति जानते थे और इस विद्याज्ञान में भी सिक्खों को पूर्ण निपुण करना चाहते थे आपने अब दूसरी बार फिर इन बुद्धिमान सिक्खों को भगवे वस्त्र पहना कर भेजा कि इस बाद उनके पूछने पर आप अपना जाति, वर्ग निर्मले सन्त बताना है कि नानक निर्मल पन्थ चलाया है ।[132]

कुछ विद्वानों के अनुसार इन्होंने वहा श्वेत वस्त्र धारण किए थे। हो सकता है तब विद्यार्थियों के लिए श्वेत वस्त्र धारण की प्रथा रही हो। मगर इस बात का प्रमाण नहीं मिल सका। कुछ विद्वानों के अनुसार यह निश्चित रूप से कहा गया है कि गुरु जी ने उन्हें भगवे वस्त्र प्रदान किए थे। मगर कुछ विद्वानों के अनुसार वे श्वेतवस्त्र धारण करते हैं, जो भी हो वे साधुवेश में काशी में पहुंचे और गुरु गोबिन्द सिंह की आज्ञा का पालन किया। इसी बीच उन्हें एक कठिन परीक्षा से भी गुजरना पड़ा। गुरु जी का आदेश था कि वे सिक्खी मर्यादा का भी पालन करे और विद्या भी प्राप्त करें। जबकि संस्कृत के विद्वान ऐसा करने के लिए तैयार न थे तो भी उन शिष्यों ने जैसे तैसे कठिनाइयां झेल कर गुरु वचन को पूरा किया।

..... उन्हें यह हुक्म हुआ कि वे सिक्खी मर्यादा में रहते हुए भेस बदल कर विद्या प्राप्त करें। वे सभी सफेद वस्त्र पहनते और पूछने पर अपने आपको 'निर्मले' साधू बताते ।[133]

इस प्रकार वे अपने आपको निर्मल सन्तों के रूप में बता कर काशी में कुछ वर्ष तक रहे। निर्मल सन्त कहां रहे, किससे विद्या पढ़ी, इसके बारे में भी स्पष्ट ज्ञात नहीं है। इतना अवश्य है कि वे अल्प समय में ही पारंगत हो गए थे। वहां इनकी अन्य विद्वानों से भी जान पहचान हो गई थी। पुनः गुरु जी का वरदान फलीभूत हुआ। विदा करते समय गुरु जी ने कहा था .....

.... हमारे वर प्रसाद से तुम्हें शीघ्र ही शस्त्र विद्या स्फुरण हो जायेगी। इसी हुकुम के अनुसार 1742 को उन पांच सिक्खों ने काशी (जहां पहले माई गुरदास ही रह कर आए थे, जब चेतन मठगुरु की संगत है) रह कर विद्या पढ़ी ओर निर्मल सन्त कहलवाते रहे, जो एक वर्ष में पूर्ण पंडित होकर गुरु जी के पास आए ।[134]

..... पहुंचे कासीपुरे उदारे
चेतन मत में रहे विचारे ।।[135]

काशी से लौटने पर गुरु जी ने इन्हें अध्ययन अध्यापन का कार्य सौंपा। वे चाहते थे कि ये सन्त अपने ज्ञान का प्रचार और प्रसार करें, जिससे लोगों को गुरुवाणी समझने में सुविधा हो। ये सन्त स्थान–स्थान पर जा कर गुरुमत प्रचार करते और निष्काम भाव से लोगों में विचरण करते। खाली समय में महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करते। गुरु जी के आदेशनुसार इन्होंने कुछ संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया, जिससे लोगों को इस महत्त्वपूर्ण साहित्य की जानकारी उपलब्ध हुई। वास्तव में गुरु गोबिन्द सिंह ने इन सन्तों के माध्यम से एक ऐसे संस्थान की स्थापना करनी चाही थी, जिसका एक छोर अतीत से और दूसरा छोर वर्तमान से जुड़ा हो। इसके पीछे उनकी दूरदृष्टि काम कर रही थी। वे अपनी पुरातन संस्कृति से जुड़े रहना चाहते थे चूंकि उसके बिना धर्म की पुनर्स्थापना सम्भव न थी। इसका मूलाधार था संस्कृत साहित्य । जिस के महत्त्व को उन्होंने जाना और उसके लिए येन केन प्रकारेण अपने शिष्यों को शिक्षित किया। उसी के फलस्वरूप अनेक संस्कृत के गूढ़ ग्रन्थों का रहस्य आज लोकभाषा में जनता के समक्ष है। गुरु जी ने जान लिया था कि अगर उन्होंने ऐसा न किया तो उसके शिष्यों का सर्वोन्मुखी विकास असम्भव है। वे कुटिल राजनीति से टक्कर लेने के साथ–साथ अपने शिष्यों में प्रतिभा का पूर्ण विकास देखने के लिए भी उत्सुक थे। उन्होंने निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने

वाले शिष्यों के लिए ज्ञानार्जन का मार्ग प्रशस्त किया।

संस्कृत विद्या का अध्ययन एवं धर्म ग्रन्थों का अनुवाद एक विशिष्ट दिशान्तरण के द्योतक है। संस्कृत के अध्यापकों के एक स्थायी वर्ग की स्थापना किसी सामयिक आग्रह के पृष्ठपेषण की ओर संकेत नहीं करती। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोबिन्द सिंह एक स्थायी गुरु कुल की स्थापना का बीजारोपण करके संस्कृत प्रेम को खालसा रीति नीति का स्थायी अंग बना देना चाहते है।[136]

गुरु गोबिन्द सिंह ने जब खालसा पन्थ की स्थापना की, तो उसका एक मात्र उद्देश्य था भारतीय संस्कृति की सुरक्षा। इसके लिए निर्बल भारतीयों में एक शक्ति का अभाव था, जिसके परिणाम स्वरूप वे शत्रु से लोहा लेने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे। गुरु जी ने लोगों को संगठित करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने सामान्य जनता को अपनी शक्ति का एहसास दिलाया। उनमें विद्यमान साहस और बल को सही दिशा की ओर उन्मुख किया। उनका कहना था कि बलिदान के बिना या त्याग के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उन्होंने अपने कुछ शिष्यों को बलिदान के लिए प्रेरित किया। 1699 को बैसाखी के दिन उन्होंने खालसा की साजना करके भारतीयों को नवजीवन प्रदान किया।

.... गुरु गोबिन्द सिंह के नेतृत्व में सोया पंजाब एक बार फिर जाग उठा ओर वे अपनी संस्कृति की रक्षार्थ कटिबद्ध हो कर खड़े हो गए। गुरु गोबिन्द सिंह तथा अन्य सिक्ख गुरुओं के इस सांस्कृतिक आन्दोलन ने पंजाब के जन साधारण में एक प्राणवान् चेतना शक्ति और साहस का संचार किया ।[137]

गुरु जी के इस आन्दोलन को घर–घर तक पहुंचाने में निर्मल संतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये सन्त जब काशी से पढ़ कर लौटे थे तो अपने साथ अनेक विद्वानों को पंजाब लाए थे। गुणों के पारखी गोबिन्द सिंह ने उन विद्वानों को आदर सहित अपने संरक्षण में रखा और उन्हें अनेक प्रकार के ग्रन्थों का सरल भाषा में अनुवाद कार्य सौंपा। कहा जाता है कि गुरु जी विद्वानों और गुणियों का बहुत आदर करते थे। वे स्वयं एक अच्छे कवि थे। अतः कवियों से उनका गहन प्रेम था। निर्मल सन्तों के साथ भी बहुत से कवि गुरु जी के पास आए, जिन्हें उन्होंने अपने दरबार में रख लिया था। निर्मल सन्त कुछ समय काशी में रहे थे .....

..... कई वर्षो के बाद विद्वान पंडित बन कर आए और अपने साथ कई ओर विद्वान पंडित कवियों का भी लाए थे, जिन्हें गुरु साहिब ने अपने दरबारियों में सम्मिलित कर लिया था और उनको मिलाकर अन्ततः 52 कवि प्रसिद्ध हुए ।[138]

निर्मल सम्प्रदाय के उद्‌भव के बाद इसके विकास का प्रश्न अनिवार्य हो जाता है, निर्मल सम्प्रदाय का प्रवर्तक भले ही गुरु गोबिन्द सिंह को माना जाए या उनके किसी शिष्य को मगर इतना तो निश्चित है कि नानक द्वारा प्रवर्तित सिक्ख पन्थ का एक नवीन रूप खालसा पन्थ की एक शाखा के रूप में गुरु गोबिन्द सिंह के समय में प्रस्फुटित हुआ। संयोग की बात है कि उन्होंने अपने जिन पांच शिष्य को काशी भेजा था, उनमें करम सिंह, गण्डा सिंह, राम सिंह, सैणा सिंह, वीर सिंह के नाम प्रमुख हैं । कुछ विद्वानों ने सैणा सिंह के स्थान पर सोभा सिंह का नाम दिया है। हो सकता है एक ही व्यक्ति को दो नाम हों।

पुनः गुरु पांच सिंघ्र चुन लीए
गंडा सिंह करम सिंह जीए
वीर मिरगेस, राम सिंह सेणा
इन पांचों को पिरव बुद्धि जैना।।[139]

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने पांच सिंहो (राम सिंह, करम सिंह, गंडा सिंह, वीर सिंह, सोभा सिंह) को ब्रह्मचारी वेश में संस्कृत विद्या पढ़ने हेतु काशी भेजा ।[140]

जबकि तवारीख गुरु खालसा में ज्ञानी गिआन सिंह जी ने सोभा सिंह के स्थान पर सैणा सिंह लिखा है।

गुरु जी ने भाई करम सिंह गंडा सिंह, वीर सिंह, सैणा सिंह और राम सिंह इन पांच शिष्यों को योग्य देखकर जब काशी जा कर संस्कृत पढ़ने का हुकम दिया तो उन्होंने प्रार्थना की कि कहीं काशी में भी हमें विप्र शूद्र समझ कर न पढ़ाए। गुरु जी ने वचन किया कि गुरु के घर में राज व योग दोनों ही है। अतः आप काषाय वस्त्र ब्रह्मचारी धर्म धारण करके काशी निवासी होकर विद्या पढ़ो ।[141]

यह निर्मल सन्त ब्रह्मचारी थे अतः इनकी वंश परम्परा का परिचय नहीं मिलता। गुरु शिष्य परम्परानुक्रमण से ही इस सम्प्रदाय का विकास सम्भव हुआ। आज भी इनके डेरों में गुरु शिष्य परम्परा का प्रचलन है यह

आजीवन अविवाहित रहते है।

इसके विकास के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है, कुछ इस सम्प्रदाय का विकास भाई वीर सिंह से मानते है। सर्वप्रथम पांचों निर्मल सन्तों में से भाई वीर सिंह को ही गुरु गोबिन्द सिंह ने काषाय वस्त्र प्रदान किए थे। बाद में उन्हीं ने इस सम्प्रदाय का आरम्भ किया । गुरु गोबिन्द सिंह के समय में इस सम्प्रदाय की स्थापना वीर सिंह ने की थी । वीर सिंह ने सर्वाधिक जोर आचार शुद्धि ओर व्यक्तिगत पवित्रता पर दिया है।[142]

गुरु गोबिन्द सिंह जी के एक प्रमुख शिष्य वीर सिंह ने निर्मल सम्प्रदाय चलाया। कहते है गुरु गोबिन्द सिंह ने इन्हें स्वयं गैरिक वस्त्र दिये थे ।[143]

हिन्दी शब्द सागर में वीर सिंह के स्थान पर राम दास (महात्मा) को इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक बताया गया है। इससे एक अन्य शंका पैदा होती है कि रामदास महात्मा को ही अमृतपान कराकर उसे वीर सिंह की संज्ञा प्रदान की गई हो तथा उसके साथ अन्य शिष्यों को अमृतपान करा कर काशी भेजा हो। इसके प्रवर्तक राम दास नामक एक महात्मा थे। इस सम्प्रदाय के लोग गेरुए वस्त्र पहनते हैं और साधु सन्यासियों की भांति रहते है।[144]

जो भी हो संवत 1742 को गुरु जी ने युद्धों के वातावरण से मुक्ति मिलने पर पाऊंटा साहिब से जिन शिष्यों को शुभाशीष देकर काशी भेजा था। वे महान विद्वान बन कर आनन्दपुर आए ... । काशी में वे सफेद वस्त्र पहनते और निर्मले कहलाते थे। वापस आकर भी वे सफेद वस्त्र ही पहनते रहे... उनसे आगे निर्मले साधुओं की सम्प्रदाय चली। इस सम्प्रदाय में बहुत से विद्वान पुरुष हुए है।[145] धीरे–धीरे परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ इस साम्प्रदायिक प्रवृत्ति का स्वरूप बंदला। धर्म प्रचार के साथ साथ निर्मल सन्तों ने सर्वजन हिताय कार्यो में भी भाग लेना आवश्यक समझा। सन्तों का काम ही परोपकार करना है। इन विद्वान सन्तों ने भी हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर एकत्रित लोगों की सेवा करने का उपयुक्त अवसर जान पर वहां अपनी मण्डलियों द्वारा धर्म प्रचार के साथ–साथ औषधालय और भोजनलाय दोनों का काम भी संभाल लिया। संवत् 1816 में हरिद्वार में कुंभ के अवसर पर सप्त सरोवर में निर्मल महन्तों तथा

विद्वानों की महती उपस्थिति हुई ..... सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक मण्डलेश्वर तथा मठाधीश्वर शिष्य मण्डली सहित हरिद्वार, प्रयाग आदि के प्रत्येक कुम्भ पर पहुंच कर सामाजिक, सार्वजनिक संस्थाओं की पद्धति के अनुसार उचित स्थानों में धर्म प्रचार, भोजन, औषध आदि द्वारा जनता जनार्दन की सेवा किया करें।[146] इस कार्य की सभी ने प्रशंसा की । पुनः एक बार 1912 (संवत) में हरिद्वार में कुम्भ का मेला सप्त सरोवर पर जा मनाया। इस मेले पर लंगर का यश सुन कर धर्ममूर्ति महाराज नरेन्द्र सिंह साहब वालि रियासत पटियाला ने भी 5000/– रूपये सं. मक्खन सिंह कटोर लंगर के लिए भेजा तथा और सिक्ख सरदार ने भी अत्यन्त सेवा की...।[147] इसी प्रकार कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय भी महाराजा पटियाला और संगरूर आदि ने भी पर्याप्त सहायता की। इनकी गुरु भक्ति और धर्म प्रचार देख कर बड़े–बड़े धनाढ्य और पूंजीपति भी इनके चरणों में नतमस्तक हो गए। इन्हें इस पर स्थान–स्थान पर घूमते देख कर अनेक लोगों के मन में विचार आया कि ....

..... इस भेष का धर्म ध्वजा पंचायती अखाड़ा निर्मला बना दिया जाए। जिसके सहारे महात्माओं का लंगर तथा रिहायश के प्रबन्ध भी हमेशा के लिए पक्का हो ।[148] इसके लिए अत्यन्त परिश्रम की आवश्यकता थी । किसी संस्था का निर्माण करना और उसे चलाना सहज काम नहीं होता। महाराजा पटियाला ने महाराजा नाभा और महाराजा जीन्द से परामर्श करके फिर स्थान की पड़ताल हुई अन्त में भादों सूदी 12 संवत 1923 के दिन चनारथलियाँ वाली हवेली अन्दर श्री 108 महाराज नरेन्द्र सिंह साहिब बहादुर वालिए, रियास्त पटियाला, तथा महाराज साहिब जींद (संगरूर) तथा महाराजा नाभा के अहलकारों सहित संतों तथा दूसरे वेष के महन्तों सन्तों और आम जनता के भारी समागम में धर्म ध्वजा पंचायती अखाड़ा निर्मला स्थपित किया।[149] इसके साथ ही आपनें 20000/– रुपये नकद तथा दो गावों झण्डी और कल्लर भैणी की आमदन भी अखाड़े के नाम कर दी। इसके साथ ही अन्य राजाओं ने भी यथा योग्य सहायतार्थ अखाड़े के नाम सम्पत्ति लगा दी। महाराजा नाभा की तरफ से 16 हजार रुपये नकद और हरि के गांव की माफी, जीन्द की तरफ से 20 हजार की माफी और मण्डला वाला और वल्लभगढ़ दो गांव अरदास कराए गए। फरीदकोट की तरफ से चमेली नामक गांव अरदास कराया गया।[150] इस

दसतुरूल–अमल (उर्दू में)

सरकारी मोहर

महात्मा भाई महिताब सिंह जी ने सरकार से इस तरह पर बिआन कीआ कि साधू संनियासी, बैरागी, उदासी, श्री गंगा जी और प्रयाग वगैरा पर बमौके मेलेहाइ अपने अपने अखाड़िआ में जुदा जुदा भण्डारा करते है चूंकि इस भण्डारे करने का पुंन और धरम बहुत है, अगर सरकार से इस धरम की मरयादा काइम हो जावे तो बहुत मुनासब है। चुनांचि सरकार को यह हिदायत भाई साहिब मौसूफ बहुत पसंद आई। लिहाजा सरकार से वासते मुसरफ इस धरम मरयादा को दो दिंह जमा 41000 रुपये साल तमाम अज् रूइ सनद अलहिदा मिती सउण सुदी 12 साल 1919 माफ वा मरकूउल कलम किए गए, और चूंकि काइमी इस मरयादा की बा–नजर होने कार सवाब और धरम अरथ के सरकार को अज तहि दिल मनजूर है। लिहाजा याअने सरकार से 82000 रुपये यकलखत बतौर पेशगी ब–अंदाजे आमदनी 20 साल मुवाजिआति मजकूर इलावा अज आमदनी देहात मजकूर दीआ जा कर बाइतिफाक वा सलाह चाचा साहिब राजा सरूप सिंघ साहिब बहादर वालीइ जींद, वा बरादर अजीज राजा भरपूर सिंह साहिब बहादर वालीइ नाभा यह दसतूरुल अमल, वासते अमल दरामद आइदा, इस धरम मरयादा दे बइंदराज दफिआति मुंफसला जैल मुकरर कीआ गिआ ताकि बमूजब इस के अमल दरामद होता रहे। इसके खिलाफ अमल में ना आवे।

दफा 1 : भाई साहिब महात्मा भाई महिताब सिंह जी मालक अखाड़े के हैं। इन के पीछे से इन का जानशीन मालक होगा।

दफा 2 : जो 82000 रुपये बतौर पेशगी बीस साल व नजर इजराए कारोबार धरम अरथ अखाड़े धरम धजा सिक्खान वा साधान निरमला पंथ गुरु खालसा जी दीए गए हैं, चाहिए कि हर चाहार महंतान मुक्ररा अज् आमदनी सूद वा तजारत वगैरा बिंउपार उसके यानी कारोबार मुतल्लका, अखाड़ा मौसूफ वा तामीर मकानात जारी रखे और जमा असल से सरफ ना करे।

दफा 3 : बंदोबसत वा निगाहदाशत खजाना अखाड़ा जुमे हर एक अखाड़े के रहेगा, और भाई साहिब को कुंजी खजाने की जिसके पास रक्खनी

मनजूर होगी, उस के पास रहेगी।
दफा 4 : जनाब भाई साहिब महात्मा भाई महिताब सिंह जी को अखतिआर हासिल है कि मरजी और सलाह से बदली सदली महंता की करते रहें।
दफा 5 : जो सिक्ख साध अखाड़े में होवे पहले उनसे ऊपर श्री गुरु ग्रंथ साहिब के हाथ लगाया जावे कि रुपये अपने पास न रखें। जो जिसके पास होने खजाने में दाखिल कर देवें।
दफा 6 : जो कोई सिक्ख अच्छा और लायक होवे, भाई साहिब उसको अहुदा सम्मती और दूसरे कारोबार अखाड़े पर मुकरर करें। जो कोई रहित नामे से (भाव अखाड़े दी रहित मरयादा तो) बरखिलाफ होवे वासते मौकूफी और सजाइ उसकी के भाई साहिब को अखतिआर है।
दफा 7 : भाई साहिब मौसुफ अपनी जिंदगी में जिस को अपनी जाग कायम किया चाहे व सलाह व तज्वीज् तीनें सरकारों के मुकरर करें ।
दफा 8 : बसूरते कि बाअद भाई साहिब को उनका जानशीन चलन और रव्वईए से अच्छा नहीं होगा तो वासते मौकूफी उसको और कायम करने बजाए उसके तीनों सरकारों को अखतिआर हासिल हैं।
दफा 8 : दर बाब बंदोबसत वा इज् राये कारोबार अखाड़े मजकूर बमूजब दसतूर अखाड़ा पंचायती के, अमल दरआमद होता रहे। मिती साउन सुदी 12 बारा, साल 1919 मुताबिक दस सफर सन 1273 हिजरी गुरु वार।[153]

मोहर मिशानी कुलबन्त राए दीवान

इस दसतूरुल अमल तो इलावा इक दसतूरुउल–अमल भाई कान्ह सिंह नाभा ने महान कोश विच 30 दफा वाला वी लिखिआ है। निरमल भेख दुआरा इस उते काफी टीका टिप्पणी हो चुक्की है। भाई साहिब भाई कान्ह सिंह जी नूं निरमल भेख दे सिरताज, ठाकर, कुलन्तन महंत साहिब महंत बुड्ढा सिंह जी रिखीकेश वालिआं ने समसत निरमल समाज वलों अते आपणों वलों इक चिट्ठी लिखी सी कि निरमल अखाड़े संबंधी तिन्नां सिक्ख सटेटां ने जो दफा 9 वाले दसतूरुर अमल कायम कीते सन ते जिन्हां दी परवानगी संमत 1919 (1862 ई.) नूं दिती गई सी इस वेले अखाड़े दे हैड आफस कनखल विच पये हन, उन्हां नाल तुहाडा 30 दफवां वाला दसतुरुल–अमल मेल नहीं खांदा। इस दे उतर विच सीमान भाई साहिब जी ने हेठ लिखी चिट्ठी महंत बुडढ़ा सिंघ जी नूं लिखी जो इस वेले निरमल

आश्रम रिखीकेश, महंत आत्मा सिंह जी दे जानशीन महंत नरैण सिंघ जी दे पास मौजूद है। असी पाठकां प्रति उस दी हू–ब–हू नकल पेश करदे हां –– सीमान महंत जी

सी वाहिगुरु जी की फतह

महान कोश दी दूजी ऐडीशन छापण समें धरम धुजा दे इतिहास विच जो त्रुटि रह गई है, ओह पूरी कर दिती जावेगी। निरमले संता दी सेवा विच (जिन्हां लई मेरे मन अंदर बड़ा आदर है । प्रारथना है कि उह अखाड़े संबंधी सही हाल लिख के मेरे पास नामे भेजण दी किरपा करन

नामा 1 असू — पंथ दा सेवक

साल 466 — कान्ह सिंघ

17 सतंबर 1935

श्री महन्त महताब सिंह जी के बाद गिआरां सी महंत बने, पंडित तारा सिंह जी नरोत्तम, नायब सी महंत, महंत मोहर सिंह जी पटियाला नायब सी महंब, पं. दया सिंह नायब सी महंत पूर्ण सी महंत थे। बाकी पूरण सी महंत इस प्रकार है :

सी महंत राम सिघ जी कुबेरीए : गदद्‌ी नशीनी संमत 1928(1851ई)
देहांत 1952 (1895 ई)

सी महंत ऊधम सिंह जी निआयक काशी : गद्दी नशीनी 1952(1895ई)
देहांत 1963 (1906 ई)

सी महंत पं. साधु सिंह जी पटियाला : गद्दी नशीनी 1963(1906ई)
देहांत 1964 (1907 ई)

सी महंत राम सिंह जी हरीकिआं वाले : गद्दी नशीनी 1965(1908ई)
देहांत 1984 (1927ई)

सी महंत पं. दया सिंघ जी उग्गो : गद्दी नशीनी 1980 (1923 ई)
नायब सी महंत अते 1985 (1978ई) पूरण सी महंत,
देहांत 1987 (1930ई)

सी महंत पं. जीवन सिंघ : गद्दी नशीनी 1987 (1930 ई)
देहांत 1991 (1934 ई)

सी महंत पंडित सुच्चा सिंह जी : गद्दी नशीनी 1987 (1930ई)
देहांत 1985 ई

इनके पश्चात् श्री महन्त श्री बलवीर सिंह शास्त्री 1986 ई में श्री महन्त के पद पर आसीन हुए। वर्तमान समय में तपो निधि, अनन्त विभूषण, विद्यामुकुटभणि श्री महन्त स्वामी ज्ञान देव सिंह इस पद को सुशोभित कर रहें है।[154]

निर्मल सम्प्रदायों का वर्गीकरण

निर्मल पंथ दर्शन में महन्त दयाल सिंह ने निर्मल सन्तों की 33 सम्प्रदायों का वर्णन किया है। इनके नाम इस प्रकार है --

1. सम्प्रदाय ठाकुरा
2. सम्प्रदाय नोरंगाबाद
3. सम्प्रदाय होती मरदान
4. सम्प्रदाय दुभेरनी
5. सम्प्रदाय भगीरथी
6. सम्प्रदाय गंधीयां
7. सम्प्रदाय मंगवाल
8. सम्प्रदाय पण्डोरी निझरा
9. सम्प्रदाय खडूरीयां
10. सम्प्रदाय कुबेरीयां
11. सम्प्रदाय बिलोगी
12. सम्प्रदाय ठाकुरं बहाल सिंह
13. सम्प्रदाय गुरुसरीयां
14. सम्प्रदाय गिरवड़ी
15. सम्प्रदाय बरनाला
16. सम्प्रदाय डरोली
17. सम्प्रदाय मुक्तसरीयां
18. सम्प्रदाय महिमेशहीयां
19. सम्प्रदाय जलाल
20. सम्प्रदाय सेखवां दोंदां
21. ठीकरी वाला
22. सम्प्रदाय दोदर

23. सम्प्रदाय गुरु मांगट
24. सम्प्रदाय नगाली साहब
25. सम्प्रदाय काशी
26. सम्प्रदाय राम तीर्थयां
27. सम्प्रदाय अड्डनशाही निर्मले
28. सम्प्रदाय बाबा गुरमुख सिंह
29. सम्प्रदाय दमदमीयां
30. सम्प्रदाय बाबा कूमा सिंह
31. सम्प्रदाय अयोध्यावासके
32. सम्प्रदाय ब्रिन्दा वनीये
33. सम्प्रदाय कादीयां[155]

सिक्ख मिसलों के काल में निर्मल सन्तों के गुरुमत प्रचार से प्रसन्न होकर राजाओं ने स्थान--स्थान पर डेरों के निर्माण के लिए जागीरें देनी आरम्भ कर दी थी। उस समय के लिखे हुए पट्टे इस बात की पुष्टि करते है।

भाई दरगाहा सिंह जी ने संवत 1767 में अवचल नगर में आकर पांच सात सिंहों सहित गंगा के किनारे कनखल गुरुद्वारे के पास झोंपड़ी बना कर निवास किया। वे अच्छे तीर अंदाज थे। वहां के मालिक राय अहमद को नजीबा वादिये रुहेलों की लड़ाई में मदद देकर उन्हें बचाया था। राय अहमद ने खुश होकर कहा जहां तक आप घेर लोगे उतनी जमीन की सनद में तुम्हें लिख दूंगा। उन्होंने दूर तक बाड़ा घेर लिया। राय ने संवत् 1786 में सनद लिख दी।[156] इस प्रकार डेरों के निर्माण में इन सन्तों को किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। राजकीय सहायता और लोगों के श्रद्धाभाव ने निर्मल सन्तों का उत्साह बढ़ाया।

पं. गुलाब सिंह के गुरु पं. मान सिंह ने कुरुक्षेत्र में 1743 ई. को धर्मार्थ जमीन पटे पर ली। सन् 1752 में महाराज माला सिंह की पुत्री बीबी प्रधान कौर ने बरनाले के बाबा गोधा सिंह वाले डेरे के महन्त निक्का सिंह को उन गांवों का पट्टा लिख कर दिया --- ।[157]

कुछ विरक्त महात्माओं ने इन पट्टो, जागीरों को लेने से स्पष्ट इन्कार किया लेकिन कुछ ने अखाड़े की उन्नति के लिए आप के स्रोत के

रूप में इन्हें स्वीकार कर किया । पं. निहाल सिंह जी जपुजी साहिब के संस्कृत टीकाकार को महाराजा रणजीत सिंह जी शेरे पंजाब ने संवत् 1853 को सन्तोखदास के अखाड़े के बराबर का पटा लिख कर आगे रख कर नमस्कार किया। पंडित जी ने सरकार के सामने ही फाड़ दिया और कहा जर, जोरु, जमीन सन्तों को परमेश्वर के नाम से विमुख करने वाले है। सन्तों को इनमें प्रवृत नहीं होना चाहिए।[158] इन डेरों की स्थापना के बाद इनका प्रबन्ध, देखरेख आदि करने तथा गुरमत प्रचार करने के लिए धाम ध्वजा निर्मल पंचायती अखाड़ा की कार्यकारिणी तथा सभी साधुओं सन्तों की सभा में योग्य व्यक्ति को श्री महन्त चुन कर उसे पूर्ण सम्मान के साथ गद्दी का अधिकारी बना दिया जाता। कनखल में पंचायती अखाड़ा सदर मुकाम स्थापित करने के बाद निर्मल सन्तों ने हिन्दी प्रान्तों में गुरुमत प्रचार करने में काफी प्रगति दिखाई है। निर्मल सन्तों की सामूहिक रूप में पहली सभा ऋषिकेश में 1758 ई. में हरिद्वार के कुम्भ पर, दूसरी बार 1764 ई. में अर्ध कुम्भी के अवसर पर और फिर 1770 ई. में ऋषिकेश में हुई। 1806 ई. में हरिद्वार के कुम्भ पर सभी डेरेदार महन्तों ने कुछ रुपया इट्कटठा कर कनखल हरिद्वार डेरा बाबा दरगाहा में लंगर का प्रबन्ध किया है।[159] बाद में इस सदर मुकाम के पास काफी जायदाद हो गई। कुछ दुकानें महान खरीदे भी गए, कुछ बनाए भी। आजादी के बाद बहुत सी सम्पत्ति और डेरे पाकिस्तान में छोड़ कर निर्मल सन्त भारत आ गए और नए डेरों का निर्माण आरम्भ किया। इसी लड़ी में हरिद्वार, ऋषिकेश, दिल्ली, मुरादाबाद, अम्बाला शहर, मोदी नगर, सहारनपुर, बैलपड़ा, मिरजापुर, कानपुर, काशी, जम्मू आदि शहरों में नए डेरे बने। आजादी के बाद पूरबी पंजाब में डेरे कम बने। बड़े शहरों अमृतसर, पटियाला, जालन्धर, होशियारपुर के सिवा कहीं भी सन्तों के डेरे नहीं है।[160] पंजाब के बाहर निर्मल सन्तों नें डेरों का निर्माण कर एक बहुत बड़ा परोपकार किया ताकि पंजाब के बाहर भी वे अपने साहित्य और प्रचार द्वारा जनता को गुरुमत सिद्धान्तों और गुरुओं के अमूल्य सन्देश से अवगत करा सकें। यह उनकी दूरदर्शिता ही कही जाएगी। दूसरा एक कारण यह भी है कि निर्मल सन्त विरक्त प्रवृत्ति के होने के कारण राजनैतिक युद्धों में रुचि न होने के कारण तथा मुगल हकूमत के द्वारा सिक्खों पर हो रही सख्ती के समय सुरक्षित स्थानों पर भाव यह पंजाब से बाहर रहते रहे है। इनका

बड़ा डेरा कनखल में सन्त दरगाहा सिंह ने 1710 ई. में स्थापित किया था।[161] बाद में इस डेरे के अन्तर्गत आने वाले सभी सन्तों ने अपने–अपने डेरे स्थापित किये और इसी से सम्प्रदायों का विकास हुआ। आज निर्मल सम्प्रदाय के अन्तर्गत 33 विभिन्न सम्प्रदायों के द्वारा गुरुमत प्रचार हो रहा है।

निर्मल सन्तों के डेरों में साधुओं के जीवन को अनुशासित एवं नियमित रूप प्रदान करने के लिए कुछ नियम बनाए गए हैं। जो इस प्रकार हैं .....

निर्मल सन्तों के डेरों के प्रमुख नियम :–

1. केशधारी होना प्रथम नियम है।
2. 'गुरु–ग्रन्थ साहिब' का प्रकाश अनिवार्य है।
3. महन्त को विवाह निषेघ है।
4. सम्पत्ति का स्वामी महन्त का ज्येष्ठ एवं सुयोग्य शिष्य।
5. जितने चाहे शिष्य बना सकता है।
6. ज्येष्ठ शिष्य अयोग्य होने पर अन्य शिष्य को गद्दी ।
7. सम्पति का स्वामी वही होगा जो गद्दी पर महन्त होगा।
8. प्रत्येक शिष्य आगे शिष्य बना सकता है लेकिन महन्त के शिष्यों को ही गद्दी मिलती है।
9. प्रत्येक निर्मल सन्त किसी डेरे, गुरु या सम्प्रदाय से जुडा होता है।
10. अगर सम्पति/गद्दी कां वारिस कोई भी न हो तो गुरु भाई या उसका शिष्य स्वामी होता है।
11. नहीं तो नया महन्त चुन लेते है।
12. अन्यथा निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल उसे अपने अधीन कर लेता है।
13. प्रत्येक डेरा अपने आप में स्वतन्त्र होता है। सम्पति उसकी निजी होती है।
14. निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल का कोई दखल नहीं है।
15. निर्मल पंचायती अखाड़ा के अपने अधीन कुछ अलग डेरे है।[162]

निर्मल पंचायती अखाड़ा की स्थापना का उद्देश्य

निर्मल अखाड़े के मुख्य उद्देश्यों का सारांश निम्नलिखित है, जिन्हें प्रबन्धक पूर्णतया पालन करते है --

1. देश देशान्तरों में भ्रमण द्वारा निर्मल गुरुमत का प्रचार करना।
2. हरिद्वार, प्रयागराज, उज्जैन, गोदावरी, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थो पर कुम्भादि पर्वो में स्नानार्थ आये सन्तमहात्मा तथा सद्गृहस्थ यात्रियों के लिए स्थान एवं भोजनादि का उत्तम रीति से निःशुल्क प्रबन्ध करना।
3. उक्त तीर्थो पर पर्वो के समय अखण्ड--कथा, कीर्तन तथा जुलूसों द्वारा गुरुमत का प्रचार करना।
4. साम्प्रदायिक स्थानों की देखभाल करना। बिगड़ते हुए स्थानों का सुधार करना और साम्प्रदायिक सम्पति का दुरुपयोग न करने देना। एवं ऐसे करने वाले सन्त महन्तों को यथा साध्य रोकने का प्रयत्न करना।
5. काशी, हरिद्वार आदि तीर्थो पर विद्यालयों द्वारा विद्या का प्रचार करना तथा विद्यार्थियों में देश एवं शिष्टाचार आदि की उच्चता का भाव पैदा करना।
6. कुम्भ आदि पर्वो के समय औषधालयों द्वारा आतंक निवारणार्थ रोगियों को औषधि प्रदान करना।
7. दाताओं से दिए हुए द्रव्य का समुचित व्यय करना तथा धर्मस्थान बनाना अथवा अभ्यागतों के लिए भोजनालय खोलना।
8. मादक पदार्थो का स्वयं त्यागपूर्वक जनता को उन मादक पदार्थो से निवृत्त कराना।
9. निर्मल सम्प्रदाय के साधुओं को विद्या, त्याग, वैंराग्य आदि उच्च गुणों से युक्त बनाने को चेष्टा करना इत्यादि ।

निर्मल सम्प्रदाय की सर्वसम्मति से निर्वाचित सर्वाधिकार प्राप्त मुख्याधिष्ठाता माननीय श्री महन्त महाराज जी की कार्यकारिणी समिति इस प्रकार संघटित्त हुई, जो अब तक उसी प्रकार संघटित होती आ रही है। इस समिति के निम्नलिखित अवैतनिक सदस्य होते है --

1. चार मुखिए महन्त साहब
2. एक मन्त्री

3. एक कोषाध्यक्ष (कुठारी)

4. एक स्थानीय महन्त

5. एक कारबारी ।

इसी प्रकार अखाड़े की प्रत्येक शाखा में (1) एक महन्त (2) एक कुठारी (3) और एक कारबारी अपनी जगह पर सम्यक रीति से कार्य करते है

1. मुखिये महन्त का कर्तव्य : रमत अखाड़े में क्रमशः उपस्थित होकर गुरुमत के पवित्र सिद्धान्तों को प्रचारित करना तथा आवश्यकतानुसार उचित सम्पत्ति देकर निर्मल संस्था के कार्यों में सहयोग प्रदान करना।
2. मन्त्री का कर्त्तव्य : अखाड़े से सम्बद्ध शाखाओं तथा संस्था के राजकीय कार्यो का यथोचित निरीक्षण करना।
3. कोषाध्यक्ष का कर्तव्य : ईमानदारी से कोष की रक्षा तथा प्रतिदिन के आय व्यय के हिसाब को दैनिक चर्या बही आदिकों में सुरीति से लिखना और स्थानीय प्रबन्ध करना।
4. स्थानीय महन्त का कर्तव्य : स्थानीय कार्य–संस्था सम्बन्धित मकानों की देखभाल करना।
5. कारबारी का कर्त्तव्य : स्थानीय नौकरों का तथा समागत अतिथियों के निवास आदि का प्रबन्ध करना।[163]

प्रमुख निर्मल सन्त : परिचय और पहचान

पं. गुलाब सिंह निर्मला

संस्कृत और ब्रज के प्रकाण्ड पंडित पं. गुलाब सिंह निर्मल सम्प्रदाय के सर्वप्रथम साहित्यकार माने जाते हैं, क्योंकि इनसे पूर्व किसी भी निर्मल सन्त की कोई भी कृति उपलब्ध नहीं होती। या तो नष्ट हो चुकी है या फिर रचना ही नहीं हुई। पं. पंडित गुलाब सिंह (जन्म 1732) का उपलब्ध साहित्य ही निर्मल सम्प्रदाय का सब से प्राचीन प्रामाणिक साहित्य है। पं. गुलाब सिंह की जो रचनाएं मिलती हैं, उनमें से संवत् 1810 वि. (सन 1753) से पूर्व की रची हुई कोई पुस्तक नहीं मिलती। इनका रचा हुआ बहुत सा साहित्य ईर्ष्यावश इनके समकालीन विद्वानों ने दरिया में बहा कर नष्ट कर दिया था।[164] आपने मौलिक एवं अनूदित दोनों प्रकार के

ग्रन्थों का प्रणयन किया। आप संस्कृत एवं ब्रज दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते थे। आपने गुरुवाणी और वेदवाणी का खूब अध्ययन किया ।[1]

आपका जन्म संवत् 1789 विक्रमी में लाहौर जिला की चूनियां तहसील के अन्तर्गत सेखव नामक गांव में हुआ था।[165] आपकी कृतियों में आपके जन्मस्थान व माता पिता का नाम कई स्थानों पर उपलब्ध होता है। इनके पिता का नाम राइया ओर माता का नाम गोरी तथा गांव का नाम सेखव था।[166] 'भाव रसामृत' में कवि ने स्पष्ट रूप से कहा --

गौरी राया मात पिता
सेखव नगर उदार
गुलाब सिंह कुलदीप सुत
करयो ग्रन्थ निरधार ।। 25।।

(मेरी माता का नाम गोरी पिता का नाम राया तथा सेखव नगर मेरी जन्मभूमि है कुछ का नाम उजागर करने वाले कवि गुलाब सिंह ने इस पुस्तक की रचना की है।) इनके गुरु पं. मान सिंह थे इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने गुरु मान सिंह की बार–बार स्तुति की है। गुरु कृपा का प्रभाव बताते हुए पं. गुलाब सिंह 'मोक्ष पंथ प्रकाश' में लिखते है। सुनाथ मान सिंह के पदार विन्दते गिरे अनूप बार बिन्दु को मुखारबिन्द में परे सुवागहीन रूप में वचाल मूक को करे निहार रूप आपने कहे कुबन्ध को हो ।[167] ।। 6।। इसी ग्रन्थ के अन्त में भी उन्होंने अपने गुरु एवं माता पिता का नाम लिखा है। इति श्रीमान मान सिंह चरण शिष्य गुलाब सिंह ने गौरीराया आत्म जेन विरचिते मोक्षपंथ प्रकाशे विदेह मुक्ति निरूपण नाम पंचमों निवास ।[168]

बहुत से विद्वानों ने इनके जन्म संवत् के विषय में मतभेद प्रकट किया है लेकिन बहुसंख्या को भाई कान्ह नाभा मान्य है। भाई कान्ह सिंह नाभा के ही इस संवत् के आधार पर ....डॉ. गोबिन्दनाथ राजगुरु ने कवि का जन्मकाल संवत् 1736 (1729 ई.) बताया है, जो कि उचित नहीं। संवत् में से 57 वर्ष घटा कर ईस्वी सन् निकालने की प्रवृति को अपना कर डॉ. ओ. पी. आनन्द ने सन् 1732 ही स्वीकार किया है यह सन् भाई कान्ह सिंह नाभा को भी मान्य है।[169] गुलाब सिंह जी ने अनेक स्थानों

पर अपनी जाति, गांव, माता पिता गुरु का वर्णन किया है। डा. सत्येन्द्र के अनुसार गुलाब सिंह चव्बे जाति के थे, ये सेखव गांव के निवासी थे। माता का नाम गौरी पिता का नाम राय चन्द था। गुरु का नाम था सन्त मान सिंह । ये निर्मल पंथ के थे ।[170] सन्त गुलाब सिंह बचपन से ही विरक्त स्वभाव के थे आपने एक बाद साधु बनने की इच्छा प्रकट की तो माता पिता ने इन्हें रोका और वंश वृद्धि की दुहाई दी। उन्होंने माता–पिता का नाम बढ़ाने के लिए अपनी रचनाओं में उनका नाम लिखने का संकल्प लिया। इसीलिए शायद उनकी हर रचना में माता पिता का नाम उपलब्ध है। एक अन्तर्साक्ष्य के अनुसार उन्होंने शादी तो की मगर थोड़ी देर बाद उनकी पत्नी और सन्तान नष्ट हो जाने के बाद के विरक्त हो गए ।

सुत अरु नारि प्रथम मरि गए
पाप अनुसार नरक तिन भए
ताको हेर बहुत दुख पावे
देवन के दुख गने न जावें। [171] ॥ 127॥

तदनन्तर गुलाब सिंह विरक्त हो कर काशी चले गए और वहां ईश्वर भक्ति में लीन हो गए। साथ ही संस्कृत के ग्रन्थों का अध्ययन भी किया। अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ भी किए। किसी अज्ञात कारण वश उन्हें वापिस पंजाब आना पड़ा। मार्ग में वे अयोध्या तथा कुरुक्षेत्र ठहरे। उन दिनों कुरुक्षेत्र निर्मला सन्तों का केन्द्र था। वही पर उन्होंने सन्त मान सिंह जी को गुरुध ारण करके उनसे निर्मला पंथ में दीक्षा ली।[172] कवि की निधन तिथि निश्चित नहीं है और न ही कोई प्रमाण ही मिलता है। प्रबंध चन्द्रोदय की रचना के बाद ही इनकी मृत्यु हुई । इसके अनुसार उनकी आयु लगभग पूरे 60 वर्ष ही बनती है। अतः लगभग 1792 के आसपास ही उन्हें मोक्ष प्राप्ति हुई। यह अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों में से गिने जाते थे। वे एक सफल कवि थे। आपकी रचनाओं ने अनेक निर्मल सन्त कवियों को प्रेरित किया। धर्म प्रचार और कवित्व दृष्टि दोनों ही आपके व्यक्तित्व को उद्घाटित करते है।

पं. तारा सिंह नरोत्तम

निर्मल सम्प्रदाय में पं. तारा सिंह नरोत्तम ने सब से अधिक साहित्य की रचना करके तथा गुरुवाणी की व्याख्या करके अपना नाम तो रोशन किया ही साथ ही जिज्ञासुओं के लिए गुरुवाणी को समझने की सुविधा भी प्रदान की है। आपका जन्म मौजा कालमा (जिला गुरदासपुर) व्यास नदी के किनारे संवत 1879 वि. को हुआ था।[173] आपको आरम्भिक अवस्था में ही गुरुवाणी के प्रति लगाव था और आपने साधु पुरुषों की संगति में रहना शुरु कर दिया था। साधु सन्तों में रहते हुए आपने पंडित गुलाब सिंह जी की विद्वत्ता की चर्चा सुनी। पंजाब के प्रसिद्ध सन्त गुलाब सिंह निर्मला के चरणों में बैठ कर गुरु दीक्षा ग्रहण की। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण भाषा वेदान्त दर्शन, व्याकरण, पुराण आदि विषयों के मर्मज्ञ विद्वान बन गए ।[174] उस समय पं. गुलाब सिंह गिरवड़ी गांव कुराला, जिला होशियारपुर के स्थान पर निवास करते थे। आप कुछ वर्ष तक वही इनके साथ रहे और संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चले गए। गुरु गोबिन्द सिंह जी के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गुरुमत का प्रचार करने और विद्या के प्रसार के लिए निर्मल विद्वानों ने सारे भारत में और विशेष कर पंजाब में डेरे और अखाड़े स्थापित कर लिए। इन्हीं डेरों में हो एक डेरा ग्रिबड़ी नदी के किनारे कुराला में सन्त गुलाब सिंह का था जहां जा कर नरोत्तम ने निर्मल सम्प्रदाय से सम्पर्क स्थापित किया।[175] यही रह कर पं. गुलाब सिंह निर्मला से शिक्षा प्राप्त भी थी। बाद में आप नदिया शहर और बंगाल भी गए। आपने इन यात्राओं के दौरान संस्कृत के दर्शन ग्रन्थों न्याय, वेदान्त आदि का गहन अध्ययन किया।

जब विद्या का पूर्ण भण्डार परिपूर्ण हो गया तो मन में उमंग पैदा हुई कि अब कुछ गुरु घर पर गुरुमत के ग्रन्थ लिखें। इस विचारधीन वे पंजाब लौट आए। राजपुरा में श्री 103 महाराज नरेन्द्र सिंह साहिब वालिए पटियाला की प्रेरणा तथा सच्ची भक्तिवश आप मेहमानदारी में पटियाला राजधानी में आ ठहरे। इसी कोठी धर्मगढ़ में आपने सारी आयु बिता दी।[176] आपकी योग्यता एवं विद्वत्ता को देखते हुए राम सिंह कुबेरिए ने 1932 वि. संवत् में अपना उत्तराधिकारी मान्यवर विद्यारत्न, साहित्य वाचस्पति विद्यालंकार, राजगुरु पं. तारा सिंह नरोत्तम को नियुक्त किया। नरोत्तम जी

प्रथम उत्तराधिकारी हुए।[177] आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। सर्वप्रथम आपने जी ने गुरुवाणी के कठिन शब्दों को समझने के लिए एक कोश तैयार किया। 'गुरु गिरार्थ कोश' में सरल अर्थ दिए गए है। यह दो खण्डों में हैं । आपने गुरुमत निर्णय सागर में गुरुवाणी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। आपने गुरुग्रन्थ साहिब की टीका का कार्य आरम्भ किया था, जो पूरा न हो सका। यह टीका श्रीराग तक उपलब्ध है। आपने निर्मल पंचायती अखाड़े की उन्नति के लिए भी बहुत सी योजनाएं तैयार की थी । निर्मल सम्प्रदाय को आपसे बहुत सी आशाएँ थी। मगर शोक कि आप संवत् 1948 में ही राजधानी पटियाला में शीघ्र परलोक सिधार गए। भेष की उमंगे मन में ही रह गई। अमोलक नर रत्न नरोत्तम जी सदा के लिए बिछोड़ा दे गए ।[178]

आपने निर्मल सम्प्रदाय को गुरुवाणी सम्बन्धी अमूल्य साहित्य दिया है। आपके साहित्य में मौलिक ग्रन्थों की भरमार है। आपकी खोजपूर्ण प्रवृत्ति ने बहुत कुछ नई सामग्री प्रदान की है। आपने अनुवाद की ओर कम ध्यान दिया है। आप के ग्रन्थों में बौद्धिक तत्त्व अधिक है। आप निश्चय ही भाषा वैज्ञानिक सिद्ध हुए है।

पं. साधु सिंह

श्रीमान् पं. साधु सिंह जी का जन्म सरलीया जिला अमृतसर, भाई सोभा सिंह जी के घर माता देवी जी की कोख से हुआ।[179] आप पंडित तारा सिंह नरोत्तम के गुरु भाई थे। महान कोश के रचयिता और विद्वान भाई कान्ह सिंह के अनुसार ...... पं. तारा सिंह नरोत्तम के गुरु भाई साधु सिंह का जन्म जिला अमृतसर के गांव सरली में संवत् 1897 को हुआ।[180] कुछ विद्वानों ने इनका जन्म संवत् 1906 माना है और गांव सरलीयां बताया है।[181] आप निर्मल सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित विद्वान रहे है। आप निर्मल पंथ के सच्चे प्रेमी ओर निष्ठावान् अनुयायियों में से एक थे। आप पं. गुलाब सिंह के विश्वसनीय शिष्यों में से एक थे। आप अधिकांशतः उनके पास ही रहे। एक बार वहां से पंचायती अखाड़े वालों ने एक साधु की मांग की तो आप अपने गुरु जी की आज्ञा पाकर पंचायती अखाड़ा निर्मला में जा निकले। बाद में महन्त होकर भी अखाड़े के साथ

विचरते रहे। वहां रह कर एक दो ग्रन्थ भी रचे।[182]

साधु सिंह जी प्रायः पाठ पूजा, अथवा पठन–पाठन में ही अपना समय व्यतीत किया करते थे। आप बहुत कम समय ही पंचायती अखाड़ा के श्री महन्त के पद पर आसीन रहे। लेकिन इसका समय में भी उन्होंने निर्मल सम्प्रदाय न गुरुघर की पर्याप्त सेवा की ।

.... अन्त समय संवत् 1962 माघ में आप प्रयागराज स्नान–दर्शन करने गए ही अखाड़े के श्री महन्त किए गए। आपने उस समय कहा मेरे स्थान पर श्री महंत और करो मैंने तो परसों तक अमावस के दिन स्वर्गवास कर जाना है। तब साध संगत ने उठ कर अरदास की कि आपको 2 वर्ष की आयु महात्मा ने दी। तब इसी वाक्य के अनुसार माघ अमावस के दिन संवत 1864 में पटियाला राजधानी के अन्दर सदा के लिए संसार से कूच कर गए ।[183] आप संस्कृत और हिन्दी के विद्वान पंडित तथा गुरुवाणी के अटूट प्रेमी थे। आपकी पद्धति में वेदान्त और संस्कृत की शब्दावली की भरमार है। आपने जे कुछ रचना की वह सब गुरु घर के ही प्रमाणो द्वारा भरभूर है। आपको गुरु के व्यास कह दिया जाए तो अत्युक्ति न होगी।[184] आप स्वभाव के अत्यन्त विनम्र, दयाशील और निष्ठावान् व्यक्तित्व के स्वामी थे। आपने पूरा जीवन अध्ययन अध्यापन और गुरुवाणी प्रचार तथा सम्प्रदाय की उन्नति में व्यतीत कियां। आपकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आपके विषय में अर्जुन सिंह मुनि का कथन है —

साधु सिंहः श्री महन्तः
साधु चित्त गुणोज्जवलः
तत्पश्चात भवद्धीमान्
लोकानुग्रहतत्परः ।।[185]

ठाकुर निहाल सिंह

ठाकुर निहाल सिंह का जन्म सन् 1807 ई. में भाई महिल सिंह और माई बस्सी के घर हुआ।[186] तहसील गुजांखान के गांव सेयद कसरां का निवासी एक परिवार तीर्थ यात्रा के लिए अमृतसर आया हुआ था। इसी परिवार में निहाल सिंह के माता पिता भी थे । अमृतसर में रहते हुए ही

ठाकुर निहाल सिंह का जन्म हुआ । आपका बचपन अमृतसर में ही गुरुघर की सेवा करते व्यतीत हुआ। आरम्भिक शिक्षा भी आपने यही अर्जित की।

7 साल की उम्र में यह बच्चा निहाल सिंह श्री ठाकुर दयाल सिंह जी को विद्या प्राप्ति के लिए सौंपा गया। इन्होंने इस डेरे की सन्त सेवा के साथ–साथ करीब 15 वर्ष भाषा ओर संस्कृत के धर्मग्रन्थों और गुरु ग्रन्थ साहिब का अर्थो सहित अध्ययन किया। आप साथ जी साथ राग विद्या कीर्तन और तबला बजाने में निपुण हो गए थे।[187] साधु सिंह जी की प्रेरणा से आप गुरुवाणी की व्याख्या में जुट गए। आपने 'जाप साहब' पर चक्रधर चारु चन्द्रिका नाम से टीका लिखी। इसमें गुरु स्तुति भी है। आपने कई शास्त्रार्थ भी किए और ख्याति अर्जित की। आपने गुरुवाणी, भारतीय दर्शन तथा पौराणिक साहित्य का गहन अध्ययन किया था। एक बार स्वामी दयानन्द सरस्वती अमृतसर आए और उन्होंने 'खालसा' शब्द के विषय में प्रश्न किया। सन्त ठाकुर दयाल सिंह जी का आशीर्वाद पाकर सन्त निहाल सिंह जी ने खालसा शब्द के 100 श्लोक संस्कृत में रच कर दूसरे दिन जा सुनाए। स्वामी दयानन्द हैरान हुए। उन्हें आलिंगन कर कहने लगे मुझे आज पता चला है कि सिक्खों में भी संस्कृत भाषा के विद्वान कवि मौजूद है।[1] उनकी यह रचना 'खालसा शतक' नाम से प्रसिद्ध है। आपने गुरु घर की सेवा एवं गुरुमत प्रचार करते हुए अनेक प्रदेशों का भ्रमण किया। आप की अद्वितीय प्रतिभा से प्रभावित होकर आपके अनेक शिष्य बन गए। आप संगीत, शास्त्र और साहित्य की त्रिवेणी थे। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आप संस्कृत, अरबी–फारसी और उर्दू के विद्वान थे। आप उच्चकोटि के वैद्य और ज्योतिषी भी थे। ठाकुर जी की गहरी विद्वता और संस्कृत वाली प्रौढ़ता भाषा रचना में भी बनी रहती है। एक एक कथन तर्क की कसौटी पर कसा हुआ होता है।[189] आपने अधिकांश समय थोहा गांव में बिताया बाद में काशी चले गए। अध्ययन और प्रचार करते हुए हजूर साहिब से निजामाबाद और वहां से वापिस पुनः थोहा (दुख भंजनी) पंजाब आए। यहीं आपके प्रेमी सन्त सज्जन सिंह हरीपुर वाले सन् 1897 ई. की वैसाखी के समागम पर अपने साथ हरीपुर ले गए। वही जेठ वदी चौदस संवत् 1952 वि. 1895 ई. को आप गुरपुरी सिधारे ।[190] ठाकुर निहाल सिंह निर्मल सम्प्रदाय के उन प्रमुख विद्वान सन्तों में से हैं, जिन्होंने

गुरुवाणी की व्याख्या प्रचार और प्रसार में अपना अद्वितीय योगदान दिया है।

भाई सन्तोष सिंह

पंजाब के प्रसिद्ध 'गुरु प्रताप सूरज' जैसे महान ग्रन्थ के रचयिता भाई सन्तोष सिंह का हिन्दी साहित्येतिहास में महत्त्व पूर्ण स्थान है। आपका जन्म 1787 ई. को तरनतारन के निकट नूर दी सरा गांव में भाई देवा सिंह के घर हुआ ।[191] डा. जय भगवान गोयल ने इस तिथि को अनुमानित ही बताया है। संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज की भूमिका में वे लिखते है। जन्म की तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो सकी। हमारा अनुमान है कि उनका जन्म संवत् 1844 वि. (सन् 1737) के पहली सावन को हुआ था।[192] उनके परिवार का परिचय देते हुए उन्होंने बताया है कि भाई सन्तोष सिंह के पिता का नाम देवा सिंह और माता का नाम रजादी या राज देवी। वे जाति के छींबे थे और उनका गांव करीर था। [193] आपने आरम्भिक शिक्षा अमृतसर के ज्ञानी संत सिंह से अर्जित की बाद में काशी चले गए। लगभग 15 वर्ष उन्होंने ज्ञानी सन्त सिंह जी के चरणों में शिक्षा हेतु गुजारे। [194] काशी में रह कर आपने संस्कृत के ग्रन्थों का विधिवत अध्ययन किया । बाद में जब आप लौटे तो गुरुवाणी का प्रचार करते हुए बूडिया और पटियाला होते हुए कैथल के राज कवि हो गए।[195] वही आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की ।

आपके पिता विद्वान पुरुष थे। गुरुवाणी में उनका दृढ़ विश्वास था और निर्मल साधुओं से उनका अच्छा मेल मिलाप था। उन्होंने उन्हें पढ़ने की ओर प्रेरित किया और अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध भी किया। आप दर्शन ज्योतिष, राजनीति, शस्त्र विद्या, वैद्यक और संगीत के अच्छे विद्वान थे। आपकी रचनाओं को देखकर विदित होता है कि आपने महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। वेदान्त के आप धुरन्धर विद्वान थे। आपकी रचनाओ एवं व्याख्या पद्धति पर निर्मल विचारधारा का प्रबन्ध एवं पुष्ट प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। वेदान्त पर उनका इतना अधिकार था कि उन्होंने भक्ति, कर्मयोग आदि का बहुत ही विस्तार पूर्वक विवेचन किया और आदि ग्रन्थ, दशम ग्रन्थ और भाई गुरदास आदि

के उद्धरण देते हुए गुरुमत के दार्शनिक दृष्टिकोण का भी प्रतिपादन किया।[196] कुछ विद्वानों ने उन्हें निर्मला सन्त नहीं माना है।

... निर्मल साधु गृहस्थी नहीं होते। भाई सन्तोष सिंह जी के पांच बेटे थे। यदि किसी निर्मल लेखक ने लोभ कर लिया कि अमुक व्यक्ति अच्छा विद्वान था इसलिए वह अवश्य निर्मला था।[197]

..... भाई सन्तोष सिंह ने अपने आपको निर्मला कही नहीं लिखा लेकिन निर्मले विद्वानों ने उन्हें निर्मला माना हैं।[198] इनका गरब गंजनी टीका निर्मल परम्परा की सर्वश्रेण्ठ टीका पुस्तकों ने एक है। उन्होंने गुरुवाणी ओर वेदान्त दोनों के ही दार्शीनक त्थ्यों को उद्धृत किया है। निरमला शाखा के जपुजी के श्रेष्ठ टीकाकारों में से भाई सन्तोष सिंह और पं. तारा सिंह नरोत्तम आदि के नाम लिए जा सकते है। इन टीकों पर वेदान्त की पुट चढ़ी हुई है इन्होंने बुतपूजा और मूर्ति पूजा का खण्डन किया है।[199] आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से उस समय के कवियों से सब से अधिक ख्याति अर्जित की। आप के व्यक्तित्व में उदारता, नम्रता निर्भयता, त्याग सुन कर कैथल के राजा भाई उदय सिंह ने उन्हें अपने पास बुला लिया और इसके बाद जीवन के अन्तिम दिनों तक वही सुख से रहते रहे। कार्तिक की एकादश संवत् 1900 (सन् 1843) को कैथल में ही उनका देहान्त हुआ।[200] आप एक उच्च कोटि के दार्शनिक, इतिहासकार, गुरुवाणी के प्राचारक, सच्चे सिक्ख, श्रेष्ठ विचारक तथा आदर्श मानव थे।

टहल सिंह

श्रीमान सन्त टहल सिंह जी निर्मले राजा शूरसेन के वंश में से वासदेव और उनके पुत्र श्री कृष्ण जी यादववंशी छप्पन करोड़ी वंश में से सरदार हीरा सिंह जी जमादार पेंशनर के घर माघ संवत 1938 वि. को गांव सूजो (जिला जालंधर) में माता तोती जी की कोख से पैदा हुए।[201] आप बचपन से ही गुरुवाणी का पाठ करते और साधु सन्तों की संगति में रहते। संवत् 1957 में सन्तों की शरण में आकर साधु हुए। आप शरीर के उद्यमी थे। पहले सन्तों के पास रह कर सेवा करते रहे बाद में चारों धामों की यात्रा की।[202] आपने देशभक्ति और आराधना दोनों ही क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की।

..... इनके गुरु शेर सिंह (बीर तरुदर्पण गुरु विलास के करता) थे। बाबा बीर सिंह नौरंगाबादिए की परम्परा में होने के कारण आपका झुकाव देश भक्ति और सदाचार की और अधिक था।[203] उन्होंने जैतों के मोर्चे में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। कुछ समय कैद में भी रहे। संवत् 1981 में छटे जत्थे के हैडग्रन्थी बन कर जैतों मोर्चे में गए। 14 महीने सजा काट कर गुरुद्वारे में अखण्ड पाठ करके जत्थे सहित श्री अमृतसर वापिस आए। शिरोमणि कमेटी और निर्मल महामण्डल की तरफ से मानपत्र प्राप्त किए ।[204]

आपने अपनी साहित्य रचना से हिन्दी साहित्य जगत में भी अपनी अलग पहचान बनाई है। आपकी रचनाओं में रीति भक्ति का समन्वित रूप उपलब्ध है। चन्द्रकान्त बाली ने सन्त टहल सिंह को रीति साहित्य की अन्तिम कड़ी कहा है। रीति साहित्य की अन्तिम कड़ी सरदार टहल सिंह का परिचय विशेष उपलब्ध नहीं है। स्फुट पदों के अतिरिक्त बारामांह और अलंकार सागर सुधा आपकी श्रेष्ठ रचनाऐं है। पंजाब में बारामांह का प्रचलन विशेष रहा है। अलंकार ग्रन्थ में कवि टहल सिंह ने परिभाषा घटन के बाद उदाहरण गुरु गोबिन्द सिंह की प्रशस्ति में कहे है।[205] इनके फुटकल छन्द कबित सवैये है, जिनमें इन्होंने दार्शनिक अनुभूति को ही अधिक महत्त्व दिया है। शैली भले ही रीतिकालीन हो, मगर इनका स्वर आध्यात्मिक ही रहा।

.... कवित सवैये का मुख्य विषय जीवन मुक्ति की आकांक्षा एवं षड्र्दर्शन के मत का प्रचार है। वस्तुतः उनकी रचनाओं का मूल स्वर आध यात्मिक था परन्तु शैली की दृष्टि से रीतिपरक रहा।[206]

आपने सामाजिक कार्यो के प्रति भी अपने आपको समर्पित किया। आपने अनेक डेरे, तालाब, स्कूल और पुल आदि बनवाए,जो आज भी उनको याद को बराबर बनाए हुए है। अनेक धार्मिक पुस्तकें प्रकाशित करके मुफत बंटवाई। आपने सारा जीवन नाम स्मरण और परोपकार में ही व्यतीत किया। सारा जीवन जत सत संयम, भजन बन्दगी, नाम स्मरण, कथा, ज्ञान गुरसिक्खी प्रचार और गुरुवाणी की व्याख्या करते हुए सम्पूर्ण किया और उज्ज्वल मुख रह कर इस आसार संसार से 15 जून 1964 ई. तक

2 आषाढ़ 2021 वि. को डेरा डफरवाल में 83 वर्ष आयु भोग कर गुरुचरणों में निवास किया।[207]

आपने अपने जीवन काल में ऐसे काम किए जो वास्तव में एक सन्त करता है। गुरुवाणी और गुरुमत के प्रचार हेतु किए गए इन कृत्यों के कारण आपका नाम अमर हो गया।

निहाल सिंह कवीन्द्र

रीतिकाल में ही निहाल सिंह के नाम के अनेक कवि हुए है। भाई कान्ह सिंह नाभा ने महान कोश में निहाल सिंह नाम से चार कवियों का एक साथ परिचय दिया है। उनका जीवन परिवय देते हुए उन्होंने निहाल सिंह कवीन्द्र के विषय में लिखा है कि.....

...... रुबाजपुर (गांव) जिला अमृतसर में मल सिंह के घर माता कुईन देवी के उदर से संवत् 1887 (1830) ई. में इनका जन्म हुआ। छोटी अवस्था में ही माता का देहान्त हो जाने के कारण इनके नाना सुखा सिंह और नानी कुईरा ने अमृतसर में निहाल सिंह जी का पालन किया।[208] कुछ समय के बाद जब नाना–नानी भी स्वर्गवास हो गए तो निहाल सिंह ने गुरु की तलाश शुरु की, जो जीवन को सही दिशा दे सके। आप भाई लाल सिंह निर्मला के शिष्य बने और निर्मल पन्थ में दीक्षित हुए। आपने ज्ञानी राम सिंह जी से अनेक काव्यग्रन्थ पढ़े।[209]

तत्पश्चात् आपने लिखना शुरु किया। आपके लगभग 12 ग्रन्थ उपलब्ध है। जिनमें वेदान्ती बारामांह ,दोहरा भेदावली, कवीन्द्र कवितावली, छप्पय भेदावली, श्री महावाक्य ग्रन्थ इत्यादि प्रसिद्ध है। आपकी यह सम्पूर्ण रचनाएं कवीन्द्र प्रकाश नामक विशाल ग्रन्थ में संकलित है।

.... आपकी कविता ओजगुण पूर्ण और शास्त्रीय परम्परा के अनुकूल है। काव्यशास्त्र से सम्बंधित आपके ग्रन्थ इतने गूढ़ है कि बिना परम्परा के ज्ञाता गुरु के उनके अर्थ करना भी कठिन है।[210] आपकी काव्य रचना अत्यंत परिमार्जित कोटि की है। आपने अपनी रचनाओं में सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण, ऐतिहासिक तथ्यों का उदघाटन, पिंगल शास्त्र तथा काव्यगत कलापक्ष सम्बन्धी अनेक नई बातों का समावेश किया है। आपके यह ग्रन्थ आपकी बहुमुखी प्रतिभा के द्योतक है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन

कलासिक साहित्य में आपकी रचनाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका यह साहित्य निश्चय ही बहुआयामीय है।

..... इन ग्रन्थों से निर्मल पन्थ को समझने के लिए धर्म शास्त्र के विद्यार्थियों को मार्ग दर्शन हो सकता है। पिंगल शास्त्र में रुचि रखने वाले विद्वानों को भी इन पुस्तकों से तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिलेगी। सिक्ख राज्य के समय में पंजाब के इतिहास की कभी पूरी करने और हिन्दी साहित्य के विकास में पंजाबियों के योगदान के लिए सचमच बहुत ही श्रद्धा से कवीन्द्र जी के आगे सिर झुकाना पड़ता है।[211]

आप अत्यन्त सरल प्रकृति के थे। सच्चे प्रभु भक्त के रूप में आपने अपना समस्त तन मन धन प्रभु के अर्पण कर दिया। गुरु भक्ति करते हुए ही आप संवत् 1943 (सन् 1886) को स्वर्ग सिधार गए ... ।[212] निर्मल सम्प्रदाय एवं हिन्दी साहित्येतिहास के लिए आपकी रचनाएं अमूल्य निधि है।

पं. नारायण सिंह (निर्मला)

.... आपका जन्म कार्तिक शुदि दूज जिसे भाई दूज अर्थात् टिक्का कहते है विक्रमी 1907 को पंजाब की प्रसिद्ध नगरी पवित्र तीर्थ श्री अमृतसर में भाई प्रेम सिंह जी ज्ञानी (जो श्रीहरमन्दिर साहिब के पुजारी थे) माता कीरत कौर के घर हुआ।[213] मगर महन्त दयाल सिंह ने आपका जन्म स्थान कांगड़ा (जिला) में हुआ मानते हैं आपका जन्म जिला कांगड़ा में हुआ। आपके पिता जी धुमाते इन्हें साथ ले आए ।[214]

इनके जन्म से पूर्व इनके पिता अमृतसर में रहते थे। यहां आकर नारायण सिंह साधुओं की संगति में और गुरुवाणी व्याख्या में अधिक समय व्यतीत करते थे। यहां रह कर आपने अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। बाद में आप तरनतारन आ गए और यही टिक गए।

कुछ ज्योतिष विद्या का ज्ञान आपको था। साधु सन्तों की संगति का शौक भी था। तरनतारन आकर निर्मला सन्त हजूरा सिंह जी के चरणों में ऐसे टिके कि उन्हीं के लिए हो गए।[215] आपने डेरे की खूब सेवा की। आपने आपनी ज्योतिष विद्या से भी खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की। निर्मल सम्प्रदाय

के सिद्धान्तों के अनुरूप गुरुवाणी का प्रचार प्रसार भी आपने खूब किया।

..... सन्त हजूरा सिंह जी की संगति में आपने कविता का अभ्यास भी किया और डेरे की सेवा भी मन लगा कर की। जब 1891 में सन्त हजूरा सिंह जी का अन्तिम समय आया तो डेरे की महन्ती आपको सौंप दी गई।[216] आपने डेरे में महन्त के पद पर रहते हुए अनेक पुस्तकों की रचना की। उनमें से केवल 'पचीसी राजनीति' ही प्रकाशित हो सकी। आपके अनेक शिष्य हुए। मगर आपने अपने सर्वप्रिय शिष्य मलूकदास को ही अपना उत्तशधिकारी बनाया। जिन्हें अपने अन्तिम दिनों में डेरा सौंप कर आप 12 फागुण 1991 को स्वर्ग सिधारे।[217] आप एक अच्छे सन्त होने के साथ–साथ एक अच्छे कवि भी थे। आपकी नानक अष्टक, गुरु नानक पंचक, विनय पत्रिका आदि पुस्तकें (पाण्डुलिपियां) उपलब्ध होती है।

गिआनी गिआन सिंह

सिक्ख इतिहास लेखकों में गिआनी गिआन सिंह का नाम अग्रणीय है। इन्होंने 'तवारीख गुरु खालसा', 'पन्थ प्रकाश' आदि ग्रन्थों की रचना करके सिक्ख पन्थ सम्बन्धी अनेक गुह्य तथ्यों की स्पष्ट किया है। आपका जन्म 5 वैसाख 1879 विक्रमी वैसाख शुदि (1822ई.) को परगना सुनाम रियासत पटियाला के ग्राम लोंगोवाल में हुआ। इनके पिता का नाम भाग सिंह और माता का नाम देश था।[218] आपकी माता जी धार्मिक विचारों वाली और सूझवान स्त्री थी। अतः गिआनी जी को सही दिशा निदेश देने में उनकी माता का बहुत बड़ा हाथ था। आप भाई मनी सिंह जी की पांचवी पीढ़ी में से थे[219] और भाई साहिब की शहादत के बारे में बताते हुए अपनी तवारीख गुरु खालसा में लिखते है। इस कथन को लिखते हुए मेरी कलम और छाती इस लिए अधिक तड़पती है कि यह मेरे बाप का दादा था ....।[220]

आपके माता पिता क्योंकि गुरुचरणों से प्रेम करते थे। अतः उन्होंने गुरुमत की अच्छी शिक्षा से अपने बच्चों को बचपन में ही अवगत करा दिया था। घर के आर्थिक संकट ने आपको नौकरी के लिए मजबूर किया। आप कुछ समय महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में भी रहे और पुनः फौज की नौकरी भी की। इस प्रकार आपको घूमने का अच्छा अवसर मिला।

गिआनी गिआन सिंह जी के जीवन पर इन यात्राओं का बहुत प्रभाव पड़ा। आप जहां जाते वहां के ऐतिहासिक गुरुद्वारों के दर्शन करते। उस स्थान से सम्बंधित सिक्ख परम्पराओं का संकलन करते । सब से बड़ा प्रभाव आप पर यह पड़ा कि आप निर्मल सन्तों की संगति करके निर्मले ही वन गए और अपना विद्या दाता गुरु पं. तारा सिंह नरोत्तम जी को माना।[221] आपने उन्हीं की प्रेरणा से गुरुवाणी की व्याख्या और इतिहास ग्रन्थ रचने का संकल्प लिया। ज्ञानी जी ने 24 के लगभग ग्रन्थ रचे जिनमें से अधि ाकांश प्रकाशित हो चुके है। पंथ प्रकाश और 'तवारीख गुरु खालसा' अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तकें है। इनमें आपने खालसा पंथ और उसकी विभिन्न शाखाओं और सम्प्रदाओं का उद्‌भव और विकास अत्यन्त खोज पूर्ण ढंग से वर्णित किया है। पंथ प्रकाश में उन्होंने सिक्खों की अलग–अलग सम्प्रदाओं का वर्णन किया है। उन्होंने किसी की निन्दा नहीं अपितु प्रत्येक का सम्मान किया है। और उन्हें सिक्ख पंथ के वृक्ष से निकलने वाले अलग–अलग प्रस्फुटन बताया है। .... उनके अनुसार प्रत्येक सिक्ख सम्प्रदाय सिक्ख गुरुओं और गुरु ग्रन्थ साहिब से प्रकाश प्राप्त करता है।[222] आपकी रचनाओं से आपकी भ्रमण प्रधान रुचि और ऐतिहासिक सूझबूझ का परिचय सहज ही मिल जाता है। आपने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों में सिक्ख इतिहास के अप्रकाशित तथ्यों को प्रकाशित करने की खोज पूर्ण प्रकृति का परिचय दिया है। आपकी भाषा परिमार्जित और ब्रज प्रधान है। इनकी प्रसिद्धि आरम्भिक सिक्ख इतिहासकारों की पीढ़ी में से होने के कारण अधिक है।[223] अपने जीवन के अन्तिम दिन अत्यन्त कष्टदायक बिताने पड़े। आर्थिक संकट तथा लोगों की ईर्ष्या ने उन्हें बहुत सताया । यह ठीक है कि गिआनी जी सांसारिक मान सम्मान के भूखे नहीं थे लेकिन पंथ के लिए अपनी मेहनत के प्रति अपने पंथ के बनावटी नेताओं के व्यवहार से नाखुश और दु:खी थे। उनकी पाण्डुलिपियां दबा ली गई और उनकी मेहनत का फल लोगों तक नहीं पहुंचने दिया। [224] सिक्ख पंथ की सेवा करते हुए अपनी अथक लेखनी के स्वामी संतोष और संयम के बल पर अपने जीवन को संघर्षमयी पथ को पार कर लगभग सौ वर्ष की आयु बिता कर और सिक्ख सेवकों की सेवा करते हुए 24 सितंबर 1921 को स्वर्ग सिध ारे और बहुत सी महान रचनाएं पीछे छोड़ गए जो सिक्ख इतिहास की

नींव की दृढ़ करती है।[225] एक कवि के रूप में भी गिआनी जी का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपनी रचना पंथ प्रकाश में उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का अच्छा प्रदर्शन किया है।

उक्त निर्मल सन्तों के अतिरिक्त और अनेक ऐसे हिन्दी, संस्कृत और पंजाबी के विद्वान हुए है, जिन्होंने अपनी प्रतिभा और लेखनी से आश्चर्य चकित किया है। विस्तार के भय से सभी का परिचय यहा नहीं दिया जा सका। उनमें से प्रमुख निर्मल सन्तों के नाम है। पं. उधव सिंह (श्री महन्त) (करता आश्रम धर्म रहस्य और अमाव रहस्यक), आत्म देव सिंह लाहौर करता (अमेदा खण्ड चन्द्रमा), ईशर सिंह श्री महन्त करता (वाहिगुरु मन्त्रार्थ), हरा सिंह (गुरु सिद्धान्त पारिजात), कौर सिंह (गुरु कौमदी), गुरदित सिंह (गुरु नानक अष्टक), तारा सिंह, (मुमुक्षु बोधन प्रकाश), निहाल सिंह ठाकुर (खालसा शतक), निहाल सिंह थोहा (जपु गूढार्थ दीपिका), प्रेम सिंह स्वामी श्री वाहिगुरु मन्त्र स्तोत्र, आदि ।

साधु संगत सिंह	(ज्ञान प्रकाश–मत संग्रह)
साधू गुरुदित्त सिंह	(नैष्क्रमय सिद्धि की टीका)
कर्म सिंह	(हरि अदृष्ट सतसई)
गोबिन्द सिंह	(इतिहास गुरु खालसा)
अर्जुन सिंह मुनि	(श्री गुरु ग्रन्थ प्रकाश टीका)
महन्त गणेशा सिंह	(अध्यात्म प्रकाश)

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इनकी रचित और भी अनेक पुस्तकें उपलब्ध है। लेकिन यहां उनकी लब्ध प्रतिष्ठ कृति का नाम ही अंकित किया गया है। इन ग्रंथ कर्त्ताओं के अतिरिक्त बहुत से ऐसे निर्मल सन्त भी हुए है, जिनकी कृतियों के बारे में अभी खोज करना बाकी है तथा उनका वर्णन करना भी अनिवार्य है, जो आज भी गुरुवाणी की व्याख्या के माध्यम से निर्मल पंथ को उन्नति की ओर ले जा रहें हैं। इनमें धर्म धुजा पटियाला के प्रथम श्री महन्त महताब सिंह जी स्वर्गीय श्री महन्त स. सुच्चा सिंह, श्री महन्त गुरदीप सिंह केसरी बनारस, श्री महन्त बलबीर सिंह शास्त्री, श्री महन्त निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखल), महन्त इन्द्रजीत सिंह चेतन मठ काशी तथा पं. ज्ञानदेव सिंह श्री महन्त, निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल का नाम लिया जा सकता है ।

श्री महन्त श्रीमान पण्डित सुच्चा सिंह जी पिंडीघेब वाले

श्रीमान पण्डित सुच्चा सिंह जी महाराज का गांव भिंडर कलां, जिला फिरोजपुर में जन्म सन् 1886 में हुआ। गुरु का नाम स्वामी भगत सिंह था। सन् 1934 से 1986 तक 51 वर्ष श्री महन्त रहे। कुल आयु 100 वर्ष थी।

श्री महन्त श्रीमान पण्डित बलवीर सिंह जी शास्त्री पटने वाले

श्रीमान पण्डित बलवीर सिंह जी का गांव मुक्तसर शहर था। गुरु का नाम पण्डित हरदेव सिंह जी था। सन् 1925 में जन्म हुआ। सन् 1986 से 1993 तक 7 वर्ष अष्ट महीने श्री महन्त रहे। कुल आयु 68 वर्ष थी।

श्री महन्त श्रीमान पण्डित ज्ञानदेव सिंह जी महाराज (वर्तमान)

श्रीमान पण्डित ज्ञानदेव सिंह जी महाराज का गांव बहिलोलपुर जिला मेरठ (उत्तर प्रदेश) है। गुरु का नाम महामण्डलेश्वर श्री 108 स्वामी लाल सिंह (निर्मल स्वामी) जी महाराज है।

आप जी के नेतृत्व में श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा एवम् निर्मल भेख खट् दर्शन–साधु समाज में महान सत्कार प्राप्त कर रहा है। निर्मल भेख के लिए यह गौरव की बात है कि श्री निर्मल पंचायती अखाड़े के वर्तमान श्री महन्त तप–तेज, प्रताप वाले, तपोनिधि, जितेन्द्रीय, विरक्त, शिरोमणि महापुरुष हैं जिनका भारत के खट् दर्शन साधु समाज में परम सत्कार और सर्वोपरि स्थान है । आपकी अध्यक्षता में निर्मल भेख का भविष्य उज्ज्वल है।

पूज्य श्री महन्त जी महाराज के नेतृत्व में श्री निर्मल पंचायती अखाड़े के सैक्रेटरी श्रीमान महन्त नाजर सिंह जी तथा श्रीमान महन्त मित्र प्रकाश सिंह जी कोठारी बड़ी लगन, उत्साह और परिश्रम से अखाड़े का कार्यभार संभाल रहे है जिससे अखाड़े की प्रतिदिन उन्नति हो रही है।

19. रामचंन्द्र तिवारी, मध्युगीन काव्यसाधना (गोरखपुर : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1962), पृष्ठ 21।
20. मिश्रबन्धु,मिश्रबन्धु विनोद (लखनऊ : गंगा पुस्तक माला,1972),पृष्ठ 101 ।
21. मोतीसिंह,निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (वाराणसी :नागरी प्रचारिणी सभा,1962),पृष्ठ 77 ।
22. करतारसिंह सूरी,गुरू अर्जुनदेव ते सतं दादूदयाल(पंजाबी)चण्डीगढ़ : पंजाबी लेखक सदन,1969),पृष्ठ 136 ।
23. मिश्रबन्धु,मिश्रबन्धु विनोद, (लखनऊ : गंगा पुस्तक माला,1972) पृष्ठ 117 ।
24. गुरनामकौर बेदी,गुरूग्रन्थ साहिब विच दर्ज कबीर वाणी दा आलोचनात्मक अध्ययन (अमृतसर : गुरूनानकदेव यूनिवर्सिटी,1987),पृष्ठ 55' ।
25. मोतीसिंह,निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा,1962), पृष्ठ 29 ।
26. शिवसहाय पाठक,हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन(नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन,1978),पृष्ठ 54 ।
27. हजारीप्रसाद द्विवेदी,मध्यकालीन धर्मसाधना(इलाहाबाद : प्रगतिप्रकाशन,1978),पृष्ठ 770 ।
28. एम–जार्ज, भक्ति आन्दोलन और साहित्य (आगरा : प्रगति प्रकाशन,1978),पृष्ठ 190 ।
29. परशुराम चतुर्वेदी,उत्तरी भारत की सन्त परम्परा (इलाहाबाद : भारतीय भण्डार,सवंत् 2021,1964),पृष्ठ 204 ।
30. राजदेवसिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली : आयु बुक डिपो,1974),। पृष्ठ 35 ।
31. रामचन्द्र शुकल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (वाराणसी : नागरी प्रैचारिणीसभा 1978),। पृष्ठ 35 ।
32. हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर(दिल्ली:राजकमल प्रकाशन,1973),––पृष्ठ 137 ।
33. गणपतिचन्द्र गुप्त,हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन,1965), पृष्ठ 204 ।
34. गुरू गोबिन्द सिंह, विचित्र नाटक, सम्पा. बी.एस. मेघावालिया (होशियारपुर: पीली कोठी, 1973), पृष्ठ 93–94।
35. वही 0 । पृष्ठ – 90
36. श्री कृष्ण : गीता, गोरखपुर : गीता प्रैस संवत् 2013, पुष्ठ 82।
37. राजदेवसिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली : आयु बुक डिपो,1974), पृष्ठ 1
38. चामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश (दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास–1984) पृष्ठ 1353 ।
39. धारेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश–भाग–1 (वाराणसी ज्ञान मण्डल लि0, संवत् 2020, पृष्ठ 854।

60. ए. सी0 बैनर्जी, दि खालसा राज, (नई दिल्ली : अभिनव पब्लिकेशनज्, 1985) पृष्ठ 27।

61. हरबंन्स सिंह अनुवादक अतर सिंह गुरु गोबिन्द सिंह (चंण्डीगड : गुरू गोबिन्द सिंह, फाऊण्डेशन, 1966) पृष्ठ 67 ।

62. वही 0, पृष्ठ 67 ।

63. हरबंन्स सिंह अनुवादक अतर सिंह गुरु गोबिन्द सिंह (चंण्डीगड : गुरू गोबिन्द सिंह, फाऊण्डेशन, 1966) पृष्ठ 67–68 ।

64. सुरिन्द्र सिंह जौहर, गुरु गोबिन्द सिंह जीवनी, अनु0 मोहन सपरा, जालंधर, एशियन पब्लिशर्ज, 1969) पृष्ठ 105 ।

65. भगत लछमण सिंह, एशार्ट सकैच आफ लाइफ एण्ड वर्क आफ गुरू गोबिन्द सिंह पटिआला : भाषा–विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 37 ।

66. अनु0इन्दु–भूषण बैनर्जी,ए–आर–मुखर्जी,एवोल्युशन आफ खालसा, (कलकत्ता :– 1962), पृष्ठ 119

67. रामप्रकाश,गुरुमुखी लिपि में पंजाब का हिन्दी कृष्ण काव्य,जागृति,सम्पा0 प्रेम विज (चण्ड़ीगढ़ : लोक सम्पर्क विभाग), अक्तूबर–नवंबर–1983, पृष्ठ 28 ।

68. ज्ञानी ज्ञानसिंह,पन्थ प्रकाश (पटियाला : भाषा विभाग,पंजाब,1970), पृष्ठ 1246

69. ज्ञानी ज्ञानसिंह, पन्थ प्रकाश(पटियाला : भाषा विभाग पंजाब,1970), पृष्ठ 1250

70. पंजाबी कोश,तीसरा भाग,(पटियाला : भाषा विभाग पंजाब,1967), पृष्ठ 677 ।

71. रमाशंकर शुक्ल रसाल, भाषा शब्द कोश(प्रयाग :रामनारायण माधव वेनी प्रसाद,1936), पृष्ठ 904

72. राजबली पाण्डेय,हिन्दू धर्म कोश(लखनऊ : उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी समितिप्रयोग,1978), पृष्ठ 370

73. उद्दधृत : गुरुग्रन्थ विचारकोश,सम्पा0प्यारासिंह पद्म(पटियाला : पंजाबी यूनि01969), पृष्ठ 367 ।

74. श्यामसुन्दरदास : हिन्दी शब्द सागर(पंचम भाग) (वाराणसी : का0ना0प्र0सभा 1968), पृष्ठ 2 ।

75. परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत,की सन्त परम्परा (इलाहाबाद : भारती भण्डार, सवंत् 2021 । पृष्ठ 467 ।

76. लाजवन्ती भटनागर : धर्मसम्प्रदाय और मीरा का भक्ति भाव(दिल्ली वाणी प्रकाशन : 1980), पृष्ठ 16 ।

77. वही0, पृठ 17 ।

78. मानसिंह निरंकारी,सिक्ख धर्म ते सिक्खी,(अमृतसर : लोक साहित्य प्रकाशन,1981), पृष्ठ 37 ।

79. जेम्ज् हेस्टिंगज्, इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स (न्यूयार्क,टी एण्ड टी कलार्क–1967), पृष्ठ 375 ।

99. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्थ प्रकाश, (पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब, 1970), पृष्ठ 1256

100. वही. पृष्ठ 1257

101. इन्साईकलोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, सम्पा. जेम्स हेस्टिंग्ज खण्ड–9 (टी एण्ड, टी क्लाक 1967), पृष्ठ 378

102. महन्त गणेशा सिंह, निरमल भूषण, (अमृतसर : गली बाग वाली संवत् 1994) पृष्ठ 29

103. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्थ प्रकाश, (पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब, 1970), पृष्ठ 1247

104. गुलाब सिंह, मोक्षपन्थ प्रकाश (कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977) पृष्ठ 609–610

105. खालसा इन कान्टैक्लटे आफ द भक्ति मूवमेंट : राजा भुपिंद्र सिंह सिक्ख रिव्यू, सम्पा. मोहन सिंह कालरा, खण्ड–16, कलकत्ता लिण्डे स्ट्रीट, फरवरी मार्च 1967, पृष्ठ 68

106. खालसा इन कान्टैक्लटे आफ द भक्ति मूवमेंट : राजा भुपिंद्र सिंह सिक्ख रिव्यू, सम्पा. मोहन सिंह कालरा, खण्ड–16, कलकत्ता लिण्डे स्ट्रीट, फरवरी मार्च 1967, पृष्ठ 65

107. महन्त गणेशा सिंह, निरमल भूषण, (अमृतसर : गली बाग वाली), सम्वत् 1994), पृष्ठ 10

108. महन्त गणेशा सिंह, निरमल भूषण, (अमृतसर : गली बाग वाली), सम्वत् 1994), पृष्ठ 10

109. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्थ प्रकाश, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970) पृष्ठ 1258

110. महन्त गणेशा सिंह, निरमल भूषण, (अमृतसर : गली बाग वाली), सम्वत् 1994), पृष्ठ 6, निवेदन ।

111. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्थ प्रकाश (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970) पृष्ठ 1258

112. वही. पृष्ठ 1258

113. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, सम्पा. जेम्स हेस्टिंग्ज् खण्ड–9 (न्यूयार्क : टी एण्ड टी क्लार्क 1967), पृष्ठ 376

114. महन्त गणेशा सिंह, निरमल भूषण, (अमृतसर : गली बाग वाली), सम्वत् 1994), पृष्ठ 10 निवेदन।

115. जगदीश सहाय श्रीवासतव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका (इलाहाबाद : किताब महल, 1978) पृष्ठ 14

116. अर्चना, गुरु गोबिन्द सिंह के विचित्र नाटक का साहित्येतिहासिक अनुशीलन (अमृतसर : गु. ना. देव यूनिवर्सिटी 1980–81) अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृष्ठ 23

152. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 116
153. उद्धृत बलवीर सिंह वियोगी, श्री निर्मल पंचायती अखाड़े दा सिरजन ते उदेश, (निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर गु.न. देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 46–48
154. उद्धृत बलवीर सिंह वियोगी, श्री निर्मल पंचायती अखाड़े दा सिरजन ते उदेश, (निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर गु.न. देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 46–48
155. उद्धृत : राजेद्र सिंह, शास्त्री निर्मल डेरे इतिहास ते पबन्ध निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी) पृष्ठ 66–67
156. ज्ञान सिंह ज्ञानी, निर्मल पंथ प्रदीपका (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा 1962), पृष्ठ 69
157. राय जसबीर सिंह, निर्मल भेख दा आरम्भ, निर्मल संम्प्रदाय, सम्पा प्रीतम सिंह (अमृतसर : गु. ना. देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 35
158. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, 1994), पृष्ठ 32–33
159. राजेन्द्र सिंह शास्त्री, निर्मल डेरे इतिहास ते प्रबन्ध निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह, (अमृतसर गु. ना. देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 60
160. वही पृष्ठ 64–65
161. राये जसवीर सिंह, निर्मल भेख दा आरम्भ निर्मल सम्प्रदाय सम्पा प्रीतम सिंह (अमृतसर गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 36
162. उद्धृत : राजेन्द्र सिंह शास्त्री निर्मल डेरे इतिहास ते प्रबन्ध, निर्मल सम्प्रदाय : प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव युनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 65–66
163. उद्धृत : अर्जुन सिंह मुनि, संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा 1974), पृष्ठ 52–54
164. सुरिन्द्र सिंह शेरगिल प्राचीन पंजाबी वारतक निर्मलयां दी देन । खोज पत्रिका सम्पा. रत्न सिंह जख्मी (पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंकश मार्च 1983) पृष्ठ 374
165. महान कोश : कान्ह सिंह नाभा (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1960) पृष्ठ 317
166. गुलाब सिंह, भावरसामृत, ज्ञान त्रिवेणी सम्पा. प्यारा सिंह पदम (पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब, 1969) पृष्ठ 114
167. गुलाब सिंह मोक्षपन्थ प्रकाश (कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977) पृष्ठ 6
168. वही. पृष्ठ 612
169. उद्धृत : नवरत्न कपूर, गुलाब सिंह निर्मल व्यक्तित्व और कृतित्व, साहित्य मार्ग सम्पा. मनमोहन सहगल, (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंक 12, 1981), पृष्ठ 134
170. सत्येन्द्र : ब्रजसाहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : भारती भंडार, संवत 2024) पृष्ठ 290

134. ज्ञानी सिंह गिज्ञानी, तवरीख गुरु खालसा–भाग–1 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 798

135. ज्ञानी ज्ञान सिंह पन्थ प्रकाश (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 1250

136. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मंदिर 1963), पृष्ठ 163

137. जय भगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य (दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार 1970), पृष्ठ 17

138. सोहन सिंह सीतल, मनुखता दे गुरु (तीजा भाग) लुधियाना : सीतल पुस्तक भण्डार, 1966), पृष्ठ 72

139. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्थ प्रकाश (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब 1970) पृष्ठ 1250

140. कान्ह सिंह नाभा, महान कोश, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1960) पृष्ठ 5341

141. ज्ञान सिंह ज्ञानी तवारीख गुरु खालसा (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 798

142. सुदर्शन सिंह मजीठिया, सन्त साहित्य (दिल्ली : रूप कमल प्रकाशन, 1962), पृष्ठ 82

143. चन्द्रकान्त वाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962), पृष्ठ 167

144. हिन्दी शब्द सागर–पंचम भाग सम्पाश्यामसुन्दर दास (वाराणसी : काशी ना. प्र. सभा 1968), पृष्ठ

145. सोहन सिंह सीतल, मनुखता दे गुरु तीजा भाग (लुधियाना : सीतल पुस्तक भण्डार 1966), पृष्ठ 231

146. अर्जुन सिंह मुनि, संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा 1974), पृष्ठ 23–24

147. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली गली, संवत 1994), पृष्ठ 105

148. वही., पृष्ठ 112–113

149. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली संवत् 1994) पृष्ठ 112–113

150. बलवीर सिंह वियोगी निरमल पंचायती अखाड़े दा सिरजन ते उदेश – निर्मल सम्प्रदाय सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर – गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 45

151. अर्जुन सिंह मुनि संक्षिप्त निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा 1974), पृष्ठ 86

171. गुलाब सिंह, मोक्षपंथ प्रकाश (कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977) पृष्ठ 283

172. नवरत्न कपूर, गुलाब सिंह निर्मला व्यक्तित्व और कृतित्व साहित्य मार्ग सम्पा. मनमोहन सहगल (पटियाला : पंजाबी विश्वविद्यालय अंक 12, 1981), पृष्ठ 136

173. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 122

174. हरजीत कौर मदान, पं. तारा सिंह नरोत्तम गुरुवाणी मूल्यांकन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी 1981) पृष्ठ 363

175. सुरिन्द्र सिंह शेरगिल, पं तारा सिंह नरोत्तम जीवन ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1985), पृष्ठ 4

176. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 124–125

177. अर्जुन सिंह मुनि : संक्षिप्त इतिहास, निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखंल : निर्मल पंचायती अखाड़ा 1974), पृष्ठ 92

178. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 126

179. दयाल सिंह, निर्मल पंथ दर्शन (चतुर्थ खण्ड), (नई दिल्ली : जीवन निवास महावीर नगर अनुपलब्ध), पृष्ठ 106

180. महान कोश, कान्ह सिंह नाभा, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब–1960) पृष्ठ 137

181. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 142

182. वही. पृष्ठ 142

183. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 144

184. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 144

185. अर्जुन सिंह मुनि : संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा सन् 1974) पृष्ठ 99

186. महान कोश, कान्ह सिंह नाभा : (पटियाला भाषा विभाग पंजाब–1960), पृष्ठ 704

187. ईशर सिंह नारा, कुछ अनगोले निर्मल सन्त, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1981), पृष्ठ 432

188. ईशर सिंह नारा, कुछ अनगोले निर्मल सन्त निर्मल सम्प्रदाय सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1981), पृष्ठ 433

189. श्री गुरु गोबिन्द सिंह अभिनन्दन, सम्पा देविन्द्र सिंह विद्यार्थी (अमृतसर : गु. ना. देव यूनिवर्सिटी 1983), पृष्ठ 333

190. ईशर सिंह नारा, कुछ अनगोले निर्मल सन्त निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा प्रीतम सिंह, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी 1981) पृष्ठ 439

212. ईशर सिंह तांघ, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी तथा रीतिकाव्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज सन् अनुपलब्ध) पृष्ठ 343

213. हरदेव सिंह, नारायण हरि उपदेश (अमृतसर : जवा हरसिंह कृपाल सिंह एण्ड कं. 1982), पृष्ठ 29

214. दयाल सिंह (महन्त) निर्मल पन्थ दर्शन (नई दिल्ली : महावीर नगर, सन् अनुपलब्ध), पृष्ठ 516

215. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, श्री गुरु गोबिन्द सिंह अभिनन्दन (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1983) पृष्ठ 444

216. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, श्री गुरु गोबिन्द सिंह अभिनन्दन (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1983) पृष्ठ 444

217. दयाल सिंह (महन्त) निर्मल पन्थ दर्शन (नई दिल्ली : महावीर नगर, सन् अनुपलब्ध), पृष्ठ 516

218. भगत सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह (पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1975) पृष्ठ 6

219. वही. पृष्ठ 3

220. वही. पृष्ठ 3

221. किरपाल सिंह ज्ञानी ज्ञान सिंह दी हतिहास रचना, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा. प्रीतम सिंह (अमृतसर : गु. ना. देव वि. वि. 1968) पृष्ठ 380

222. भगत सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह (पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1975) पृष्ठ 33

223. देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, श्री गुरु गोबिन्द सिंह अभिनन्दन (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1983) पृष्ठ 214

224. भगत सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह (पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1975) पृष्ठ 18

225. भगत सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह (पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1975) पृष्ठ 18

Donation 1996-97

Dr. Amarjit singh Marwah	1,25000
M. S. Kohli	903
R. K. Enterprises	200
Onkar Motors	360
Janak Raj Vijay Kumar	240
Jawahar Milk Seller	40
Ashok Goyal	50
Bharat Bhushan	50
Bhagga Ram	200
Ram Lal Ahuja YamunaNgr.	5000
Dr. Suman Mittal	500
Puran Singh	50
Mohinder Singh	50
Neelam Enterprises	500
Vijay Kumar Mittal	500
Ashok Kumar Bargari	100
Varesh Goyal	100
Anjani Sharma	200
J, S. Mann Fdk.	100
S. K. Kochher Fdk.	100
Ram Pal Arora Fdk	100
Jagdev Singh Fdk.	100
Jai Ram Fdk.	100
Sri. Krishan Singh	502
Baldev Singh Fdk.	100
K. C. Bhatnagar Fdk.	100
Joginder Singh	50
H. S. Kohli	200
Bharat Iron Store	645
Metro Electronics Delhi	200
JaiPaul Garg	1100
Naresh Kumar Kansal	1100
Tejinder Singh Saggu	.51
Jai Jagdamba Ice Factory	201
Kissan cold Store	201
Manchanda Ice Factory	201
R. S. Rana	101
Niranjan Singh Di Hatti	200
Makkar Sweet House	101
Chamal Lal	101
Surya Mfg. Co.	101
Satish Kumar Aggarwal	100
Prem Chand Jain	101
Prem Singh Amar Singh	101
Dharm Paul	101
Guide Traiders	51
Satish Sachdeva	1100
C/o Bharat Ice Factory	
Surinder Singh	201
Dharmveer	50
Pt. Jagdish Rai	50
Bawa Ice factory	101
Mrs. Nirmal Sachdeva	500
Mrs. Anju Sachdeva	100
Mrs. Ceyloni Sachdeva	200
Chowdary Cold Store	
H. S. Kalsi Engg works	165
Shiv Glass Store	14
Lucky Building Material	576
Pushap Confectioners	500
Gupat Dan	1100
Corpal Family Delhi	2100
Ved Raj Ji	500
Laxmi Tent House	500
Keshav Sewing Centre	110
Asa Nand	200
Tilakraj	200
Sanjeev Garg	100
Prem Kumari	200
Kaur Chand	50
Guru Nanak Bricks Co.	100
Harbans lal Sharma	101
Bhushan Mittal	101
Principal Bhardwaj High School	101
Krishan Kumar	50
Principal G. N.	
Mission High School	101
Ved Parkash	100
Staff Govt. Pry School ward 10	50
Naresh Kumar Shadi Ram	101
Jagdish Kai Goyal	100
Public Hospital	173
Kalia composing House Jal.	110
Hardwar Singh Adv.	200
Annapurna farm Public	
Charitable trust, Bombay	5000
Gela Ram Prem Kumar	1100
Bharat Iron Store	95
Savitri Devi Chawla	100
Dhoda house	2100
P. K. Anand Delhi	1000
Gian India	900
Raj Techno coloured Pvt Ltd.	2100
Std. K. V. P. S.	2310
Malkiat Singh Fdk.	100
Gurcharn Singh	50
Pyra Singh	50
Jasmail Singh	50
Jaswinder Singh	50
Corpal Family belu	21100
Krishan Beir	5000
Mona Lottery	200
Jai Durga Lottery	100
Monga Medicose	100
Davinder Paul Rabha Ram	500
Vishwa Nath Sudhir Kumar	500
Tehal Dass Naresh Kumar	5000
Saraswati Ext. Pvt. Ltd.	5100
Balbir Singh	350

Ashok Goel	100
Surinder Singh	100
Naresh Yadav	100
Bharat Bhushan	100
Dr. Dev Raj	500
Kironmal Mittal	500
Prof. Rajpaul Singh	100
Dr. Dharm Paul Chawla	500
Friends service Station	200
Surinder Kumar	100
Oasis Computers	100
Parveen Gupta	100
Phool Chand	100
Jagdish Sharma	100
Tara Singh Atma Singh	200
Kataria Opticals	1000
Uttar Kashetoria Arora Bans Sangh KKp.	363

Donation 1997-98

Om Parkash Mogewale	1100
Ganga Ram	1100
Narinder Gupta	500
Lalit Gupta	500
Ram Pyari	500
Gurcharn Kaur	1100
Bhushan Mittal	200
A. R. Refrigrators Fazlika	1000
Abhishek	2100
Gupat Dan	1500
Dr. Om Parkash	3100
Sonu	1100
Gupat Dan	7100
Naresh	1100
Abhinav	1000
Nirmala Devi	2500
Surjit Singh	2500
Dr. Ramesh Gupta	1000
M. S. Kohli Delhi	500
Hargobind Rai Garg	500
Bharat Bhushan Singhal	500
Laxmi Narayan	1100
Yadwinder Singh	1000
Student KVPs	2000
Staff KVPs	500
A. K. Mangal	1100
Ram Saroop Arora	300
Ved Raj	300
Hari Krishan	100
DR. R. C. Gupta	3100
Rakesh Kumar	1100
Kiran Maliniud	500

Donation 1998-99

Dr. Amarjit Singh Marwaha	60,000
DR. Ramesh Chander Garg	3000
Gupat Dan	2413
Lalit	1300
Yash Paul Gupta	1500
AmarNath Radha Rani Charitable House	600
Surinder mal Jagan Nath	400
Krishan Sachdeva	500
Mohinder Pal Jindal	200
Rajivir Parshad	100
Tulsi Ram	100
Sharma Ji	100
Mehar Chand	50
Jain family	200

GURU GOBIND SINGH TRUST (REGD.), KOTKAPURA.

INCOME & EXPENDITURE ACCOUNT FOR THE YEAR ENDED 31ST. MARCH 1999

LIABILITIES	AMOUNT	ASSETS	AMOUNT
TO LOSS FROM SEWING CENTRE	608.00	BY INCOME FROM KVPS	29,166.15
TO EXP. ON DR. VIDYA SAGAR ADULT. EDU. CENTRE	3,640.00	BY INTEREST	621.00
		BY DONATION	70,563.00
TO EXCESS OF INCOME OVER EXPENDITURE	59,463.75		
TOTAL	1,00,350.15		1,00,350.15

GURU GOBIND SINGH TRUST (REGD.), KOTKAPURA

BALANCE SHEET AS ON 31-03-99

LIABILITIES		AMOUNT	ASSETS	AMOUNT
RESERVE FUND :			FIXED ASSETS :	
Bal. as on 1.4.98	7,15,341.92		Building	6,27,321.30
Add Excess of income over Expenditure	59,463.75	7,74,805.67	Furniture	15,138.33
			Books	8,.068.90
LOANS			SECURITY DEPOSITS :	
Dr. Om Parkash		7,000.00	P. S. E. B.	605.00
			Telephone	2,000.00
			CASH & BANK BALANCE :	
			Bank of Punjab Ltd. S/A	14,239.00
			Bank of Punjab Ltd.	1,531.00
			Punjab & Sind Bank	4,937.00
			F. D. Rs	1,07,.000.00
			Cash in Hand	.965.14
TOTAL		7,81,805.67	TOTAL	7,81,805.67

For Rajneesh Krishan & Associates
Chartered Accountants.
Place : Red Cross Market, Kotkapura
(Rajneesh Gupta)

Dated : May 15th, 1999

रूप–रेखा

खण्ड–दो

खण्ड–दो

निर्मल सन्तों की दार्शनिक दृष्टि

निर्मल सन्तों की दार्शनिक दृष्टि

'दर्शन' का सामान्य अर्थ है 'देखना' । मनुष्य अपने जीवन काल में अपने चारों ओर के संसार को देखता है, अनुभव करता है और कालान्तर में उन अनुभवों का निष्कर्ष निकाल कर सत्य असत्य का निर्णय करता है । इसे ही विद्वानों ने 'दर्शन' कहा है । 'फिलासफी न केवल प्रकृति का ज्ञान है बल्कि समाज का भी, यदि इस ज्ञान का आधार तत्व (फैक्टस) और प्रयोग (एक्सपेरीमेण्टस) हों यह विज्ञान कहा जाता है । परन्तु यदि प्रयोग की जगह केवल अनुभव हो, तो इसे फिलासफी ही कहूंगा ।'[1] इस प्रकार दर्शन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, अवस्थाओं व सामाजिक वातावरण का अनुभव है । देखा जाए, तो लगभग सभी दार्शनिकों, साधकों ने अपने अनुभवों को, संघर्षों को और रहस्यों को दुःखी जनों की आत्मिक शान्ति हेतु वाणी का रूप प्रदान कर तृप्त करने का प्रयास किया । उसके अभाव में मनुष्य इधर–उधर भटकता है, मृग तृष्णा के समान उसकी अभिलाषा और तीव्रतर होती है । कभी वह प्रकृति की गोद में राहत महसूस करता है तो कभी आराधना कीं विभिन्न पद्धतियों के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में भटकता है । उसे अनुभव होता है कि उस परम उदात्त सत्ता के सामने मेरा प्रयास कितना छोटा पड़ गया है । वह अपनी क्षुद्रता एवं क्षणिकता को जान कर उस सत्ता को पाने में असमर्थ अनुभव करता है । उसे अनेक कष्टों, बाधाओं का सामना करना पड़ता है, वह उस शक्ति को अनुभव तो करता है मगर जान नहीं पाता ।

ज्ञान के अभाव में मानव (जीव) उस महान शक्ति से नहीं मिल पाता तो वह ज्ञान की ज्योति को प्रज्ज्वलित कर अज्ञानता को दूर करने का प्रयास करता है । इसके लिए उसे पर्याप्त संघर्ष और बाधाओं का सामना करना पड़ता है । जब मनुष्य अज्ञानांधकार में भटकता है, तो इस से छुटकारा पाने के लिए अनेक उपाय ढूंढता है, वह उस निर्भय ज्योति ईश्वर को पाने के लिए अन्य देवी–देवताओं की सहायता चाहता है । चूंकि वह अकेला उस तक पहुंच पाने में समर्थ नहीं है । ऋग्वेद में इसी भांव को प्रकट करने वाला एक मन्त्र उपलब्ध होता है ।

न दक्षिणा वि चिकीते न सव्या
न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा,
पाक्या चिद्वसवो धीर्यो चिद्
युष्मानीतो अभयं ज्योतिर शाम् ॥

ऋग्वेद 2 : 27 : ॥

हे आदित्य । मैं दायें, बायें कुछ नहीं जानता पूर्व और पश्चिम दिशाओं से भी अनभिज्ञ हूं । मेरा ज्ञान अपरिपक्व है और गूढ़तावश मैं हतोत्साहित हो रहा हूं । केवल आपकी कृपा से ही मैं उसअभय ज्योति को प्राप्त कर सकता हूं ।'[2]

वह 'अभय ज्योति' सर्वव्यापक है, वहीं सर्व शक्तिमान सारे प्राणियों का नियन्ता और आधार है । इस सृष्टि की कोई भी वस्तु उसके प्रभाव से रहित नहीं है ।

ब्रह्म :

ईशोपनिषद में उस नियन्ता सर्वशक्तिमान की सर्वत्र विद्यमानता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है कि –

ऊं ईशा वास्यमिदँ सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।[3]

'जगत में जो कुछ स्थावर जंगम संसार है वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है ।

उस ईश्वर की सर्वव्यापकता की सब से बड़ी गुणवत्ता यह है कि वह प्रत्येक जड़ चेतन में समान रूप से विद्यमान है । यहां तक कि वह सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है । प्रत्येक प्राणी में उस सत्ता का आभास ही उसका अस्तित्व है । अपनी साधना से साधक जब यह जान लेता है कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश में सर्वत्र वही व्याप्त है, तो इस पंच भौतिक शरीर में उसका होना स्वतः ही जाना जाता है, वह ईश्वर ज्योति स्वरूप है और वह ज्योति ही विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है । ऋग्वेद में कहा गया है कि –

हंसः शुचिषद्वसुरत्तरिक्षसद्धोता
वैदिषदतिथि दुरोणसत्
नृषद्वरसदृतसद्वयोम सदञ्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम ।।[4]

अर्थात् प्रकाश के रूप में वह आकाश में चतुर्दिक प्रदीप्त है, वायु बन कर वह समस्त शून्य को भरे हुए हैं । यज्ञशाला में होत्रि गृहस्थ में अतिथि मानव में जीवन तथा रीति रूप में वह सर्वव्यापक हो गया है । वह परमसत्ता है, यज्ञों में जल और अग्नि में पर्वतों में और सब से अमर सत्य में उसी की ज्योति प्रदीप्त है ।

जब इस सृष्टि की रचना नहीं हुई थी तब भी वह ईश्वर किसी न किसी रूप में विद्यमान था । और सृष्टि की उत्पत्ति के बाद वही सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होता है ।

ऋग्वेद के अनुसार –

न मृत्यु रा सीद् मृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत
आनींदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनासे ।।[5]

अर्थात् जब मृत्यु या अमरता कुछ न थी, रात दिन तथा उनका अन्तर भी अज्ञात था तब भी वह 'एक' (परमसत्ता) निष्क्रिय और परिवर्तन हीन रूप में मौजूद था । उस एक के अतिरिक्त वहां कुछ भी न था ।

उस एक को जानने की लालसा ही मनुष्य को साधना के लिए बाध्य करती है । यही जिज्ञासा बन उसमें साहस भरती है और मनुष्य उसके लिए बड़े–बड़े कष्ट भी सहन

करने को तत्पर हो जाता है । वह उसकी रमणीयता, अनंत शक्ति के आगे नतमस्तक हो जाता है ।

उस परम सत्ता का आभास इस सृष्टि के प्रत्येक जीव को होता है मगर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति सब को नहीं होती । मनुष्य उसका स्वरूप जानने के लिए जिज्ञासु ही रहा है । मगर उसकी सामथर्य से बाहर है । तभी तो उसे अनन्त कहा है । प्रसाद ने भी उस सत्ता के अस्तित्व को स्वीकारते हुए अपनी आस्था प्रकट की है ।[6] उसकी अनुभूति केवल श्रद्धा से नतमस्तक साधक पुरुषों को ही होती है । उन्हें प्रत्येक वस्तु में उसी का स्वरूप दृष्टिगत होता है । उस अनन्य ईश को देखने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है । वेद, जिसका पार नहीं पा सके, उसे मनुष्य कैसे जान सकता है । उसके लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है । वह इन्द्रियातीत है । वह उसकी अनुभूति के लिए निष्ठा श्रद्धा और भावना का होना बहुत ही आवश्यक है । श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए इस अनुभूति के लिए उस प्रभु की कृपा दृष्टि का होना आवश्यक बताया है । चर्मचक्षुओं से उस सर्व शक्तिमान को देख पाना असम्भव है । उसके लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है, जो साधक के अन्दर ही पैदा होती है । ईश्वर ही उसे प्रदान करता है । गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है –

'न तु मां शकयसे द्रष्टुमनेनेव स्वचक्षुषा
दिव्य ददामि ते चक्षुः पश्य में योगेश्वरम् ।।[7]

परन्तु मेरे को इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को निःसन्देह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तेरे लिए दिव्य अर्थात अलौकिक चक्षु देता हूं । उससे तूं मेरे प्रभाव को और योगशक्ति को देख ।

कबीर दास ने भी इसी भाव को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

सब घट मेरा साईयां, सूनी सेज न कोई
भाग तिन्हों का हे सखी, जिहि घट परगट होई ।।[8]

निश्चय ही वे भाग्यवान हैं, जिनके हृदय में उस ज्योति स्वरूप भगवान की ज्योति प्रकट होती है । कठोपनिषद में उसे पाने के लिए मनन पर बल देने की बात कही गई है –

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन
मृत्योः स मृत्य गच्छति य इह तोनवपश्यति ।।[9]

मन से ही यह तत्व प्राप्त करने योग्य है । इस ब्रह्म तत्व में नाना कुछ भी नहीं है, जो पुरुष इसमें नानात्व सा देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है ।

उक्त मन्त्र में ब्रह्म को जीव से भिन्न नहीं माना गया मात्र उसे मन से जानने की आवश्कता है । उसे जानना ही मुक्ति है और उसे भिन्न मानना ही भुक्ति । उस ब्रह्म को जानने के बाद जीव 'निर्भय पद' को पा लेता है । उसे मृत्यु का भय नहीं सताता और वह तद्‌रूप हो जाता है । इसी लिए ऋग्वेद में उस ब्रह्म की ज्योति को अभय ज्योति भी कहा

गया है । उस ज्योति से अभय पद की प्राप्ति स्वतः हो जाती है । स्यात् इसीलिए ही ऋग्वेद में परमात्मा को 'अभय–ज्योति' कहा गया है ।

'पाक्या चिहवसवो, धीर्या चिद्
युष्मानीती अभय ज्योतिरशाम् ।[10]

अर्थात मेरा ज्ञान अपरिपक्व है और मैं मूढ़तावश हतोत्साहित हो रहा हूं । केवल आपकी कृपा से ही मैं उस अभय ज्योति को प्राप्त कर सकता हूं ।' ऋग्वेद (2 :27 : 11)

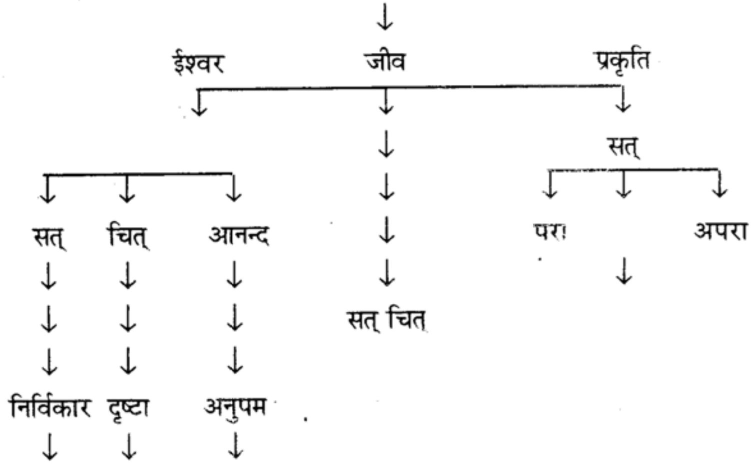
गुरुनानकदेव ने अपने मूलमन्त्र में परमात्मा का स्वरूप इस प्रकार बताया है –

१ (एक) ओंकार, सतिनामु करता पुरुख
निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं[11] गुर प्रसादि ॥

वेदों में ईश्वर का स्वरूप अभिव्यक्त करने का प्रयास मात्र है । वेद भी उस ब्रह्म के स्वरूप को जानने में अक्षम है । कालान्तर में उपनिषदों में भी उसकी सत्ता एव कार्यों को जानने का प्रयास किया गया । लेकिन अन्ततः नेति–नेति कह कर तृप्त हुए । पुराणों ने भी उसके गुणों का वर्णन करने का प्रयास मात्र किया लेकिन उसका स्वरूप निर्धारण नहीं हुआ । कालान्तर में निर्गुण और सगुण तक बात सीमित होकर रह गई और विभिन्न सम्प्रदायों के पयास भी इस क्षेत्र में अपनी–अपनी विचारधारा को लेकर अग्रसर हुए मगर उस अगम, अगोचर का रहस्य रहस्य ही बना रहा ।

यहां वेद, उपनिषद् और षड्दर्शन के अनुसार ईश्वर का जो स्वरूप माना गया है, उसकी एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है ।[12]

वेद के अनुसार



वेद–उपनिषद् के अनुसार

- ईश्वर
  - सूक्ष्म से सूक्ष्म → सर्वव्यापक → सक्रिय
  - महान से महान → सब से अलग → कर्म फल से मुक्त
- जीव → सूक्ष्म
  - देही
    - सक्रिय
    - कर्म करने में स्वतन्त्र
      - अक्रिय
      - कर्म फल से बन्धा हुआ
  - अदेही
- प्रकृति — प्रकृति
  - अव्यक्त
    - सत रज तम
  - चंचल
    - उत्पति विकास नाश

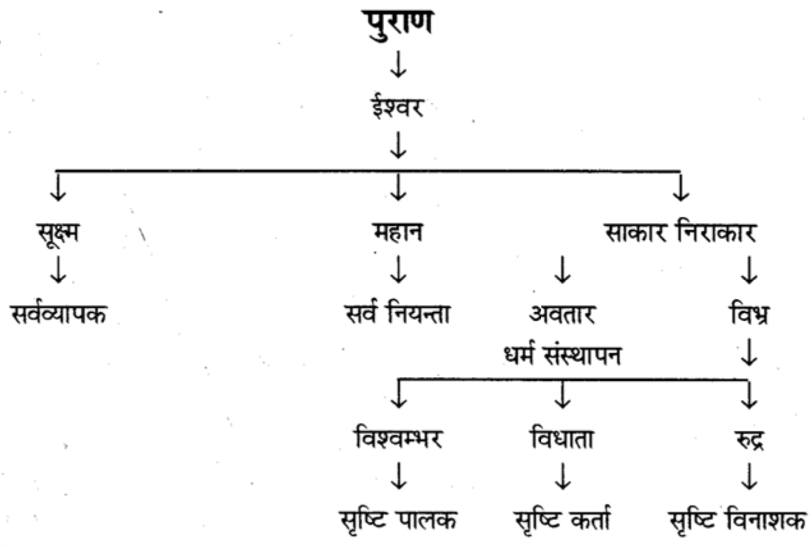
ईश्वर के कार्य

↓

वेद उपनिषद यह शास्त्र के अनुसार

↓

- सृष्टिकर्ता
- सृष्टि नियामक
- सृष्टि निर्णायक



पूर्व मध्यकाल हिन्दी साहित्येतिहास का स्वर्णकाल कहलाता है । भक्तिकाल में अनेकानेक धर्म प्रचलित थे और एक–एक धर्म के अन्तर्गत कई–कई सम्प्रदाय अस्तित्व में आए । कारण था वैष्णव धर्म आन्दोलन का उत्तरी भारत में प्रविष्ट होना । आचार्य शुक्ल के अनुसार – भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे–धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तनों के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला ।[13] यही आन्दोलन विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में प्रसारित हुआ । इन सम्प्रदायों की विचारधारा विभिन्न होने पर भी प्राचीन धर्म की कुरीतियों, आडम्बरों आदि का खण्डन करने में मतैक्य था । इन्हीं के प्रभावाधीन सगुण और निर्गुण धाराओं का प्रस्फुटन हुआ । जिन की आगे उप शाखाएं बनी । गुरु नानकदेव ने जिस विचारधारा को अपने सिद्धान्तों का आधार बनाया, वह भी निर्गुण धारा का विकसित रूप है ।

भारतीय दार्शनिक, धार्मिक, रहस्यवादी और साहित्यिक परम्पराओं के धरातल पर गुरु नानक की काव्य वाणी से निर्गुण काव्य का प्रारम्भ होता है । अपनी महान प्रतिभा, सहज दृष्टि और गम्भीर अनुभव के कारण गुरु नानक इस काव्य धारा के प्रवर्त्तक स्थापित होतें हैं ।[14] वास्तव में सिक्खमत निर्गुणधारा का संशोधित एवं परिमार्जित सम्प्रदाय है । इसमें अनेक सामाजिक कुरीतियों का निषेध कर मानव जीवन को सदाचार के बल पर श्रेष्ठ बनाने का मार्ग दर्शाया गया है । उन्होंने क़िसी भी मत का अन्धानुकरण न करके आत्मानुभव को ही महत्त्व दिया । इनकी समन्वयात्मक पद्धति अत्यन्त लोक प्रिय हुई ।

इन्होने किसी विशिष्ट विचारधारा का अनुमोदन अन्धभक्ति से प्रेरित होकर नहीं किया अपितु बुद्धि की कसौटी पर कस कर धर्म के सामान्य तत्वों को ग्रहण किया ।[15] उन्होंने किसी भी धर्म की कट्टरता को स्वीकार न करके सहज भाव से जीवन व्यतीत करने की दर्शन–पद्धति को अपनाया । यही कारण है कि सिक्ख लहर और अन्य भक्तिकालीन भक्ति लहरों के प्रेरणा स्रोतों और दार्शनिक आधारों में मौलिक अन्तर है ।[16] सिक्ख धर्म के प्रर्वतक सिक्ख गुरु परम्परा के प्रथम गुरु नानकदेव ने निर्गुण सन्तों के समान अपनी अनुभूति को ज्ञान के बल पर अभिव्यक्ति न करके सगुण भक्ति वाद में से भक्तितत्त्व को ग्रहण करके अपनी साधना को भक्तिमूलक बनाया । मगर वे सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन और अपने सिद्धान्तों का मण्डन सन्तों के समान ही करते थे । सभी सन्त एवं भक्त अपने सन्देशों व उपदेशों को कविता रूप देकर अपने अपने मत का प्रचार करते थे । प्रत्येक मत के पीछे उनकी अपनी दार्शनिकता थी । इसीलिए तत्कालीन सन्तों कवियों और गुरुओं की रचनाओं को पढ़कर और उनकी कविता की गहनता और गम्भीरता को देख कर उनके दार्शनिक होने का भी आभास होता है, उनकी यह दार्शनिकता भारत की सभ्यता और संस्कृति पर आधारित होते हुए भी तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित है । इसी कारण निर्गुणधारा के सन्त कवि और गुरु अपने पीछे एक दार्शनिक आधार लेकर चलते हैं । सन्त काव्य ब्राह्मणवाद के आडम्बरों का विरोध करके नई स्थापनाओं में विश्वास करता है । सहज मार्ग द्वारा ईश्वर स्मरण, गृहस्थ धर्म का पालन और मानव प्रेम इसकी निजी विशेषताएं हैं । सिक्ख धर्म की भी इन्हीं मूल भावनाओं पर आधारित हैं । सिक्ख साहित्य में इन सभी विशेषताओं को देखा जा सकता है । निर्गुणवादी सिक्ख काव्य में वही कवि शामिल माने जाते हैं, जिनका दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण गुरु नानक की विचारधारा का अनुसरण करने वाला है और, जिनकी काव्यकला गुरु काव्य की शैली से बल प्राप्त करती है ।[17] सिक्ख मत सन्त साहित्य से प्रभावित होकर भी अपना अस्तित्व रखता है, अन्ततः निर्गुण कवियों ने जो कुछ भी कहा है, वह सिक्ख मत के लिए सहायक रूप में सिद्ध हुआ । गुरु नानक देव द्वारा प्रतिपादित सम्प्रदाय आज सिक्ख मत के रूप में प्रचलित है, जो आज एक धर्म के रूप में विकास एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है । गुरु नानक ने तपस्या, देशाटन, चिंतवन आदि करके विशेष कर अपने मस्तिष्क से निकाला ।[18] कबीर के समान ही उन्हें सामाजिक और राजसी जीवन में कुरीतियां और अभाव दिखाई दिए वहां वहां उन्होंने जोर दार आवाज उठाई और उन्हें दूर करने का प्रयास किया ।[19] नानक घुमक्कड़ प्रवृत्ति के सन्त थे और अपने आत्मानुभव के बल पर जनता का मार्गदर्शन करते थे । इनके जीवन का अपना दर्शन था । इनके धर्म की मौलिकता और साधारण जीवन दर्शन के बल पर ही आज यह मत आदर्श सम्प्रदाय के रूप में विश्वविख्यात हैं । सुधारवादी निर्गुण सम्प्रदायों में अपनी संगठनात्मक शक्ति के कारण नानक मत सर्वप्रमुख सिद्ध हुआ है ।[20] दस गुरुओं की परम्परा अपने आप में एक उदाहरण है । इन सभी गुरुओं ने लगभग

गुरु नानक के ही गुरुमत का प्रचार एंव प्रसार किया । दस गुरुओं के अतिरिक्त अनेक गुरु सिक्खों ने भी गुरुमत सिद्धान्तों की ही दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर सिक्ख धर्म के आदर्शों को जनता तक पहुंचाया । उन्होंने अपने विचारों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति किया । उनकी वाणी 'आदि ग्रन्थ' में संकलित है । उन्होंने जो गुण वहां से मिला ग्रहण किया । उन्होंने ऐकेश्वर वाद, कर्मकाण्ड की निन्दा, आडम्बरों का विरोध, छुआ छूत, ऊंच–नीच का विरोध, तथा समता का भाव रखने का सन्देश दिया । उन्होंने ही 'किरतकारों को किरतकरों, बण्डछकों और नाम जपों का देश व्यापी नारा दिया । 'निर्गुण सन्तों में यदि किसी की वाणी और उसके द्वारा प्रवर्तित मत यदि आज अपने दृढ़ और संगठित रूप में मौजूद हैं, तो वह नानक का ही मत है ।[21] सिक्ख धर्म के प्रवर्तक नानक देव के अनुयायी सभी सम्प्रदायों ने उन्हीं के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । गुरु नानक देव के ब्रह्म के स्वरूप का ही प्रतिपादन उनकी वाणियों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित हुआ है । सिक्ख मत के अनुसार भले ही अवतार वाद का खण्डन किया गया है मगर तो भी गुरुमत में गुरु विचारधारा के अनुसार ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों का उल्लेख मिलता है । निर्गुण ब्रह्म की सत्ता का आभास प्रत्येक प्राणी को नहीं हो पाता अतः सगुण रूप में वह ईश्वर सर्वसुलभ है । सगुण कोई दूसरा ब्रह्म नहीं है, वह एक ही ब्रह्म दोनों रूपों में विद्यमान है । इसी सिद्धान्त पर एकेश्वरवाद टिका हुआ है ।' परमात्मा के निर्गुण और सगुण स्वरूपों के अतिरिक्त गुरुओं ने स्पष्ट रूप से उसके उभय स्वरूपों को माना है । उनके विचार में ब्रह्म निर्गुण भी हैं सगुण भी है । इसके साथ ही वह निर्गुण और सगुण दोनों ही एक साथ है ।[22] सगुण का अन्तित्व भिन्न भी है वही निर्गुण ही सगुण का रूप धारण करता है ।

निरगुण हरिया, सरगुन धरिया
अनिक कोठरीआ भिन्न भिन्न
भिन्न भिन्न करीया ॥ – राग सूही, महला–5 ॥

अर्थात् निर्गुण हरि ने ही सगुण रूप धारण किया है उसी ने भिन्न रूप में अनेक कोठरिया (शरीर) निर्मित की है ।[23]

निर्मल सन्तों ने भी ब्रह्म के इसी रूप को ही अपनाया है । उनका ब्रह्म सगुण भी है निर्गुण भी –

कलि के सभ दोख निवारन कउ
भव तारन कऊ जग भीतर आए
जग जीर्ण साधन दूर करे
दृढ़ साधन रामहि नाम बताए ॥[24]

ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते समय यह पौराणिक सन्दर्भों से अवतारों का वर्णन भी करते हैं और तब इनकी व्याख्या स्वाभाविक रूप से ही सनातन पद्धति की हो जाती है । इन्होंने अपने व्याख्यानों को वार्ता रूप में प्रस्तुत किया है विभिन्न मतो के विद्वानों

से शास्त्रार्थ करना इनकी प्रवृत्ति थी अतः इनकी व्याख्या में दूसरे मतों के उद्धरण भी मिलते हैं और इनकी व्याख्या स्वाभाविक रूप से ही तुलनात्मक हो गई है । वेदान्त की मान्यताओं पर अधिक बल देते हुए गुरुवाणी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना इनकी अनन्य विशेषता है । जीव और ब्रह्म में अंतर स्पष्ट करते हुए मोक्ष पन्थ प्रकाश में कहा गया है ।

चेतन एक असंग जो, माया संगति पाय ।
शुद्ध मलिन के भेद ते, ईश्वर जीव कहाय ॥ 61 ॥
यो वेदान्ति भाख है, सम्यक वेद विचार ।
जो ताको उर धार है, सो भव उतरे पार ॥ 62 ॥

ननु अद्वितीय असंग में प्रथम जीवादि कल्पना ही कैसे ? यह आशंका कर शुद्ध मलिन रूप माया के भेद से बने हैं सोई कहे 'चेतन' इति शुद्धि मलिन के आगे माया अविद्या शेष (कर लेना) ॥ 61–62 ॥[25]

2. जीव

परमात्मा द्वारा निर्मित इस सृष्टि में जड़ और चेतन पदार्थों में सर्वाधिक चेतनशीलता की शक्ति जीव में है । जीव में अनुभूति की क्षमता अत्यधिक होती है । अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्यों में यह शक्ति अधिक विकसित हुई है । यही कारण है कि जीव को उस चेतन (ब्रह्म) का अंश स्वीकार किया गया । वैसे तो सम्पूर्ण सृष्टि में ही उसका प्रभाव परिलक्षित है, लेकिन जड़ की अपेक्षा चेतन रूप में उसका आभास अत्यन्त तीव्रता से होता है । गीता में भगवान कृष्ण ने इस सम्पूर्ण प्रकृति को परा और अपरा दो श्रेणियों में विभक्त करके 'परा' प्रकृति (चेतन) को अपना ही जीव बताया है –

भूमिरापो ऽनलो वायुः खं
मनोबुद्धिरेव च
अहंकार इतीय में भिन्ना
प्रकृतिरष्टधा ॥[26]

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन बुद्धि और अहंकार भी, ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई, मेरी प्रकृति है । (7–4)

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि में पराम्
जीवभूतां महाबाहों ययेदं धार्यते जगत ॥[27]

सो यह आठ प्रकार के (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) भेदों वाले अपरा है अर्थात् मेरी जडप्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को जीव रूप परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है – (7–5)

इस प्रकार सभी जीवों में उस एक ब्रह्म की ही ज्योति विद्यमान है । जैसे विभाग रहित

स्थित हुआ भी महाकाश घंटों में पृथक् पृथक् प्रतीत होता है, इसी से देह में स्थित जीवात्मा को भगवान् ने अपना सनातन अंश कहा है ।'

ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः ।[28]

इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है । (15–7)

अनेकानेक योनियों में जन्म लेने वाले जीव उसी की चेतना का परिणाम है । छोटे से लेकर बड़े तक सभी प्राणी उसी की ज्योति से ज्योतित हैं, उसी ईश्वर की चेतना विभिन्न स्वरूपों में प्रकट हुई है ।

विष्ण्वा द्युत्तमदेहेषु प्रविष्टो देवता भवेत्
मर्त्याद्यधमदेहेषु स्थितो भजति मर्त्यताम् ।।[29]

अर्थात् विष्णु आदि उत्तम देहों में प्रविष्ट हुआ परमात्मा देवता हो जाता है और मनुष्य आदि के अधम देहों में स्थित हुआ मर्त्य भाव को प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि उत्तम अधम भाव स्वाभाविक नहीं है, किन्तु शरीर रूप उपाधि भेद से है ।

जीव क्योंकि परमात्मा का ही अंश है और उसकी उत्पति ईश्वर से ही हुई है और उसके अन्दर ईश्वर की विद्यमानता है । वह ईश्वर एक ओंकार, सत्य स्वरूप कर्ता पुरुष, निर्भय, निर्वैर अकाल मूर्ति अजोनी और स्वयं भू है ।[30] गुरुवाणी के अनुसार जीव की उत्पति उस परमात्मा के 'हुकम' से ही होती है । उसके हुकम के बारे में कोई कुछ नहीं जानता । सारी सृष्टि उसके हुकम के ही अधीन है ।

'हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाइ
हुकमी होवनि जीव हुकमि मिलै बड़िवाई – ।'[31]

जीव के अपने हाथ में कुछ भी नहीं है । उसकी सारी शक्तियों का प्रेरक वहीं परमपिता परमात्मा है । जीव उसकी आज्ञानुसार ही कर्म में लिप्त होता है । अनेक योनियों में जन्म लेता है । माया के वशीभूत होने के कारण विषय विकारों में पड़ कर जीव अनेक प्रकार के बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है । वह तो मात्र ईश्वर के हाथ की कठपुतली है जैसा उसे अच्छा लगता है या वह ईश्वर चाहता है, वैसा ही वह उसे नचाता है ।

काठ की पुतरी कहा करे, बपुरी खिलावन हारो जाने
जैसा भेखु करावे बाजीगरु, ओहु तैसो साजु आनै ।'[32] गउड़ी महला 5।।
इसका बलु नाही इसु हाथ, करन करावन सरब को नाथ ।।
जो तिसु भावै सोइ होई, नानक दूजा अवरु न कोई ।।[33]

– गउड़ी सुखमनी–महला–5

माया के आवरण के कारण ही जीव परमात्मा से भिन्न है । जब यह आवरण दूर हो जाता है, तो आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है । उसके बाद की स्थिति अनिर्वचनीय है । जैसे पानी से हिम बनता है और उसका स्वरूप ही परिवर्तित होता है, बाद में वह पुनः

अपनी वास्तविक स्थिति (जल) में परिवर्तित हो जाता है । कबीर ने रहस्यवादी साधना के अन्तर्गत यह कहा है कि आत्मा का परमात्मा में लीन होना ठीक ऐसा ही है ।

पाणी हीं तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहया न जाई ॥'[34]

अर्थात परमतत्त्व रूप जल ही हिम रूपी साधक बना था, अब वह हिम गल कर विलुप्त हो गया है पानी रूपी परम तत्व में परिणित हो गया है । वस्तुतः यह जो पहले था, वही हो गया है, अब उसकी स्थिति का वर्णन सम्भव नहीं है । हउमै के आवरण ने जीव सत्ता या चेतनता को बन्दी बना रखा है । यदि उसे बन्धन मुक्त कर दिया जाए, तो ऐसा विश्वास किया जाता है कि हउमै के कारण जीव और ब्रह्म में जिस पृथक्ता का अनुभव होता है वह न रहेगा ।'[35]

जीवात्मा अपने अहंभाव को भूल कर परमतत्व की अनुभूति से उससे एकाकार हो जाती है । इस प्रकार उस ईश्वर से उत्पन्न होकर जीव उसी में लीन हो जाता है । इस अभेद के लिए माया का भ्रम निवारण अत्यन्तावश्यक है । अहंभाव के विनाश से उस ईश का ज्ञान स्वतः हो जाता है ।

जिउ जल महि जलु, आइ खटाना
तिउ जोती संगि जोती समाना
मिट गए गवन पाए बिस्रामा ।[36] (गउड़ी सुखमनी महला–5)

जिस प्रकार जल में जल मिल जाने से एक रूप हो जाता है, उसी भांति जीवों में स्थित परमात्मा की ज्योति, परमात्मा की अखण्ड ज्योति से मिल कर एक हो जाती है फिर जीव का आवागमन का चक्कर समाप्त हो जाता है और उसे विश्राम (मोक्ष) अर्थात शान्ति मिल जाती है ।

कठोपनिषद में भी इस तथ्य को इसी प्रकार कहा गया है –

यथोदकं शुद्धे, शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गोतम ।[37]

अर्थात् जिस प्रकार शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम । विज्ञानी मुनि का आत्मा भी हो जाता है ।

कुछ दार्शनिकों ने जीव को आत्मा कहा है । सभी जीवों में आत्मा है । अगर परमात्मा आत्मा अभेद है, तो फिर आत्मा भी ब्रह्म ही है । मगर गुरुवाणी के अनुसार जीवात्मा जिस अवस्था में है, वह ब्रह्म नहीं है, विषयों से हट कर उस ज्योति में लीन होने पर ही वह ब्रह्म स्वरूप होती है –

'– इसे निरंकार ने अपनी ज्योति से उत्पन्न किया है । यह ब्रह्म रूप हो सकती है, तथा उसी तत्व से निर्मित होने के कारण यह निरंकार से मिल सकती है । परन्तु निरंकार पूर्ण है और यह अपूर्ण अतः जब यह निरंकार में लीन हो जावेगा, तो भी निरंकार अनन्त ही रहेगा ।'[38]

'– माया के चटकीलेपन के कारण वह अपने को पृथक् सत्ता अनुभव करने लगा है। जन्म मरण के रूप में उसी का दण्ड भी भोग रहा है। यदि वह अपने ईश्वरत्व की खोज करले, तो तत्व अभेद के कारण कुछ ही समय में वह अपनी आंशिकता को परम तत्व में लीन कर चिरमुक्ति का अधिकारी बन सकता है।'[39]

उपनिषद में उस पूर्ण जीव की पूर्णता के विषय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उस पूर्ण से पूर्ण जीव की उत्पति होती है तब भी वह ब्रह्म पूर्ण ही रहता है –

ॐ पूर्णमदः पूर्ण मिदं, पूर्णात्पूर्ण–मुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥'34

वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्य ब्रह्म) भी पूर्ण है क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है तथा (प्रलयकाल में) पूर्ण (कार्य) ब्रह्म का पूर्णत्व लेकर अपने में लीन करके पूर्ण परब्रह्म ही शेष रहता है।

जीव ब्रह्म रूप है मगर स्थिति भेद के कारण स्पष्ट रूप परिलक्षित नहीं होता। गुरु के ज्ञान से अज्ञानता का तम एवं माया का आवरण हटते ही तद्रूप हो जाता है। नाम स्मरण इसके लिए सरलतम मार्ग है। जीव में ब्रह्म व्याप्त है, जो इन दोनों में अभेद प्रस्तुत करता है। परन्तु फिर भी जीव और ब्रह्म तब तक जुदा है, जब तक कि गुरु की आज्ञा में रहते हुए नाम जाप कर स्वयं नामी को पहचान नहीं लेता। फिर तो बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव प्रत्यक्ष हो जाता है।[41]

इस आत्मा के भी वही गुण हैं, जो उस ब्रह्म के हैं। आत्मा से ही जीव का अस्तित्व है। शरीर नाशवान् है, मगर आत्मा शाश्वत और नित्य है। यह अजर और अमर है। यह जन्म–मरण के चक्कर से रहित है। यह अवध्य और अकाट्य है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी इस आत्मा का नाश नहीं होता। श्रीकृष्ण ने गीता में आत्मा के इन्हीं गुणों को व्यक्त करते हुए कहा है –

न जायते म्रियते व कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों
न हन्यते हन्यमाने शरीरे 2/20 ।[42]

अर्थात यह आत्मा किसी काल मे भी जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है।

आगे इसके शाश्वत गुणों का वर्णन करते हुए कहा है ––

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो ऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो ऽयं सनातनः 2/24 ॥'[43]

यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य अक्लेद्य, और अच्छेद्य है और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

निर्मल सन्तों ने वेदान्त के सिद्धान्तों को अपने दार्शनिक विचारों का आधार बनाया और ब्रह्म और जीव को एक ही रूप माना ।

वेद वखान्यो आत्म जोई । जीव रूप पहिचानी सोई ।
पुर तीनों में क्रीड़ा करे । आतम राम असंगहि चरे ॥ ४८७ ॥
रवि, शशि, अग्नि, शांत हैं जहां । इन्द्रियगण नहिं भासे तहां ॥
तहां सु आतम स्वयं प्रकाश । स्वप्न विषे अर्थन को भास ॥ ४८८ ॥[44]

वैदिक मत को सर्वते सार होने तेही वेदवखान्यो नाम वेद ने प्रतिपादन किया जो सच्चिदानन्द रूप विभु परिमाण वाला आत्मा वही जीव रूप जानो और जीव रूप हुआ अवस्था त्रय में भ्रमण करे हैं सोई कहे 'पुर' इति पुर तीनों में कहिये । क्रीड़ा हेतु रचे तीन पुरवत् अवस्था तीन में राजा के समान सैर करे है और क्रीड़ा करता हुआ भी अध्यस्त साथ अधिष्ठान का वास्तविक ते स्पर्श न होने से असंग हुआ विचरे हैं, इहां यह भाव है – जेकर अग्नि में दहन, पचन, प्रकाशन शक्तियोंवत् आत्मा में अवस्था तीनों एक काल में रहे अथवा बाल अवस्था में अनुभूत गोत्र जाति आदि जैसे शरीर में युवावस्था में अनुभव करिए हैं, ऐसे एक अवस्था में अनुभव किए धर्म अवस्थान्तर में मान होवे, तब होवे आत्म तिनका संगी, वह पुनः ऐसे नहीं, काहे ते ? स्वप्नदृश्य का जाग्रत में बाध होवे है और जाग्रत दृश्य का स्वप्न में बाध होवे हैं और जाग्रत स्वप्न दोनों के दृश्य का सुषुप्ति में लय होवे हैं, और सुषुप्ति में दोनों की प्रतीति नहीं होवे, याते प्रत्यभिज्ञा से द्रष्ट हो तीनों में अनुवृत्त हुआ एक प्रतीति होवे है । सो यह एक अनुस्यूत में अनेकों की प्रतीति रज्जु में भूदरार से सर्पादिकोवत् आत्मा में अवस्था तीन को मिथ्यात्व बोधन करे है, याते अध्यस्त पदार्थों का अधिष्ठान साथ स्पर्श न होने ते आत्मा को असंगता समीचीन है, इस रीति से अवस्थात्रय का अधिष्ठान होने ते आंए बाधकान्तर के अभाव ते आत्मा को सत्यत्व सिद्ध होवे हैं ॥ ४८७ ॥

कही रीति से आत्मा को सद्रूपता सिद्ध कर ज्ञान रूपता सिद्ध करे 'रवि' इति, रवि शशि अग्नि शान्त है जहां नाम सूर्य चन्द्र अग्नि जहां लीन हो जावे है ओ जहां वागादि रूप इन्द्रिय समूह में भी कोई नहीं प्रकाशे तहां स्वप्न अवस्था विषे स्वयं प्रकाशात्मा सम्पूर्ण अर्थों को प्रकाशे हैं सोई कहे 'तहां' इति, इहां यह भाव है -- जाग्रत काल में सूर्य चन्द्र अग्नि पूर्व–पूर्व के अस्त हुए उत्तर–उत्तर व्यवहार हेतु प्रसिद्ध है तैसे अन्धकार में दीप प्रकाश के अभाव काल में सम्भाषण आदिकों से व्यवहार सिद्धि दे दिए हैं ॥ ४८८॥

3. माया

इस सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों ने अपने–अपने अनुभवों के आधार पर अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं, मगर अभी तक यह सृष्टि रहस्य ही बनी हुई हैं । वेदों, शास्त्रों के मत भी आपस में मेल नहीं खाते । ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार कहा गया है ।

सर्वप्रथम उसके मन में (हिरण्यगर्भ में) इच्छा उत्पन्न हुई (सृष्टि रचने की) और उससे बीज (रचना का) अस्तित्व में आया। तभी ज्ञानी ऋषि मुनियों ने अवास्तविकता (माया) में से वास्तविकता विश्व के निर्माण का साक्षात् अनुभव किया। (ऋग्वेद १२६: ४)

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसोरेत प्रथम यदासीत्
स तो बन्धमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥[45]

माया के भिन्न रूपों में फंसा हुआ जीव इस विश्व को शाश्वत समझ बैठता है और इसे अपना ही समझता है और बार–बार मृत्यु को प्राप्त होकर विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। माया के तीनों गुणों (रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण) में से जो अधिक प्रभावी होता है, उसी के अनुसार मनुष्य पुनर्जन्म धारण करता है।

'यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तम विदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्म संगिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढ़योनिषु जायते ॥[46] अध्याय–१४ (१४–१५)

जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मल रहित अर्थात् दिव्य स्वगर्वेद लोकों को प्राप्त होता है और रजो गुण के बढ़ जाने पर उसकाल में मृत्यु को प्राप्त हो कर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ जाने पर मरा हुआ पुरुष, कीट, पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है।

केवल वही जीव जो स्थल शरीर की श्लोक उत्पत्ति के कारण तीनों गुणों का उल्लंघन करके जन्म, मरण, वृद्धावस्था एवं सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ, इस काल सीमा से बाहर परमेश्वर की गोद में पहुंच कर परमानन्द प्राप्त करता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्
जन्म मृत्यु जरा दुःख विमुक्तो मृतमसुते ॥[47] **–14/20**

माया ब्रह्म की वह शक्ति है, जिसने उस परम पिता की इच्छा का पालन किया है और सृष्टि का निर्माण किया है। वह त्रिगुणात्मक शक्ति से सम्पूर्ण सृष्टि को बन्धन युक्त किए हुए हैं। जीव इसी के प्रभाव से नाना सांसारिक क्रियाएं करता है।

मानव मन का अहंभाव माया का ही प्रतीक है और प्रायः रजोगुण का स्वरूप प्रस्तुत करता है। कामना और आसक्ति लोभ की उत्पादक है और लोभ की निरन्तर सत्पूर्ति हउमै की प्रवर्त्तक कामना मनुष्य को कर्म में प्रवृत करती है और आसक्ति उस कर्म के फल की आशा को सजीव बनाए रखती है। वही स्थिति पुनर्जन्म का कारण है। यह माया ही ब्रह्म की इच्छा शक्ति होने के नाते जादूगर की जादुई माया की तरह अपनी दो स्वतन्त्र शक्तियों का आश्रय जीव और ब्रह्म में अवास्तविक भेद का कारण बनती है। माया के

आवरण के कारण ही जीव सत्य को विक्षिप्त रूप में देखता है और विक्षिप्तता को सत्य समझ लेता है। यही उसका अज्ञान या भ्रम है जो माया के कारण ही उत्पन्न होता है। यह संसार उस ईश्वर की माया ही है। ब्रह्मसूत्र में इसे ईश्वर की लीला मात्र कहा गया है।

लोकवतु लीला कैवल्यम्' [48]

भले ही हम लोगों की दृष्टि में संसार की सृष्टि रूप कार्य महान दुष्कर एवं गुरुता है तथापि परमेश्वर की यह लीला मात्र है। ब्रह्म सूत्र (2 : 1 : 33)

परमेश्वर की यह लीला कब और क्यों उत्पन्न हुई ? इस रहस्य को अब तक कोई सही जान सका है। यह बात मनुष्य के लिए ही कठिन नहीं अपितु ऋषियों मुनियों, साधकों के लिए भी एक रहस्य बनी हुई है। ऋग्वेद के अनुसार – यह विषय मनुष्य के लिए ही नहीं किन्तु देवताओं और वेदों के लिए भी अगम्य है।[49]

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाया
को वेद यत आब भूव। मंडल – १० – ऋचा – १२९।

निर्गुण ब्रह्म के साथ ही सगुण माया का अटूट सम्बन्ध युगों–युगों से चला जा रहा है। अतः माया में ब्रह्म के गुणों की भ्रमात्मक स्थिति पैदा हो जाती है। मगर माया के नाम, रूप, और कर्म क्षण–क्षण परिवर्तित होते हैं। अतः इसे ईश्वर के समान नहीं माना जा सकता। वेदान्त के अनुसार माया का अनादित्य तो स्वीकार किया जाता है। मगर उसे स्वतन्त्र और स्वयंभू नहीं माना जाता। मगर यहां अनादित्व का ईश्वर के समान अर्थ न लेकर यह लिया जाता है कि उसका अनादित्व (अर्थात् आदि आरम्भ) ज्ञात नहीं होता है। गोता के अनुसार प्रकृति स्वतन्त्र नहीं है (ईश्वर की ही माया है)

'दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।[50]
अध्याय ७, श्लोक १४।

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है। आगे चल कर भगवान कृष्ण ने इसे अनादि बताया है –

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावमि।[51]
अध्याय १३, श्लोक १९।

प्रकृति अर्थात् त्रिगुण मयी मेरी माया और जीवात्मा इन दोनों को ही तू अनादि जान।

इस सृष्टि में सर्वत्र माया का ही पसारा है माया ही अपने जाल में सब को बांधती है। भगवद्भक्ति से ही मनुष्य इस बन्धन से मुक्त हो सकता है। माया अनेक रूपों में जीव को मोहित करके और भ्रम पैदा करके उसे ईश्वर से विमुख करने का प्रयास करती है। अन्ततः ईश्वर कृपा या ईश्वरेच्छा से ही मनुष्य का उद्धार संभव है। कबीर ने ठीक ही कहा है –

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड।
सतगुर की कृपा भई नहीं तो करती भांड॥[52]

(माया तो मधुर आस्वाद के समान मोहिनी है, यह तो मीठी खाण्ड है, धन्य भाग्य है कि मेरे ऊपर सद्गुरु की कृपा हो गई नहीं तो यह मुझे भण्ड (भाण्ड) ही बना देती)।

'जीव को परमात्मा से मिलने में माया ही बाधक तत्व है । माया मनुष्य को भ्रम में डालती है उसे लुभाती है ताकि वह ईश्वर के प्रति उन्मुख न हो सके । कबीर ने तो माया की तुलना की तुलना वेश्या तक से की है ।

कबीर माया पापणीं, हरि सूं करे हराम
मुखि कडियाली कुभति की, कहण न देइ राम ।।[73]

माया वेश्या की तरह पापिनी है और हरि से भी व्यभिचार पूर्ण व्यवहार करती है । मनुष्यों के मुख में दुर्बुद्धि की लगाम डाल कर राम का नाम नहीं लेने देती ।

'गुरुवाणी के अनुसार माया को एक ऐसी फृहड़ स्त्री बताया गया है, जो राक्षसी के समान सारे संसार को निगल रही हैं । केवल सतगुरु की कृपा से ही उससे रक्षा हो सकती है । उस माया ने ब्रह्म विष्णु और शिव तक को भी मोहित कर रखा है ।

ऐसी इसत्री रामि उपाई
उन सभु जगु खाईया, हम गरि राखे मेरे भाई
पाई ठगउली, सभु जगु जोहिया,
ब्रह्म विसनु महादेउ मोहिया
गुरमुखि नामु लगे से सोहिया।'[54]

(राम ने ऐसी विलक्षण स्त्री की रचना की है, उस स्त्री ने सारे जगत् को खा लिया है । किन्तु गुरु ने मेरी रक्षा की है । इसने अपनी ठगौरी से सारे संसार को वशीभूत कर लिया है । इसके प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मोहित हो गए हैं । जो गुरुमुख नाम में अनुरक्त है, वे ही शोभनीय है ।) आसा महला–५ (२–२–९६)

ईश्वर की वह माया एक शक्ति के रूप में व्याप्त हो रही है । वह अनेक रूपों में सर्वत्र विद्यमान है । अहं, लोभ, क्रोध, द्वेष, मद, उसी के अधीन है । प्रभु की प्रेम भक्ति के अतिरिक्त सर्वत्र माया ही माया है । जीव को इसने अपने वश में कर रखा है । माया अपने अनेक आकर्षणों से जीव को प्रभु से विमुख करती है । जिससे जीव विषय–विकारों में पड़ कर सांसारिकता में भटकता रहता है । माया के सब से बड़े आकर्षण कामिनी और कांचन है ये माया के सब से मधुर मोह है । कहा भी है –

कंचन नारी महि जीउ लुभतु है,
मोहु मीठा माइया ।[55]
गऊड़ी वैरागिणि– महला–४ ।

गुरुवाणी में इस मोह जाल रूपी माया से छुटकारा पाने के लिए अनेक उपाय बताए हैं । यद्यपि माया की घाटी अत्यन्त दुस्तर है और इसका पार पाना दुष्कर है, तो भी गुरुजनों के बताए साधनों का आचरण करने से माया की दुरुहता दूर हो जाती है । माया पकड़ने से हाथ में नहीं आती, इससे प्रीति भी करें तो अन्त समय साथ नहीं जाती अगर हम इसका त्याग कर दें तो यह हमारे चरणों में पड़ जाएगी ।

'गहु करि पकरी न आई हाथि
प्रीति करि चाली नहीं साथि
कहु नानक जउ तिजागि दई
तब ओह चरणी आइ पई ॥'[56] रामकली, महला–५

माया से छुटकारा पाने के लिए उसका त्याग करना ही एक मात्र उपाय है चूंकि इसकी शक्ति बड़ी मोहिनी है और प्रबल है यह अपने रंगों, लीलाओं से सबको प्रभावित करती है मगर बुद्धिमान यह जान लेते हैं कि इसकी यह चमक दमक क्षण भंगुर है । यह बादल की छाया के समान नश्वर है ।

'माया रंग विरंग खिने महि
जिउ वादर की छाइया ।[57] (मारु–म0 ५)

इसके रंग सब फीके है और अन्त में नष्ट हो जाने वाले हैं ।

माया का रंगु सभु फीका,
जातो बिनसि निदान ॥[58] सिरीराग महला–५

सद्‌गुरु की कृपा अथवा उपदेश से ही माया का त्याग सम्भव है । अतः सद्‌गुरु की शरण में जाना चाहिए । सन्तों और भक्तों से मेल मिलाप बढ़ाना चाहिए । सन्त लोग पहले ही ईश्वर कृपा से माया पर काबू पा लेते हैं । माया उन्हें अपने जाल में नहीं बांध पाती । सन्तों और भक्तों की संगति भी सद्‌गुरु की कृपा से ही होती है, जिससे सत् और असत् वस्तु में अन्तर प्रतीत होता है । तभी मनुष्य माया का त्याग करने को उद्यत होता है ।

'सन्तन से बंधन काटे हरिराई
ता कउ कह कहा बियापै भाइ
कहु नानक जिनि घरि संत पाई
ताके निकटि न आवे भाई ॥[59] राग–गऊड़ी–महला–५

निर्मल सन्तों ने भी माया को पथभ्रष्ट करने वाली और भ्रमात्मक कहा है । इसे इन्द्रजाल के समान कहा है । यह ईश्वर साधन में बाधक है । और अनेक प्रकार के मोहजाल से उलझने पैदा करती है ।

माया मिल कारण तैं कहयो । ऐसी नियम कहो किह लहयो । ६२७।
सब जग देखे नहिं को झगरो । इन्द्रजाल नर नीके पकरो ।
माया कर सब ही वह जनै । यानें नहिं संशय को गनं ॥ ६२८॥[60]

पुरुष शब्द से दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक रूप जीव ब्रह्म दोऊ लेने, कही रीति से होवे पुरुष को जगदूपादानता सिद्धि पुनः मायावाले को कारणता का नेम कहा देख्या है ? याते माया साथ मिल कर कारणता कहते हो ? यह आशंका करे 'माया' इति, ऐसो नियम कहिये माया साथ मिल कर कारणता का नेम ॥ ६२७ ॥

माया वाले को कारणता की प्रसिद्धि कहे 'सब' इति, झगरे रहित जगह पकरावे 'इन्द्र' इति, इन्द्रजाल नर नाम इन्द्रजाल वाला मदारी पुरुष, माया मिल कारणता का नेम देखने वास्ते भली प्रकार पकड़ो । ६२८ ।

4. जगत

ईश्वर की यह सृष्टि (जगत) अभी तक विद्वानों, साधकों, पीरों–पैगम्बरों के लिए रहस्य ही बनी हुई है । वेदों, पुराणों में भी उसके विषय में विभिन्न विचारधाराएं उपलब्ध होती हैं । ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि की उत्पति से पूर्व की स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।

ना सद सन्नि सदा सी त्त दानी ना सीद जो नां व्योमा परोयत्
किम भाव रावः कुह कस्य शमन्नम्मः किम् सीदगहम ग़भीरम् ।।[61]

मण्डल–10, 129 सूक्त–ऋचा ।

'तब अर्थात् मूलारंभ में असत् नहीं था और सत् भी नहीं था, अन्तरिक्ष नहीं था, और उसके परे आकाश भी नहीं था । ऐसी अवस्था में किसने किस पर आवरण डाला ? कहां ? किसके सुख के लिए ? अगाध और गहन जल भी कहां था ?

दृश्यमान कुछ भी न था अगले सूक्त में एक सत्ता (शक्ति) का अस्तित्व बताया गया है । जिसे चेतना या शक्ति जो भी कहें उसके द्वारा ही इस सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत मिलता है । चूंकि उसके अतिरिक्त पहले और कुछ भी नहीं था ।

न मृत्युरोसीदमृतं न तर्हि
न रात्रया अहन आसीत्प्रकैतः
आनी द वा तं स्वधया तदैकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।।[62]

"–तब मृत्यु अर्थात् मृत्युग्रस्त नाश्वान सृष्टि भी न थी । अमृत अर्थात् अविनाशी नित्य पदार्थ (यह भेद भी) न था । इसी प्रकार रात्रि और दिन का अन्तर समझने के लिए कोई साधन (प्रकट) न था, जो कुछ था वह अकेला, एक ही । अपनी शक्ति (स्वधा) से वायु के बिना श्वासोच्छवास लेता अर्थात् स्फूर्तिमान होता रहा । इसके अतिरिक्त या परे कुछ भी न था ।" मण्डल–10, सूक्त 129, ऋच 1–2 ।

ऋग्वेद के इन्हीं संकेतों के आधार पर आने वाले विद्वानों ने सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने–अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं । सभी ने विभिन्न तत्वों के आधार पर ही इस सृष्टि की कल्पना की है । यही कारण है कि इनमें मर्तक्य नहीं है । तेत्तिरीयोपनिषद के अनुसार –

'असद् वा इदमग्र आसीत् ।'[63]

अर्थात् पहले यह सब असत् ही था । मगर छान्दोग्योपनिषद् में इसके विपरीत सत् को माना गया है ।

स देव सोम्येदमग्र आसीरा ।[64]

अर्थात् पहले यह सब सत् ही था । इसी उपनिषद में आगे चल कर आकाश से सृष्टि की उत्पति का संकेत मिलता है ।

आकाशः परायणम् ।[65]

अर्थात् आकाश ही सब का मूल है । वृहदारण्यकोपनिषद में सृष्टि से पूर्व मृत्यु का अस्तित्व स्वीकार किया गया है ।

नेवेद किचिना आसीन्मृत्यु नेवेदावृत्तमासीत्[66]

अर्थात् पहले यह कुछ भी नहीं था, मृत्यु से सब आच्छादित था ।

इन विभिन्नताओं से स्पष्ट होता है कि यह बात अभी तक ज्ञात नहीं हो सकी है कि सृष्टि से पूर्व क्या था और सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई । इन सभी विचारों से अनुमान करके मनुस्मृति में सृष्टि के प्रारम्भ का वर्णन इस प्रकार किया है –

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञात लक्षणम्
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वत ।।[67]

अर्थात् यह सब से पहले तम से यानि के अन्धकार से व्याप्त था । भेदाभेद नहीं जाना जाता था, अगम्य और निद्रित सा था ।

गुरुवाणी के अनुसार इस सृष्टि की उत्पति उस परम सत्ता (निरंकार ब्रह्म) से हुई है, जो अपरंपार है और स्वयं अपनी ताड़ी (ध्यान) में स्थित है ।

केते जुग बरते गुवारे ताडी लाई अपर अपारे
धुधुकारि निरालयु बैठा, ना तदि धुंधुप्तरे है ।।[68]

गुरुओं ने कहीं–कहीं इस तत्व को शून्य की संज्ञा से अभिहित किया है । और इसी शून्य को सृष्टि का मूल कारण माना है । इसी शून्य से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव की रचना हुई वायु, जल, अग्नि की रचना भी उसी शून्य से हुई, शून्य से ही चांद, सूरज, आकाश आदि की रचना हुई । सारी सृष्टि में उसी शक्ति (शून्य) का ही प्रसार है । सारी दृश्यमान सृष्टि इसी शून्य से उत्पन्न होती है और इसी शून्य में विलीन होती है ।

सुंन कला अपरंपरि धारी,
आपि निरालमु अपर अपारी
आपे कुदरति करि करि देखे
सुनहुं सुनुं उपाहंदा ।

....

सुनहु खाणे, सुंनहु बाणी'
सुनहु उपजी, सुंनि सभाणी ।।[69] माझ महला–1 ।

गुरुवाणी के अनुसार परमात्मा ही सृष्टि की उत्पति का मूल कारण है, उसके अस्तित्व से ही सारी सृष्टि दृश्य रूप में प्रकट हुई । वह सृष्टि की रचना करता है और स्वयं उसे देखता रहता है । वह सर्वव्यापक है मगर वह अलक्ष्य है । दिखाई नहीं देता –

आपे कारण करता करे, सृरिषटि देखे आदि उपाई
सम एको इकु बरतदा, अलखु न लखिया जाई ।।[70] सिरीरागु महला–3

उपनिषदों में भी उस ईश्वर को सर्वव्यापक और इस सृष्टि के कण–कण में विद्यमान माना गया है ।

ॐ ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत ।[71]

अर्थात् जगत में जो कुछ स्थावर जंगम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है ।

यथोर्णनाभि सृजते गृहाते च
यथा पृथिव्यमोषधयः सम्भवन्ति
यथा सतः पुरुषात्केश लोभानि
तथा क्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥[72]

जिस प्रकार मकड़ी के जाले को बनाती ओर निगल जाती है, जैसे पृथ्वी में औषधियां उत्पन्न होती है और जैसे सजीव पुरुष से केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार उस अक्षर से वह विश्व प्रकट होता है ।

इस सृष्टि की उत्पति उस (ईश्वर) के हुकम से ही होती है, प्रलय भी उसके हुकम से ही होती है ओर सृष्टि उसके हुकम से ही चलती है ।

'हुकमे आवे, हुकमे जावे, हुकमे रहे समाई ।'[73]

रामकली, महला–1

प्रलय और उत्पति के क्रम उसके ही हुकम से होते हैं ज्यो ही हुकम की उत्पति होती है, त्यों ही 'हऊमै' अहंकार द्वारा सृष्टि की रचना आरम्भ हो जाती है । माया और अविद्या और तीन गुण सत्व रज तथा तम) हउमै अथवा अहंकार की ही परिधि में हैं । परमात्मा से पृथक् प्रकृति का कोई अस्तित्व नहीं है । अहंकार अथवा हउमैं प्रकृति जन्य नहीं है बल्कि प्रकृति हउमैं से उत्पन्न होती है । इस प्रकार इस सिद्धान्त में गुरुओं की मौलिकता है और वेदांत तथा सांख्य के सृष्टि क्रम से विभिन्नता है ।[74] सिक्ख गुरुओं ने वेदान्तियों के समान जगत को मिथ्या नहीं माना और न ही इसे निरा भ्रमात्मक कहा है उन्होंने उस सत्य स्वरूप ईश्वर विरचित इस सृष्टि को भी सत्य ही माना है ।

'सति करमु जाके रचना सति, मूलसति, सति उतपति ।'[75]

गउडी सुखमनी–महला–5

गुरुवाणी के अनुसार यह मान्य है कि प्रभु सत्य है, उसने जो भी रचा है, वह भी सत्य है 'सामान्य दृष्टि से यही देखा भी जाता है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है । कारण के मूल में जो द्रव्य विराजमान रहता है वहीं कार्य में भी परिलक्षित होता है । दूध दहीं से बनता है, पानी से नहीं, तिल तेल से निकलता है बालू से नहीं । अतएव सत्य परमात्मा से सत्य सृष्टि की उत्पति होती है ।[76]

गुरुवाणी में जो कुछ भी वर्णित है वह सब गुरुओं और साधकों की अनुभूति जन्य बातें हैं । प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर सृष्टि को सत्य मानते हुए कहीं कहीं उन्होंने सृष्टि को क्षण भंगर और नश्वर भी माना है, तात्पर्य यह है कि सृष्टि ईश्वरेच्छा पर निर्भर है । जब उसकी इच्छा से ही इसकी रचना होती है, तो इसका विनाश भी उसी की इच्छा पर निर्भर है । इसी तथ्य के आधार पर उन्होंने इसे रात्रि का स्वप्न तथा बालू की भीत तक कह दिया है –

नानक कहत सब मिथिआ जिउं सुपना रैनाई ।[77]

साहिब, महला–9

बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नहीं दिन चारि ।[78]

सोरठि महला–9

लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि संसार का अस्तित्व ही नहीं है । इसका आशय यह है कि मिथ्यात्व और क्षण भंगुरता उस ईश्वरेच्छा पर आधारित है । वास्तव में गुरुओं ने तो संसार को सच्चे (परमात्मा) का निवास माना है और उसी का स्वरूप माना है । कहीं कहीं तो संसार को साक्षात् ब्रह्म का ही रूप मान लिया है ।

इहु जग सचे की है कोठड़ी, सचे का विचि वासु ।[79]

आसा दी वार–महला–2

एहु बिसु संसार तुम देखदे, एहु हरिका रूप है हरिरूप नदरी आइया ।।[80]

रामकली आनन्द महल्ला–3

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि –

सिक्ख गुरु जगत को वाहिगुरु ब्रह्मा की रचना मानते है, जबकि संसार को उन्होंने सुपना और मिथ्या माना है ।[81]

निर्मल सन्तों ने भी गुरुवाणी के अनुसार ही जगत को मिथ्या कहा है मगर माया के भ्रम के कारण ही सत्य प्रतीत होते बताया है ज्ञान के अभाव में यह सत्य प्रतीत होता है ।।

चौपाई

जब उपजे निज आतम ज्ञान । सभी होय सब बंधन हान ।।
जीव ब्रह्म को हेर अभेद । त्यागे सकल जगत के खेद ।। 5 ।।

अब जीव ब्रह्म के अभेद में शंका पूर्वक समाधान का निरूपण कर सकते हैं ।

चौपाई

पूर्वपक्षी –

जीव ब्रह्म अभेद निहारे । जगत खेद को किह विधि डारे ।

सिद्धान्ती –

निखिल जगत ही मिथ्या हइये । हेरे ब्रह्म, न साचो पइये ।। 6 ।।

'निखिल द्वैत मिट जाहि' पाठ से कही वार्ता स्पष्ट करें जब इति, जब कहिए, जिस देश काल अवस्था में मैं ब्रह्म हूं ऐसा जीव ईश के अभेद विषयक स्व स्वरूप का ज्ञान उपजे, तभी नाम तिस देश काल अवस्था में ही सम्पूर्ण कर्तुत्वादिक बन्ध दूर होवे है कही वार्ता का अनुवाद करे 'जीव' इति ।। 5 ।।

अभेद दर्शन कर जगत खेद को त्यागे है, यह श्रवण कर त्याग कैसे करे । यह शिष्य आशंका करे 'जीव' इति, ब्रह्म ज्ञान अतिरिक्त ज्ञानों से न बांध होने योग्य सर्व प्रपंच मिथ्या है, जड़ होने ते, दृश्य होने ते, परिच्छिन्न होने ते, शुक्ति रजतवत् स्व काल में स्वाधिकरण में स्वात्यन्ताभाव के प्रतियोगी को मिथ्या कहे हैं जैसे रजत जड़ है पुनः उत्तर काल में न

हुआ ही रजत मेरो को भान हुआ या प्रतीति से अपने काल में अपने अधिकरण में रहे अपने अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी है याते मिथ्या है, तैसे ब्रह्म प्रभातिरिक्त ज्ञानों से न बांध होने योग्य घटादिक प्रपंच भी मिथ्या है, इस प्रकार प्रथम 'नेदं रजतम्' अनुभव से शुक्ति में रजत का भेद प्रतीत होकर पश्चात् शुक्ति में रजत नहीं ऐसे रजत में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता के निश्चयवत् जो कहे अनुमान से घटादि प्रपंच काल में ही घटादि प्रपंच के अधिकरण ब्रह्म विषे ब्रह्म में घटादि प्रपंच नहीं ऐसे घटादि प्रपंच में अत्यन्ताभाव प्रतियोगिता का निश्चय वही द्वैत का त्याग है, सोइ कहे 'निखिल' इति, हेरे ब्रह्म पूर्व के साथ मेल कर, सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है ।[82]

निर्मल सन्तों के ब्रह्म, जीव, माया और जगत के विषय में विचारों को देख कर आभास होता है कि इन्होंने मात्र जन साधारण तक इसका ज्ञान प्रदान करने के लिए सरलतम व्याख्या पद्धति को अपनाया । गुरुवाणी का सन्देश और उसका दार्शनिक दृष्टिकोण ही इनका प्रमुख विषय रहा है । विवेचन का आधार मूलरूपेण भारतीय दर्शन एवं गुरुवाणी ही रहा है । गुरुवाणी भारतीय दर्शन और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है । गुरुमत–दर्शन भारतीय दर्शन का परिमार्जित एवं सुसंस्कृत रूप है । यह बात सृष्टि रचना के सन्दर्भ में सांख्य, वेदान्त, श्रीमद्भगवद्गीता और गुरुमत–दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन की निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगी ।

	सांख्यों का वर्गीकरण	**वेदान्तियों का वर्गीकरण**	
	(न प्रकृति न विकृति)	1. परमब्रह्म का श्रेष्ठ स्वरूप	
	1. पुरुष ।	2. प्रकृति	
	(मूल प्रकृति)	3. महत् (बुद्धि)	परब्रह्म का स्वरुप
	2. प्रकृति	4. अहंकार	आठ प्रकार का
	3. महत् (बुद्धि)	5. 9 तन्मात्राएं	
	4. अहंकार	10. मन	
7. प्रकृति विकृति	तन्मात्राएं (पांच) 5–9	11–15 ज्ञानेन्द्रियां (पांच)	
	10. मन	16–20 कर्मेन्द्रियां (पांच)	
	11–15 ज्ञानेन्द्रियां (पांच)	21–25 महाभूत	
16. विकार	16–20 कर्मेन्द्रियां (पांच)	विकार ही के कारण उपर्युक्त सोलह तत्वों को	
	21–25 महाभूत (पांच)	वेदान्ती मूल तत्व नहीं मानते ।)	

श्रीमद्भगवद गीता का वर्गीकरण		**सिक्ख गुरुओं के अनुसार वर्गीकरण**
1. परा प्रकृति		1. अफुर ब्रह्म (निर्गुण ब्रह्म)
2. अपरा प्रकृति ।		2. सफुर ब्रह्म (सगुण ब्रह्म)
3. महत् (बुद्धि) ।	अपरा प्रकृति	3. हउमै (अहंकार)
4. अहंकार	के आठ प्रकार	4. जीव (आत्मा)

5–9 पांच तन्मात्राएं		5. प्रकृति और उसके बीस विकार
10. मन		6–10 तन्मात्राएं ।
11–15. पांच ज्ञानेन्द्रियां	विकार होने	11–15. पांच ज्ञानेन्द्रियां
16–20. पांच कर्मेन्द्रियां	के कारण	16–20. पांच कर्मेन्द्रियां प्रकृति के
21–25 पांच महाभूत	इन 15 तत्वों की	21–25. पांच महाभूत बीस विकार
	विकार हो के कारण इन 15 तत्व की गणना मूल तत्वों से नहीं की गई ।	

निर्मल सन्तों ने ईश्वर के अस्तित्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिपादित किया है । भारतीय षड्दर्शन का गहन अध्ययन होने के कारण वे अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए किसी भी वे भी वेद, वेदांग, उपनिषद, में से उद्धरण ले लेते हैं । 'माया' का सन्दर्भ स्पष्ट करने के लिए उन्होंने आभास वादी, प्रतिबिम्बवादी तथा अवच्छेदवादी विचार धारा का प्रतिपादन किया है और निष्कर्ष रूप में ईश्वर, प्रकृति जीव और माया का निरूपण किया है । निर्मल सन्तों की यह विशेषता है कि किसी भी बात को कहने के लिए वे पहले सिद्धान्त को लेते हैं । फिर उसी सिद्धान्त के आधार पर अपने विचारों की पुष्टि करते हैं । यथा इस उद्धरण में ।

शुद्ध चेतन से अवच्छेद करने वाली ईश्वर की उपाधि माया है, तैसे शुद्ध चेतन का आभास ग्रहण करने वाली बा शुद्ध चेतन में अवच्छेद करने वाली तस त्वं पद वाच्य की उपाधि बुद्धि कहिए हैं, पुनः माया में आभासित का वा मायावच्छिन्न का जैसे ईश्वर नाम है, तैसे बुद्धि में आभासित का वा बुध्यवच्छिन्न का जीव नाम कहिए हैं, इहां यह भाव है = जीव ईश के स्वरूप निर्णय में प्रथम आचार्यों के आभास प्रतिबिम्ब, अवच्छेद, तीन वाद हैं, तीनों में 'आभास' पंचदशीकारादिकों का है, 'प्रतिबिम्ब' विवरणाचार्य का है, 'अवच्छेद' वाचस्पति मित्र का है । आभास प्रतिबिम्ब का इतना भेद है – आभासवादी उपाधिरूप उपादान में बिम्ब वस्तु की समीपता रूप निमित से आभास धर्मी की उत्पत्ति माने हैं, प्रतिबिम्बवादी उपाधि की समीपता रूप निमित से बिम्ब रूप उपादान में बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्व धर्मों की उत्पत्ति माने हैं, अवच्छेद वाद का ओ इन दोने का इतना भेद है, दोनो वादी जल में चन्द्र सूर्यादि रूपवान बिम्बों के, वा आकाशरूप नीरूप बिम्ब बिम्ब के आभास प्रतिबिम्बवत् उपाधियों में चेतन का आभास प्रतिबिम्ब माने हैं, अवच्छेदवादी नीरूप वस्तु में नीरूप वस्तु के आभास प्रतिबिम्ब खण्डन कर, घट मठादि रूप उपाधियों से आकाश के अवच्छेदवत् अन्तःकरण माया रूप उपाधियों से शुद्ध का अवच्छेद माने हैं, आगे आभास प्रतिबिम्ब का हेतु उपाधियां भी आभासवादी मतभेद से अन्तःकरण, अविद्या, वा माया, अविद्या रूप माने हैं । प्रतिबिम्बवादी एक अज्ञान ही माने हैं, अवच्छेदवादी

अन्तःकरण, तद्भाव का माया अविद्या माने हैं, चेतन के आभासवादी कोई तीन भेद माने हैं, कोई चार माने हैं, प्रतिबिम्बवादी दो माने हैं, अवच्छेदवादी तीन माने हैं, सोई संदीप से सर्व दिखावे हैं – 'कार्य रूप अन्तःकरण उपाधि में चेतन का आभास जीव कहिए है, कारण रूप उपाधि में चेतन का आभास ईश्वर कहिए हैं, बिम्ब चेतन शुद्ध कहिए हैं, यह सर्वज्ञ मुनि कहे हैं, शुद्ध चेतन के आश्रित मूल प्रकृति में चेतन का आभास ईश्वर कहिए हैं, मूल प्रकृति के अविद्या रूप अनन्त अंशों में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहिए हैं, बिम्ब चेतन शुद्ध कहिए है यह प्रकटार्थकार कहे हैं, शुद्ध सत्वगुण प्रधान माया में चेतन का प्रतिबिम्ब ईश्वर कहिए हैं, मलिन सत्वगुण प्रधान अविद्या में चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहिए हैं ।[83] प्रत्येक सम्प्रदाय का आराधना, उपासना अनुष्ठान का ढंग भिन्न होता है । भले ही कोई मत निर्गुण ब्रह्म की विचारधारा को अपनाए अथवा सगुण ब्रह्म का किसी न किसी ढंग से उसको पाना या प्रसन्न करना उसका उद्देश्य होता है । नवधा भक्ति में इन प्रकारों का उल्लेख मिलता है ।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान
चौथि भगति मम गुन गन करह कपट तजिगान
मन्त्र जाप मम दृढ विश्वासा
पंचम भजन सो वेद प्रकासा
छठ दम सील बिरत बहु करमा,
निरत निरंतर सज्जन धरमा
सातव सम मोहिमय जग देखा
मोते अधिक सन्त करि लेखा
आठव जथा लाभ संतोषा,
सपनेह नहि देखइ परदोषा
नवम सरल सब सन छल हीना
मम भरोस हिय हरष न दीना ।[84]

निर्मल सन्तों ने आर्ति (आरती) को अपनी पूजा पद्धति में अत्यंत महत्वपूर्ण ... दिया है । इनकी पूजा पद्धति में सनातनी पूजा पद्धति का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है । जैसा कि इनके पूजा के ढंग से भली भांति पता चल जाता है । निर्मल पंचायती अखाड़ा के अनुसार सभी डेरों में सभी निर्मल सन्तों द्वारा निम्नलिखित ढंग से आर्ति (आरती) करने का निर्देश दिया गया है । निर्मल आर्ति सम्बन्धों कुछ नियम इस प्रकार है –

आर्ति–विचार

हर–एक धर्म में कुछ–न–कुछ करने योग्य क्रियाएं अवश्य रहा करती हैं । उन क्रियाओं का सम्बन्ध दार्शनिक पदार्थों के साथ रहता है ।

सनातन धर्म में प्रतिपादित क्रियाओं का भेद रहने पर भी उन सभी क्रियाओं का उद्देश्य जीवात्मा को अपने मूल स्वरूप में ले जाना ही रहता है । क्रियाओं की आचारपद्धति में भेद होने से धर्म में भेद का आभास होता है, वस्तुतः सभी जीवों का प्राप्तव्य एक तरह से धर्म एक ही है । शिष्ट पुरुषों ने भी परम धर्म एक ही कहा है । क्रियाधर्म ही अनेक हैं ।

परम धर्म कभी भी बदलता नहीं है, क्रिया धर्म काल भेद से, देशभेद से अवस्थाभेद से लोगों के भेद से अनेक होने पर भी परम धर्म एक ही रहता है । अतः सभी जीवों का धर्म वस्तुतः एक ही है ।

आज हम भिन्न रूप से आभासमान अनेक धर्मों के क्रियाकलापों में प्राधान्य रूप से विद्यमान आर्ति नाम के एक अंग का विचार करते हैं ।

आर्यवर्त में विद्यमान अनेक भिन्न–भिन्न क्रिया–धर्मों का सम्बन्ध साक्षात् या परम्परा वेदों के साथ हैं, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि अनेक क्रिया–धर्मों के उपदेशटा आचार्युगण वेदोवत क्रिया – धर्म का आचरण करते हैं । उन्होंने परिस्थिति के अनुसार अपने–अपने अनुभव से कुछ–कुछ क्रिया – धर्मों का परिवर्तन कर दिया है, यह अनेक क्रिया–धर्म के भिन्न–भिन्न रीति से दिए गए उपदेशों से प्रतीत होता है, अस्तु ।

वैदिक धर्म कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड नामक तीन काण्डों से विभक्त हैं । कर्मकाण्ड परमधर्म का वाहय् साधन है और ज्ञानकाण्ड अभ्यन्तर (अन्तरंग) साधन है । उपासनाकाण्ड दोनो के सम्बद्ध करने वाला बीच का है ।

'आर्ति' शब्द का मतलब यही है कि पर–परमेश्वर में उत्कट प्रेम का या जीवात्मा की परमेश्वर के निकट स्थिति करने का साधन दीप जलाने का कोई कोई मतलब यह कहते हैं कि देवता को प्रकाशित करना है । परन्तु इस पर यह शंका होती है कि अनन्त सूर्य के समान तेजस्वी परमात्मा को दीप से प्रकाशित करना वृथा ही है, इसलिए देवता को प्रकाशित करना दीपक जलाने का प्रयोजन ही नहीं है किन्तु यह अभिप्राय है कि तेजस्वी परमात्मा की सन्निधि में किंचित् तेजस्वी जीवात्मा भौतिक तेज द्वारा प्राप्त होता है । अर्थात् यह ज्योतित्रय का मीलन है । अथवा यों कहिए त्रिपुटी का लय है ।

अथवा गंगा, यमुना, सरस्वती का मीलन है, अति तेजस्वी गंगा स्वरूप परमात्मा का मलिन तेजस्वी जीवस्वरूप यमुना का मध्यवर्ती भौतिक तेजः स्वरूप आर्ति सरस्वती द्वारा मीलन है ।

विलक्षण शब्द से तथा विलक्षण ज्योति से बाहर घूमती हुई चितवृति संकुचित होकर एक लक्ष्य में लीन होती है, यह तो कथा में बच्चों के चित का लय हो जाना और तीक्ष्ण

विद्युत प्रकाश में मनुष्यादिकों का बेहोश हो जाना प्रसिद्ध है, इसी अभिप्राय से विशिष्ट वाद्य की योजना भी की गई है । जीवात्मा जब तक परमात्मा से हट कर विषयसन्निध है, तब तक निर्बल है और परमेश्वर के सन्निध रोज प्राप्त होने से विशिष्ट–शक्ति युक्त होता है ।

यद्यपि कहींकहीं सन्तों महापुरुषों की वाणी में आर्ति के पदार्थ जुदे मालूम होते हैं, तथापि आर्ति न करो, ऐसा निषेध करने में अभिप्राय उनका नहीं है । किन्तु हमारे ऐसे उच्च कोटि के सन्त आर्ति इस प्रकार से करते हैं, जैसे सद्गुरु जी ने गगनरूपी थाल, चन्द्र, सूर्य, दीपक आदिक आर्ति के पदार्थ कहे हैं ।

निर्मल आर्ति करने का प्रकार :–

आर्ति करने के समय शिक्षित आर्ति करने वालों को पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो जाना चाहिए, रणसिंहे, शंख, और झांज आदि बजाने चाहिए अनन्तर लोप चण्डिका हो गयी से पाठ शुरू करना, रणसिंहे, शंख आदि का बजाना बन्द कर देना चाहिए ।

आर्ति करने वाला सज्जन सुन्दर साफ व सादे लिबास के वस्त्र पहन कर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के सन्मुख चौकी के पास खड़ा होकर तैयारी करे । जब मिल देवन के कुछ मंगल गावे तक पाठ आवे तब धूप देखा कर शंखों से तीन बार जल देने का भाव दिखलाना, रुमाली फेर कर, शरीर पोंछने का भाव दिखलाना, और खड़े होकर धूप देना चाहिए और जब संकटहरण सम सिद्ध की करण यह पाठ शुरू हो, तब दाहने हाथ से धूपदानी हिलाता हुआ बांये हाथ से घण्टी बजाता हुआ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रदक्षिणा हंस गति से करके अपने स्थान पर आकर खड़ा हो जावे तथा पेट ही के पट बीच बचावे पाठ हो जाने पर थाल में दीपक जलाने का आरम्भ करे । दीप जल जाने पर फिर पहले की तरह शंखी से जल दान और रूमाल फेरे बाद धूप फेरे । 'अभंग विभूते' पाठ पूरा होते होते प्रेम पूर्वक गुरु जी का ध्यान करता हुआ चौकी के पास बैठ कर हाथ जोड़ कर शिर झुका कर तीन बार प्रणाम करे 'गगन मय थाल' यह पाठ आते ही थाल को उठा कर बैठे बैठे फेरे । अनन्तर समय पर शीघ्रता से उठा कर थाल फेरना और ध्यान गुरु जी की तरफ रखना, इधर उधर देखना नहीं । 'नाम तेरा तुही चवर ढोला रे' पाठ आने पर थाल रख कर फिर पहले की तरह जलदान 'अर्घदान' रुमालदान, धूप या घृत का अंगुलियों से छीटा देकर धूप देना अनन्तर पहले की तरह तीन बार नमस्कार करना तथा 'दसअठा अठसठे चारे खाणी' यह पाठ शुरू होते ही थाल उठाएं 'शंखन की ध्वनि घण्टन की' इस पाठ के शुरू होते ही थाल शीघ्र फेरे मिल देवन के कुल मंगल गावै यह पाठ होने पर थाल चौकी के ऊपर रखे तथा अर्घ रूमाल धूप फिर क्रम से करे 'पार उतारनहार' यह पाठ आवे, तो शंखी से थोड़ा सा पानी घण्टी के शिर पर डाल कर दहने बांये छिड़क दें । यह सर्व क्रिया शिक्षा से आ सकती हैं । यहां खाली दिग्दर्शन मात्र कराया है ।[85]

सभी निर्मल डेरों में आरती के बाद पूजा की परिसमाप्ति से पहले श्री गुरु ग्रन्थ

साहिब जी की उपस्थिति में ही अरदास करने का भी निर्देश है । यह अरदास–लगभग सभी गुरुद्वारों और डेरों में की जाती है लेकिन आवश्यकतानुसार इसमें कुछ बढ़ाया भी जा सकता है । स्थान और काल के अनुसार कोई और निमित भी सम्मिलित किया जा सकता है ।

निर्मल अरदास (प्रार्थना)

एकओंकार श्री वाहगुरु जी की फते ।
श्री भगवती जी सहाय वार श्री भगवती जी की ।

पातसाही 10 दशमी ।

प्रथम भगौती (भगवती) सिमिर के गुरुनानक लई ध्याय ।
फिर अंगद ते अमरदास रामदासै होई सहाय ।।
अरजुन हरि गोविन्द नो सिमिरों श्री हरिराय ।
श्री हरिकृष्ण ध्याइए जिस डिठै (देखे) सब दुःख जाय ।।
गुरु तेगबहादुर सिमिरिये धर नउ (व) निधि आवै धाय ।
सब थाई (स्थान में) होय सहाय ।।
दशम पातसाह श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज सर्वत्र
होना जी सहाय ।।

मुक्ति के दाता नाम के भण्डार अमृतमयी वाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का ध्यान धर के बोलो जी श्री वाहगुरु । पांच प्यारे चार साहिबजादे चालीस मुक्ते जिन्होंने भगवन्नाम का जप किया तप किया धर्म खातिर श्री दिये सत्य पथ नहीं छोड़ा उन महापुरुषों का ध्यान करके बोलो जी श्री वाहगुरु । जिन महात्माओं ने कठन तपश्च्यर्या से पंचायती अखाड़े स्थापित किए तथा संसार भर में जगदगुरु श्री गुरु नानकदेव जी के नाम का झण्डा झुलाया उन सर्वोच्च तपस्वी विरक्त महापुरुषों का ध्यान धर कर बोलो जी श्री वाहगुरु । जिन्होंने घोर परिश्रम से उच्च विद्या प्राप्त कर मण्डलियों द्वारा निर्मल गुरुमत का प्रचार किया तथा शान्तिदाता शअरी वाहगुरु नामा+मृत पान कराके कोटान कोटि जीवों का उद्धार किया, उन विद्वानों महापुरुषों का ध्यान धर कर बोलो श्री वाहेगुरु । श्री ननकाना साहिब, खडूर साहब, गोंदवाल साहिब अमृतसर तरणतारण पटना, पोंटा, आनन्दपुर, अविचल नगर, हजूर साहिब आदि सर्व गुरु स्थानों का ध्यान धर बोलो जी श्री वाहगुरु । श्री गंगा गुदावरी, गया, प्रयागराज, काशी, आदिक प्राचीन तीर्थों का ध्यान धर कर साधु संगत बोलो जी वाहिगुरु । जहां जहां आपके दास वहां वहां रक्षा, आपके दासों का मन नम्र मति ऊंची मति के रक्षक आप सद्गुरु जी, दासों को नामदान, शीलदान, विश्वासदान श्री अमृतसर जी के स्नान, दर्शन दान, सर्वत्र सुखवर्ते बोलो जी श्री वाहगुरु ।

धर्म स्थान अटल धर्म का जयकार आपके नाम का प्रकाश साधु का संग नाम का रंग सोई प्यारे मिले, जिनके मिलने से स्वास–स्वास आपका ध्यान बना रहे बोलो जी श्री वाहेगुरु ।

हे दीनों के सहायक, शरणपालक, धर्म रक्षक, लोक–परलोक में सहायक जगदीश्वर पतित–पावन, जगनियन्ता, निराश्रियों के आश्रय, सच्चिदानन्द स्वरूप, श्री गुरु नानक देव श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज आपकी शरण में आए हैं कलियुग में काम क्रोध आदिकों से रक्षा कीजिए, आसुरी सम्पत्ति के गुणों का नाश कीजिये, देवी सम्पत्ति के गुणों का प्रकाश कीजिए, हे नारायण अन्तर्यामी आपके सम्मुख सन्ध्या समय रहरास जो का पाठ किया है, और सर्व साधुओं तथा सत्संगियों ने मिल कर सवैयें दोहों कबित्तों शब्दों सहित आर्ति की है अक्षर मात्रा आदि की भूल हुई हो सो क्षमा करना सच्च खण्ड में परवान हो । श्री गुरु नानक नाम चढ़ती कला, आपके भाने सर्व का भला ।[86]

इस प्रकार निर्मल सन्तों की दार्शनिक दृष्टि का आधार वैदिक एवं गुरमत दर्शन का समन्वयात्मक रूप है । निर्मल सन्तों का लक्ष्य था गुरुवाणीं का सन्देश जन साधारण तक पहुंचाना । अतः उन्होंने जहां सरलतम भाषा और शैली को अपनी व्याख्या का माध्यम बनाया बड़ा उन्होंने अन्य ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत कर अपनी बात को अत्यधिक सम्प्रेषणीय बनाया यही कारण है कि निर्मल सन्तों को गुरुवाणी की दार्शनिक चेतना को पंजाब से बाहर प्रसारित करने में आशातीत सफलता मिली है ।

• • • • • •

(ख) पंजाब के अन्य सम्प्रदायों से सम्बन्ध

1. सिक्ख मत :–

सिक्ख धर्म के प्रवर्त्तक श्री गुरु नानकदेव जी ने जिस शिष्य परम्परा का आरम्भ किया था, उसमें सभी के लिए खुला निमन्त्रण था । पहले पहले गुरु जी के समय में बहुत से सनातनी पद्धति पर विश्वास रखने वाले लोग भी गुरु जी के सिद्धान्तों को मानते थे यह परम्परा बहुत देर तक चली । कालांतर में सिंह सभा लहर और गुरु द्वारा प्रबन्धक कमेटी के गठन से सिक्ख धर्म की मान्यताओं को मानने वाले को ही सिक्ख समझा जाने लगा । सिक्ख सम्प्रदाय में गुरु नानक देव जी की मान्यताओं को मानने वाला ही सिक्ख है । कालान्तर में इसकी परिभाषा बदली पंचमेश ने गुरु ग्रन्थ साहिब का सम्पादन किया और दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह ने इसे गुरु का पद सौंप दिया । तब 'सिक्ख' शब्द का अर्थ हुआ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' को गुरु मानने वाला । सिक्ख के लिए' शर्त एक ही है, जो सब के लिए है कि 'गुरु ग्रन्थ साहिब' पर भरोसा रखते हुए गुरुमत के धारणी हों । गुरुद्वारा चुनाव के लिए यही परिभाषा दी गी थी, जिसे दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की ओर से बदल कर सहज धारी सिक्खों को वोट के अधिकार से वंचित कर सिक्खी के कार्यक्षेत्र [illegible] सीमित कर दिया गया है ।[87] सिक्ख का अर्थ सामान्यतः केवल पांच ककारों को मान्यता गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरु मानना तथा कभी–कभी अमृत धारण करना ही मान लिया [illegible]

है । मगर व्यापक अर्थ में सिक्ख शब्द का प्रयोग गुरु शिष्य परम्परा के सन्दर्भ में दस गुरुओं में श्रद्धाभाव रखने वाला गुरुवाणी में विश्वास रखने वाला व्यक्ति भी सच्चा सिक्ख है । वास्तव में सीखने वाला ही सिक्ख है, जिसने गुरु की सीख (शिक्षा) को अपना लिया है । वही सिक्ख है । सिक्ख गुरु के बताए मार्ग का अनुसरण करता है ।

सिक्ख गुरुओं ने अपने द्वारा निर्धारित गुणों को धारण करने वाले व्यक्ति को सिक्ख की संज्ञा प्रदान की है, जिस शब्द की उत्पत्ति शिष्य से हुई है । स्पष्ट है कि सिक्ख का कार्य एक दम सीखते रहना है । "......ज्ञान की खोज में वह अपने अज्ञान को ही पहचानता है, यही शोधक ज्ञानी या विद्वान सिक्ख गुरुओं का सिक्ख है सिक्ख केवल बाहरी साम्प्रदायिक आचरण धारण करने वाला ही नहीं होता । वह देश काल जाति और वर्ण की सीमाओं से ऊपर है परे हैं ।[88] सिक्ख एक मर्यादा का पालन करता है, जो मार्ग उसके गुरु ने बनाया है, उस पर चलना उसका प्रथम कर्त्तव्य है । भले ही उसके लिए उसे कितना बड़ा त्याग करना पड़े । सिक्ख गुरुओं ने अपने अनुयाइयों को सन्मार्ग पर लाने के लिए तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों एव आडम्बरों से मुक्त करने का प्रयास किया और एक आदर्श मार्ग की स्थापना की जो कालान्तर में सिक्ख धर्म के नाम प्रचलित हुआ । 'सिक्ख वैदिक रहस्यों के कट्टर पाबन्द नहीं व यज्ञोपवीत उनके लिए अनिवार्य नहीं इस पूर्ववर्ती रसम का स्थान अमृत छकने के लिए ले लिया है ।'[89]

इस परम्परा में भी कुछ मर्यादाओं को ध्यान में रख कर ही योग्य अथवा सुपात्र को ही दीक्षित किया जाता है । अमृतपान कराने के पूर्व दृढ आस्था एवं विश्वसनीयता का होना बहुत जरुरी है । वास्तव में सिक्ख धर्म चिरकालीन सनातन धर्म का ही परिमार्जित एवं सुसंस्कृत रूप है । कतिपय दोषों के कारण हिन्दू धर्म में कुछ विकार पैदा हो गए थे । जिसके कारण जनता पथभ्रष्ट हो रही थी । कुछ नएपन के साथ जनता का मार्ग दर्शन करना आवश्यक हो गया था । यह कार्य सिक्ख धर्म के प्रथम गुरु गुरु नानक ने किया उन्होंने समय की आवश्यकता के अनुसार कुछ परिवर्तन किये । सिक्ख धर्म और साधारण हिन्दू धर्म में बहुत से सामान्य लक्षण होने पर भी कई ऐसी बाते हैं, जो सिक्ख धर्म को जन साधारण के हिन्दू धर्म से अलग करती है ।

गुरु नानक देव ने सनातन धर्म में जो भ्रामक स्थितियां पैदा करने वाली बातें सम्मिलित हो गई थी, उनका निराकरण करके मूल रूप में उसे प्रस्तुत किया । बाद में आने वाले सभी सिक्ख गुरुओं ने लगभग उन्हीं के सिद्धान्तों का अनुसरण किया । पंचमेश गुरु अर्जुन ने उन्हीं के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले कवियों की रचनाओं को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्मिलित किया ।[90] यही कारण है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब मे पूरे देश के कवियों की वाणी सम्मिलित की गई है । उसमें भारतीय दर्शन की मूल अवधारणा विद्यमान है । जन साधारण की सुविधा हेतु उसमें कुछ सन्दर्भगत बातें अवश्य सम्मिलित की गई हैं । लेकिन उसमें भारतीय संस्कृति, साहित्य और दर्शन का अमर सन्देश सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता है ।

'सिक्ख धर्म अपनी धार्मिक पुस्तक में बिल्कुल भारतीय है और राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण रखता है । गुरु ग्रन्थ साहिब अपने आप में एक वेद है । सिक्ख धर्म नितान्त भारतीय धर्म है लेकिन उसका दृष्टिकोण सारे भारतीय मतों को मिलाने का है ।'[91]

यही कारण है कि सिक्ख धर्म आज भी अपनी जड़ें निरन्तर सुदृढ़ किए जा रहा है, सभी धर्मों और सम्प्रदायों में सब से लोक प्रिय और अधिक प्रचलित और प्रसारित सिक्ख धर्म अपनी विलक्षणताओं के कारण आज विदेशों में भी अपनी स्थिति को दृढ़ कर रहा है । सिक्ख धर्म अपनी अनेक साम्प्रदायिक शाखाओं के रूप में अपने गुरुओं के सिद्धान्तों और उपदेशों को सर्वत्र प्रसारित करने में आज भी निरन्तर कार्यरत हैं । निर्मल सन्त, उदासी सन्त, सेवा पन्थी अपने डेरों, मठों और गुरुद्वारों में तथा प्रचार मण्डलों द्वारा स्थान–स्थान पर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक घूम–घूम कर गुरुवाणी की अमृत–वर्षा करते हुए सच्चा सिक्ख होने की भूमिका निभा रहे हैं ।

दशम गुरु गोबिन्दसिंह जी के काल तक सिक्खों की संख्या बहुत बढ़ गई थी । एक अच्छे प्रबन्ध के रूप में गुरु गोबिन्दसिंह जी ने 'खालसा' की स्थापना के बाद अपने शिष्यों को कुछ विशेष कार्य सौंप दिए थे, लेकिन इन सब का मुख्य उद्देश्य था सिक्ख धर्म और गुरु घर की सेवा मार्ग अलग–अलग थे उद्देश्य एक ही था । इन कार्यों से निर्मल सन्तों को विशेष रूप से अध्ययन अध्यापन का कार्य दिया गया । लेकिन कुछ विद्वानों ने इस सम्प्रदाय के विषय में भ्रामक स्थिति उत्पन्न कर दी है । उनके प्रचार को सन्देहात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा है । मगर ऐसा नहीं है । वे भी अन्य सम्प्रदायों के समान ही सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार करते हैं ।

–अगर निर्मल सन्त कोई अलग सम्प्रदाय होते तो इनके बनाए सिक्ख निर्मल होते परन्तु हम क्या देखते हैं ? उदासियों (सन्त) निर्मल सन्तों के प्रदेशों के प्रदेश सिक्ख बनाए हैं वे उदासी निर्मल सन्त आदि नहीं बने अपितु सामान्य सिक्ख बने ।[92]

निर्मल सन्त भी गुरवाणी की व्याख्या करते हैं । गुरुओं के बताए मार्ग को औरों को बताते हैं । गुरुओं के सन्देश और उपदेश का अनुसरण करते हैं और दूसरों को कराते हैं । गुरु जी की अवधारणा के अनुकूल ही निर्मल सन्तों ने गुरवाणी की व्याख्या की है । गुरु जी ने ही उन्हें विशेष उद्देश्य से काशी अध्ययनार्थ भेजा था ताकि वे गुरुवाणी की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति और दर्शन का अध्ययन करके उसके गूढ़ रहस्यों को जान सकें । गुरु नानक देव जी ने जिन बातों का खण्डन किया है, उन्हें तार्किक बना सकें । गुरु नानक देव जी ने सामाजिक अनिवार्यताओं को ध्यान में रख कर कुछ नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था । जो उनकी वाणी में अभिप्रेत है । उन्होंने समाज की दयनीय दशा को देख कर जन साधारण को जे दिशा निर्देश दिया था, उसका मूल सारांश इस प्रकार है :

1. एक ईश्वर की सत्यता में विश्वास और उसके हुक्म के सन्मुख नतमस्तक होना ।
2. उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को समान रूप में परम–सत्य परमात्मा की

उपासना के लिए पुकारा और बताया कि उसमें विश्वास, उसकी कृपा तथा सदाचार सब आवश्यक है ।

3. गुरु नानक ने भारत की परम्परित–दार्शनिकता को लोक–प्रिय बनाया और परिस्थिति के सांचे में ढाल कर नवीन रूप प्रदान किया ।
4. गुरु नानक ने मुहम्मद साहिब और हिन्दू अवतारों, दोनों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा ।
5. जादू, टोनों, कर्म–काण्ड एवं आडम्बर का विरोध किया और हिन्दुओं और मुसलमानों में समन्वय प्रस्तुत किया । घर–बार का त्याग निषेध ठहराया ।
6. गुरु नानक ने अपने शिष्यों को सामाजिक बुराइयों से बचने का आदेश दिया, तथापि उनके सुधार मुख्यतः सामाजिक न होकर आध्यात्मिक और नैतिक ही थे ।
7. गुरु नानक ने अपने शिष्यों का कोई नया समाज या सम्प्रदाय खड़ा नहीं किया ।
8. गुरु–कृपा से मन का संयम एवं मन के संयम से नाम–स्मरण में चित्त लगना की यथार्थता प्रस्तुत की गई ।
9. नाम–स्मरण तथा हुक्म पालन ही गुरु नानक ने मुक्ति का एक–मात्र साधन माना ।[93]

इन्हीं सिद्धान्तों का मूल रूप में प्रतिपादन करने वाला मनुष्य ही सिक्ख है । सिक्ख श्री गुरु नानक के बताए मार्ग का पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा से पालन करता है । मानवता की निष्काम सेवा करना ही उसका कर्त्तव्य एवं धर्म है । इन उक्त विचारों का पालन करना ही सच्चे सिक्ख की पहचान है ।

2. उदासी :–

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही मानव सामाजिकता के साथ–साथ जीवन के आरम्भिक काल से ही उदासीन अथवा उदासी भाव को अपना कर चला है । सिद्ध साधक एवं साधु सन्त बहुत पहले ही जंगलों के एकान्त वातावरण में अपने आश्रमों कुटियों में साधना करते रहे हैं । उनमें से अनेक गृहस्थी भी हुए हैं और आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले भी । मगर उदासीनता अथवा उदासी होने का तात्पर्य जीवन से पलायन कदापि नहीं है । उदासीनता की अवस्था तो दृढ़ आस्था की परिचायिका है । कालान्तर में 'उदासी' शब्द का अर्थ व्यावहारिक दृष्टि से परिवर्तित होता चला गया ।

"–पंजाब में उदासी मत का उदय एवं नाथमत का ह्रास लगभग एक ही समय होता है । उदासीमत वस्तुतः उस स्थान की पूर्ति करता दृष्टिगत होता है, जो नाथमत के लुप्त हो जाने से रिक्त हो गया था ।[94] बाद में एक ही प्रवृत्ति के साधु जब एकत्रित होकर एक आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य से अपने को एक सम्प्रदाय के रूप में संगठित कर धर्म प्रचार के कार्य में जुट गए, तो लगभग तभी उदासी मत का उद्भव हुआ । उसकी परिभाषा में भी परिवर्तन हुआ, सिक्ख मत के अनुसार –

उदासीन साधु शब्द के प्रयोग से उस व्यक्ति का तात्पर्य होगा जो आचार्य श्री चन्द देव द्वारा स्थापित परम्परा तथा सिद्धान्तों के अनुसार उदासीन सम्प्रदाय में नियमानुसार दीक्षित हो । इसे विरक्त तथा जटाजूट धारी रहना होगा ...." ।[95]

इस प्रकार गुरु नानकदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र बाबा श्री चन्द जी को उदासीन सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक माना जाता है । मगर कुछ विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं, उसका कथन है कि इससे पूर्व गुरु नानक देव जी ने अपनी चारों दिशाओं में चारों उदासियों द्वारा इस उदासी मत का सूत्रपात किया था । और उन्होंने स्वयं उदासी सन्तों की वेशभूषा धारण की थी । अतः इस मत का आरम्भ गुरु नानक देव से ही माना जाना चाहिए ।

फिरि बाबा आइया करतापुरि
भेखु उदासी सगल उतारा ।[96] वार प्रथम पउड़ी 33

जो भी हो, उदासी सन्त गुरु नानक के सिद्धान्तों को मानते हैं और गुरुवाणी का पाठ करते हैं । उनके पूजा पाठ के ढंग में कुछ वैदिक पद्धति के अनुसार हैं । उदासी सन्त, मुण्डित और जटाधारी, सतगुर के अद्वितीय, अन्य भक्त और गुरुवाणी के प्राचीन प्रचारक है । इनका इष्ट दस सतगुरुओं की ज्योति और उस ज्योति का प्रकाश, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब ही है परन्तु यह अपने आपको प्रायः नानक पन्थी अथवा उदासी सन्त ही कहते हैं । सिक्ख शब्द का प्रयोग नहीं करते और अपने आपको हिन्दू कह कर प्रसन्न होते हैं ।[97]

नवमेश गुरु तेग बहादुर ने भी विरक्तभाव से रहने का सन्देश दिया था । मगर उन्होंने संसार त्याग के लिए नहीं अपितु रहते हुए वीतराग भाव से इसमें लिप्त न होने को कहा है । आशाएं, इच्छाएं ही मनुष्य को मोहित करती हैं, अतः उन्होंने इनके त्याग करके छुटकारा पाने की बात कही है ।

आसा मनसा सगल त्यागे
जग ते रहे निरासा ॥[98]

आज तक भी उदासी सन्त सिक्ख गुरुओं को विशेषतः गुरु नानक को गुरु रूप में स्मरण करते हैं और श्री चन्द को बाबा रूप में । इस तथ्य से यह भी संकेत मिलता है कि श्री चन्द इस सम्प्रदाय के आदि संचालक न थे ।[99]

स्वयं गुरु नानक ने अपनी यात्राओं के दौरान उदासियों (सन्तों) का भेष धारण कर धर्म प्रचार किया ।

"....... वस्तुतः सिक्ख साहित्य में उदासी का सर्वप्रथम प्रयोग गुरु नानक की यात्राओं के प्रसंग में ही हुआ है ।"[100]

भाई गुरदास ने गुरु नानकदेव जी के उदासी वेश से ही 'उदासी' परम्परा का आरम्भ माना है । उन्होंने प्रथम वार में लिखा है ।

बाबे भेष बणाइया, उदासी की रीति चलाइं ॥[101]

ज्ञान रत्नावली वार प्रथम, पउड़ी 24

कुछ विद्वानों ने सिक्ख परम्परा के छठे गुरु के पुत्र बाबा गुरदित्ता जी को इस

परम्परा के सूत्रपात का श्रेय दिया है । उनके अनुसार सम्प्रदाय ने सक्रिय रूप बाबा गुरदित्ता (1670–16–95) के समय ही धारण किया । बाबा गुरुदित्ता के चार सेवक हुए । बालू हसना, अलमस्त, फूलशाह और गोयंद । इन चार के अतिरिक्त छः और महानुभावों को भी उदासी भेष की बखशिश सप्तम, नवम् , एवं दशम गुरु द्वारा दी गई चार घूनियां एवं छः बखशिशों में ही सारा उदासी सम्प्रदाय विकसित हुआ । इस प्रकार उदासी सम्प्रदाय का उद्‌भव गुरु नानक देव से होकर सभी गुरुओं के आशिष और सहयोग से सक्रिय रूप में पल्लवित होकर एक अलग पहचान बनाने में समर्थ सिद्ध हुआ । आरम्भ में यह सम्प्रदाय संगठित रूप में न था बाद में साधुओं की मण्डलियों के गठन के फलस्वरूप तथा बाबा श्री चन्द के निदेशों का पालन करने वाले साधु वर्ग के गुरुवाणी प्रचार एवं धर्म प्रसार के कारण यह गठन एक सम्प्रदाय के रूप में सामने आया । धीरे–धीरे सैद्धान्तिक रूप में कुछ मान्यताओं की विशिष्टता के कारण यह भिन्न सम्प्रदाय के रूप में जनता के सामने आया ।

गुरु नानक के समय में ही उनके पुत्र श्री चन्द ने उदासी सम्प्रदाय की नींव डाली और यह सम्प्रदाय गुरु परम्परा से पृथक हो गया ।[102] मध्ययुगीन धार्मिक विसंगतियों के परिवेश में सम्प्रदायों के गठन एवं सिद्धान्त निरूपण की एक परम्परा सी चल पड़ी थी । इस परम्परा के अन्तर्गत सिक्ख धर्म भी अनेक सम्प्रदायों के माध्यम से विकसित हुआ । साधुओं सन्तों के प्रचार द्वारा जहां गुरुवाणी की व्याख्या एवं गुरुमत सिद्धान्तों के प्रतिपादन को वल मिला वहां विभिन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप इनकी परिष्कृत भावनाओं को स्वतन्त्रता से विकसित होने का अवसर भी मिला । सिक्ख धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों ने जहां अपने को सुनियोजित और अनुशासित किया वहां इन्होंने तत्कालीन परिवेश की परम्पराओं को भी अपनाया । यही कारण है कि उदासी सन्तों की व्याख्या पद्धति कुछ सनातनीं ढंग की हो गई और पूजा पाठ भी उसी ढंग से करने लगे ।

".......इन अखाडों में महन्तों के अतिरिक्त कोठारी पुजारी, कारोवारी, भण्डारी आदि अनेक साधु कार्यकर्ता रहते हैं ...... वे गाला साहिब के अतिरिक्त ठाकुर जी की प्रतिमा और वेद आदि वैदिक धर्मग्रन्थ भी रखते हैं ।"[103]

ये केश दाढ़ी भी रखते हैं और मुण्डित भी होते हैं । कुछ उदासी साधुओं के सिर पर जटाएं भी होती हैं । शरीर पर राख लगाना । धूनी रमाना । बगली चिमटा धारण करना । ये कुछ ऐसे चिन्ह हैं, जिनसे उदासी साधु मध्यकालीन निर्गुण वादी नाथ पन्थी साधुओं के करीब जान पड़ते हैं । गुरुवाणी का पाठ करना और गुरमत के सिद्धान्तों का प्रचार करना इनका प्रमुख कर्तव्य है । और यह इसका निष्ठा से पालन करते हैं ......

उदासीन सम्प्रदाय तथा मत के धार्मिक, व्यावहारिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सब उचित उपायों द्वारा प्रचार करना जिसमें संस्था के एक विभाग द्वारा भ्रमण करना तथा धर्मोपदेश देना भी सम्मिलित है ।[104] प्रायः देखा गया है कि इन्होंने गुरु

ग्रन्थ साहिब की बीडें पांच ग्रंथियां और जनमसाखियां लिखवा कर डेरों में स्थापित कीं। परन्तु अब उदासी सम्प्रदाय का कोई प्रचार नहीं हो रहा।

उदासी सन्तों का साहित्य सर्जन कम हो रहा है। आरम्भ के उदासी सन्त श्रद्धालु और धर्म प्रचारक अधिक थे, और विद्वान कम। इस लिए स्वामी आनन्दघन जैसा प्रतिभाशाली व्याख्याकार उदासी मत में प्रवेश किया। आनन्दघन जाति का ब्राह्मण और डेरा बाबा नानक में बहुत समय तक रहा। उसने जपुजी, आरती, ओंकार, सिद्ध गोष्टी, अनंद, आसा की वार, आदि कई प्रमुख बाणियों की टीकाएं लिखीं। इन टीकाओं में आनन्दघन की प्रमुख प्रवृत्ति अद्वितीय दृष्टिकोण की स्थापना है। यह अद्वैतवादी और पौराणिक साहित्य की बहुत बड़ी गहराई तक उतरा है। आगमां और तंत्रों से उसने पुष्टि के लिए अनेक प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत किए थे। वह काव्य शास्त्र का ही श्रेष्ठ विद्वान था। टीका करते समय गुरु नानक पंथ में पूजा की पवित्रता की प्रवृत्ति की होंद को मानना उदासी मत में पंच देव उपासना को सम्मिलित करने की प्रवृत्ति का पहला नमूना है। इस सम्प्रदाय के द्वितीय प्रमुख विद्वान और कवि सन्त रेण थे, जो कश्मीर के गौड ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए और धर्म प्रचारार्थ उदासी भेष में आए। यह स्वामी आनन्दघन के समकालीन थे। इन्हीं की पांच रचनाएं (श्री मत नानक दिग्विजय मन प्रबोध, बचन संग्रह, उदासी बोध, नानक बोध) में से श्री मत नानक दिग विजय विशेष प्रसिद्ध हैं, जो 347 अध्यायों में गुरुनानक चरित्र सम्बन्धी लगभग 25000 भार्गों का भाषा पुराण है। इस में सगुण भगती की परम्परा में ब्राह्मणवाद और अवतारवाद की पूर्ण स्थापना हुई है। वर्णाश्रम धर्म को भी पूरी तरह स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त सेवा दास उदासी कृत परची गुरु गोबिन्द जी की भी उपलब्ध है और अमृतसर के संगल वाले अखाड़ में सतगुरु निरवाण गंज नामक एक रचना संग्रह मिलता है। इस मत में भगवान की मिली–जुली परम्परा – निर्गुण–सगुण दोनो रूपों को ग्रहण करने से उपनिषदों और पुराणों का अनुसरण हुआ है। फलस्वरूप उदासी संत अवैदिक साधना–पद्धति को पछाड़ कर वैदिक धर्म का पुर्नस्थापन करते हैं। परन्तु परिब्राजक प्रवृति की अतिवादिता के कारण निरवाण उदासी सन्त जटा धारण करके और भस्म रमा हठ–योगियों की प्रकारांतर भूमिका निभाते हैं और इस तरह अपने मूल धार्मिक स्त्रोत से मतांतरिक होकर हठ–साधना का नवीनीकरण करते हैं।

सिक्ख धर्म का प्रचार करना उदासी सम्प्रदाय की होंद में लाने का मूल कारण है। धूणियां और बखशिशों की व्यवस्था के साथ उदासी साध धर्म प्रचार के मूल उद्देश्य को निभाने के लिए पूरी तरह जुट जाते है। वास्तव में सिक्ख धर्म के विकास में उदासी सन्तों की जो देन हैं, उससे सिक्ख धर्म के इतिहास का विद्यार्थी इन्कार नहीं कर सकता। सच तो यह है कि जे उदासी संत न होते तो आज हमें गुरु धाम बहुत कम नजर आते। गुरु नानक सम्बन्धी जितने भी गुरुधाम बने, देश के जिस कोने में बने, उससे बाहर भी बने, ये सब उदासी सन्तों की अद्वितीय देन है। घर–बाहर की चिंता से मुक्त हो कर इन सन्तों ने

जन्म साखियों में दिखाए स्थानों और वहां के निवासियों से पूछताछ करके गुरुधामों का उद्धार किया और वहां कथा–वार्ता करके गुरु नानक देव की धार्मिकता को दूर दूर तक पहुँचाया और सिक्ख मत का समूचे देश में विसतरण (विस्तार) किया । यह कार्य इन सन्तों ने ही संभव बनाया । उदासी साहित्य की प्रमुख प्रवृतियां इस प्रकार हैं । –

1. लगभग सारा उदासी साहित्य गुरुमुखी लिपि में है और उसकी भाषा का प्रधान स्वरूप हिन्दी वाला है ।
2. वैदांतिक चिंतन और पौराणिकता की पुनर्स्थापना सामान्य रूप में हुई है ।
3. सारा साहित्य गुरु नानक मत के प्रचार के लिए एक विशेष झुकाव से लिखा गया था, इस पूजा–प्रधान प्रचारात्मक प्रवृत्तियों के सभी दर्शन हो जाते हैं ।
4. यह साहित्य गद्य–पद्य दोनों रूपों में लिता है । अधिकतर गुरुवाणी की टीकायें, चरित ग्रन्थ और सैद्धांतिक पुस्तकें मिलती हैं । 20वीं सदी में लिखे गए उदासी साहित्य की सब से बड़ी प्रवृत्ति उनको सिक्ख पंथ से पृथकसिद्ध करने की रही है । इस लिए इस साहित्य में धार्मिक विचारों का स्थान उदासी सम्प्रदाय के ऐतिहासिक स्वरूप पर अधिक प्रकाश डाला गया है । इस काल में देव नागरी लिपि के माध्यम को प्राथमिकता दी जाने लगी । गुरुमुखी लिपि के जरिए लिखने वाले साधु–सन्तों की भाषा की शक्ल हिंदी से पंजाबी के साथ अधिक मेल खाने लगी ।

उदासी सन्तों की पूजा पद्धति और नित्य कर्म करने का ढंग सनातन ढंग का है । सिक्ख सम्प्रदाय के कई सिद्धान्तों से वे अलग है । उदासी मुख्यतः पूज्य पुरुषों की समाधियों, बाबा श्री चन्द जी, तथा गोला साहिब की ही मान्यता करते हैं । वे स्वाभाविक रूप से ही हिन्दू रीति रिवाजों को मानते हैं ।

जनवरी 1929 में न्यायपालिका के जजों द्वारा यह निर्णय दिया गया है कि उदासीन सिक्ख नहीं हैं । उस निर्णय का अंश यहां प्रस्तुत है ।

जज :– 'सम्भवतः उदासीन दसों गुरुओं और गुरु ग्रन्थ साहिब में श्रद्धा रखते हैं पर हम यह मानने के लिए तैयार नहीं कि उनका और कोई मजहब नहीं । इसलिए उदासी मजहब धारी सिक्ख नहीं कहे जा सकते ....'।[105]

इसके अतिरिक्त कोर्ट के फैसले के अनुसार केवल गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरु मानने या गुरुओं में आस्था रखने से कोई सिक्ख नहीं हो सकता । उसके लिए एक परम्परा, एक सैद्धान्तिक आधार भूमि जो गुरुओं द्वारा प्रतिष्ठित है उसका परिपालन अनिवार्य है, उनके कर्त्तव्य अकर्त्तव्य कर्मों को क्रियात्मक रूप से मानना अनिवार्य है ।

'....गुरु ग्रन्थ साहिब केवल सिक्खों की ही सम्पत्ति नहीं, उसमें केवल छः गुरुओं की वाणी है । शेष वाणियां हिन्दू मुस्लमान सन्तों की हैं । इसलिए यह पुस्तक हिन्दुओं को भी उतनी ही प्यारी है, जितनी कि सिक्खों को । इसलिए यह कहना उचित नहीं कि चूंकि उदासी ग्रन्थ साहिब को मानते हैं, इसलिए उन्हें सिक्ख कहा जाए । इसलिए उदासीन हिन्दू

साधु अपनी पूजा के कारण अपनी विशेषताओं के कारण सिक्खों में सम्मिलित नहीं किया जा सकते ।

मेरा अन्तिम फैसला है कि उदासी सिक्ख नहीं और यह डेरा सिक्ख गुरुद्वारा नहीं ।[106]

उदासीन सिक्ख नहीं, सन्त समाचार पुस्तक भंडार अमृतसर ।

उक्त फैसला इसलिए भी उदासियों के लिए लागू करना अनिवार्य हो गया था क्योंकि वे सिक्ख धर्म की मर्यादा के अनुकूल पूजा नहीं करते और अपने डेरों में सिक्ख गुरुद्वारों के समान गुरु ग्रन्थ साहिब की विचारधारा का पालन पूर्ण रूप से नहीं करते । वे गुरुवाणी और वेदान्त दोनों का मध्य मार्ग अपना कर चलते हैं । उदासी सन्तों की भक्ति परम्परा में निर्गुण और सगुण समान रूप से मान्य हैं । उनकी पूजा–पद्धति में पौराणिकता एवं औपनिषदिकता के दर्शन होते हैं ।

"...... यहां तक कि वे वेदान्ती है किन्तु वे माया के निराकरण के लिए तथा ब्रह्म और जीव के एकत्व के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति पर अधिक बल देते हैं । अज्ञान का प्रतिलोम ज्ञान नहीं बल्कि भक्ति है । इसके बिना भवपाश नहीं कटता । संक्षेप में उन्हें वेदान्ती भक्त कहना उपयुक्त होगा ।[107] यह ठीक है कि उदासी न्यायालय के उक्त निर्णय के अनुसार सिक्ख भले ही सिद्ध न हुए हों, तो भी जिस समन्वयात्मक पद्धति को अपना कर उन्होंने अपने डेरों की स्थापना कर गुरुवाणी के प्रचार प्रसार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, उसे आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता । जिससे गुरुवाणी और वैदिक विचारधारा दोनों को बल मिला । निश्चय ही यह उदासी सम्प्रदाय की अद्वितीय देन है ।

".....विशाल भारत में गुरमत का प्रचार करते हुए सबसे अधिक आवश्यक और लाभदायक काम उदासी और निर्मल सन्तों ने यह किया कि उन्होंने सिक्खों को हिन्दू महाराष्ट्र से अलग नहीं होने दिया यह इनके प्रचार का ही प्रभाव है कि अनेक हिन्दुओं और सिक्खों के झगड़ों के बावजूद भी य बड़े और छोटे भारत पुत्र एक दूसरे से अलग नहीं हुए और भविष्य में भी आशा है कि जब तक इन सन्तों का तप और तेज कायम है, ये दोनों अटूट प्रेम में जुड़े रहेंगे ।[108] आज भी विषम परिस्थितियों में भी जब मनुष्य संत्रास और तनाव की भयानक स्थिति से गुजर रहा है । गुरु नानक से गुरु गोबिन्द सिंह की परम्परा के दसों गुरुओं की आशिष से उद्भूत ये वरद्पुत्र अपने जप–तप संयम से पवित्र गुरुवाणी के प्रचार प्रसार से जन–जन के तप्त हृदयों को शान्त करने हेतु गुरुमन्त्र का अमृत संचार कर रहे हैं । इनके डेरे अमृत कुण्ड है, जहां दिन रात सरस्वती की आराधना होती है और हजारों लाखों लाभान्वित होकर लोग अपने जीवन को इनकी मधुर वाणी से सफल बनाते हैं ।

उदासी और निर्मल सन्तों के अखाड़े एक प्रकार के विश्वविद्यालय हैं । जिनसे दूर निकट के गाँवों–शहरों के डेरे सम्बंधित हैं, जो अपने–अपने अखाड़ों के लिए स्थानीय कालेजों के फर्ज पूरे करते हैं । ....उस गुरमत प्रचार का जीता–जागता अस्तित्व उदासी

और निर्मल सन्तों की तेजामयी मण्डलियों में पूर्णिमा के चान्द की तरह आज भी अपनी आदि प्रभा में ज्यों का त्यों प्रकाशमान हो रहा है ।[109]

अपने आन्तरिक गुणों और साम्प्रदायिक सांष्ठव के कारण तथा गुरु नानक जी के भेष एवं सन्देश को धारण करने के कारण ही आज भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में उदासी सन्त अपने डेरों के माध्यम से अपने अस्तित्व को स्थापित किए हुए हैं ।

3. सेवा–पन्थी :–

सेवा पंथ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक ऐसा पन्थ है कि जो सेवाभाव पर आधारित है, सेवा भाव को ही जीवन का परम उद्देश्य मान कर चलने वाला मार्ग । आज इसे सिक्ख धर्म के एक सम्प्रदाय के रूप में माना जाता है । चूंकि सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों के साथ–साथ इसके अनुयायियों ने सेवा भाव को मुख्य रूप से महत्व दिया है । गुरुनानक द्वारा प्रतिपादित इस सेवा भाव विशेषतः मानव सेवा के विविध आयामों को साधना का एक मात्र उद्देश्य मान कर पंजाब में एक साधु संघ की स्थापना हुई । इस संघ को उत्तरवर्ती लेखकों तथा इस संघ के अनुयायियों ने सेवा पन्थ यह एक सार्थक नाम दिया ।[110]

सेवा पन्थी साधु केवल विद्यापढ़ कर वाद विवाद करने वाले साधु नहीं थे अपितु उन्होंने साधना को अत्यधिक महत्व दिया है और जिज्ञासु को भी परमात्मा में लीन होने के लिए प्रेरित किया है । सेवापन्थी साधु वास्तव में सेवा मार्ग के लिए साधक थे ।

".....किसी परम वस्तु की सिद्धि के लिए किया गया मन वचन कर्म के लिए किया गया प्रयास आध्यात्मिक शब्दावली में साधना कहलाता है ।[111]

सेवा पन्थियों में परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्मरण अथवा नाम जाप को ही पार उतारा का एक साधन माना है ।

डा॰ शेरसिंह गुरुमत को नाम मार्ग ही कहते हैं, उन्होंने नाम के स्वरूप के विषय में विस्तृत विचार किया है । नाम क्या है ? इस विषय में सेवा पन्थियों ने कोई सैद्धान्तिक चर्चा नहीं की अपितु जिज्ञासुओं को नाम जपने के लिए कहा है ।[112]

साध संगत को गुरुमत में बहुत जरूरी माना है, साध संगत की परिभाषा डा॰ अवतार सिंह ने इस प्रकार की है ।

"अच्छे व्यक्तियों की सामाजिक एकत्रता जिसमें आध्यात्मिक साधना सहित और बहुत सी समस्याओं के बारे में विचार किया जाता है ।[113] साध संगत ही आदर्श समाज का दूसरा रूप है और ऐसे आदर्श समाज के अन्तर्गत भारत में आदि काल से ही समाज सेवा की भावना अत्यंत प्रबल रही है और इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है ।

"...जनता लोक कार्य करने के लिए तैयार रहती थी और उसमे अपनै सौभाग्य समझती थी । बाग लगवाना, उपवनों का निर्माण, पुल बनवाना, पानी पिलाने वाले बिठाना, कुएं लगवाना, और यात्रियों के आराम के लिए धर्मशाला बनाना अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य माने जाते थे ।[114]

सिक्खी में सेवा प्रधान है, सेवा का फल वे अन्त है और परमात्मा को मिलने के लिए सेवा जरूरी है क्योंकि जिज्ञासुओं का मन निर्मल होता है ।

"संसार के सभी धर्म समय गुजारने के साधन विकेन्द्रीकरण का शिकार हुए जिस कारण उनके अनुयायियों ने किसी विशेष सिद्धान्त अथवा व्यावाहारिक आचरण को अपना कर कठोरता पूर्ण धार्मिक नियमों से मुक्ति पाने के लिए अलग सम्प्रदाय बना लिए । सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जा सकता है कि सम्प्रदाय उन व्यक्तियों का संगठन है, जिनके विचार उसी धर्म के लोगों से कुछ सीमा तक भिन्न होते हैं ।[115]

सेवा पन्थी सम्प्रदाय सिक्ख धर्म की महत्त्वपूर्ण शाखा है, जिसके साधुओं ने सिक्खों के राजनैतिक एवं संघर्षमयी सिद्धान्त को नहीं अपनाया अपितु निर्लेप मठवासी बन कर, गृहस्थ और नारी से दूर रह कर सेवा को प्रधानता प्रदान कर लोक सेवा में लग कर रामनाथ जप कर मुक्ति को प्राप्त करना ही अपना आदर्श माना । अत्याचार और अत्याचारी का मुकाबला करने की अपेक्षा उसके जुल्म को हंसते हंसते सहन कर उसके मन परिवर्तन को ही उचित समझा । क्षमा करना इन्होने अच्छा समझा । इन निवृत्ति मार्गी साधुओं को भी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब और गुरुवाणी में पूर्ण आस्था है । यह गुरुमत के सदाचारी और आध्यात्मिक पक्ष के धारक और प्रचारक बन कर आदर्श जीवन बिताने को सब से अच्छा और श्रेष्ठ जानते हैं । भाई कन्हैया से लेकर लगभग अब तक इस सम्प्रदाय के साधु सेवा को अथाह महत्त्व देते हैं और अपने हाथों अभ्यागतों की सेवा करते हैं ।

सिक्ख धर्म में ही सेवा साधना में विशेष रुचि रखने वाले साधकों का एक ऐसा आत्मोत्सर्गी दल था जो दसों नाखूनों से काम करके मिल बैठ कर खाने के विश्वासाधीन शारीरिक श्रम द्वारा जीवन के मनोरथ को सम्पन्न करता हुआ संसार में विचरित हुआ । परम्परा के अनुसार भाई कन्हैया को इस पंथ का संचालक माना जाता है ।[116] भाई कन्हैया के पश्चात् सेवा भाव को अपनाने वाले साधु एक संगठन के रूप में डेरों और गुरुद्वारों में स्थापित होने लगे । बाद में इस संगठन में बहुत से महान पुरुष सम्मिलित हुए, जिन्होंने सेवापन्थ को एक विशाल सम्प्रदाय का रूप प्रदान किया । इनमें भाई सेवाराम और अड्डण शाह का नाम अग्रगण्य है । इन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य भी रचा है ।

भाई सेवाराम के नाम से सेवापन्थ प्रचलित हुआ और तेजस्वी सेवापंथी महात्मा भाई अड्डण शाह के महान व्यक्तित्व के कारण उनके शिष्य अड्डण शाही कहलाने लगे । दूसरा कारण कार्यक्षेत्र के अन्तर के कारण ये दो नाम पड़े वास्तव में ये सभी साधु सेवा पन्थी थे ।[117]

सेवापन्थ के आदि संचालक भाई कन्हैया जी का जन्म भाई नत्थूराम जी के घर वजीरावाद जिला गुजरांवाला के निकटवर्ती गांव में हुआ । प्रो॰ प्रीतम सिंह ने आपका जन्म १९८०-९० विक्रमी के आसपास माना है ।[118] बचपन से ही आप विरक्त स्वभाव

के स्वामी थे, सन्त सेवा सन्त जगत के उपदेश सुनने के लिए आप महापुरुषों के चरणों में पहुंच जाते और सेवा करते आप बचपन से ही दयावान और दानी स्वभाव के थे।

एक बार भाई कन्हैयाराम नवम गुरु तेगबहादुर की सेवा में उपस्थित हुए (१७३३ संवत्) गुरु तेगबहादुर की प्रेरणा से भाई कन्हैया ने लाहौर से लेकर पेशावर तक के मार्ग पर प्राणी मात्र के उपकार के लिए धर्मशाला जल तथा विश्राम आदि की व्यवस्था की।[119]

जब आनन्दपुर को मुगल और पहाड़ी राजाओं की सेना ने घेर लिया तो घमासान युद्ध हुआ। भाई कन्हैया सतुलज दरिया पर पहुंच जाते और पानी की मश्क भर लाते। बिना किसी हिन्दू सिक्ख मुस्लमान के अन्तर के सब को पानी पिलाते। सिक्खों ने गुरु जी के पास शिकायत की ......गुरु जी ने इसका कारण पूछने पर भाई कन्हैया जी ने यह जवाब दिया कि मुझे तो सब में ब्रह्म दिखाई देता है और क्योंकि आपका यही उपदेश है।

सब में एक ब्रह्म ही पूरन
उसका रूप पछानों तूरन
इह उपदेश करयो जो आप
सो हम राख्यो उर में थाप।[120]

पाकिस्तान बनने से पूर्व इन साधुओं का कार्य क्षेत्र मुख्य रूप में डेरा मियानी, नूरपुर थल, डेरा इस्माइलखान, कुशाब, मुलतान, झंग, शाहपुर, सरगोधा, दायिरादीन पनाह, जिला मुज्जफर नगर, साहीवाल, कोट सुलतान, जम्मू, लाहौर आदि थे परन्तु विभाजन के बाद ये लाखों रुपयों की सम्पत्ति आलीशान धर्मशाला और डेरे छोड़ कर भारत आ गए। यहां आकर इन्होंने बहुत से नगरों, कस्बों में धर्मशालाएं स्थापित कीं। आज कल इनके मुख्य केन्द्र हैं। अमृतसर, यमुनानगर, पटियाला, गोनियाना मण्डी, कैथल, रोहतक, हरिद्वार, होशियारपुर, पटना, दिल्ली और गाजियाबाद, इस सम्प्रदाय के साधु गुरुमत का प्रचार करते हैं और लोगों की सेवा में रह कर जीवन सफल करते हैं।[121]

सेवा पंथी सम्प्रदाय के मुखी साधुओं ने मर्यादा में रह कर जीवन व्यतीत करने हेतु कुछ नियम बनाए हैं। इन्हें यदि इनका रहतनामा कह लिया जाए, तो अनुचित न होगा।

भाई लाल चन्द जी ने निम्नलिखित नियम कहे हैं :–

1. जो सिक्ख धर्म का कार्य करने, परिश्रम करने जैसा कठिन काम न कर सकते हों, वे कोई आसान कार्य, कपड़े सीने आदि का काम आवश्यकता के अनुसार करे।
2. जिस स्थान पर साधु रहें, उसके महन्त का आदर कर क्योंकि उसे सतगुरु ने स्थापित किया है।
3. स्थान के हर कार्य में बिना कहे शामिल हों।
4. सभी साधुओं को एवं महन्त को अपने समान समझे सब का आदर करें।
5. गुरबानी से दृढ़ प्रेम करें।

6. पिछली रात्रि उठ कर दातुन करें, स्नान करें और एक मन हो कर बाणी पढ़े ।
7. कथा के समय संगत में उपस्थित हो साथ ही कार्य भी करें, जो बात समझ न आए, उसके विषय में पूछ लें ।
8. रात के समय एकत्रित होकर कीर्तन करना । संगत में मिलजुल कर बैठना चाहिए । क्योंकि एकाकी बैठना अपने मन के पास बैठना है ।
9. साधुओं को एक दूसरे को देख कर प्रसन्न होना चाहिए ।
10. दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के लक्षण अपने पास लिख कर रखें । दैवी गुणों को ग्रहण करें और आसुरी गुणों का त्याग करें ।
11. स्त्री की संगत को धर्म विनाशक माने । अकेला साधु अपनी माता के पास भी न बैठे ।
12. यदि एक साधु एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर आए, तो पूछ पड़ताल करके ठहरने की आज्ञा दी जाए । यदि वह मनमानी करके आया है, तो उसे आदर न दिया जाए ताकि पुनः कोई साधु बेवफाई न करे ।
13. यदि स्थान पर कोई भेष लेखे आए, तो उसे तुरन्त भेष न दिया जाए क्योंकि ऐसा करने से कई ऐसा अनाधिकारी साधु बन गए हैं, जिन्होंने भेष को कलंकित किया है ।
14. लेन देन स्थान के साधुओं का आपस में ही हो । बाहर के साधुओं या लोगों से लेन देन नहीं करना चाहिए ।[122]

आज कल सेवापंथी महन्तों ने इन नियमो की पूरी तरह पालन करना छोड़ दिया है और समय की आवश्यकता को मुख्य रख कर इनमें परिवर्तन कर लिए हैं ।

सेवापन्थी सम्प्रदाय सिक्ख धर्म में से पैदा हुई एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसके महापुरुषों ने गुरुमत के प्रचार और समाज सेवा के क्षेत्र में अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया ।

सेवापन्थई दसों गुरुओं के उपासक होते हैं । आदिग्रंथ के बिना किसी अन्य पुस्तक को इष्ट के समान मान्यता नहीं देते ।[123]

इसलिए इनकी विचारधारा आदिग्रन्थ पर आधारित है । इन महापुरुषों ने कोई अलग या विलक्षण धारणा स्थापित नहीं की ।

इस पन्थ की परमात्मा, जीवात्मा, सृष्टि मुक्ति, गुरु भक्ति, नाम, साधना सम्बन्धी मान्याताएं वही हैं, जिनका प्रतिपादन श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में हुआ है ।[124]

वास्तव में इन सेवा पन्थी साधुओं ने परमात्मा का स्वरूप निश्चित करने के लिए शास्त्रीय विधि (पद्धति) नहीं अपनाई अपितु उस परम पुरुष को सर्वस्व मान कर उसके गुण गाए हैं । उसे दाता, रिजक देने वाला, सुखदाता उपकारी साई आदि के रूप में चित्रित किया है । जीव के स्वरूप के विषय में इन्होंने कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया । अपितु परमात्मा का ही प्रसार माना है । घर–घर में उस परमात्मा का प्रकाश है, जैसे सूर्य तो एक ही है लेंकिन उसका बिम्ब अलग–अलग घरों में पड़ता है । ऐसे ही परमात्मा सभी जीवों में व्याप्त है ।

जीव की अलग शक्ति कुछ भी नहीं, उसकी सभी शक्तियों का मूल स्त्रोत परमात्मा है, गुरूओं ने परमात्मा को ही जीवों का प्रेरक माना है ।[125]

चाहे कई स्थानों पर आदिग्रन्थ में भी संसार को मिथ्या कहा है परन्तु संसार के अस्तित्व को स्वीकार किया है । यह भ्रम या स्वप्न की तरह असत्य नहीं है अपितु परमात्मा की रचना है सत्य है लेकिन परिवर्तनशील है । इन महापुरुषों ने जीवों को मोहमाया से निर्लेप होकर परमात्मा की प्राप्ति के लिए यत्नशील रहने के लिए इस जगत को स्वप्न के समान या मिथ्या कहा है ।

किसी भी जीव को दिए जाने वाली सहायता, हमदर्दी और शुभ सहयोग परमात्मा कीसेवा मानी गई है ।[126] सेवा सदा दूसरे की होती है, जिसमें अपना स्वार्थ न हो और न ही फल की इच्छा हो, वास्तव में परोपकार ही सेवा है ।

सेवा का मतलब ही परसेवा है, अर्थात् व्यक्तिगत घेरों से मुक्त होकर मानवीय भाईचारे के लिए कर्म करना ।[127] इस सेवाके कई रूप हैं वास्तव में श्रद्धाप्रकट होकर दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें प्रसन्न रखना सब से बड़ी सेवा है ....अपने बुजुर्गों की आज्ञा का पालन करना, अपने हाथों उनका स्नान कराना, चरण धोना, हवा करना, झाड़ू देकर उनको साफ जगह पर बिठाना, भोजन खिलाना आदि सेवा है । जरूरतमन्दों, अनाथों, अपाहिजों, दुखियों और पीड़ितों पर दया करके उनकी सहायता करना सेवा में शामिल है ।[128]

सेवा और समदृष्टि ही आध्यात्मिक और सामाजिक मंडल की सर्वोत्तम प्राप्तियां होती है सेवा पंथी सम्प्रदाय इन प्राप्तियों का शिखर कहा जा सकता है ।[129]

एक लोक सेवक सभा है, एक, सर्वोण्ट आफ दी पीपल सोसायटी, एक तरह की रैडक्रास सोसायटी, जिसका आदर्श एक शान्तमयी, निःस्वार्थ, अंहकार से रहित निष्काम, उपराम और साधु वृति वाले सारग्राही व्यक्ति की रचना की । उस रचना का एक मूल अभ्यास है सेवा । प्रगट और गुप्त तन मन और धन से ।[130]

सेवापन्थ सिक्ख धर्म की एक शाखा है, जिसने गुरुमत सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप में अपनाया ही नहीं अपितु प्रचार भी किया है । साधु होते हुए भी कमा कर खाना इनकी महानता है, जबकि त्यागी साधु प्रायः मांग कर ही गुजारा करते हैं । ये साधु परिश्रम से कमा कर ही खाते हैं, किसी का दिया हुआ दान आदि न ही लेते, अन्य सम्प्रदायों के समान यह सम्पत्ति आदि बनाने में विश्वास नहीं करते ।

भाई अड्‌डन शाह को जब किसी सरदार ने अरटा का पट्टा देने की बेनती की, तो आपने कई कारणों से उसे अस्वीकार कर दिया लेकिन मूलकारण था कि साधु आलसी हो जायेंगे और कमाई नहीं करेंगे ।[131] भाई अड्‌डण शाह ने आजीवन असहायों की सेवा की और जनसाधारण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया । उन्होंने अपने शिष्यों में एक ऐसी भावना भर दी कि सभी शिष्य अनेक रूपों में उनकी ही भावनाओं का अनुसरण करते थे । ......साधु होना, विरक्त होना पुनः कमाई करना फिर कमाई बांट कर खाना,

यह अड्डण शाह का प्रताप था। साधु होना भिखारी के बराबर है पर अड्डण शाही नेताओं ने साधुओं को भिखारियों की श्रेणी से उठा कर दाता के पद पर बिठा दिया। यह अड्डण शाही करामात थी जो आज तक संसार के किसी साधु सम्प्रदाय ने नहीं करके दिखाई।[132]

सेवापन्थी सम्प्रदाय ने गुरुमत प्रचार हेतु प्रशंसनीय कार्य किया। लेकिन स्त्री के प्रति इन्हें विशेष नकारात्मक दृष्टिकोण दिया है। यह एक मठवादी सम्प्रदाय है। यह अपने मठों में नारी को प्रवेश नहीं होने देते।

यह लोग कमाई करते हैं मगर गृहस्थी नहीं होते स्त्रियों से मेलजोल नहीं रखते। कई सन्तों का त्रिया तिरस्कार मानसिक बिमारी की सीमा तक बढ़ा होता है।[133]

इनकी दृष्टि में नारी काम और वासना को उत्तेजित करती है। अतः नारी को इन्होंने अपने सेवा मार्ग में बाधक माना है। इसी कारण ये गृहस्थ में भी प्रवृत्त नहीं होते। यह मूलतः निवृत्ति मार्ग के अनुगामी हैं।

नारी निन्दा का मूल कारण निवृत्ति मार्ग में विश्वास था क्योंकि नारी को आध्यात्मिक प्रगति में बाधा माना जाता था।[134] इन्हीं विचारों का प्रतिपादन कुछ सेवा–पंथियों ने अपने ग्रन्थों में भी किया है, इन सेवापंथियों ने अपनी व्याख्या पद्धति एवं साहित्य रचना के द्वारा हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध किया है।

डा॰ गुरमुख सिंह ने सेवा पंथियों के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार किया है।

सेवा–पंथी : हिन्दी साहित्य

साधु सदानन्द (1844–1911 वि॰)

इन्होंने वेदान्त बारे काफी तर्कवितर्क भरपूर गद्य–पद्य दोनों में ग्रन्थ लिखे हैं।

डा॰ बलवीर सिंह :–

1. जपु साहिब का विज्ञान अंक टीका।
2. 52 उपनिषदों का फारसी से अनुवाद
3. सिद्धान्त निग्रह
4. टीका विचारमाला।
5. ज्ञान कसौटी।
6. वरिष्ठ चौपाइयों विच।
7. दो हिकमत दे गुटके
8. विवेकसार टीका
9. विद्या निध
10. सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ
11. ज्ञान सुधारस ग्रन्थ
12. सिद्धान्त कटाख ग्रन्थ

स्वामी सदानन्द हिन्दी के श्रेष्ठ कवि हैं । इसने वेदान्त को सरल ब्रजभाषा । खड़ी बोली में अत्यन्त सफलता के साथ व्यक्त किया है । सदानन्द ने आरम्भ में पंजाबी में लिखने का अभ्यास किया था मगर उसे सफलता न मिली ।

दाराशिकोह ने उपनिषदों का फारसी अनुवाद कराया था । उनका पुनः हिन्दी अनुवाद करने का कठिन कार्य सदानन्द ने किया । स्वामी सदानन्द ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए ब्रज खड़ी बोली अपनाई, जिसका कारण है कि यह संस्कृत का विद्वान था और भारतीय दर्शन से सम्बंधित विषयों पर लिख रहा था, जिनके बारे में संस्कृत के ग्रन्थों में विस्तृत विचार किया गया मिलता है । इसकी रचनाओं की लिपि गुरुमुखी है भाषा ब्रज खडी बोली है ।

सिद्धान्त रहस्य ग्रन्थ : कृत सदानन्द

सेण्ट्रल पब्लिक लायब्रेरी पटियाला : संख्या 2140

पृष्ठ 219 8 पेक्रियां

आकार 7 5 लिखित 5 $3\frac{1}{5}$

वेदान्त व्याख्या ....ब्रजभाषा (काव्य)

सिद्धान्त कटाख ग्रन्थ : कृत सदानन्द

सिक्ख रेफरेन्स लायब्रेरी अमृतसर

संख्या 489−91

पृष्ठ 202−247

आकार $5\frac{3}{4}$ 4 लिखित 4 $2\frac{1}{2}$

74 किया

गद्य−ग्रन्थ

गिआन हुलास

डा॰ सुरिन्द्रसिंह कोहली (निजी)

47 पृष्ठ 74 क्रिया

आकार $5\frac{1}{2}$ $4\frac{1}{2}$ लिखित $3\frac{3}{4}$ 3

(काव्य)

ज्ञान सुधार संग्रह – सदानन्द

प्रीतमसिंह लायब्रेरी नं. 131

पृष्ठ 69 10, पक्रिय

आकार $7\frac{1}{2}$ $5\frac{1}{2}$ लिखित 5 $3\frac{1}{2}$

लाला राम सेवापन्थी

1. गुर विलास
2. श्री गुर जस हुलास
3. श्री गुर जस प्रकास
4. बारह माह श्री गुरु साहिब सिंह जीवन
5. बारह माह श्री गुरु साहिब सिंह जीवन दूसरा
6. बारह माह श्री गुरु सूरज सिंह जी का

ग्रन्थ (मधुसूदन वेदी, ऊना के पास है)

सोभाराम

(जीवनी) गुर विलास श्री बाबे साहिब सिंह जी का (1916)

413 पृष्ठ प्रक्रिया 15–16

आधार $13\frac{1}{2}$ $9\frac{1}{2}$

नक्ल (पंजाबी युनिवर्सिटी पटियाला) में हैं ।[135]

4. खालसा पन्थ :–

दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह ने समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप समूचे भारत को एक सूत्र में पिरोने और दुर्बल भारतीयों में शक्ति भरने का जो साहसिक कार्य किया वह भारतीय इतिहास में एक नया मोड़ है । इसका आधार था 'खालसा' का अस्तित्व में आना । वास्तव में खालसा की स्थापना का उद्देश्य था अपने साहस, बल और अस्तित्व की पहचान । आत्मिक उन्नति के लिए जिन आन्तरिक गुणों की आवश्यकता होती है, उनका आभास और एहसास होना भी जरूरी है । अपने देश और संस्कृति की रक्षा करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है । यह मूल अवधारणा उनके खालसा की स्थापना का मुख्य उद्देश्य थी । खालसा शब्द फारसी से उद्धृत है, जिसका अर्थ है, शुद्ध अर्थात् विकारों से रहित, मानवीय दुर्बलताओं से एक दम दूर । गुरु जी ने ऐसे लोगों का एक वर्ग संगठित किया जो निःसंकोच दूसरों के लिए देश के लिए, त्याग, आत्मबलिदान कर सकें । दूसरा एक वर्ग जो विद्या अर्जित कर ज्ञान का उज्ज्वल प्रकाश फैला सके । उसे उन्होंने निर्मल संज्ञा से अभिहित किया । वास्तव में 'खालसा' और 'निर्मल' दोनों शब्द पर्याय है और एक ही अर्थ शुद्ध अर्थात् विकार रहित के पोषक हैं ।

खालसा की स्थापना से पूर्व लगभग सभी सिक्ख भक्ति, पूजा पाठ आदि में ही लगे रहते थे और गुरवाणी का प्रचार करते थे । इनमें निर्मल सन्त और उदासी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

पहले निर्मल और उदासी एक ही धर्म अथवा मत के दो नाम थे । और इनका अर्थ एक ही लिया जाता था । परन्तु फिर उदासी मत का श्री गुरु नानक देव जी के बड़े सुपुत्र

श्री चन्द जी के नाम से जुड़ जाने के कारण इसके अर्थ में अन्तर पड़ गया और धीरे-धीरे गुरु नानक का निर्मल पन्थ दशम पातशाह गुरु गोबिन्दसिंह जी के समय तक शाही सम्पत्ति 'खालसा' के समान केवल खालसा का स्वतन्त्र रूप धारण कर गया ।[136]

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने पूर्ववर्ती गुरुओं की गुरमत सिद्धान्तों की विरासत श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरुपद सौंप कर आने वाले अनुयायियों के लिए और सिक्खपंथ के लिए साधना का मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

'निर्मल' फारसी शब्द 'खालसा' का पर्याय है । इस दृष्टि से निर्मल पंथ खालसा पंथ से भिन्न नहीं है । सभी निर्मल पन्थी लेखक अपने आपको खालसा पन्थ का अभिन्न अंग मानते रहे हैं ।[137]

दोनों ही वर्ग गुरु गोबिन्द सिंह के आशीर्वाद के अस्तित्व में आए हैं और अपने अपने कार्यक्षेत्र में पारंगत है । खालसा शास्त्र विद्या में और निर्मल शस्त्र विद्या में । मूलतः दोनों अभिन्न हैं । दोनों ही गुरु के वरद्--पुत्र हैं और अपने अपने उद्देश्यों के लिए गुरुवाणी का अनुसरण करते हैं । गुरु जी ने अपने शिष्यों की विभिन्न रुचियों को देखते हुए ही उन्हें इस प्रकार के कार्यों का विभाजन किया था । गुरु जी स्वयं इन गुणों से विभूषित थे । अतः उन्हें इनकी पहचान थी । तभी तो उन्होंने इन्हें इनकी योग्यता के अनुसार ही कार्यों में प्रवृत्त किया ।

जैसा कि पं० गुलाबसिंह ने कहा है ....

"....श्री गोबिन्द सिंह जू सिंघ हैं पूरन हरि अवतार
रचयो पंथ भव में प्रकट दो विधि को विस्तार ।
एकन के कर खडग दे भुज बल बहु विसतार
पालन भूमि को करयो, दुष्ट मूल उखाड़ ।
औरन की पिख विमल मति, दीनों परम विवेक
निर्मल भाखे जगत तिह हेरे ब्रह्म सु एक ।।[138]

शान्ति की स्थापना के लिए और वेदवाणी के प्रचार के लिए खडग का प्रयोग निषेध नहीं है । पुण्य के लिए किया गया पाप पाप नहीं है । अतः गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अत्याचार का सामना करने के लिए और मानवता के उपकार के लिए ही अपने शिष्यों को खडग धारण करने की आज्ञा दी । यही खडगधारी सिंह ही कालान्तर में 'खालसा' कहलवाए । गुरु गोबिन्दसिंह से पूर्व सिक्खों में कोई ऐसा वर्गीकरण नहीं हुआ था तब खालसा का अर्थ भी इससे भिन्न था ।

"....सिक्ख पहले संगत और पंगत से एक होते हुए भी दो प्रकार के थे । एक सहलंग और दूसरे 'खालसा' 'सहलंग' वे सिक्ख थे. जो मसन्दों के सहयोग से गुरुदरबार में पहुँचते थे और खालसा वे जो सीधे ही गुरु घर से सम्बंधित होते थे । खालसा संगत का दर्जा प्रथम था और सहलंग संगत का दूसरा । परन्तु छटे गुरु हरगोबिन्द जी से दशम गुरु श्री गोबिन्द सिंह जी के समय तक वही सिक्ख कुछ और सूक्ष्मता से चार भागों में बंट गए ....

1. दीदारी या दरबारी
2. घरवारी
3. भण्डारी (सेवादार या टहलिए)
4. मुक्ते सिक्ख सिपाही अथवा जंपी योद्धे ।[139]

इस कर्त्तव्य आधारित वर्गीकरण की आवश्यकता को देख कर ही गुरु जी ने अपने शिष्यों को अस्त्र–शस्त्र, बल, नीति की शिक्षा देकर खालसा के रूप में स्थापित किया । वास्तव में देखा जाए तो निर्मल सन्त भी खालसा से भिन्न नहीं है । वे भी गुरु की आज्ञानुसार धर्म का प्रचार एवं प्रसार करते हैं । मानव कल्याण के लिए स्थान–स्थान पर घूम कर गुरुवाणी की व्याख्या करते हैं । अतः वे भी खालसा पन्थ में ही सम्मिलित हैं ।

"...... निर्मल पन्थ, खालसा पन्थ का अभिन्न अंग होने के कारण किन्हीं भिन्न सिद्धान्तों अथवा मान्यताओं में विश्वास नही रखता किन्तु निर्मल पन्थ को कतिपय विशिष्ट कर्त्तव्य सौंपे गए थे । अतः अपनी रीति नीति से ये साधारण सिक्ख जनता से कुछ विशिष्ट ही प्रतीत होते हैं ।[140]

कर्त्तव्य की भिन्नता उन्हें 'खालसा' पन्थ से भिन्न नहीं करती । इतना अवश्य है कि उनकी वेशभूषा रहन–सहन अवश्य पृथक है मगर मर्यादा का पूर्णतः पालन करते हैं । कुछ सैद्धान्तिक मतभेद भी उनकी निवृत्ति मूलक विचारधारा के कारण ही है । लेकिन गुरु जी के निर्देशों का पालन करना ही उनका मुख्य धर्म है । खालसा के समान ही वे ......कच्छा, केश, दाढ़ी युक्त अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं । गुरु जी प्रदत गेरुए वस्त्रों से वे आज तक अपनी पहचान बनाए हुए हैं और सिक्ख समाज में सम्मान के पात्र हैं । अमृतपान करना उनके लिए दीक्षित होने की मुख्य शर्त है । अतः सभी लक्ष्ण सिक्ख धर्म की विचारधारा से मिलते हैं । और वे 'खालसा' के समान ही गुरुवाणी में विश्वास रखते हैं । सैद्धान्तिक विचारधारा के अनुसार कुछ परिवर्तन भी आ गए हैं ।

"निर्मल साधुओं का अमृतधारी सम्प्रदाय भी सुरक्षित रहा क्योंकि उनका प्रचार कार्य केवल मालवा के प्रदेश तक ही सीमित रहा जहां अत्याचारी आन्दोलनों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा । वे धार्मिक विश्वास की दृष्टि से खालसा से मिलते थे । केवल विवाह नहीं करते थे ।"

'खालसा चूंकि प्रवृत्ति मार्ग के पोषक हैं । अतः उन पर विवाह आदि का प्रतिबन्ध नहीं है । वे योद्धा हैं और योद्धा रूप ही उनकी पहचान है । खालसा वास्तव में भक्ति और शक्ति का समन्वित रूप है । गुरू जी ने खालसा की स्थापना ही इसी उद्देश्य से की थी, चूंकि भक्ति से आत्मिक बल मिलता है । आत्मिक बल के बिना अत्याचार का सामना करना कठिन होता है । इसीलिए गुरु जी ने भक्ति और शक्ति को समन्वित कर शत्रु का विरोध कर सिक्ख पन्थ का मार्ग प्रशस्त किया ...

"खालसा का परम चिन्ह है भक्ति का और कलगी चिन्ह है [illegible] शक्ति ही मिल कर सन्त सिपाही बनते हैं । अमृत में भक्ति है वाणी, जल और [illegible]

स्वभाव और शक्ति है खण्डे की धार । पांच ककार मिल कर भक्ति और शक्ति का चिन्ह है ।"[141]

खालसा पन्थ आज भी अपने शौर्य और पराक्रम के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध हैं । अमृत पान करना, पांच ककारों को धारण करना यह उस की संस्कारगत विशेषताएं हैं । 'खालसा' की यह वेशभूषा ही उसकी पहचान है, शक्ति और साहस ही उसका आभूषण है, अत्याचार का नाश और मानवता का उद्धार ही उसका कर्त्तव्य है । गुरू गोबिन्द सिंह जी का लक्ष्य भी यही था । इसीलिए उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से इस खालसा को सजाया था ।

(ग) निर्मल सन्त और अद्वैत दर्शन

1. अद्वैत वाद :–

प्रत्येक धर्म की एक दार्शनिक दृष्टि होती है और उस दृष्टि से ही उस धर्म की स्थापना की आधार भूमि निर्मित होती है । उसी धर्म के अनेकानेक सम्प्रदाय उसी दार्शनिकता को अपना कर उस धर्म की नींव को सुदृढ़ करते हैं और मानव जीवन के लिए उपयोगी तत्वों को प्रकाशित करते हैं । अतः कह सकते हैं कि दर्शन धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है अर्थात् दर्शन धर्म की दृष्टि है, जिससे जीवन का सही रूप प्रदर्शित होता है । कोई भी दर्शन धर्म नहीं होता परन्तु अच्छे धर्म का एक दार्शनिक आधार अवश्य होता है या ऐसे कहा जा सकता है कि प्रत्येक धर्म में जीवन और जगत विषयक कुछ विचार अवश्य होते हैं ।[142]

भारतीय धर्मों में सनातन धर्म अतिप्राचीन है । इसी से अन्य धर्मों का उदय हुआ और अनेक सम्प्रदायों के रूप में आज भी यह विद्यमान है । धर्म वास्तव में जीवन को क्रियात्मक रूप प्रदान करता है । विधि और निषेध, शुभ–अशुभ, सत्य–असत्य, पुण्य–पाप, अधर्म–धर्म का निर्णय धर्म ही करता है । कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान भी धर्म द्वारा ही निर्धारित होता है । धर्म देशकाल की सीमाओं से ऊपर होता है । यह सार्वभौमिक और सार्वकालिक होता है ।

धर्म वस्तुतः जीने का एक तरीका है । वह विश्वासों से अधिक जीने की प्रक्रिया पर अधिक आधारित है । यही कारण है कि हिन्दू धर्म में इतने अधिक सम्प्रदाय, इतने अधिक प्रकार के प्रादेशिक भेद और इतने अधिक प्रकार की रंग बिरंगी जातियों का समावेश है । यह न तो देश से बंधा है न ही काल से ।[143] जो धर्म देश और काल की सीमाओं में बंट जाता है, वह लोगों में भ्रामक स्थिति पैदा करता है । वास्तव में धर्म नहीं बंटता । देश और काल की परिवर्तित परिस्थितियों एवं भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप लोग अपनी आवश्यकतानुसार वांछित परिवर्तन कर लेते हैं और एक अलग सम्प्रदाय की स्थापना कर

लेते हैं वे मूल सिद्धान्तों को कुछ परिवर्तन के साथ अपना लेते हैं और अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रचार कार्यों द्वारा अपने मत का प्रचलन करते हैं ।

धर्म के नाम से प्राच्य और पाश्चात्य भूमि के निवासी जो कुछ जानते हैं, वह वस्तुतः धर्म नहीं सम्प्रदाय भर है । अतः परम्परागत देशीय प्रचलित अवैज्ञानिक संस्कारों और अधकचरे विश्वासों पर कट्टर अन्ध श्रद्धा के फूल चढ़ाने को धर्म के पालन की संज्ञा देना धर्म शब्द के महत्वपूर्ण गूढ़ अर्थ का अवमूल्य कर देना है । क्योंकि धर्म जो पूर्णतः बौद्धिक, स्वयं सम्पूर्ण और वैज्ञानिक होता है, एकमेव है । उसमें विशेष को जन्म देने वाली भिन्नता को कोई स्थान प्राप्त नहीं ।[144]

धर्म का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । धर्म के लिए कोई भी शब्द अपर्याप्त है । धर्म वास्तव में एक रहस्यवादी शब्द है और यह जीवन से जुड़ा होकर भी जीवन से कहीं अधिक व्याप्त है । अंग्रेजी का शब्द रिलीजन धर्म का पर्याय नहीं है । धर्म का सही अर्थ रिलीजन नहीं है धर्म शभ्द रिलीजन के अर्थ से बहुत विशाल है । इसीलिए अंग्रेजी में कोई योग्य शब्द नहीं है ।[145] दर्शन धर्म एवं मानव जीवन को समन्वित एवं सन्तुलित रूप प्रदान करने का माध्यम है । जीवन के यथार्थ का ज्ञान एवं परम सत्य का रहस्योद्घाटन ही दर्शन का मुख्य विषय है । दर्शन उस रहस्यमयी स्रष्टा को जानने का ज्ञानचक्षु प्रदान करता है और आत्म दर्शन की क्षमता प्रदान करता है ।

दर्शन का मुख्य कार्य सत्य के यथार्थ का उद्घाटन और अनावरण करना है । भारतीय दर्शन के आदि स्त्रोत वेदों और उपनिषदों में आत्मा या ब्रह्म को ही एकमात्र सत् माना गया है । अतः आत्मा का या ब्रह्म के स्वरूप की उपलब्धि ही दर्शन का मुख्य प्रयोजन माना गया है ।[146]

भारतीय दर्शन में अनेक विचारधाराओं का प्रतिपादन होने पर भी मूलतः उस ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि माना गया है और उस सत्ता का अंश स्वरूप आत्मा को उसी का स्वरूप मान कर उससे पुनः मिलन की चेष्टा की ओर उन्मुख दिखाया गया है । विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में इन दोनों के अस्तित्व को पारस्परिक रूप में सम्बद्ध माना है और उसे आदि सत्ता या ईश्वर कहा है ।

विभिन्न हिन्दू एवं बौद्ध आगमों के आचार एव दर्शनों की आधार भूमि एक है । ये सभी एक ऐसी आदि सत्ता में विश्वास करते हैं, जो दो संयोजक तत्वों वाली है । इन दो संयोजक तत्त्वों में से एक स्थिर, निवृत्ति मूलक और स्वस्थ है दूसरी गतिशील, प्रवृत्तिमूलक और परिवर्तन मान एक भोक्ता है दूसरी भोग्य । एक पुरुष है दूसरी प्रकृति ।[147]

दार्शनिक शब्दाली में इन दोनों तत्वों का अलग–अलग होना द्वैतवाद और एक साथ होना (मिलना) ही अद्वैतवाद कहा गया है । यह शब्द अद्वैत से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है द्वैत (दो के भाव) का अभाव । दर्शन में इसका प्रयोग 'मूल सत्ता' के निर्देश के लिए हुआ है । इसके अनुसार वस्तुतः एक ही सत्ता ब्रह्म है । आत्म और जगत अथवा आत्मा और

प्रकृति में जो द्वैत दिखाई पड़ता है, वह वास्तविक नहीं है । यह माया अथवा अविद्या का परिणाम है । सम्पूर्ण विश्व प्रपंच अपने बदलते हुए दृश्यों के साथ मिथ्या है केवल ब्रह्म सत्य है । अन्तिम विश्लेषण में आत्मा और ब्रह्म भी एक ही है । इस सिद्धान्त का पोषण जो दर्शन करता है, वह अद्वैत है ।[148]

अद्वैतवाद कालान्तर में एक दर्शन के रूप में विख्यात हुआ, जिसने अनेक गुणवत्ताओं के कारण भारतीय दर्शन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । इसके अनुसार ब्रह्म की सत्ता को विशेष महत्त्व दिया गया है और आत्मा के स्वरूप को उसी का अंश स्वरूप मान कर उसी के विलीन होने के लिए तत्पर माना गया । माया के कारण आत्मा परमात्मा से भिन्न दिखाई देती है । माया अनावरण होने से आत्मा (जीव) ब्रह्म स्वरूप हो जाती है । ब्रह्म ही केवल सत् चित् और आनन्द स्वरूप है । माया असत् और प्रपंच मात्र है ।

इस मत के अनुसार केवल ब्रह्म की ही सत्ता है । यह संसार जो कि सत् दिखाई पड़ता है, वस्तुतः सत् नहीं होता ।.......यह संसार परिवर्तनशील है । इसका आदि और अन्त है । मरु–मरीचिका की तरह यह सत् दृष्टिगोचर होता है । यह संसार जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह माया के कारण दिखाई पड़ता है । माया आदि काल से ब्रह्म को घेरे हुए है ।[149]

उस ब्रह्म पर माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, माया केवल जीव–आत्मा को ही भ्रमित करती है । जिसके कारण जीवात्मा इस क्षण भंगुर संसार को ही सत्य मान बैठता है और ब्रह्म को अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है । इसके अनुसार 'सत्' न एक है और न अनेक । वह अगम अगोचर निर्गुण अचिंत्य तथा अनिर्वचनीय है । इसका नाम अद्वैत इसलिए है कि यह एकत्वाद और द्वैतवाद दोनों का प्रत्याख्यान करता है ।[150]

ईश्वर एक है और उसके स्वरूप (आत्मा) अनेक । जैसे अनेक बर्तनों में पानी के बिम्ब में सूर्य का बिम्ब अनेक होने की भ्रामक स्थिति उत्पन्न करता है । जब तक आत्मा उस ब्रह्म से अलग रहती है, तब तक माया के कारण जीव विषय विकारों में भटकता है । और उस सत्ता को भूल जाता है । पुनः गुरु के ज्ञान द्वारा उसे अविद्या के नाश तथा ज्ञान द्वारा ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होता है तब वह उस मार्ग पर चल कर उस ईश्वर के साथ तद्रूप होने का प्रयास करता है ।

अद्वैतवाद की स्थिति भी कुछ ऐसी है, उनके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का एकरूप होना ही अद्वैतवाद कहा गया है ।

जीव और ब्रह्म की एकता अद्वैतवाद है । विस्तार में जीवात्मा का जन्म मृत्यु से रहित होना आत्मा का अंश अंशी भाव से भी रहित होना, ब्रह्म का नित्य वस्तु होना और संसार की अनित्यता, माया और अविद्या रूपी उपाधि का त्याग, आत्मा को परमात्मा का स्वरूप समझना, अद्वैतवाद के अन्तर्गत है ।[151]

उस एक ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के साथ एकीकरण इस वाद का प्रतिपाद्य है यह विषय वैदिक परम्परा की दार्शनिकता पर आधारित है । वेद भी एकेश्वरवाद का प्रतिपादन

करते हैं और अद्वैतवाद भी उस एक सत्ता के प्रति एक निष्ठ भाव का पोषक है । वेद को भी ब्रह्म का एक ही रूप मान्य है । वेदों में एक देववाद, बहुदेववाद का प्रतिपादन भी उस एक ईश्वर की सत्ता का आभास करने हेतु ही हुआ है । अतः अद्वैतवाद का सूत्रपात वैदिक काल से ही मानना अधिक संगत होगा ।

यदि निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ दृष्टि से वेदों का अध्ययन किया जाए, तो ज्ञात होगा कि न तो बहुदेव वाद न एकेकाधि देववाद और न एक देववाद ही वेदों का वास्तविक मन्तव्य है वेदों का वास्तविक मन्तव्य एकतत्व वाद ही है । जिसे अद्वैतवाद के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है ।[152]

वह अद्वैत स्वरूप ब्रह्म ही इस सृष्टि के कण–कण विद्यमान है । द्वैतभाव भी इसी से उत्पन्न होता है । वह ईश्वर अपनी इच्छा से ही इस सृष्टि की रचना करता है, और स्वयं इसमें विद्यमान रहता है । उसकी यही इच्छा द्वैत भावना को लक्षित करती है । लेकिन यह उसका वास्तविक लक्षण नहीं है । जब इस अद्वैत आदि सत्ता में सिसृक्षा का उद्रेक होता है, तो उनका द्वैत स्फुट हो जाता है । यह द्वैत ही (या सन्तों का धंधा) ही सभी दुःखी का कारण है । इनका अद्वैत या सामरस्य सभी दुःखों का विनाश करके महासुख, निर्वाण या मुक्ति का विधान करता है ।[153]

सृष्टि एवं जीव रचना उसका सगुण स्वरूप है । सगुणात्मक होकर भी वह स्वयं निर्गुणात्मक ही रहता है । यही उसकी विशिष्टता है । सम्पूर्ण सृष्टि में उसकी सत्ता का आभास तो होता है, मगर फूल में सुगंध के समान वह परिलक्षित नहीं होता । चरम सत्ता ब्रह्म के दो रूप हैं निर्गुण और सगुण । उसके सगुण रूप से दृश्यजगत् का विकास अथवा विवर्त होता है किन्तु वास्तविक वस्तु सत्ता तो निर्गुण ही होती है । गुणों के सहारे उसका वर्णन अथवा निर्वचन नहीं हो सकता है । सम्पूर्ण विश्व में अन्तर्यामी होते हुए भी वह तात्विक दृष्टि से अतिरेकी और निर्गुण ही रहता है ।[154]

इसीलिए उसे अनिर्वचनीय और गुणातीत कहा गया है । निर्गुण होते हुए भी वह सगुण है और सगुण होते हुए भी वह निर्गुण है । इससे भी वह अद्वैत हैं चूंकि उसके लिए सगुण और निर्गुण होने में कोई भिन्नता नहीं है । इस मत का प्रतिपादन भी अद्वैतवाद द्वारा होता है । वास्तविकता यह है कि यह संसार सगुण स्वरूप जीवात्मा उस ईश्वर से भिन्न नहीं है । अर्थात् वह ब्रह्म और जीव एक ही है । केवल माया के कारण ही द्वैत भाव का भ्रम होता है ।

ब्रह्म माया में प्रतिबिम्बित होता है और संसार के तुल्य दृष्टिगोचर होता है जब माया में सत्व अंश की प्रधानता रहती है और उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो वह ईश्वर कहा जाता है । जब माया में सत्व अंश गौण रहता है और उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो उसे जीवात्मा और संसार कहते हैं, अतः एक वहीं ब्रह्म देवता जीवात्मा और संसार के रूप में प्रकट होता है ।[155]

वह ब्रह्म ही माया की रचना करता है और उसी में अन्तर्निहित रहता है । ब्रह्म और माया की यह अद्वैतता ही मनुष्यमात्र (जीवात्मा) के लिए रहस्य का कारण बनी हुई है । जब ज्ञान के द्वारा यह रहस्योद्घाटन होता है, तो जीव ब्रह्म के साथ तादात्मय हो जाता है । भारतीय दर्शन अद्वैतवाद की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है । भले ही इसके साथ ही द्वैतवाद विशिष्टाद्वैत वाद, द्वैता द्वैतवाद आदि अनेक मतों का उदय हुआ था लेकिन थोड़े बहुत अन्तर से इन सब ने अद्वैतवाद के सिद्धान्तों को ही अपने मत का आधार बनाया था । वैदिक काल से लेकर शंकराचार्य तक सभी दार्शनिकों ने अद्वैतवाद की दार्शनिकता को किसी न किसी रूप स्वीकार अवश्य किया है ।

2. वेदान्त दर्शन :–

वेद भारतीय चिन्तन धारा का आदि स्त्रोत है । भारतीय दर्शन का मूलाधार भी वेद ही है । वैदिक कालीन सभ्यता में जिन मूलाधारों को अपना कर उस असीम सत्ता को जानने का प्रयास किया, वही कालान्तर में भारतीय दार्शनिक विचारधार के आधारभूत सिद्धान्त बने । वेदों की इस विचारधारा को समझने के लिए ही अनेक विद्वानों ने अपने अनुसार उन सिद्धान्तों की व्याख्या की जिससे विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत हुए और दार्शनिक विचारधारा परिवर्तित होती चली गई और एक परम्परा के रूप में वेदों के भाष्य लिखे जाते रहे । उपनिषदों, सूत्र ग्रन्थों के रूप में इस परम्परा का अन्त होता है । वेदों की अन्तिम कड़ी होने के कारण ही इसे वेदान्त कहा है ।

वेदों में अधिकांशतः देवी देवताओं की स्तुति, सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य तथा ईश्वर की सत्ता के विषय में विचार किया गया है । इसके साथ ही मानवोचित कर्मों का भी विधान है, विधि–निषेध का सैद्धांतिक निरूपण किया गया है । इस दृष्टि से वेदों को विषयवस्तु की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । ......कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड ।

"......वेद में दो प्रकार की विचारधाराएं विद्यमान थी' ...... एक का संबंध कर्म–काण्ड और दूसरे का सम्बन्ध ज्ञान–काण्ड से था । और दूसरे ये क्रमशः वैदिक कर्मकाण्ड और वैदिक ज्ञान काण्ड के नाम से विदित है ।[156]

वेदों के इन्हीं दो विषयों की कालान्तर में विद्वानों ने व्याख्यायित किया जो उपनिषद कहलाए उपनिषदों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्याख्या ग्रन्थ भी रचे गए, जिनमें उपनिषदों की विचारधारा को ही सरल विधि में प्रस्तुत किया गया है । इन ग्रन्थों को सूत्र ग्रन्थ कहा जाता है । इन सभी ग्रन्थों में जिनमें वेद को सैद्धान्तिक विचारधारा को अपना कर उनके विषय को व्याख्यायित करने का प्रयास है, उन्हें वेदान्त कहा जाता है ।

वेदान्तसार के निर्माता श्री सदानन्द ने वेदान्त शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मुख्य रूप से उपनिषद् और उसके समझने में उपकारक शारीरिक सूत्र आदि साहित्य वेदान्त नाम से कहा जाता है ।

वेदान्तों नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि च
शारीरिक सूत्रादीनि ।।[157]

वेदान्त की इस विचारधारा के सम्बन्ध में अनेक दार्शनिकों और विद्वानों में तर्क वितर्क हुए और वेदान्त के दृष्टिकोण को समझने में विद्वान एक दूसरे को गल्त सिद्ध करने का प्रयास करने लगे परिणामतः अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ और वेदान्त का अर्थ ही परिवर्तित हो गया । वेदान्त का आदि स्त्रोत उपनिषद् है । प्रारम्भ में उपनिषद् को ही वेदान्त कहा जाता था क्योंकि उपनिषदों की रचना वैदिक साहित्य के अन्त में हुई थी । कालान्तर में वेदान्त शब्द के अर्थ में थोड़ा परिवर्तन हुआ । पहले वेदान्त अर्थ वेदों का अन्तिम भाग था । पर अब वेदान्त शब्द का अर्थ वेदों का सार रूप हो गया ।[158]

वेदान्त में मुख्य रूप से अद्धैत वादी विचारधारा ही प्रधान रही है ईश्वर और जीव की अभिन्नता को लेकर अनेक दार्शनिकों ने अपना अपना मत प्रस्तुत किया है, जिनमें शंकराचार्य प्रमुख है बाद में वेदान्त का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया और वेदान्त में अद्धैतवादी निर्गुण सत्ता के साथ–साथ सगुण ब्रह्म के विषय में भी विचार किया जाने लगा । परिणामतः मध्यकाल में सगुण और निर्गुण ब्रह्म को आधार मानने वाले अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ ।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त के अतिरिक्त वेदान्त में रामानुजाचार्य (11वीं शती) का विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क 12 वीं शती का द्वैताद्वैत, मध्वाचार्य (13वीं शती) का द्वैतवाद तथा वल्लभाचार्य 15वीं शती का शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय भी प्रचलित है । ये सम्प्रदाय वैष्णव वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है । वेदान्त के सभी सम्प्रदाय प्रस्थान–त्रयी का आश्रय लेते हैं ।[159] उपनिषद, गीता और ब्रह्म सूत्र को प्रस्थान त्रयी कहा जाता है ।

शंकराचार्य ने जिस दर्शन को अपनी चर्चा का विषय बनाया, वह अद्वैत वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है । उन्होंने निर्गुण ब्रह्म और जीव की एकता पर अधिक बल दिया है ।

भारतीय दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को आधार मान कर दो प्रकार का दर्शन प्रचलित हुआ ..... नास्तिक दर्शन और आस्तिक दर्शन । वेदों के अस्तित्व को मानने वाला आस्तिक दर्शन और वेदों का विरोध करने वाला नास्तिक दर्शन । इसे निम्नलिखित तालिका से स्पष्टतः जाना जा सकता है ।

भारतीय दर्शन

↓

(नास्तिक) वेद विरोधी दर्शन (चार्वाक, जैन, बौद्ध) | वैदिक दर्शन (आस्तिक)

वैदिक दर्शन (आस्तिक) ↓

- वैदिक विचारों पर आधारित
- लौकिक विचारों पर आधृत (सांख्य, योग, न्याय वैशेषिक)

वैदिक विचारों पर आधारित ↓

- कर्म काण्ड पूर्व मीमांसा (मीमांसा)
- ज्ञान–काण्ड उत्तर मीमांसा[160] (वेदान्त)

वेदान्त दर्शन को समझने के लिए विद्वान तीन प्रकार के ग्रन्थों को आधार बनाते हैं ....उपनिषद्, वादरायण का 'ब्रह्मसूत्र' तथा भगवद्गीता, इन तीनों या तीनों में से किसी एक को मुख्य मान कर चलने वाले दार्शनिकों के दर्शन को वेदान्त का नाम दिया जाता है ।[161]

जीव और ब्रह्म में जो अन्तर दिखाई देता है, वह वास्तविक नहीं है, अपितु वह अन्तर ब्रह्म की इच्छा के कारण है । यह अन्तर अद्वैत मत के तुल्य माया के कारण नहीं है । अतः इस मत में माया ही सत्ता न होने से इसे शुद्धाद्वैतमत कहा जाता है ।[162]

द्वैत मत

इस मत के अनुसार परमात्मा जीवात्मा और प्रकृत्ति ये तीनों नित्य और स्वतन्त्र सत्ता है । जीवों में परस्पर भेद है और प्रकृति में भी आन्तरिक भेद है । परमात्मा विष्णु है । उसका शरीर अप्राकृत (प्रकृति निर्मित नहीं) है । वह सर्वज्ञ सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान है । उसकी इच्छा से ही प्रकृति जगत के रूप में परिवर्तित होती है । जीवों में लक्ष्मी सर्वश्रेष्ठ है वह विष्णु की पत्नी है । जीवों में वही नित्य है, अविनाशी है अन्य जीव बद्ध है । जीवात्मा का परिभाग परमाणु के बराबर है । ....परमात्मा और जीवात्मा का सेव्य सेवक भाव सम्बन्ध है । ......भक्ति मार्ग ही में अपनाया गया है ।[163]

विशिष्टाद्वैत

इस मत के अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन सत्ताए हैं । इसमें भेद, अभेद और घटक ऋतियों को प्रामाणिक माना गया है । ये वाक्य यह सिद्ध करते हैं कि वास्तविक सत्ता केवल ब्रह्म है । चित (जीव) और अचित, (अचेतन जीव) उसके शरीर या प्रकार है । ये प्रकार परस्पर भिन्न है । ये चिताचित ब्रह्म की विशेषता है । परन्तु ये ब्रह्म से भिन्न है । इस मत में ब्रह्म को एक मानते हुए भी उसे चिदचिदद्विशिष्ट

कहा जाता है । अतः इसे विशिष्टाद्वैत कहा जाता है । यह संसार सत् है जीव और प्रकृति अनेक है ।164

इस दर्शन से अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत का प्रचार किया और इस अपने–अनुकूल व्याख्या की । किसी ने एक को आधार बनाया किसी ने दो को ओर किसी ने तीनों को । इनके भाष्य भी रचे और अपने मत की पुष्टि के लिए तर्क और प्रमाण भी दिए, जिनका प्रबल विरोध करने हेतु सम्प्रदायों का उद्‌भव हुआ ।

'ब्रह्मसूत्र' के सब से प्राचीन भाष्यकर्त्ता शंकराचार्य है, इनकी मान्यताओं के विरोध में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किए । किसी ने शंकर के मत की पुष्टि की किसी ने विरोध, इस प्रकार शंकर के अद्वैतवाद से भिन्न चार अन्य प्रमुख पक्ष हमारे समक्ष आए, जिनके नाम है विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैत ।165

शुद्धाद्वैत

इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार का है । वह संसार का कर्त्ता धर्म और संहर्ता है । सत् चित् आनन्द उसके गुण है । वह एक ओर निर्दलीय है, वह जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण है । वह पूर्ण है । उसे पुरुषोत्तम कहा जाता है । वह आनन्द रूप है । इन रूपों में वह सगुण है । उसमें साधारण मानवीय कोई गुण नहीं है । अतः उसे निर्गुण कहा जाता है । जीव वास्तविक है । वे ब्रह्म के एक अंश है ।

द्वैताद्वैत

इस मत की स्थापना 12वीं शताब्दी ई. में निम्बार्क ने की थी । इस मत के अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है । संसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति मात्र है । संसार ब्रह्म से अभिन्न और पृथक दोनों हैं । संसार में जीव और प्रकृति दोनों का संग्रह है । इस प्रकार यह मत अद्वैत और द्वैत दोनों मानने के कारण द्वैताद्वैत मत कहा जाता है । जीव जो कि ब्रह्म के नियन्त्रण में है, मुक्तावस्था में भी उससे अभिन्न और पृथक दोनों रूपों में रहते हैं । ब्रह्म के वास्तविक रूप के साथ तादात्म्य स्थापित करने को मोक्ष कहते हैं ..... इस मत को सनक सम्प्रदाय भी कहते हैं ।166

"......शंकराचार्य ने उत्तर मीमांसा या वेदान्त को पूर्व मीमांसा से बिल्कुल पृथक ही नहीं, वरन् विरोधी घोषित किया । पूर्व मीमांसा जिसका सम्बन्ध कर्मकाण्ड से है, सांसारिकता व बन्धन की ओर ले जाती है । इसके विपरीत उत्तर मीमांसा जिसका सम्बन्ध ज्ञान से है, नित्यता व मोक्ष की ओर ले जाती है ।"167

वेदान्त दर्शन में मुख्य रूप से जीव, ब्रह्म, माया, जगत सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है । ज्ञान द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति पर बल दिया गया है । जीव और ब्रह्म की अभेदता के लिए माया को अनावरण करना आवश्यक है । माया ही जीव और ब्रह्म की अभेदता में बाधक है । ज्ञान ही इसे दूर करने में सक्षम है ।

3. सिक्ख–दर्शन :–

मध्यकालीन धार्मिक स्थिति अत्यन्त अस्तव्यस्त थी । अनेक धर्म शाखाऔं उपशाखाओं के रूप में अपनी–अपनी डफली, अपना–अपना राग अलाप रहे थे । सिद्धों, नाथों, जैनियों ने अपने नैतिक सिद्धान्तों को भुला दिया था और रति–क्रीड़ा द्वारा 'महासुख' की प्राप्ति में लगे थे । विलासिता सर्वत्र थी । सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक कबीर, आदि ने इसके विरुद्ध आवाज उठा कर जनता को इन आडम्बरवादी लुटेरों के जाल से मुक्त किया । मुसलमान पूर्णतः यहां समा चुके थे । उन्होंने भी इस परिस्थिति का उपयोग किया और अपना धर्म प्रचार आरम्भ किया । फलस्वरूप 'भारतीय और मुस्लिम सम्प्रदायों की टक्कर से धार्मिक सिद्धान्तों में भी परिवर्तन आया । अद्वैतवादी हिन्दू और एकेश्वर वादी मुसलमानों के मेल से निर्गुण सम्प्रदाय का जन्म हुआ । भक्तों ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया ...."।[168]

सिक्ख धर्म के उद्‌भव से समाज और धर्म दोनों को सुरक्षा प्राप्त हुई । वह समस्या मूलक स्थितियों का समाधान प्रस्तुत करता है । 1501 ई. से लेकर 1601 ई. तक पूरा सौ वर्ष गुरुमत के सैद्धान्तिक निर्माण में लगा । प्राचीन ब्राह्मण मत योगमत और तपस्वी द्वारा शरीअत पर पूरी पूरी शान्ति डाली और अपना निराला पंथ स्थापित किया ।[169] इस धर्म का उद्देश्य जनता को आडम्बरों से मुक्त करना था । भारतीयों के सामने उनकी भावनाओं को कुचला जाता था । मगर वे कुछ भी कर सकने में सक्षम न थे । वे उनके कुकृत्यों से भयभीत थे । निर्मम शासकों की पशुवृत्ति को शान्त करने हेतु हिन्दुओं के पूजनीय स्थान मन्दिर गिराए जाते थे । .....शान्ति के समय भी उन हिन्दुओं की किस्मत इतनी अच्छी नहीं थी ।[170] उनसे मुस्लिम शासकों द्वारा मतभेद किया जाता था । उन्हें अपमानित किया जाता था । उन पर तरह–तरह के दोष लगा कर उन्हें अपराधी ठहराया जाता और उन्हें शहीद कर दिया जाता । पांचवें गुरु अर्जुन देव की निर्मम हत्या और शहीदी स्मरण करके किसके रोंगटे खड़े नहीं होंगे । गुरु जी को दरिया की बरेती में लेजा कर, गर्म रेत डाल–डाल कर पीड़ित किया गया, उबलते पानी में भी उबाला गया तथा और अधिक कष्ट देने के लिए रावी के ठण्डे पानी में डुबाया गया ।[171] गुरु नानक जाति पाँति में विश्वास नहीं करते थे । वे परमात्मा के समक्ष सभी को एक समान मानते थे ।[172]

यह कारण था कि उन्होंने कभी भी किसी भी अपने शिष्य को मतभेद करने या रूढ़ियों में उलझने के सन्देश नहीं दिया । वे धर्म के माध्यम से ही समाज को अनैतिकता से नैतिकता की ओर ले जा रहे थे । गुरु नानक देव के दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत निर्गुण और सगुण ब्रह्म के गुणीभूत स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । उनके समय में सगुणोपासना और निर्गुणोपासना दोनों का पारस्परिक मतभेद चल रहा था । गुरु जी ने एक समन्वित मार्ग खोज कर समाज को एक नई चेतना प्रदान की । उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से दोनों को सन्तुष्ट कर दिया ।

"........ जहां सगुण सम्प्रदाय आन्तरिक और एकान्त साधना या मन्दिर आदि की व्यवस्था मे लगे रहे, वहां एक सीमा तक निर्गुण सम्प्रदाय समाजोन्मुखी भी बने रहे । धर्म या जाति के नाम पर जो कुछ जागृति इस युग में दिखलायी पड़ती है, उसका श्रेय बहुत कुछ इन सम्प्रदायों के तत्कालीन जागरण को ही जाता है, इस सम्बन्ध में विशेष रूप से सिक्ख सम्प्रदाय उल्लेखनीय है ।[173]

इस प्रकार सिक्ख सम्प्रदाय ने मध्यकालीन धार्मिक विवादों को समाप्त करके एक नवीनतम मार्ग खोज निकाला, जो निर्माणकारी प्रवृत्तियों से ओतप्रोत था । उसमें सभी धर्मों के व्यावहारिक पक्षों को सम्मिलित किया गया है । उन्होंने सभी विरोधी धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण किया और बुराइयों का त्याग किया । उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में मौलिकता भी है और भारतीय दर्शन का प्रभाव भी ।

"आदिग्रन्थ में वर्णित वाहिगुरु का स्वरूप आचार्य शंकर के निर्देश ब्रह्म के स्वरूप से पर्याप्त भिन्न है, उसका कुदरत सिद्धान्त भी स्वतन्त्र ढंग का है । सिक्ख गुरु जगत को मिथ्या नहीं बतलाते । तदनुसार ब्रह्म की कुदरत और माया दो विभिन्न अवधारणाएं हैं ।'[174]

जगत क्योंकि ईश्वर की रचना है, वह स्वयं ही उसमें समाया हुआ है और ब्रह्म का गुण सत्य है फिर जगत असत्य कैसे हो सकता है । गुरुवाणी के अनुसार तो वह ईश्वर स्वयं ही सृष्टि है ।

आपे अंडज, जेरज, सेतज, उत् भुज
आपे खंड आपे सब लोह ।।[175] (सोरठि महला – 4)

श्री गुरु नानक देव जी ने जिन दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उनकी संकलित उनकी वाणी में सहज ही उपलब्ध होते हैं, अन्य गुरुओं ने भी इसी दार्शनिकता को अपनी वाणी में उद्घाटित किया है । संक्षेप में यहां सिक्ख दर्शन की विचारधारा पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

ब्रह्म के विषय में सिक्ख दर्शन में अत्यन्त उदार विचारधारा के दर्शन होते हैं, वह सर्वत्र विद्यमान है, उसके लिए किसी प्रमाण की आवश्कता नहीं है । वह स्वतः प्रत्यक्ष है । मगर उसे देखने के लिए आंखों (ज्ञान चक्षु) की आवश्यकता है । गुरु ग्रन्थ साहिब में कहा भी है ......

नानक से अखड़ीया विअंनि
जिनी डिसदो मा पिरी ।[176] (रागु बडहस महला–5)

गुरुवाणी में सिक्ख दर्शन का जो स्वरूप मिलता है, उसके अनुसार ब्रह्म के लक्षण कुछ इस प्रकार हैं :–

"......ब्रह्म एक है दूसरा कोई नहीं, इसका नाम सत्य है वह कर्त्ता है, निर्भय और निरवैर । वह सत्य चेतन और आनन्द स्वरूप है । वह सर्वत्र सर्वसत्ता सम्पन्न और सर्वज्ञ है, वह निशेष और निर्विकार है ।[177]

श्री गुरु नानक देव जी के मूल मन्त्र में भी ईश्वर की इन्हीं विशेषताओं को उद्वृत किया है । यही मूल मन्त्र ही सिक्ख दर्शन के 'ब्रह्म' का स्वरूप परिलक्षित करता है । एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।[178]

ईश्वर या ब्रह्म कालातीत है वह विषयों से निर्लेप है, वह कर्त्ता है, इस सृष्टि का रचयिता भी है । सभी जीवों में उसी का वास है और वह समस्त जीवों में शक्ति प्रदाता है । उसने ब्रह्म, विष्णु और शिव सभी को उत्पन्न किया है । वह भूत, वर्तमान और भविष्यत तीनों कालों में समान रूप से व्याप्त है और सत्य स्वरूप हैं ।

आदि सचु, जुगादि सचु
है भी सचु, नानक होसी भी सचु ।[179]

सिक्ख दर्शन के अनुसार ईश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण है, वह एक ही काल में दोनों स्वरूपों में विद्यमान रहता है ।

निरगुन आपि सरगुन भी ओही
कलाधारी जिनि संगली मोही ।[180]

वह अवतार धारण नहीं करता, सिक्ख दर्शन ने अवतारवाद का विरोध किया है । उस ब्रह्म को अजर अमर और अजन्मा माना है । वह एक है, सर्वत्र व्याप्त है और सबका पालक है । वह सत्य है, कर्त्ता पुरुष है, निर्भय तथा निरवैर है । वह दृष्टा ज्ञाता और साक्षी भी स्वयं है । ईश्वर ने माया को एक दासी के रूप में इस सृष्टि में उत्पन्न किया है, जिसका सर्वत्र प्रसार है और जो समस्त जीव–जन्तुओं को मोहित कर भ्रमित करती है और ईश्वर से अलग भी करती है ।

इक दासी धारी सबल पसारी
जीव जन्त ले मोहनिया ।[181]

माया अपनी अद्भुत विलक्षणताओं के कारण जीव को मोह लेती है और तन–मन पर आच्छादित हो जाती है । यह त्रिगुणात्मक है और अपने तीनों गुणों से ही जीव को वशीभूत कर लेती है ।

"......माया जीव के लिए बन्धन है और इसका मुख्य काम अहं है माया का संसार तीन गुणों का संसार है, यह तीन गुण अहं या अंहकार के परिणाम हैं । इन तीन गुणों का नाम तमस रजस और सत्व है । तमस् बाधा है, रजस गति है और सत्व लय है ।[182]

माया के सब से बड़े आकर्षण है कामिनी और कंचन । माया इन्हीं को अपने वस्त्रों के रूप में प्रयुक्त करके जीव को अपने मोहजाल में फंसाती है । इन दोनों से कोई विरला ही बच सकता है ।

कंचनु नारी जीउ लुभतु है,
मोह मीठा माइया ।[183]

माया की इस मोहिनी शक्ति के कारण ही इसका प्रभुत्व सारे संसार में व्याप्त है । केवल सद्गुरु के उपदेश से ही इसका विनाश सम्भव है । माया जिस अज्ञान रूपी तिमिर

को आच्छादित करती है, वह गुरुज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से ही दूर हो सकता है । गुरु के ज्ञान से ही मनुष्य उस परम ज्योंति स्वरूप ब्रह्म से साक्षात्कार करने में सक्षम होता है ।

सुणि उपदेसु सतिगुर पहि आइआ
गुरु हरिहरि नामु मोहि हडाइया ।[184]

गुरु ने हरि के नामका स्मरण कराया जिसे भव बन्धन कट गए और मुक्ति मिली ।

'हरि जपि माइया बंधन टूटे ॥''[186]

सिक्ख दर्शन में माया का निषेध, सद्गुरु की शरण ओर ईश्वर के नाम स्मरण पर अत्यधिक बल दिया गया है । सिक्ख दर्शन में अन्य भारतीय दर्शनों के समान जगत को मिथ्या नहीं माना गया और न ही इसे केवल भ्रम ही माना गया है । सिक्ख दार्शनिकों ने जगत को सत्य माना है । यह सृष्टि ईश्वर की रचना का निरन्तर क्रम है । इसकी रचना एक बार नहीं अनेक बार हुई है ।

'कई बार पसरियो पसार
सदा–सदा इकु एकंकार ॥''[168]

इस सृष्टि का उत्पन्न होना और विलय होना उस ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है । सृष्टि का नाश नहीं होता अपितु उसका विलय होता है । पुनः वह उसी रूप में विकसित हो जाती है जब उसकी इच्छा होती है, वह रचना करता है। ऐसे ही जब उसकी इच्छा होती है, तब वह विरचित सृष्टि को भंग कर देता है, रचना से पूर्व वह शून्य समाधि था ।[187]

सिक्ख दर्शन में भी सृष्टि के इसी स्वरूप को ही सत्य रूप माना गया है ।

जा तिसु भावे तो सुसटि उपाए
आपणे भाणे लए समाए ॥[188]

उस सत्य ब्रह्म से ही सृष्टि की रचना होती है । अतः सृष्टि सत्य है ।

''सामान्य दृष्टि से यही देखा भी जाता है कि कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है, कारण के मूल में जो द्रव्य विराजमान रहता है, वही कार्य में भी परिलक्षित होता है । दूध से दही बनता है, पानी से नहीं, तिल से तेल निकलता है बालू से नहीं । अतएव सत्य परमात्मा से सत्य सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।''[189]

यह सृष्टि उस ईश्वर की एक क्रीड़ा मात्र है, वह उस इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में अपने ही विकास करता है । उत्पत्ति–विनाश, जीवन–मृत्यु, दुःख–सुख, पाप–पुण्य प्रकाश–अन्धकार, सब में वह समान रूप से व्याप्त है ।

अंधेरा चावणु, आपे कीआ,
एको बरतै अवरून बीआ ।[190]

सृष्टि के कण–कण में व्याप्त उस ब्रह्म के स्वरूप को जान लेने के बाद यह कैसे कहा जा सकता है कि सृष्टि असत्य अथवा मिथ्या है । अतः सिक्ख दर्शन के अनुसार जगत को ब्रह्म के समान ही सत्य माना गया है.....

परमात्मा ने इस सृष्टि में अनेकों प्रकार के जीव उत्पन्न किए हैं । भारतीय दर्शन में जीव को आत्मा या जीवात्मा भी कहा गया है । जीव परमात्मा ने ही उत्पन्न किए हैं और परमात्मा का कण–कण में वास है, और परमात्मा जड़–चेतन में विद्यमान है । अतः जीव में भी परमात्मा का वास माना गया है । सिक्ख दर्शन के अनुसार इसीलिए जीव को अन्दर अविनाशी ब्रह्म का वास माना गया है ....

देहि अंदरि बामु निवासी,
आपे करता है अविनासी ।[191]

उसके नाम के अभाव में जीव मृत्यु को प्राप्त होता है और योनियों में भटकता है । जीव शब्द आत्मा, सांत सत्ता या सांत मूर्त के लिए प्रयुक्त किया गया है जबकि ब्रह्म अनन्त (अन्त रहित) है, जीव सान्त है प्रकृति के संदर्भ में ब्रह्म और जीव दोनो ही पुरुष हैं । परन्तु जहां ब्रह्म या परम पुरुष प्रकृति का कर्त्ता है और इसके प्रभाव में, नहीं आता । जीव या पुरुष कर्म क्षेत्र में या प्रकृति में उतरता है और बार–बार जन्म और मृत्यु का शिकार होता है ।[192] अपने स्वरूप को नहीं पहचान पाता, तब वह उसकी तलाश में भटकता है । जब वह जान जाता है कि जिसे वह बाहर ढूंढता है, वह उसके अन्दर ही है और गुरु उपदेश आदि साधनों द्वारा उसे परमात्मा तत्व का ज्ञान हो जाता है, तो उसका अहंभाव मिट जाता है और वह उस ब्रह्म से अद्वैतभाव से मिल जाता है ।

नाना रूप सदा हरि तेरे
तुझ ही माहि समाही ।[193]

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है । वह अधिक सूझवान और चेतनशील है । कई योनियों में भटकने के बाद मनुष्य रूप प्राप्त होता है । उसकी प्राप्ति के लिए अनेक युगों तक भटकना पड़ता है ......

फिरत–फिरत बहु जुग हारियो
मानस देह लही ....।[194]

आत्मा परमात्मा का ही अंश है । मगर माया के भ्रम के कारण उससे भिन्न प्रतीत होता है । वही कारण है कि ...... मनुष्य (जीव) अल्पज्ञ शक्तिहीन और गुणहीन है, परन्तु जिस समय वह परमात्मा के भजन, चिन्तन में इतना निमग्न हो जाता है कि त्रिपुटी (ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान) अथवा ध्याता, ध्येय तथा ध्यान) अथवा आराधक, आराधना आधाधू देव का भाव मिट जाता है, उस समय वह साक्षात् परमात्मा का ही स्वरूप हो जाता है ।[195]

शरीर नाश होता है केवल आत्मा ही अमर है । सिक्ख दर्शन में भी वेदान्त के समान ही आत्मा की अमरता का सिद्धान्त मान्य है । शरीर मिथ्या है नश्वर है जब कि आत्मा शाश्वत और सत्य स्वरूप है ।

इस प्रकार सिक्ख दर्शन में मौलिकता के साथ कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, ब्रह्म, जीव, जगत और माया सम्बन्धी इस संक्षिप्त विवेचन से यह सिद्ध हो

जाता है कि सिक्ख गुरुओं ने अपनी दार्शनिक दृष्टि से भारतीय दर्शन का सार रूप प्रस्तुत करके अपने अनुभव के बल पर जनता के सामने प्रत्यक्षीकरण को अत्यधिक महत्त्व दिया। उन्होंने मिथ्याडम्बरों का डट कर विरोध किया।

सिक्ख दर्शन की विलक्षणता और विशिष्टता इस नुकते में है कि इसने आध्यात्मिक आदर्शवादी परम्परा से आगे जा कर एक नई आध्यात्मिक पदार्थवादी विचार प्रणाली का विकास किया। एक नया चिन्तन संसार के सामने प्रस्तुत किया जो सिक्ख क्रान्ति का (नए सामाजिक निज़ाम) एक नए मूल्यों के चौखटे, एक नए राज्य विधान के लिए नींव पत्थर सिद्ध हुआ।[196] इस प्रकार सिक्ख दर्शन की सिक्ख मत एवं भावी अनुयायियों को अमूल्य देन है।

4. निर्मल दर्शन :—

निर्मल सम्प्रदाय सिक्ख धर्म की महत्त्वपूर्ण शाखा है। सिक्ख गुरुओं द्वारा प्रतिपादित गुरुमत सिद्धान्तों को व्याख्यायित कर जन साधारण तक पहुंचाने में इस सम्प्रदाय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इन्होंने काशी में रह कर वेद, उपनिषद्, वेदांग, षड्दर्शन का अध्ययन करके संस्कृत ग्रन्थ में गहन विद्या का सार ग्रहण करने के बाद गुरु आशीष से जब गुरुवाणी की व्याख्या का कार्य–भार संभाला तो इनकी व्याख्या पद्धति अन्य सिक्ख विद्वानों की अपेक्षा अधिक विलक्षण प्रतीत हुई क्योंकि इनकी व्याख्या पद्धति पर पांडित्य पूर्ण भाषा एवं शब्दावली की छाप अधिक थी। साथ ही इनकी दैनिक जीवन पद्धति पर काशी के पंडितों के संस्कारों का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक ही था। तो भी गुरु जी के बताए मार्ग का अनुसरण करना इनकी मौलिक विशिष्टता ही कही जा सकती है। गुरु ग्रन्थ साहिब को अपने इष्ट मान कर ये उसके सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते हैं।

निर्मल सम्प्रदाय के साधु प्रायः आस्तिक और बड़े गुरु भक्त होते हैं और गुरु सम्प्रदाय का भरसक विस्तार करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वे परम विवेकी और सर्वोत्तम दर्शी होने पर भी गुरसिक्ख होते हैं।[197] गुरु गोबिन्द सिंह जी के आदेशानुसार इन्होंने काशी में जा कर अध्ययन किया और उन्हीं के हुक्म के अनुसार इन्होंने अमृतपान भी किया और पुनः निवृत्ति मार्ग को अपना कर जीवन यापन करने में ही आस्थावान हुए।

"......जो अमृती सिक्ख है, विरक्त है और सदा सन्यास वृत्ति से रहते हैं, उनका नाम 'निर्मल' है।[198]

इनकी दार्शनिक विचारधारा गुरुवाणी पर ही आधारित है। गुरुवाणी के दार्शनिक सिद्धान्तों को ही इन्होंने अपने जीवन और साहित्य में धारण किया है। गुरुवाणी के ब्रह्म के समान ही इन्होंने भी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का ही अधिक विवेचन किया है। निर्गुण

ब्रह्म को अनेक विशेषणों यथा निरलंभ, निराकार, निरमोह, निरबंध, आदि से अभिहित करना इनकी मुख्य विशेषता है । वह तीनों गुणों से अतीत, तीनों तापों का नाशक और मुक्ति प्रदाता है ......

निरालंभ निराकार भ्रम नासनिरवास
निरमोह निरबंध निरहिंस जानीए
निर वास सावधान, सारग्राही सरबंगी
अपमानी निरलेप पछहीन मानीए
निहतरंग करम हीन सीतलता सीलवन्त
सतवादी सुखदाई संतोखी पछानीए
एकता समाध जाकै तीन ताप नास भरा
टहलसिंह जीवन मुक्त सो बखानीए ॥ 155॥[199]
ब्रह्म बिना आधार न कोई
जामे द्वेत दाण्ड सम होई
ताते ताको त्याग सु ऐसो
सीप बिखे रूपे को जैसे ....। (ननु)
रजत मिथ्या तामै हयै
द्वैत सत्य ब्रहम में पयै
सो कैसे पुनि रजत समाना
सत्य होई जो सब को माना 10
सत्यमान माख्यो तुम जोई
सब को नाहि कदाचित होई
अति कोविद भुव मंडल जैते
मिथ्या लखि द्वैत सब तेते ।।[200]

जैसा गुरु के दूसरे सिक्खों (खालसा आदि) के लिए गुरु ग्रन्थ साहिब तथा दूसरी मर्यादाओं का पालन जरूरी है वैसा ही निर्मल सन्तों के लिए भी कार्यभेद से कुछ परिवर्तन अवश्य है लेकिन सैद्धांतिक रूप से गुरु जी की आज्ञा विशेष से निर्मल सन्त विशेष वेष के अधिकारी है ।

अमृतपान करना पांच ककारों का धारण करना तथा गुरुवाणी में दृढ़ विश्वास यह इनकी मर्यादा के विशिष्ट गुण है । काषाय वस्त्र धारण करना इनकी विलक्षणता है । गुरु जी के आदर्शों का पालन एवं मर्यादा का प्रतिपादन करना ही इनका धर्म है । इनके साहित्य से भी इन्ही विचारों की पुष्टि होती है ।

"......अथ निर्मल पन्थ प्रदर्शन सो विचार मालूम होवे जो किसी का कथन है । निर्मले सन्तों के मार्ग का प्रदर्शन दोनों का श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी से होना जरूरी है । वही विचार निरूपण किया जाता है सो मालूम हो जो कि दशम गुरु जी के रजोगुण, तमो गुण,

युक्त शस्त्रधारी अमृतपान कर युद्ध, जंग करने वाले खालस सिंघ हैं । वे केवल दशम गुरु जी की रहत रखते हैं और सतो गुण युक्त जो निर्मले सन्त हैं, सो दशम गुरु जी का अमृत पान करके दसों ही श्री गुरु जी की रहत मर्यादा को धारण करते हैं क्योंकि 'आदि अन्त एको अवतारा । सोई गुरु समझियो हमारा ।'

इस कथन से दोनों ही श्री गुरु महाराज जी एक समान बराबर ही हैं । सो इस कारण से दसों ही गुरु जी का लिबास (वेश) निर्मले सन्त धारण करते हैं, सो विचार विशेष करके मालूम कराया जाता है, सो दोनों श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के प्रमाण से दसों ही श्री गुरु महाराज जी केस सहित जटाजूट है, सो वैसे ही निर्मले सन्तों के होने का कारण[201] । पहले उदासी सन्तों ने गुरुवाणी के प्रचार का कार्य आरम्भ किया । मगर बाद में उनकी विचार पद्धति गुरुवाणी से भिन्न होती चली गई और यह कार्य निर्मल सन्तों द्वारा सम्भाल लिया गया । खालसा की स्थापना के बाद उदासी सिक्ख पन्थ से भिन्न हो गए और निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी के प्रचार कार्य किया और अधिक जिम्मेदारी से निभाया और अपने ग्रन्थों से गुरुवाणी के दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करनी आरम्भ की ।

वास्तव में ऐसा मालूम होता है कि श्री गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु तेग बहादुर जी तक दूर दूर तक के अनेक लोग सिक्ख गुरुओं के सम्पर्क में आए । दशम पातशाह ने जब सिक्खों को सिंह सजाया तब सारे दूर दूर के सिक्ख इस सिंह स्वरूप के घेरे में नहीं आ सके । उनका स्वरूप तो पहले जैसा ही रहा लेकिन इनके हृदय में सिक्ख गुरुओं, सिक्खी और गुरुवाणी के प्रति श्रद्धा बनी रही । बहुत समय तक उदासी सन्तों ने ऐसे लोगों को गुरुवाणी से जोड़े रखा । परन्तु जब से उदासी हिन्दू धर्म में विलीन हो गए, तो उदासी सन्तों की यह सेवा धीरे–धीरे निर्मले सन्तों ने पूर्णतया सम्भाल ली ।[202]

इन्होंने इस व्याख्या पद्धति का मूलाधार तो गुरुवाणी को ही बनाया लेकिन व्याख्या पद्धति को अधिक सफल और सुगम बनाने के लिए गुरुवाणी में आए सिद्धान्तों की सन्दर्भगत व्याख्या करने में अन्य ग्रन्थों के सन्दर्भों को सम्मिलित करने में भी संकोच नहीं किया ।

गुरुवाणी में नाम के महत्व पर अत्यधिक बल दिया है । इन्होंने भी अपने ग्रन्थों में हरिनाम के स्मरण पर अत्यधिक बल दिया है । उस नाम के बिना सभी सांसारिक पदार्थों के अस्तित्व को नकारा है । सभी भौतिक पदार्थों की अपेक्षा हरिनाम का महत्त्व अधिक बताते हुए प्रसिद्ध निर्मल सन्त टहिल सिंह का कथन है ......

दारा सुत मीत भ्रात सभी को सनेह घनो
हाथी घोरा राजमाग बड़ो तान मान है
बड़ो देस, तेज जसु बड़ा ही प्रताप जग
कूप आग बाग जाके बड़ो धन घान है
मानव के भोग जाको सभी प्राप्त हैं

सूर बीर धीर बड़ो गुनन की खान है
सब ही पदारथ बने, तो क्या है
टहलसिंह बिना हरि नाम सब दोजक समान है1 ॥ 20॥[203]

जैसा कि पहले कहा गया है कि निर्मल सन्तों की विचारधारा पर सनातनी विचारधारा का प्रभाव है काशी में रह कर कर्मकाण्डी विद्वानों के संसर्ग में रहने के कारण उनकी पूजा–पद्धति एवं विचारधारा का प्रभाव पड़ना उन पर स्वाभाविक ही था।

(**नोट :–** काशी में चेतन मठ के वर्तमान श्री महन्त इन्द्रजीत सिंह जी ने लेखक को बताया कि मैं प्रतिदिन शिवलिंग पर जल चढ़ाता हूं क्योंकि हमारे मठ में 11 रुद्र शिव स्थापित हैं।) (मैने उनके डेरे में अनेक प्रतिमाओं और (11 रुद्र) के दर्शन भी किए हैं)।

निर्मल सन्तों शिव तथा अन्य देवी–देवताओं की स्तुति भी की है अधिकांश निर्मल सन्त गुरु नानक देव, गुरु गोबिन्द सिंह, एवं दसों गुरुओं की स्तुति करते हुए, गणपति, सरस्वती, राम, कृष्ण, शिव आदि की स्तुति भी करते हैं। उसे तीनों लोकों का स्वामी कहा गया है और उसका गुनगान करने के लिए कहा है, उसका यशगान न करने वाले का जन्म निष्फल है, उसे धिक्कार है।

इसलिए उस त्रिलोकी नाथ का ध्यान करने में ही तेरा उद्धार है ....

ताको धयानु धरो नरो जोऊ तीन लोक नाथ
तीन लोक साथ हाथ काहु के न आता है
गौरी नाथ आदिज को धयानु सदा धारत है
जास अज आदि जाचे अैसो जोऊ दाता है
जाके गुनगान करि नार दाति रीझत है
रटत–अहिराज आजहूंली रंग राता है
उंग तो रटै हैं जाहि और कौन टहिल सिंघ
ताको ध्रिग जो न ताको जसु नाहि गाता है1 ॥ 18॥[204]

इस संसार में उस ईश्वर के बिना सब असत्य है। संसार में ईश्वर व्याप्त तो है मगर जीव उसे ढूंढने में असमर्थ है। तृष्णाओं के कारण मनुष्य इधर–उधर भटकता है। मगर उस ईश्वर से दूर हो ता चला जाता है। यह संसार देखने में सुन्दर लगता है। मगर बन्धन का कारण है। जैसे अग्नि देखने में सुन्दर लगती है मगर छूने से जलाती है ठीक वैसे ही यह संसार कष्टों को देने वाला है। मगर मूर्ख मनुष्य इस बात को समझ नहीं पाता। वह तृष्णाओं में उलझ–उलझ कर कष्ट भोगता है। इसी से मुक्ति पाने के लिए वह दर–दर भटकता है। मगर उसे मुक्ति नहीं मिलती ....

जेतुहि दीसत है जगु सुंदरु
यामे तो रंचकि नाहिन सुखा।

दीसत है जिस पावक सुंदर
डारे जो हाथिल है अति दुखा ।
तैसे विसे रस की त्रिसा करि है
टहिल सिंह जो मूड़ मानुखा
राम संभाग, विसार विसै रस
याही ते जाहिगी रे तोहि सुखा ॥ 42॥[205]

केवल राम का नाम ही उसे इस कष्टमयी जंजाल से मुक्ति दिला सकता है राम का नाम लेने से ही अविद्या का नाश होता है और मनुष्य उस परम सत्ता को जानने में सक्षम होता है । इसे ही दार्शनिकों ने अद्वैतभाव कहा है । यह वेदान्त वादी विचारधारा को पुष्ट करता है । इसी से कुछ विद्वानों ने निर्मल सन्तों पर वेदान्तवादी होने का आरोप लगाया है । लेकिन यह आरोप निराधार है । निर्मल सन्तों ने केवल अपने मत की पुष्टि के लिए ही कुछ उद्धरण दूसरे ग्रन्थों से उद्धत किए हैं । इसी से उनकी व्याख्या पद्धति अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं भिन्न दृष्टिगोचर होती है । उनके ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं ।

"......निर्मल विद्वानों ने वेदान्त पर पुस्तकें लिखीं और सिक्खों से अलग होकर एक सम्प्रदाय बना ली । इसलिए आम सिक्खों में यह भ्रम पैदा हो गया कि निर्मल सन्तों ने गुरुमत विचारधारा को त्याग कर वेदान्ती विचारों को अपना लिया है । इस विवाद का निर्णय करने के लिए निर्मल सन्तों ने समय समय पर पुस्तकें रची और उन पुस्तकों में गुरुवाणी की व्याख्या कर सप्रमाण सिद्ध किया है कि वे गुरुवाणी की विचारधारा को ही अपनाते हैं ।[206]

निर्मल सन्तों की दार्शनिक दृष्टि गुरुमत सिद्धान्तों के अनुरूप ही हैं और उसमें गुरुमत को सूक्ष्मता से देखने की अद्‌भुत क्षमता है । गुरुवाणी के दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या जितनी गहनता से निर्मल सन्तों ने की सम्भवतः किसी अन्य ने नहीं । कारण यह है कि उन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में की है, जो अधिक स्पष्ट है ।

5. अद्वैत दर्शन और निर्मल दर्शन का समन्वय :–

जब गुरु नानक देव जी का आविर्भाव हुआ तो भारत धार्मिक दृष्टि से विश्रृंखल हो चुका था । अनेक मत मतान्तरों के अधिष्ठाता अपने–अपने सम्प्रदायों के माध्यम से वैदिक, पौराणिक और औपनिषदिक सिद्धान्तों की अपने–अपने ढंग से व्याख्या कर रहे थे । अपनी–अपनी डफली अपना–अपना राग वाली बात थी । सभी एक दूसरे का खण्डन और अपने मत का मण्डन करने पर लगे थे । एक निष्ठ होने अथवा समन्वयात्मकता का प्रश्न कोसों दूर था । गुरु नानक कबीर प्रभृति महापुरुषों के सदुप्रयासों से ही लोगों को प्रकाश की किरण दिखाई थी । नानकदेव जी ने सभी भेदभावों को मिटा कर कुमार्गगामी रूढ़ियों का विरोध कर एक मानवधर्म की स्थापना की, जिसके अनुसार मनुष्य सत्संगति अथवा गुरु के उपदेश द्वारा उच्चादर्शों को अपना कर ही प्रभु को पा

सकता है । अतः उन्होंने सदाचार की नींव पर मानव जीवन का भवन खड़ा किया । निर्मल सन्तों ने भी नानक की वाणी और सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया है । उन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या साधारण बोलचाल के शब्दों में प्रस्तुत की । अतः उनके काव्य में धर्म का स्वरूप गुरु नानक जैसा ही था । उनकी रचनाओं में तत्कालीन विकृत धार्मिक अवस्था तथा उसे जो गुरुओं द्वारा नवीन रूप देने के प्रयास किए गए । उसका चित्रण स्पष्ट रूप से झलकता है । धर्म की नई व्याख्या और तत्कालीन प्रचलित पाखण्ड और आडम्बरों का विरोध ही तत्कालीन साहित्यकारों की लेखनी के मुख्य विषय बनें । सिद्धों, नाथों, जैनियों एव बौद्धों द्वारा प्रचलित सम्प्रदाय भी विकृत हो गए थे । उनमे लोभ और स्वार्थ की प्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल हो उठी थी । वे जनता को पथ भ्रष्ट कर रहे थे । जनता अन्धकार में भटक रही थी । धर्म के नाम पर लोगों को छला जा रहा था । पारस्परिक वैमनस्य के कारण लोग एक दूसरे का गला काट रहे थे । पुरानी मान्यताएं खण्डित होती जा रही थीं । पंजाबी जनता की दशा और भी शोचनीय थी, सीमा प्रांत होने के कारण सब प्रकार से उसका पतन हो रहा था । वहां भी कबीर जैसे लौह पुरुष की अपेक्षा थी, गुरु नानक के अवतरित होने से वह पूर्ण हुई । परिस्थिति नर्म देख कर जन धैर्य का आहवान् नानक ने भक्ति आवरण में अद्वैत स्थापना के माध्यम से किया ।[207] उस समय का समाज अनेक जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त था । ऐसे समाज को संगठित करने का श्रेय गुरु नानक और कबीर को मिला । गुरु नानक ने अपनी गोष्ठी और श्लोकों द्वारा देश के लोगों को एक जीवन प्रणाली प्रदान की जिसमें हमारी वास्तविक संस्कृति की सुरक्षा की गई और कुछ सम्प्रदायों द्वारा प्रचलित निष्क्रियता और आत्म निग्रह का त्याग किया गया है ।[208] हिन्दू और मुस्लमान दोनों एक दूसरे के शत्रु थे । दोनों अपने अपने मत का प्रचार करने में जुटे हुए थे । एक मूर्ति पूजक दूसरा मूर्ति भंजक । एक बहुदेव वादी था, दूसरा एकेश्वरवादी । दोनों के धार्मिक विचारों में प्रबल विरोध था । हिन्दू विचारों में किसी न किसी रूप में वैदिक विचारधारा का प्रभाव अब भी बना हुआ था । और इसी का भक्तिकाल में पुनर्स्थापन हुआ । गुरुनानक के पश्चात् आने वाले सभी सिक्ख गुरुओं ने उनके सिद्धान्तों का अनुमोदन किया और उनकी विचारधारा को ही अपने प्रचार का विषय निर्धारित किया । इनमें अद्वैतवादी विचारधारा का आधिक्य मिलता है, जो जीव की मुक्ति का ही दूसरा रूप है, इसे ही दूसरे शब्दों में आत्म ज्ञान कहा गया है । सिक्ख धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों ने इसी सिद्धान्त को अपनाया है । ईश्वर पद का लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म और जीवपद का लक्ष्यार्थ साक्षी चेतन इन दोनों की एकता का निश्चय करना ही आत्म ज्ञान है । इस आत्म.ज्ञान का नाम ही अद्वैतवाद है । जो सभी भेदों वादों से ऊपर उठ कर ही प्राप्त होता है । यही प्राणीमात्र के भले वाला सिद्धान्त गुरु नानक देव जी ने स्थापित किया है और इसी सिद्धान्त के प्रचार प्रसार हेतु निर्मल पन्थ का निर्माण हुआ है ।[209]

निर्मल सन्तों ने गुरु नानक देव जी के अद्वैतवादी दर्शन को अपनी व्याख्या पद्धति का आधार मान कर ही गुरुवाणी की व्याख्या की है । गुरु नानक देव जीव और ब्रह्म की एकता पर बल देते हैं और माया को अनावरण करने के लिए गुरु का महत्त्व स्वीकारते हैं । सृष्टि निर्माण में माया की कल्पना की और इस अज्ञान तिमिरान्ध को विदीर्ण करने की शक्ति गुरु में अवस्थित रखी गई । अतः माया का आवरण हटा कर रंजन को निरंजन में एकमेव करने का मात्र माध्यम गुरु को ही स्वीकार कर लिया गया ।[210] निर्मल सन्तों ने अपनी रचनाओं में इसी अद्वैतवाद की चर्चा स्थान–स्थान पर की है और इसके सैद्धान्तिक स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है । उस ब्रह्म को जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया है । भ्रम के कारण ही यह संसार असत्य होते हुए भी सत्य दीखता है । वास्तव में जीव और ईश में भेद नहीं है, वह अभेद है, असुछिन्न है और अद्वैत है, केवल माया के कारण ही अलग–अलग दिखाई देते हैं । निर्मल सन्तों ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा अपनी बात को कहा है .....

जैसे द्रिग भ्रम साथ दीसत मयंक जुग
दीखत प्रपंच तैसे आतमा ते भिन्न है
ग्यान और वीचार करि जाकी बुध सुध मई
सभी घट मांहि सोऊ देखत अभिन्न है
विस्यों की कामना तेजस को चपल मन
जगत असत सत मासत सुमिन है
वास्तव जीव ईस माया को न भेद कोऊ
टहिल सिंह केवल अद्वैत अप्रछिन्न है ॥ 15 ॥[211]

ज्ञान के अभाव में जीव माया (अज्ञान) से घिरा रहता है और ब्रह्म को जानने में असमर्थ रहता है । जब ज्ञान का दीपक जलता है तब वह शुद्ध आत्म रूप होकर उस ब्रह्म से एकमेक हो जाता है और उसका द्वैत भाव मिट जाता है । जब मनुष्य के अन्तर में आत्मज्ञान पैदा होता है, तब वह उस आत्मस्वरूप (ब्रह्म) को पहचानने में सफल हो जाता है और उसी का रूप हो जाता है ।

दोहा : **दोन पदारथ सोध के अखण्ड अरथ या माहि**
प्रगट होइ नीके सुनो निखल द्वैत मिट जाही ॥

चौपई : **जब उपजे निज आतम ग्याना**
तभी होइ सभ बंधन हानि
जीव ब्रह्म को हेर अभेदा
तयागे सगल जगत को खेदा ।[212]

आत्म ज्ञान के पैदा होते ही सब सांसारिक बन्धन मोहमाया आदि नष्ट हो जाते हैं और जीवात्मा उस ब्रह्म से अभेद होकर संसार के कष्टों से मुक्त हो जाता है ।

"इस बात में कोई सन्देह नहीं कि निर्मल सन्तों ने वेदान्त की व्याख्या के लिए भी साहित्य रचना की है, लेकिन इस प्रकार का साहित्य किसी प्रचार के मनोरथ से नहीं अपितु तुलनात्मक अध्ययन के मनोरथ से रचा गया है । क्योंकि गुरुवाणी में वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों के उद्धरण आते हैं, इस लिए गुरुवाणी को इनके सन्दर्भ में समझने के लिए वेदान्त का ज्ञान आवश्यक है ।"213

निर्मल सम्प्रदाय गुरुनानक देव द्वारा प्रचलित सिक्ख धर्म की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है, जिसे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने विशिष्ट पद के अधिकारी बना कर गुरुवाणी की व्याख्या का कार्यभार सौंप दिया था । इसलिए उन्होंने गुरुवाणी के गूढ़ अर्थों को स्पष्ट करने के लिए संस्कृत के दर्शन शास्त्रों का अध्ययन करके अनेक दर्शन ग्रन्थों का भाषा में प्रणयन किया । सन्त हरिभजन सिंह का अद्वैतामृत इस विषय पर आधारित भाषा में लिखा गया महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, उन्होंने इस ग्रन्थ का उद्देश्य बताते हुए कहा है ......

"........अद्वैतामृत ग्रन्थ यह सुनो निकटरुचिधार
मोह विगत तब ही भयो गुण उपदेश उदार

और ग्रन्थ के अन्त में ....

इति श्री भोल मृगराज शशिजहरि पद पदम अली
निर्मल सन्त हरिभजन सिंह विरच्यते भाषा
अद्वैतामृत ग्रन्थ पंचम कवल समाप्तम्
शुभम स्तु ।214

इसी प्रकार हरि सिंह विरक्त ऋषिकेष द्वारा प्रणीत अद्वैतानुभव प्रकाश और पं. सदा सिंह काशी द्वारा विरचित, अद्वैतसिद्धि की सुगम सार चन्द्रिका तथा पं. गुरदित्त सिंह ऋषि केश की वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली टीका अद्वैत दर्शन पर प्रकाश डालने वाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । बाद में आने वाले अनेक कवियों ने गुरुवाणी की व्याख्या इसी को आधार मान कर की है । ऐसा लगता है कि यह दार्शनिक सिद्धान्त न होकर एक जीवन व्याप्त सामाजिक सिद्धान्त बन गया हो । इसी कारण जितने भी कवियों एवं व्याख्याकारों से गुरुवाणी की व्याख्या की । उनमें यही दृष्टिकोण प्रबल रूप से दिखाई देता है ।

"....... साधु आनन्दघन और भाई सन्तोखसिंह दोनों ही समूचे तौर पर अद्वैतवाद की ओर झुके हुए हैं, दोनों ने गुरुमत का यही दृष्टिकोण निश्चित किया है ......" ।215

भाई सन्तोखसिंह जी ने जपुजी साहिब की गरबगंजनी टीका की रचना की है । आपकी ओर से एकओंकार (1—ओं) की व्याख्या इस प्रकार है :–

"..... धर्म की स्थिरता के हित जगत के उधारबे हित जो सरुति एक ओंकार में राखी है, सोई कहत है । जथा सरुती : एकोहं बहु स्यामः जब मायासवल ब्रह्म भयो, तब करता पुरख रूप प्रगटयो । 'एकोहं' एक जो मैं सो बहु होवो । इस कहिन ते बिस्तार को जगत प्रापति होत भयो । 'एकोहं' इस कहिन ते प्रिथम इह भी कहिना नहीं बनत हुतो । 'एकोहं' इन अखयरन ते 'एकोंकार' 1 ॐ बनयो सो कहित है । 'एकोहं', 'एको' के ककार ते

उकार निकासयो । 'हं' के बीच ते अकार स्वर अर मकार की जो बनी बिंदी, सो देऊं निकासे तीन अखयर होत भए, उकार, अकार, मकार । तीनों अच्छरों ते उअं 'बनयो । सो इक उअंकार' अरथ भयो ।"216

अद्वैतवादी विचारधारा में ज्ञान को विशेष महत्व दिया गया है । क्योंकि ज्ञान के अभाव में माया का निराकरण सम्भव नहीं है । सन्त टहिल सिंह अपने कबित्तों में गिआनी पुरुष को साक्षात् (ब्रह्म) कहते हुए लिखते हैं :-

कवित्त

टहिल सिंह दसा को न गिआनी की बखान करे
जैसे रूप केवल गिआनी को साक्षात है
जैसे उनि मति की चेष्टा करे
वनाइउन मति रसु हू की वाही कउ गिआत है
आग्रतन सूता कोन बोल बखानिये.................।"217

अप्रत्यक्ष रूप से निर्मल सम्प्रदाय वैदिक विचारधारा का ही पोषण करता है । यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है । क्योंकि अध्ययन मानवमन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता ही है । संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन उनकी इसी प्रवृत्ति का मूल कारण है .....

"....इस सम्प्रदाय ने अधिकतर संस्कृत के विद्वान ही पैदा किए शंकराचार्य की भांति ये सभी वेदान्ती थे भले ही उसकी तरह सनातनी मूर्तियों की पूजा तथा जाति-पाति के बन्धनों से रहित थे बल्कि सिक्खी भक्ति-भावना से रंगे हुए थे ।.....आरम्भ से लेकर ही वे वेदान्त सम्बन्धी विचारों के प्रचार तथा सिक्ख धर्म को भी उसी पुरातन दार्शनिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते रहे ।218

निर्मल सम्प्रदाय के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों तथा व्याख्याकारों ने अपने ग्रन्थों में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । भले ही वे निर्मल सम्प्रदाय में दीक्षित होकर गुरुवाणी के सिद्धान्तों की ही व्याख्या करते हैं, तो भी उनका एक भिन्न दृष्टिकोण है, जो अन्य सिक्ख सम्प्रदायों से उनकी अलग पहचान स्थापित करता है । "नरोत्तम जी ने जपु जी साहिब के प्रथम श्लोक की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है । व्याख्या में इन्होंने अपने सामने अद्वैतपरक दृष्टिकोण रखा है ।"219 इसी प्रकार वे अपनी बात को कहने के लिए अन्य निर्मल सन्तों के समान ही पौराणिक सन्दर्भों की व्याख्या के लिए अन्य ग्रन्थों का आश्रय भी लेते हैं । प्रसिद्ध दृष्टान्तों उद्धरणों को व्याख्या की पुष्टि के लिए उद्धृत करना इनके ग्रन्थों की विलक्षणता ही कही जायेगी ।

सैद्धान्तिक पक्ष से 'निर्मल' सम्प्रदाय का खालसापन्थ से कोई भिन्न भेद नहीं । परन्तु संस्कृत विद्या और पौराणिक ग्रन्थों के अत्यधिक अध्ययन के कारण इनमें धीरे-धीरे कुछ सनातनी रीति रिवाज़ प्रवेश कर गए थे, जो कि सिक्ख मर्यादा के अनुकूल नहीं थी ।220 पं. तारा सिंह नरोत्तम की गुरुवाणी व्याख्या इसी शैली की है । "गुरुवाणी की व्याख्या के लिए इन्होंने स्थान-स्थान पर पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाया है और न्यायशास्त्र

वेदान्त आदि से उदाहरण लेकर अपने मत की पुष्टि की है ।"221 इनकी व्याख्या पद्धति के समान ही इनकी पूजा पद्धति भी कुछ भिन्न हो गई है । सिक्ख मर्यादा का पालन करते हुए भी, गुरु ग्रन्थ साहिब में आस्थावान होते हुए भी इनकी पूजा पद्धति कुछ सनातनी ढंग की है । जिससे इनकी विचारधारा समन्वित होती चली गई है । इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दू और सिक्ख दोनो ही समान रूप से इनके अनुयायी बने ।

'सिक्ख पन्थ का एक अभिन्न अंग होते हुए भी निर्मल सन्त अपनी वेश–भूषा और पाठ पूजा की विधियों में सिक्खी से कुछ दूर चले गए हैं । कच्छ को जरूरी न समझ कर केवल एक पर्दा मानना या तिलक लगाना आदि इसकी स्पष्ट उदाहरण है । चाहे हर निर्मल डेरे में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रकाश होता है परन्तु अरदास में यह गंगा जमुना और त्रिवेणी का वर्णन करते और अरदास के समय शंख बजाते हैं । (नगाड़ा, घण्टी और घड़ियाल) भी बजाते हैं । यह सब हिन्दू रीति रिवाज का प्रभाव है । लेकिन इन डेरों पर जा कर पता चलता है कि वहां पर जितनी जनता सिक्खी रूप में आती है, उतने ही हिन्दू भी उन गुरुद्वारों में जाते हैं । हिन्दू गुरुवाणी पढ़ते, सुनते और गाते (कीर्तन करते) देखे जा सकते हैं ।"221

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के समान ही इन्होंने वेदों के महत्व को समान रूप से स्वीकृत किया है । यही कारण है कि यह वेदों में भी विश्वास रखते हैं और वेदवाणी को अपनी व्याख्या में स्थान देते हैं, इन्होंने अहं ब्रह्मोऽस्मि, 'तत्वमसि', अयमात्मा तथा प्रज्ञानमानन्द, चारों महावाक्यों को अपने ग्रन्थों में उदृत भी किया है । जिससे इसकी वेदों के प्रति निष्ठा का बोध होता है ।

चार वेद के महावाक के कबित्त :–

प्रगयानमानंद ब्रहम रिगवेद महावाक
पूरब दिसा को मुख तास को सुनी जीए
अहं ब्रहम असमी जुजर वेद वाक लीजै
दखणि दिसा की और मुख भेद कीजीए
तत्वमसि सामवेद पछ्म की और मुख
वेद जु अधरबन से ऊत मुख दीजीए
महावाक ताको अयं आतमा ब्रहम जान
चारो वाक चारो टहल सिंह लीजीए ॥223

काशी में रह कर निर्मल सन्तों ने वेद विद्या का गहन अध्ययन किया था । यही कारण है कि उनकी विचारधारा वेद विचार निष्ठा हो गई है । 'वेदों में निस्सन्देह अनेकेश्वरवाद का दिग्दर्शन होता है, प्रकृति के प्रत्येक तत्व को देवी देवता के रूप में स्वीकारा गया है, उनके यशोगान हेतु ऋचा पाठ तथा प्रसन्नता के लिए यज्ञ विधान रचा जाता रहा है तथापि प्रकृति के उन रूपों और विविध व्यवहार वर्तन की पृष्ठभूमि में किसी अनुपम और रहस्मयी शक्ति की सत्ता भी स्वीकार की गई । इस स्वीकृति के चरम विकास

तक पहुंचने का श्रेय निर्विवाद उपनिषदों को दिया जायेगा।'224 उपनिषद वेदों का अन्तिम भाग होने के कारण ही वेदान्त कहलाते हैं । वेदान्त में वेदों की ही विचारधारा को व्याख्यायित किया गया है । उपनिषदों में ही अन्य सभी दर्शनों का समन्वित रूप मिलता है । इसी वेदान्तवाद का प्रभाव निर्मल सन्तों पर पड़ा और उनकी विचारधारा भी समन्वित हो गई ।

".......ये गुरुवाणी की व्याख्या वेदान्त के अनुसार करते हैं' एक तुक के अधिक अर्थ करते हैं लेकिन अन्त में विशेष अर्थ अवश्य देते हैं । रामकृष्ण आदि अवतारों को मानते हैं । शाम के समय धूप–दीप आदि से गुरु जी की पूजा और आरती करते हैं । गुरुद्वारे जाना और सन्तों, साधुओं की समाधियों पर धूप–दीप फूल चढ़ाना आवश्यक समझते हैं । गुरु ग्रन्थ साहिब को सर्वोत्तम मानते हुए भी पुराण आदि शास्त्रों का सत्कार करते हैं ।"225

पूजापद्धति के साथ–साथ इनकी टीका पद्धति एवं व्याख्या पद्धति पर भी वेदान्त दर्शन का अद्वैत वादी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । वेदान्त पर दृष्टिकोण होने के कारण इनके टीका ग्रन्थों की भाषा दार्शनिक शब्दावली से बोझिल एवं कहीं कहीं जटिल भी हो गई है । सरल स्पष्ट विचारों को भी कहीं–कहीं, गूढ़, रहस्यमयी और पारिभाषिक रूप में दार्शनिक पुट दी है । कठिन सन्त भाषा का प्रयोग है । जिसके कारण उनकी विचारधारा कहीं–कहीं अधिक जटिल प्रतीत होती है । वेदान्त की विचारधारा कहीं–कहीं इतनी प्रबल हो गई है कि मूल से भी टीका कठिन प्रतीत होता है । साधु गुरदित्त सिंह जी की टीका पद्धति के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है ।

मूल पाठ	**टीका**
हुकमी होवनि आकार	हुकमी (माया) उपाधि वाले ईश्वर से ही (आकार) सथूल सूखम देह चिदामास युक्त (होवन) होते हैं यांते द्वैत को मायक होने से वास्तव अद्वैत की सिधी है ।
हुकमु न कहिआ जाई	(हुकम) साखयात ईश्वर दी आगया रूप सुरती से भी सत अद्वैत (कहिआ न जाई) कहा नहीं जाता ।
गावे को ताणु किसे ताणु	(ताण) कहीए ब्रहम से वेद का तातपरय (गावे को) कोण कबन करे है (होवे किसे ताण) जिस किसी को परमेश्वर दी क्रिया से तातपरय का गयान रूप समरथ है वह कथन करे है ।
गावे को साजि करे तनु खेह	(तन) सरीरा इको (साज) आतमा में आरोप करि के पुनः (खेह) तिन के अपवाद का कबन तत्व वेता अधिकारी के प्रति कर सकता है और देहादि को में

	अहंतादिक तिसको प्रारथ करम जंनय है कोई प्रांत जंनय नहीं पुनः आखेप करे है ।
छेदा दे लेवे थकि पाहि	(थक पाहि) संसार मारग से सम को प्राप्त हुए है वही ईश्वर कृपा से मुमुखू हुए (लेंदे)

उपदेश ग्रहण करे है औं (वेदां) उपदेश देने वाले तक विच गुरु भी तिलों को ही (दे) उपदेश) देते हैं और को नहीं ।226

कुछ अन्य निर्मल सन्तों ने वेदान्त सम्बन्धी सैद्धान्तिक ग्रन्थ भी रचे हैं, कार्यकरण भाव घट निर्मिति आदि के उद्धरण देकर अपनी बात को कहने का प्रयास निर्मल सन्तों के ग्रन्थों में यंत्र–तंत्र उपलब्ध होते हैं ।

तू इन्द्र तू करन सु अहे
या सम उसतुति को नहीं कहे
यहि कुमार पाव पहचाना
या सम सादिस परन हिमाना ।।
कारय कारणभाव जो अहे
घट मारी सम या नहि कहे
नायहि जातव्य कति पुनि कहे
गोरव दूस मताते वै नहे ।।227

इस सृष्टि को नाशवान्, भ्रमात्मक मानना इस सृष्टि में पूर्णब्रह्म का समाया होना तथा उस एक तत्व का निरूपण इनकी वाणी के मुख्य विषय है । और तत्वमसि जैसे वेद महावाक्यों द्वारा अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की पुष्टि करना इन सन्तों की वेदान्तपूरक अद्वैतवादी दार्शनिकता को ही पुष्ट करता है ।

अभास तो भ्रिखास दान मो विकार मानयो
सुविध मोच छिंन सो परानमाप घा मियो
विछेद तो विकल्प तंत रंच भेद लेखयो
यूयूरण संमंदिसे इक तुता प्रपे खयो । 45
सु तत्व मसय वाक केसमा सजीव की तथा
इक्कत वेदु भाख हे समसन वेद में कथा
परातम सुजीव को हक्तु गिआन हो यदा
अविद्या सकार या भरे सुनो हनू तदा
विजान मोह भक्तयो भ्रमेह भाव के लहे
विहीम भगत येनरा क्रिया कलाप में बहे
ज में सतंस मान गियान मोख ते सुपाह है
जगत सिंध नीर में सदा बहे सुजाह है ।।228

इन्होंने कई स्थानों पर वेदान्त के महत्व का प्रतिपादन करते हुए वेदांत को वेदों का ार कहा है और वेदान्त में सब प्रकार के ज्ञान की स्थापना की है।

निर्मल सन्तों की वेदान्त में दृढ़ आस्था है। वेदान्त चारो वेदों के सिद्धान्तों का सार प है और अखण्ड ज्ञान का भण्डार है। इसी से सभी विवादों का निराकरण होता है। न्त टहिल सिंह कहते हैं ....

कवित : **सार हे वेदान्त मत यामें सम मत सुननो कहन कछु यहि मेना पाईए**
एक है अखंड जहां नितनित कोस तहां ग्यानाग्यान कवनसु कैसे कह बेताईए
जोन है अभेद छेद हीन लीन हवै उपाध मुक्त ओ बन्ध अंघ मारक उठाईए
वेदचार सार जो सिधांत सो वेदांत मत टहल सिंह बयास या में मगरो
चुकाइये ॥7॥229

वेदान्त में अद्वैतवादी विचारधारा के प्रमुखता प्रदान की गई है। निर्मल सन्तों में भी पपने ग्रन्थों के इसका अनुमोदन किया है और ईश्वर और जीव की अभेदता पर बल दया है। अद्वैतवाद के अनुसार ही इन्होंने भी एकेश्वर को महत्त्व दिया और आत्मा को सी का रूप मान कर ईश्वर और जीव की अभेदता पर बल दिया है। मूल विषय आत्म हचान का है :–

सदे वसीम ऐक यहि अहे
याकिन दूसर कोई न अहे
एत दातम सगल पछानो
याहि विखे संज्ञा नहि आने ......।
जीव हंसी निखल को भेदा
सुति निवारे क है अभेदा
भेव बखाने प्रति विरोधा
ताही को नेकि उर सोधा ।230

निर्मल सन्तों की अद्वैतवादी विचारधारा गुरुवाणी के अर्थों को स्पष्ट रूप देने की भावश्यकता की पूर्ति करती है। इनके ग्रन्थों में अद्वैतवादी चिन्तन की सैद्धान्तिकता भत्यधिक पुष्ट हुई है। हरिसिंह विरक्त के अद्वैतानुभव प्रकाश की विषयानुक्रमणिका से ाह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

अद्वैतानुभव प्रकाश ग्रन्थ के सप्तम प्रकाश हैं तहां प्रथम प्रकाश में संसार के 11 एकादश कारणों का खण्डन करके कारण बिता संसार बंध्या पुत्र के समान तुच्छ है। यह भर्थ अनन्त युक्तियों से निरूपण किया है। और द्वितीय प्रकाश में द्वैत रूप संसार की ातिमासिक सत्ता तथा व्यावहोरिक तथा पारिमार्थिक सत्ता का अनन्त प्रक्रियों से खण्डन करके किसी संसार की तुच्छता को दृढ़ करता है। जो तृतीय प्रकाश में जीव ईश्व वाभाविक भेद तथा ओपाधिक भेद तथा जड़ पदार्थों के भेद का अनन्त प्र खण्डन करा है, जो चतुर्थ प्रकाश में अद्वैत ब्रह्म में षट् प्रमाणों की विषमता विषयता ...

प्रकार तथा प्रमाणों का अपने–अपने विषय तें साधारण सम्बन्ध का प्रकार शक्ति लक्षणा के खण्डन का प्रकार विस्तार है निरूपण करता है । जो पंचम प्रकाश में सत चित आनन्द अनन्त आत्मा का अनन्त प्रक्रियों तें निरूपण करता है । जो षष्टम प्रकाश में शरीर के कारणादिको का खण्डन इच्छा के विषय के आश्रय का खण्डन तथा मन आत्मा का संवाद और द्वैत के द्रष्टा का खण्डन अनन्त युक्तियों तें निरूपण करा है और सप्तम प्रकाश में विद्वान कुकर्म तथा ध्यान का निषेध और बाध के स्वरूप का शंका सहित, निरूपण तथा विद्या ओ अविद्या के विरोध का शंका सहित स्थापन तथा अनन्त युक्तियों से निरूपण किया है । जीवन मुक्ति का खण्डन तथा जीवन भक्ति प्रतिपादक श्रुतियों के विरोध का परिहार और ज्ञान सम काल विदेह कैवल्य मुक्ति का प्रकार अनन्त युक्तियों से निरूपण किया है ।[231] कुल मिला कर कहा जा सकता है कि गुरुवाणी की व्याख्या करने में निर्मल सन्तों ने जो आधार बनाया है, वह दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी दृष्टिकोण कहा जाता है । निष्कर्ष रूप में उनकी साहित्य रचना में दार्शनिक आधार इस प्रकार समाहित है ।

1. वह वेद को प्रमाण मानते थे और गुरुवाणी को वेद समान ।
2. परमात्मा का हुकम वेद में है और वह समय स्थान के साथ बदलता नहीं है । केवल युग युग अनुसार उसकी भाषा बदलती है ।
3. गुरुवाणी वेद के सार को देशी भाषा में दृढ़ कराती है ।
4. संस्कृत देव–भाषा बोली है ।
5. गुरुवाणी वेद का उल्लंघन नहीं करती, तीर्थ–व्रत की निन्दा नहीं करती परन्तु मूर्ति पूजा के विरुद्ध है ।
6. गुरुमति नाम–जाप को निर्गुण की उपासना को मुख्य साधन मानती है ।
7. गुरुवाणी, ब्रह्म, आत्मा, प्रकृति, करम, आवागमन, मुक्ति के सिद्धान्त की उसी तरह कायल है, जैसे वेद–ग्रन्थ ।
8. अद्वैत वेदांत वेद का सार है । निर्मल अद्वैतवादी होए हैं । ये नाम–जाप को मुक्ति का प्रमुख साधन तो मानते हैं पर साथ ही दृढ़ हैं कि ज्ञान बिना मुक्ति नहीं होती । इनका सिद्धान्त है कि ज्ञान मुक्ति का द्वार है ।[232]

निर्मल सन्तों ने अद्वैत चिन्तन को जिस रूप में गुरुवाणी की व्याख्या करने में प्रयुक्त किया है, वह निश्चय ही उनका श्लाघ्य (सराहनीय) कार्य है । उन्होंने गुरुवाणी की मूल चेतना को भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखने का अद्‌भुत प्रयास किया है ।

"गुरु नानक देव पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था । ठीक है कि विश्व सम्बन्धी शंकर की मान्यताएं गुरु नानक को स्वीकार्य न थी तो भी अन्तिम लक्ष्य दोनों महापुरुषों का बराबर था ।"[233]

निर्मल सन्तों ने भी गुरुनानक देव जी सहित उन्हीं की विचारधारा की पोषक गुरुवाणी की व्याख्या का कार्य भार सम्पन्न किया है और कर रहे हैं । अतः उनकी वाणी में अद्वैतवादी विचारधारा का होना स्वाभाविक ही है ।

==========

सन्दर्भिका

1. लाल सिंह, गुरु अर्जुनदेव जीवन अते रचना (पटियाला : भाषा विभाग पंज़ाब, 1970) पृष्ठ 52 ।
2. ऋग्वेद संहिता, (चुतर्थ खण्ड) (नई दिल्ली : वेद प्रतिष्ठान, 1977), पृष्ठ 1002 ।
3. उपनिष्दभाष्म् ईशावास्योपनिषद गोरखपुर : गीता प्रैस, संवत 2014, पृष्ठ 14 ।
4. ऋग्वेद संहिता (खण्ड 5–4) (नई दिल्ली : वेदाप्रतिष्ठान, 1977) पृष्ठ 1510 ।
5. ऋक्सूक्त संग्रह, सम्पा॰ हरिदत्त शास्त्री, (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980), पृष्ठ 165 ।
6. हे अनन्त रमणीय । कौन तुम ?
   यह मैं कैसे कह सकता,
   कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता । –जयशंकर प्रसाद, कामायनी (आशा सर्ग) (वाराणसी प्रसाद प्रकाशन, सं. 1993), पृ॰ 38 ।
7. श्री कृष्ण, श्री मद्‌भगवदगीता (गोरखपुर, गीताप्रैस, सं॰ 1996), पृष्ठ 186–87 ।
8. कबीर, कबीरग्रन्थावली (दिल्ली : रीगल बुक डिपो, 1973),पृष्ठ 236 ।
9. कठोपनिषद उपनिषद भाष्य (गोरखपुर : गीताप्रैस, संवत 2014 श्र, पृष्ठ 118 ।
10. ऋग्वेद संहिता (खण्ड–4) (नई दिल्ली : वेद प्रतिष्ठान, 1977) पृष्ठ 1002 ।
11. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 1 ।
12. उद्धृत : ठाकुर देशराज, सिक्ख इतिहास, (संगरिया : ग्रामोत्थान विद्या पीठ, राजस्थान संवत् 2011) पृष्ठ 626–627 ।
13. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, (काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 2034), पृष्ठ 44 ।
14. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचार धारा, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973), पृष्ठ 22 ।
15. गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965, पृष्ठ 219 ।
16. जसबीर सिंह आहलुवालिया, सिक्ख फलसफे दी भूमिका (अमृतसर : रघुबीर रचना प्रकाशन, 1973), पृष्ठ 99 ।
17. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरु नानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1973), पृष्ठ 23 ।
18. मिश्र बन्धु, मिश्रबन्धु विनोद, (लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, 1972), पृष्ठ 177 ।
19. करतार सिंह सूरी : गुरु अर्जुनदेव ते सन्त दादू दयाल (चण्डीगढ़ : पंजाबी लेखक सदन, 1969), पृष्ठ 136 ।

20. एम॰ जार्ज, भक्ति आन्दोलन और साहित्य (आगरा : प्रगति प्रकाशन, 1978), पृष्ठ 190
21. मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृति पृष्ठभूमि (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, 1962), पृष्ठ 27 ।
22. जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्राइवेट लि॰ 1960), पृष्ठ 94 ।
23. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 746
24. गुलाब सिंह, भाव रसाम्रित, ज्ञान त्रिवेणी, सम्पा॰ प्यारा सिंह पहम, (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब–1969) पृष्ठ 71 ।
25. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ प्रकाश, (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ी, 1977) पृष्ठ 30
26. श्री कृष्ण, श्रीभगवद्गीता, (गोरखपुर, गीताप्रैस, 1976) पृष्ठ 1228–29 ।
27. वही॰, पृष्ठ 129 ।
28. श्री कृष्ण, श्रीभगवद्गीता, (गोरखपुर : गीताप्रैस, 1976), पृष्ठ 259 ।
29. विद्यालय (स्वामी) पंचदशी (बम्बई : खेमराज कृष्णदास–1969), पृष्ठ 11 ।
30. गुरुनानकदेव, जपुजी (पंजग्रन्थी), (दिल्ली : सेवक साहित भवन, सन अनुपलब्ध, पृष्ठ 1 ।
31. वही॰, पृष्ठ 1 ।
32. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 206
33. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 277–78 ।
34. कबीर, कबीर ग्रन्थावली, (दिल्ली–रीगल बुक डिपो, 1973), 136 ।
35. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 143 ।
36. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 273
37. कठोपनिषद (उपनिषद भाष्य), (गोरखपुर : गीता प्रैस, संवत् 2014), पृष्ठ 122 ।
38. जोध सिंह, गुरमत निर्णय (अनु॰ धर्मपाल मैनी) (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1975), पृष्ठ 41 ।
39. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 142 ।
40. ईशांवास्योपनिषद, उपनिषद भाष्य (गोरखपुर : गीता प्रैस संवत 2014) पृष्ठ 1 ।
41. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 204 ।

42. श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, (गोरखपुर : गीता प्रैस, 1979), पृष्ठ 43 ।
43. श्रीकृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, (गोरखपुर : गीता प्रैस, 1979) पृष्ठ 45 ।
44. गुलाब सिंह, मोक्षपन्थ प्रकाश, (कनखल, निर्मल पंचायती, अखाड़ा, 1977) पृष्ठ 348
45. ऋक्सूक्त संग्रह, सम्पा॰ हरिदत्त शास्त्री, (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980) पृष्ठ 367
46. श्रीकृष्ण, श्री भद्भगवदगीता (गोरखपुर : गीता प्रैस, 1979) पृष्ठ 245 ।
47. वही॰, पृष्ठ 247 ।
48. वेदव्यास (महर्षि) वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र, गोरखपुर, गीता प्रैस, संवत 2017, पृष्ठ 144
49. ऋक्सूक्त संग्रह, सम्पा॰ हरिदत्त शास्त्री (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980) पृष्ठ 369 ।
50. कृष्ण, श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर गीताप्रैस, 1979), पृष्ठ 132 ।
51. वही॰, पृष्ठ 231 ।
52. कबीर, कबीर ग्रन्थावली, (दिल्ली : रीगल बुक डिपो, 1970), पृष्ठ 188 ।
53. वही॰, पृष्ठ 258 ।
54. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गु॰ प्र॰ कमेटी, 1951), पृ॰ 268 ।
55. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 167
56. गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 891
57. वही॰, पृष्ठ 1003 ।
58. वही॰, पृष्ठ 45 ।
59. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शि॰ गुरु॰ प्र॰ कमेटी, 1951), पृष्ठ 152 ।
60. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ प्रकाश (कनखल : निर्मल अखाड़ा, 1977), पृ॰ 208 ।
61. ऋक्सूक्त संग्रह, सम्पा॰ हरिदत्त शास्त्री (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980) पृष्ठ 363
62. ऋक्सूक्त संग्रह, सम्पा॰ हरिदत्त शास्त्री (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980) पृष्ठ 365 ।
63. तैतिर योपनिषद, 2, 7, ईशोघष्टोतशतोपनिषद (बम्बई : निर्णय सागर प्रैस तृतीय संस्करण–1925) पृ॰ 63 ।
64. छन्दोग्योपनिषद, 6, 2, 1, इशोघष्टोतशतोपनिषद (बम्बई, निर्णयसागर प्रैस तृतीय संस्करण, 1925) पृष्ठ 105 ।
65. छान्दोग्योपनिषद 1, 9, 1 ।
ईशोघष्टोतशतोपनिषद (बम्बई, निर्णय सागर, प्रैस, तृतीय संस्करण, 1925) 512 ।
66. वृहदारण्यकोपनिषद 1, 2, 1
ईशोघष्टोतशतोपनिषद, (बम्बई, निर्णय सागर प्रैस, तृतीय संस्करण 1925), पृ॰ 213
67. मनुः मनुस्मृति, सम्पा॰ ज॰ ह॰ दवे (मुम्बई : भारतीय विद्याभवन 2017) अध्याय–1 श्लोक 5 ।

68. श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 1026
69. वही॰, पृष्ठ 1026 ।
70. वही॰, पृष्ठ 37 ।
71. (ईश) उपनिषद् भाष्य (खण्ड–1) (गोरखपुर : गीता प्रैस 2014) पृष्ठ 14 ।
72. मुण्डकोपनिषद् उपनिषद् भाष्य (खण्ड–1) (गोरखपुर : गीता प्रैस 2014), पृष्ठ 25
73. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी 1951), पृष्ठ 940
74. शेरसिंह, फिलासपी आफ सिक्खिजम (लाहौर, सिक्ख यूनिवर्सिटी प्रैस प्रथम संस्करण–1944), पृष्ठ 186 ।
75. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गु॰ प्र॰ कमेटी, 1951) पृष्ठ 284 ।
76. जयराम मिश्र, श्री गुरुग्रन्थ दर्शन (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा॰ लि॰ 1960) पृष्ठ 116
77. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 1237 ।
78. वही॰, पृष्ठ 633 ।
79. वही॰, पृष्ठ 463 ।
80. वही॰, पृष्ठ 922 ।
81. हरिवंशलाल शर्मा, भारतीय दर्शन परम्परा और आदिग्रन्थ (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1972), पृष्ठ–4, प्राक्कथन ।
82. गुलाबसिंह, मोक्ष पंथ प्रकाश (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977) पृष्ठ 382
83. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ प्रकाश, (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977), पृष्ठ 223 ।
84. तुलसीदास, रामचरित मानस (गोरखपुर : गीताप्रैस, संवत् 2038), पृष्ठ 374 ।
85. सन्त सिंह, निर्मल आर्ति तथा निर्वचन विचार, (कनखल : श्री निर्मला अखाड़ा), पृष्ठ 6–13 ।
86. सन्त सिंह, निर्मल आर्ति तथा निर्वचन विचार (कनखल : निर्मला अखाड़ा, सन अनुपलब्ध), पृष्ठ 23–25 ।
87. मानसिंह निरंकारी, सिक्ख धरम ते सिक्खी (अमृतसर : लोक साहित प्रकाशन, 1981), पृष्ठ 94 ।
88. सुदर्शन सिंह मजीठिया, सन्त साहित्य (दिल्ली : रूपकमल प्रकाशन–1962) पृष्ठ 331 ।
89. गोकुल चन्द नारंग सिक्ख मत दा परिवर्तन (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी 1973), पृष्ठ 304 ।

90. गोकुल चन्द नारंग, सिक्खमत दा परिवर्तन (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी 1973), पृष्ठ 298 ।
91. तारनसिंह, भगति ते शक्ति (अमृतसरं : फकीर सिंह एण्ड सन्ज, 1976) पृष्ठ 19 ।
92. तेजासिंह, सिक्खिज़म, (लाहौर : लाहौर बुक शाप, 1938), पृष्ठ 81 ।
93. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), परिशिष्ट पृष्ठ 20 ।
94. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर, 1963) पृ॰ 137 ।
95. सीताराम चतुर्वेदी, भारत के उदासीन सन्त (काशी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद, संवत 2024)
96. भाई गुरदास, ज्ञान रत्नावली (वारां) (अमृतसर : शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1981) पृष्ठ 19 ।
97. धरमानन्त सिंह, वैदिक गुरमत (जालन्धर : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, 1965), पृष्ठ 220 ।
98. गुरु तेगबहादुर जी, सम्पा॰ शमशेर सिंह (अमृतसर : ऐसकोर्ट प्रैस : 1976) पृष्ठ 187
99. हरिभजन सिंह, गुरुमुखीलिपि में हिन्दी काव्य, (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर– 1963), पृष्ठ 136 ।
100. वही॰, पृष्ठ 134 ।
101. भाई गुरदास, ज्ञान रत्नावली (वारां) (अमृतसर : शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1981) पृष्ठ 12 ।
102. भारतभूषण चौधरी, गुरु गोबिन्द सिंह के दरवारी कवि (दिल्ली : स्वस्तिक साहित्य सदन, 1979), पृष्ठ 26 ।
103. सीताराम चतुर्वेदी, भारत के उदासीन सन्त (काशी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद, संवत् 2024) पृष्ठ 64 परिशिष्ठ ।
104. वही॰, पृष्ठ 65, परिशिष्ठ ।
105. उद्धृत : सीताराम चतुर्वेदी : भारत के उदासीन सन्त (काशी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद, संवत 2024), पृष्ठ 84 ।
106. उद्धृत : सीताराम चतुर्वेदी, भारत के उदासीन सन्त (काशी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद, संवत् 2024), पृष्ठ 84, परिशिष्ट ।
107. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर– 1963) पृष्ठ 141 ।

108. धरमानन्त सिंह, वैदिक गुरमत (जालन्धर : आर्य प्रादेशिक आर्य प्रतिनिध सभा पंजाब, 1965), पृष्ठ 227 ।
109. घर्मानन्त सिंह, वैदिक गुरमत (जालन्धर : प्रादेशिक आर्य प्रतिनिध सभा पंजाब, 1965), पृष्ठ 2280 ।
110. कान्ता राजगुरु, सेवापन्थ और उसका साहित्य (दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 2981) पृष्ठ 2 ।
111. प्रेम प्रकाशसिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973), पृष्ठ 167 ।
112. डा. शेरसिंह, फिलासफी आफ सिक्खिज़म (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1980), पृष्छ 232 ।
113. अवतार सिंह, एथिक्स आफ दी सिक्खज़ (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1970), पृष्ठ 256–60 ।
114. विद्यावती मालविका, हिन्दी संत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव (वाराणसी : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, 1966), पृष्ठ 7 ।
115. गुरमुख सिंह, सेवा पन्थियां दी पंजाबी साहित नूं देन (पटियाला : भाषा–विभाग पंजाब, 1987), पृष्ठ 1 ।
116. रत्नसिंह जग्गी, साहित सौरभ (पटियाला : पेप्सू बुक डिपू, 976) पृष्ठ 110 ।
117. गुरमुखसिंह, सेवापंथियां दी पंजाबी साहित नूं देन (पटियाला : भाषा–विभाग पंजाब, 1987), पृष्ठ 2 ।
118. प्रीतम सिंह, पारसभाग भूमिका, (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1952), पृष्ठ 24 ।
119. कान्ता राजगुरु, सेवा पन्थ और उसका साहित्य, (दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1981), पृष्ठ 5 ।
120. ज्ञानी ज्ञानसिंह, श्री गुरुपन्थ प्रकाश, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 287 ।
121. गुरमुख सिंह, सेवापंथियां दी पंजाबी साहित नूं देन (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1987), पृष्ठ 23–24 ।
122. लाल चन्द सन्त रत्न माला (सम्पा॰ महन्त हीरासिंह (पटियाला : डेरा भाई रामकिशन, 1963), पृष्ठ 4–5 ।
123. प्रीतमसिंह, पारस भाग (भूमिका) (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1952) ।
124. रत्नसिंह जग्गी, सौरभ (पटियाला : पैप्सू बुक डिपु, 1976) पृष्ठ 111 ।
125. जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन (इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1960), पृष्ठ 136 ।

126. मनमोहन सहगल, गुरुग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक अध्ययन (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1971), पृष्ठ 618 ।

127. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरुनानक ते निर्गुण धारा, (पटियाला : भाषाविभाग पंजाब, 1973), पृष्ठ 255 ।

128. ख्याला सिंह, गुरुनानक शब्द रत्नाकर (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1969) पृष्ठ

129. जोगिन्द्र सिंह, सिक्खधर्म ते सिक्खपन्थ (दिल्ली : प्रीत प्रकाशन, 1971), पृष्ठ 119

130. प्रीतमसिंह, पारस भाग (भूमिका) लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1970) पृष्ठ 37 ।

131. लालचन्द, सन्त रत्नमाला, (दूसरा संस्करण) (पटियाला : सम्पा० महन्त हीरासिंह टिकाना भाई रामकिशन, 1963), पृष्ठ 74 ।

132. बलवीर सिंह, श्री चरण हरि विस्तार जि–1–सै–1 (अमृतसर : खालसा समाचार, 1945), पृष्ठ 128 ।

133. प्रीतम सिंह, पारसभाग भूमिका (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1952), पृष्ठ 42 ।

134. पीताम्बरदत्त बड़थवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय (लखनऊ : अवध पब्लिकेशन, हाऊस, संवत् 2007), पृष्ठ 327 ।

135. उद्धृत : गुरुमुख सिंह, सेवा पंथियों दी पंजाबी साहित्य नूं देन । (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1987), पृष्ठ परिशिष्ट ।

136. शमशेर सिंह, अशोक निर्मल साधुआं दी सिक्ख धर्म नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 181), पृष्ठ 146 ।

137. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर, 1963), पृष्ठ 16 ।

138. गुलाबसिंह, मोक्ष पंथ प्रकाश (कनखल, श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977), पृष्ठ 609–610 ।

139. शमशेर सिंह अशोक निर्मल साधुआं दी सिक्ख धर्म नूं देन (निर्मल सम्प्रदाय स० प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 146 ।

140. हरिभजन सिंह गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर : 1963), पृष्ठ 163 ।

141. तारन सिंह, भगति ते शक्ति, (अमृतसर : फकीर सिंह एण्ड सन्ज, 1976), पृष्ठ 8 ।

142. जसविन्दर ढिलों, सिक्ख दर्शन विच उचित गिआन दा सरूप सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, सम्पा० प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1975), पृष्ठ 159

143. विद्यानिवास मिश्र, हिन्दू धर्म, जीवन में सनातन की खोज (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1979) पृष्ठ 19 ।

144. विष्णुदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन (नई दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस 1978) पृष्ठ 166 ।
145. तारनसिंह, भक्ति ते शक्ति (अमृतसर, फकीर सिंह एण्ड सन्ज, 1976), पृष्ठ 61 ।
146. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका (इलाहाबाद किताब महल, 1978), पृष्ठ 3 ।
147. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली आर्य बुक डिपो, 1974) पृष्ठ 35
148. हिन्दू धर्म कोश, सम्पा॰ राजबली पाण्डेय (लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1978), पृष्ठ 23 ।
149. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास : (इलाहावाद : रामनारायण लाल, वेणीप्रसाद, 1971), पृष्ठ 395 ।
150. हिन्दू धर्म कोश, सम्पा॰ राजबली पाण्डेय, (लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान– 1978), पृष्ठ 23–24 ।
151. गुरदीप सिंह केसरी, गुरुनानक दर्शन ते सिक्ख धर्म नूं बहु पर देन निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 133 ।
152. जगदीश सहाय श्री वास्तव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका (इलाहावाद : किताब महल, 1978), पृष्ठ 3 ।
153. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली आर्य बुक डिपो, 1974) पृष्ठ 35
154. हिन्दू धर्म कोश, सम्पा॰ राजबली पाण्डेय (लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1973), पृष्ठ 370 ।
155. कपिल देव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास, (इलाहाबाद : रामनारायण लाल बेणी प्रसाद, 1971), पृष्ठ 396 ।
156. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका, (इलाहाबाद : किताब महल, 1978) पृष्ठ 8 ।
157. सदानन्द : वेदान्त सार, (वाराणसी : चौखम्बा ओरियन्टालियन, 1983), पृष्ठ 4 ।
158. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, अद्वैतवाद वेदान्त की तार्किक भूमिका (इलाहावाद : किताब महल, 1978) पृष्ठ 14 ।
159. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका (इलाहावाद : किताब महल 1978), पृष्ठ 76 ।
160. पूर्व मीमांसा के विरोध में ही उत्तर मीमांसा का सूत्रपात हुआ, कर्मकाण्ड की अपेक्षा ज्ञानकाण्ड को अधिक महत्व दिया गया ।
161. नरेन्द्र आर्य; प्रमुख वेदान्तिक वैष्णव सम्प्रदाय, भक्ति काव्य, सम्पा॰ लालसिंह (पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 620 ।

162. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास (इलाहावाद : रामनारायण लाल बेणी प्रसाद—1971) पृष्ठ 403 ।
163. वही॰, पृष्ठ 393 ।
164. वही॰, पृष्ठ 400 ।
165. नरेन्द्र आर्य, प्रमुख वेदान्तिक वैष्णव सम्प्रदाय, भक्ति काव्य, सम्पा॰ लाल सिंह, (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970), पृष्ठ 63 ।
166. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास (इलाहावाद : रामनारायण लाल, वेणीप्रसाद, 1971), पृष्ठ 406 ।
167. जगदीश सहाय, श्रीवास्तव, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका, (इलाहाबाद : किताब महल, 1978) पृष्ठ 14 ।
168. सुरिन्द्र सिंह कोहली, नानककाल, पंजाबी साहित दा इतिहास (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी, 1973) पृष्ठ 144 ।
169. प्यारासिंह पद्म, संखेप सिक्ख इतिहास (पटियाला : कला मंदिर, लोअर माल, 1979), पृष्ठ 39 ।
170. के. एस. नारंग, हिस्ट्री आफ द पंजाब (दिल्ली : यू. सी. कपूर एण्ड सन्ज, 1969), पृष्ठ 26 ।
171. प्यारासिंह पदम, संखेप सिक्ख इतिहास (पटियाला : कला मंदिर लोअर माल, 1979) पृष्ठ 34—35 ।
172. मोहम्मद अकबर, दी पंजाब अण्डर दा मुगलज, (दिल्ली : इदराह अदयाभिजात, 1974) पृष्ठ 189 ।
173. वैंकट रमण राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (मथुरा : लोक साहित्य प्रैस, 1972), पृष्ठ 165 ।
174. हरिवंशलाल शर्मा, भारतीय दर्शन परम्परा और आदि ग्रन्थ (दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1972), पृष्ठ 4 ।
175. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 606
176. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 577
177. सुरेन्द्रसिंह कोहली, सिक्ख दर्शन (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1969), पृष्ठ 1 ।
178. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी 1951) पृष्ठ 1
179. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951). पृष्ठ 1
180. वही॰, पृष्ठ 287 ।
181. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 924

182. सुरिन्द्र सिंह कोहली, सिक्ख दर्शन (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1969), पृष्ठ 20
183. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 167
184. वही॰, पृष्ठ 371 ।
185. वही॰, पृष्ठ 497 ।
186. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 276
187. सुरेन्द्र सिंह कोहली, सिक्ख दर्शन (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1969) पृष्ठ 23 ।
188. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951), पृष्ठ 292
189. जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ स॰ दर्शन, (इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1980), पृष्ठ 116
190. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 1056
191. वही॰, पृष्ठ 1026 ।
192. सुरेन्द्रसिंह कोहली, सिक्ख दर्शन (लुधियाना : लाहौर बुकशाप, पृष्ठ 15 ।
193. गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951) पृष्ठ 162
194. वही॰, पृष्ठ 631 ।
195. जयराम मिश्र, श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन (इलाहाबाद, साहित्य भवन, 1960), पृष्ठ 181 ।
196. जसवीर सिंह, आहलुवालिया सिक्ख फलसफे दी भूमिका (अमृतसर : रघुवीर रचना प्रकाशन, 1976), पृ 38 ।
197. हरिप्रसाद वैदिकमुनि, जप–संहिता, (होशियारपुर : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, 1963), पृष्ठ 33 ।
198. वही॰, पृष्ठ 32 ।
199. टहल सिंह, कबित्त सवैये, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब), पृष्ठ 80 ।
200. निर्मल स्वामी, वेदान्त ग्रन्थ, पाण्डुलिपि सं॰ 58, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 1 ।
201. ईश्वर सिंह काशी श्री गुरमत दिग्विजै, (लाहौर : श्री गुरबख्श प्रैस, संवत शाही 400 (संवत–1760 वि॰), पृष्ठ 81 ।
202. बलबीर सिंह नन्दा, निर्मल सम्प्रदाय इक सर्वेक्षण, समाजिक विज्ञान पत्र, सम्पा॰ अमरजीत सिंह, (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंक फरवरी 1980) पृ॰ 25 ।
203. टहिल सिंह, कबित्त सवैयै, पाण्डुलिपि स॰ एम. एमस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब), पृष्ठ 7 ।
204. टहिल सिंह, कबित्त सवैये, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब), पृष्ठ 6 ।

205. टहिल सिंह, कबित्त, सवैये, पाण्डुलिपि सं. एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा बिभाग, पंजाब) पृष्ठ 17 ।
206. करतार सिंह सूरी सिक्खमत नूं निर्मल योगदान, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 137 ।
207. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 6 ।
208. सुरेन्द्र सिंह कोहली, सिक्खदर्शन, अनु॰ धर्मपाल सिंगल (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1969) पृष्ठ (ड्र) भूमिका) ।
209. गुरदीप सिंह केसरी, गुरुनानक दर्शन ते सिक्ख धर्म नूं बहुमुखी देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसरी : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 117 ।
210. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 6 ।
211. टहिल सिंह, कबित्त सवैये, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 5 ।
212. निर्मल स्वामी, वेदान्त ग्रन्थ, पाण्डुलिपि सं॰ 58 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 1 ।
213. करतार सिंह सूरी, सिक्खमत नूं निर्मल योगदान, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 135 ।
214. हरिभजन सिंह, अद्वैतामृत, (काशी : वाणिज्य प्रैस, सन अनुपलब्ध) पृष्ठ 3 ।
215. तारनसिंह, गुरुवाणी दीयां विआखिया प्रणालियां, (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी–1980) पृष्ठ 123 ।
216. भाई सन्तोष सिंह, श्री जपु साहिब सटीक : गरब गंजनी टीका (नई दिल्ली : महाकवि भाई सन्तोख सिंह यादगार कमेटी, 1961), पृष्ठ 5 ।
217. टहिलसिंह, कबित्त टहिलसिंह, पाण्डुलिपि सं॰ 232 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, पृष्ठ 39 ।
218. शेरसिंह, गुरमत दर्शन, अनु॰ चमनलाल नारंग, (लुधियाना : लाहौर बुक शाप 1970), पृष्ठ 10 ।
219. हरजीतकौर मदान : पं॰ तारा सिंह नरोत्तम, गुरवाणी मूल्यांकन, निर्मल सम्प्रदाय, संपा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 367 ।
220. जोगिन्दर सिंह, जपु जी दे टीके (जालन्धर : हिन्दी प्रैस, 1981), पृष्ठ 1, भूमिका ।
221. हरजीत कौर मदान, पं॰ तारा सिंह नरोत्तम, गुरवाणी मूल अंकन निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी–1981) पृष्ठ 367 ।

222. बलवीर सिंह नन्दा निर्मल सम्प्रदाय इस सरवेखन, सामाजिक विज्ञानपत्र (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंक 11 फरवरी 1980), पृष्ठ 29 ।
223. टहिल सिंह, कबित्त सवैये, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ ... ।
224. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ़ : भारतेंदु भवन, 1965), पृष्ठ 7 ।
225. जोगिन्दर सिंह, जपुजी दे टीके, (जालन्धर : हिन्दी प्रैस, 1981), पृष्ठ 1—भूमिका ।
226. गुरदित्त सिंह, जपु पदार्थ सम्बोधनी (तरनतारन : गुरप्रीत प्रिंटिंग प्रैस 1932 ई॰ पृष्ठ 12, 16 ।
227. निर्मल स्वामी, वेदान्त, ग्रन्थ पाण्डुलिपि सं॰ 58 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 7 ।
228. गुलाब सिंह, रामगीता, पाण्डुलिपि सं॰ 255 (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी) पृष्ठ 38 ।
229. टहिलसिंह, कबित्त सवैये, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. एस. 88 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 16 ।
230. निर्मल स्वामी वेदान्त ग्रन्थ, पाण्डुलिपि संख्या 58 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 7 ।
231. हरिसिंह जी विरक्त, अद्वैतानुभव प्रकाश, लखनऊ : एंगलो ओरियण्टल प्रैस, पृष्ठ 4—5 ।
232. तारन सिंह, निर्मल सम्प्रदाय दी टीका पद्धति, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 288 ।
233. मनमोहन सहगल, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण (चण्डीगढ : भारतेन्दु भवन, 1965), पृष्ठ 202 ।

=======

रूप–रेखा

खण्ड–तीन

खण्ड–तीन

निर्मल सन्तों द्वारा रचित साहित्य

निर्मल सन्तों द्वारा रचित साहित्य का वर्गीकरण

1. संस्कृत साहित्य :–

उत्तर मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है । रीतिकालीन श्रृंगारी काव्य इस बात की पुष्टि करता है । विभिन्न प्रान्तों की प्रान्तीय भाषाओं में रचा गया साहित्य विविध प्रकार का है । पंजाब में रचित रीतिकालीन साहित्य में श्रृंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति, दर्शन की प्रवृत्तियां भी दृष्टिगत होती हैं । विभिन्न धामिक सम्प्रदायों द्वारा रचित साहित्य यहां के तत्कालीन वातावरण को उजागर करता है । सिक्ख गुरुओं के गुरुमत प्रचार के प्रयास ने तथा आदिग्रन्थ के सम्पादन कार्य ने इस साहित्य को अत्यन्त लोकप्रिय बनाया । पंजाब के अनेक साधु–सन्तों ने तत्कालीन प्रचलित गुरुमुखी लिपि में विचारधारा का प्रचार किया । साहित्यिक भाषा उन दिनों ब्रज थी । अतः ब्रज को गुरुमुखी में लिखना उनकी विवशता थी । कुछ संस्कृत के विद्वानों ने भी अपनी रचनाएं गुरुमुखी लिपि में ही लिखी । जैसे भाई गुरुदास की संस्कृत रचना वाहिगुरु स्तोत्र तथा अनेक निर्मल सन्तों के संस्कृत ग्रन्थ भी गुरुमुखी लिपि में ही रचे गए । निर्मल सन्त क्योंकि काशी से वेद विद्या ग्रहण करके आए थे, अतः संस्कृत के अध्ययन–अध्यापन के वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । दूसरे संस्कृत के माध्यम से गुरुवाणी के सन्देश को संस्कृत जानने वालों तक भी पहुंचाना उनका लक्ष्य था । गुरु ग्रन्थ साहिब का अर्थ ज्ञान कराने हेतु पहले निर्मल साधुओं ने ही पर्याय, टीकाएं और कोश आदि रचे । साथ ही गुरमत का गौरव दर्शाने हेतु कुछ शास्त्रीय ढंग के ग्रन्थ रचे । इसके अतिरिक्त बनारस, प्रयाग आदि स्थानों पर रह कर प्राचीन भारतीय शास्त्रों का अध्ययन करते हुए दार्शनिक ग्रन्थों के भाष्य रचे और अपनी विद्वत्ता की धाक जमाई । निर्मल सन्तों के यह ग्रन्थ संस्कृत हिन्दी और पंजाबी तीनों भाषाओं में है ।[1] भले ही साधु स्वभाव होने तथा घूम–घूम कर गुरमत प्रचार करने के कारण इनकी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों का मिश्रण मिलता है, तो भी इनकी भाषा की प्रौढ़ता एवं साहित्यिकता अपना विशेष महत्त्व रखती है । पूर्व मध्यकालीन (भक्तिकाल के) सन्तों ने लोगों को आडम्बरों से मुक्त करने के लिए अपने उपदेश जनभाषा में दिए थे । अतः संस्कृत का महत्त्व क्षीण होता गया । गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय तक पंजाब में संस्कृत साहित्य लुप्त प्रायः होता जा रहा था । शासक वर्ग ने फारसी का प्रचार शुरू कर दिया था । भारतीय साहित्य ब्रजभाषा में रचा जा रहा था । जन सम्पर्क के लिए पंजाबी का प्रयोग किया जाता था ।

गुरु गोबिन्द सिंह जी की दूरदर्शिता ने संस्कृत के महत्त्व को पहचाना । वे बहुत बड़े भाषाविद् थे । उनका फारसी, ब्रज, डिंगल, रेखता, पंजाबी और संस्कृत पर समान अधिकार था । संस्कृत अध्ययन के कारण उन्हें प्राचीन भारतीय साहित्य के स्रोतों का पूर्ण ज्ञान था । उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल को पहचाना और इसे कमजोर होते देख उसे

पोषित करने का संकल्प किया। वे समझते थे कि इसके बिना हम अपनी प्राचीन विरासत से वंचित रह जायेंगे। अपने शिष्यों को संस्कृत की शिक्षा देने का मूल उद्देश्य यही था कि इस विरासत को एक वर्ग तक सीमित न रहने दिया जाए अपितु यह सर्वसामान्य तक पहुंचे। विशेष रूप से निर्मल सन्तों को यह कार्य सौंपा गया था। इस प्रकार जिस निर्मल परम्परा का विकास हुआ उसने सिक्ख लहर के ज्ञान क्षेत्र में अत्यधिक योगदान दिया। गुरु नानक के सन्देश को पंजाब से बाहर सब से पहले उदासी ले कर गए थे। उनका सम्पर्क अधिकतर वहां की छोटी जातियों की आम जनता के साथ था। निर्मल सन्तों ने संस्कृत और भारतीय शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया था। इसलिए उनकी पकड़ उन वर्गों में हुई, जो अपने आपको उच्च श्रेणी वाले समझते थे और विद्वता को समझदारी की कसौटी मानते थे।[2] संस्कृत साहित्य के अध्येता इस विद्वानवर्ग ने गुरुवाणी के आधार भूत सिद्धान्तों को आधार बना कर अनेक मौलिक ग्रन्थ भी रचे, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद भी किए तथा गुरुवाणी के भाष्य या टीका ग्रन्थ भी प्रस्तुत किए। कुछ विद्वानों ने गुरुवाणी की टीका पद्धति को आरम्भ करने का श्रेय भी निर्मल सन्तों को हो दिया है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद या रूपान्तर की हिन्दी में पुरानी परम्परा है। निर्मल सन्तों ने भी उसमें अपना योगदान दिया। लेकिन गुरुवाणी की व्याख्या और टीकाएं लिखने की परम्परा अठारहवीं शती में निर्मल सन्तों के यत्नों से ही आरम्भ हुई।[3]

प्राचीन विरासत की देखभाल और संभाल के लिए इस अनुवाद परम्परा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। बहुत से लोगों ने अकेले और कईयों ने समुदाय के रूप में इस कार्य को आगे बढ़ाया। ये समुदाय बाद में शिक्षा केन्द्रों अथवा साहित्यिक केन्द्रों में परिवर्तित हो गए। इन केन्द्रों में बहुत से विद्वान मिल कर यह काम करते थे।

—गुरु अर्जुन देव जी के समय तक पंजाब के इस क्षेत्र का सीधा सम्पर्क उत्तरी भारत के साहित्यिक केन्द्रों से हो चुका था। पंजाब के विद्वान ज्ञान के क्षेत्र में उच्च उपलब्धियों हेतु हिन्दु और संस्कृत के सनातन रिक्थ को समझने और परखने के लिए इन केन्द्रों को सहायता लेने लग पड़े थे। भाई गुरदास के कबित्त सवेये ऐसे सम्पर्क में ही बहुत अर्थक बने।[4]

मौलिक और अनुदित दोनों ही प्रकार का साहित्य ऐसे ही विद्वानों की देन है। गुरवाणी की व्याख्या करना इनका प्रमुख लक्ष्य था। संस्कृत हिन्दी एवं पंजाबी किसी भी माध्यम का आश्रय लेकर इन्होंने अपने लक्ष्य में सिद्धि प्राप्त की। निर्मल सन्तों ने बहुत से संस्कृत के ग्रन्थ भी रचे। इनमें से कुछ मौलिक है और कुछ गुरुवाणी की टीका से सम्बन्धित है। संस्कृत साहित्य में जिन निर्मल सन्तों ने अपने अक्षुण्ण ज्ञान से श्री वृद्धि की है, उनमें पं. कौर सिंह (गुरु कौमुदी), पं॰ हरि सिंह (गुरु सिद्धान्त पारिजात) प॰ गुरदित्त सिंह (गुरु नानक स्तोत्र) बाबा प्रेम सिंह (गुरु स्तोत्र), पं. निहाल सिंह (जपुजी संस्कृत टीका) (जपु संहिता), पं. उद्धव सिंह कनखल (अभाव रहस्य, आश्रम धर्मरहस्य), पं. सदा

सिंह चेतन मठ काशी (अद्वैत सिद्धि की सुगमसार चन्द्रिका), पं. ईशर सिंह (गुरमत दिग्विजय, वाहिगुरु मन्त्रार्थ) ।

इन विद्वानों के अतिरिक्त और भी कई विद्वान हैं जिन्होंने संस्कृत ग्रन्थों की रचना की है । प्यारा सिंह पद्म ने निर्मल सन्तों की संस्कृत रचनाओं की सूची इस प्रकार दी है–

संस्कृत पुस्तकावली

1.	पं. कौर सिंह	गुरु कौमुदी
2.	पं. हरा सिंह	श्री गुर सिद्धान्त पारिजात
3.	पं. ईशर सिंह काशी	वाहिगुरु मन्त्रार्थ, गुरुमत दिग्विजय
4.	पं. निहाल सिंह थोहा	जपु निबंध संहिता गूढ़ार्थ दीपिका खालसा शतक ।
5.	पं. गुरदित्ता सिंह	गुरु नानक (अष्टक) नैष्क्रमयसिद्धि की टीका वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली की टीका नवम गुरु के श्लोकों का संस्कृत अनुवाद
6.	पं. उद्धव सिंह	अभाव रहस्य, आश्रम धर्म रहस्य
7.	पं. सदा सिंह	अद्वैत सिद्धि की सुगमसार चंद्रिका
8.	पं. आत्मदेव सिंह लाहौर	अभेदा खण्ड चन्द्रमा
9.	बाबा प्रेम सिंह ऋषिकेश	गुरु स्तोत्र[5]

निर्मल सन्तों ने इन संस्कृत के ग्रन्थों की रचना द्वारा अपनी विद्वता का परिचय तो दिया ही है साथ ही गुरमत प्रेमी तथा प्रचारक होने के कारण गुरुमत दर्शन को विद्वान पंडितों तक भी पहुंचाया । तत्कालीन हिन्दू धर्म को अनैतिकता को दूर करने हेतु सिक्ख मत की मौलिकता तथा विशेषता से भी अवगत कराया ।

इन विद्वानों में केवल साहित्य रचना ही नहीं की प्रचार करते समय अनेक बार शास्त्रार्थ करके विजयी घोषित हुए । लोगों के मन में गुरुवाणी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में सफल सिद्ध हुए । पं. निहाल सिंह जी की प्रसिद्ध संस्कृत रचना इसी शास्त्रार्थ की एक कड़ी का परिणाम है । इस बात की पुष्टि निम्नलिखित घटना से हो जाती है ।

इन्हीं दिनों स्वामी दयानंद सरस्वती भी अमृतसर आए हुए थे । उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में गुरु साहिब के विरुद्ध कुछ अनुचित शब्दों का प्रयोग किया । भाई दित्त सिंह आदि विद्वानों ने स्वामी जी से विचार–विमर्श करके उन्हें मना लिया कि अगले संस्करण में वे इस प्रकार की सामग्री हटा देंगे । स्वामी जी ने एक प्रश्न किया आपकी तरफ से जो खालसा शब्द का प्रयोग किया गया है । इसका स्पष्ट अर्थ क्या है । सन्त ठाकुर दयाल सिंह जी का आशीर्वाद पाकर सन्त निहाल सिंह जी ने खालसा शब्द के सौ श्लोक संस्कृत में रच कर दूसरे दिन जा कर सुना दिए । स्वामी दयानंद हैरान थे, और उन्हें ज़ोर से अपनी छाती से लगा लिया और कहा । मुझे आज विदित हुआ है कि सिक्खों में भी

संस्कृत भाषा के ऐसे विद्वान कवि विद्यमान है । सन्त निहाल सिंह की यह रचना, 'खालसा शतक' के नाम से प्रसिद्ध है ।[6]

सन्त निहाल सिंह जी प्रभृति कवियों ने अनेक शास्त्रार्थ करके अनेक प्रसिद्ध विद्वानों एवं दार्शनिकों को पराजित किया और गुरमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया । विद्वान श्रेणी तक गुरुवाणी का सन्देश पहुंचाने के लिए कुछ विद्वानों ने संस्कृत में गुरमत सिद्धान्त के व्याख्या ग्रन्थ लिखे । इतना ही नहीं कुछ मौलिक रचनाएं भी हुईं । पं. निहाल सिंह (अमृतसर वाले) ने हिन्दू विद्वानों को सिक्ख मत की मौलिक और विशेषता से परिचित करने हेतु जपु जी की टीका संस्कृत में की । ब्राह्मण वर्ग को गुरुमत दर्शन और सिद्धांतों से परिचित कराने हेतु पं. कौर सिंह ने 'गुरु कौमुदी' की रचना की ।

संस्कृत के प्रसिद्ध निर्मल विद्वान पं. गुरदित्त सिंह ने एक और तो नैष्कम्र्य सिद्धि और वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली के हिन्दी में टीका ग्रन्थ प्रस्तुत किए वहां दूसरी ओर नवमगुरु तेग बहादुर जी के रचे श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद किया । संस्कृत ग्रन्थों में से इन श्लोकों के समानार्थक श्लोक भी रचे हैं । इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से पता चलता है कि यह ग्रन्थ अत्यन्त श्रद्धा और निष्ठा से रचा गया है ।

पं. गुरदित्त सिंह का संस्कृत में रचा गया एक और ग्रन्थ 'गुरु नानक अष्टक' है, जिसमें गुरु नानक देव जी की स्तुति की गई है । पं. गुरदित्त सिंह ऋषिकेश वाले पं. हरि सिंह जी के शिष्य थे । जो कार्य यूरोपीय भाषाओं के लिए लेटिन और ग्रीक भाषाएं करती हैं, लगभग वही कार्य सारी भारतीय भाषाओं के लिए संस्कृत करती आई है । पंजाब की भूमि संस्कृत के अध्ययन--अध्यापन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रही है । वेदों की रचना इसी धरती पर हुई । तक्षशिला जैसा विश्वविद्यालय और पाणिनी जैसा वैयाकरणाचार्य पंजाब की देन है ।[7]

गुरु गोबिन्द सिंह जी बहुत बड़े भाषाविद् थे । वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । उन्होंने भाषा के महत्त्व को जान लिया था । उनके समय तक संस्कृत का महत्त्व कम हो गया था । गुरु गोबिन्द सिंह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यह महसूस किया कि पंजाब से संस्कृत का लोप होना यहां की संस्कृति से अलग होना है । इसीलिए उन्होंने अपने शिष्यों को संस्कृत के पठन--पाठन की ओर प्रेरित किया और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद करवाए । निर्मल सन्तों ने संस्कृत और भारतीय शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया था। अतः उनकी पकड़ उन वर्गों में भी हुई, जो अपने आप को उच्च श्रेणी वाले समझते थे और विद्वता को समझदारी की कसौटी मानते थे ।[8] इन्होंने अपनी विद्वत्ता के आधार पर ही संस्कृत जैसे विशाल साहित्य जगत में अपना निर्मल सन्त ऋषियों (रिखीश्वरों) ने भी विश्वतारक गुरु नानक के नाम पर अपना तन--मन, धन अपना प्रताप, पराक्रम और परिश्रम अपना प्यार, सत्कार और उत्साह अपनी विद्या विवेक और विज्ञान न्योछावर करने में श्री गुरु पन्थ की अन्य प्रसिद्ध सम्प्रदायों की तरह अधिक से अधिक ऊंचे लम्बे और तेज रफ्तार कदम उठाए हैं । श्री गुरु दशमेश जी के खालसे की त्रिगुणात्मक मतों से

न्यारी और निराली शान का दामनी चमत्कार सब से पहले भू–मण्डल पर इन्होंने ही दिखाया है । गुरमत प्रचार हित इन्होंने ही संस्कृत में अनेक ग्रन्थ रचे और अनेक गुरवाणियों के इस देव भाषा में टीके किए ।[9] इन टीकाओं के द्वारा इन्होंने संस्कृत के अधिकारी विद्वान होने का प्रमाण तो दिया ही है साथ ही संस्कृत जानने वालों के लिए गुरुवाणी को जानने का मार्ग भी प्रशस्त किया है । इनसे पूर्व किसी भी व्यक्ति या समुदाय ने ऐसी दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया । इन्होंने अपनी मण्डलियों द्वारा स्थान–स्थान पर जाकर व्याख्यान दिए, सम्मेलन किए और साहित्य रचना कर पढ़े लिखे और अनपढ़ दोनों ही वर्गों के लिए गुरुवाणी के रहस्यों का उदघाटन किया । गुरवाणी के गूढ़ रहस्यों, को जानने के लिए संस्कृत भाषा अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई । यही कारण है कि निर्मल सन्तों की गुरुवाणी टीकाएं अत्यन्त लोकप्रिय हुई । उस समय संस्कृत का प्रचलन कम होने लगा था और ब्रज भाषा का प्रचार हो रहा था । और अधिकांशतः सभी प्रान्तों में साहित्य रचना ब्रज में, लिखने का प्रचलन–सा हो गया था। बाद में निर्मल सन्तों ने भी ब्रज में लिखना आरम्भ कर दिया । मगर संस्कृत के अनुवाद ग्रन्थों की एक परम्परा सी चल पड़ी थी, जिसमें निर्मल सन्तों ने भी उदारता का परिचय दिया है ।

–निर्मल सन्तों की टीकाओं का युग हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का अन्तिम युग था । यह युग संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं और अनुवादों से भरपूर है । आचार्यों कवियों ने संस्कृत के शास्त्रीय साहित्य को आम पाठक तक पहुंचाने के लिए सरल ब्रजभाषा में उपलब्ध करवाया । पंजाब के दरबारी साहित्य में भी इस परम्परा को देखा जा सकता है ।[10]

इसी परम्परा के कारण ही आज पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य एक समृद्ध साहित्य होने का गौरव प्राप्त किए हुए हैं । इसी से हिन्दी साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की सम्भावनाएं सामने आ रही है ।

2. हिन्दी (ब्रजभाषा) का साहित्य :

निर्मल सम्प्रदाय का अध्ययन क्षेत्र गुरुवाणी रहा । इन्होंने तत्कालीन प्रचलित साहित्यिक ब्रज को अपनाया है । आज भी इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध हिन्दी और संस्कृत से बराबर जुड़ा हुआ है । अपने पूर्वज सिक्ख गुरुओं की परम्परा को बनाए रखते हुए निर्मल सिक्ख आज संस्कृत और हिन्दी की विद्या अवश्य प्राप्त करते हैं । क्योंकि इसके बिना गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी को ठीक तरह से समझना सम्भव नहीं है ।[11] आज भी निर्मल सन्त हिन्दी साहित्य के महत्त्व को समझते हुए अनेक ग्रन्थ हिन्दी में लिख रहे हैं । जहां तक कि गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका भी हिन्दी में की गई है ताकि हिन्दी जानने वाले भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की विचारधारा से अवगत हो सके । ज्ञानी बदन सिंह निर्मल सन्त ने अन्य विद्वानों की सहायता से गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका ब्रज भाषा में की थी । जो फरीदाकोटी टीका के नाम से प्रसिद्ध है । इसी प्रकार पं. गुलाब सिंह ने मोक्षपन्थ प्रकाश,

ज्ञानी ज्ञान सिंह ने पन्थ प्रकाश, पं. गण्डा सिंह ने इतिहास गुरु खालसा महन्त टहल सिंह ने कबित्त सवैये हिन्दी में रच कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है । पिछले कुछ वर्षों में स्वर्गीय सन्त अर्जुन सिंह मुनि ने गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका हिन्दी में की जो आज भी हस्तलिखित रूप में उनके हरिद्वार वाले डेरे में उपलब्ध है । यह ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है । गुरु ग्रन्थ साहिब की टीका जोकि फरीदकोटी टीका के नाम से प्रसिद्ध है बाद में आने वाले सभी टीकाकारों ने उसी को आधार मान कर अपनी टीकाएं लिखी । इस टीका के बिना गुरुवाणी के अर्थ ही स्पष्ट न हो पाते । आगे आने वाले गुरुवाणी के व्याख्याताओं को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता । इस ग्रन्थ का नाम फरीदकोटी टीका इसलिए पड़ गया है क्योंकि सर्वप्रथम गुरु ग्रन्थ साहिब के शुद्ध अर्थों को जानने के लिए अच्छी टीका लिखवाने का विचार महाराजा विक्रमा सिंह वालिया फरीदकोट के मन में आया । उन्होंने निर्मल सन्तों का एक विद्वान वर्ग बुला कर अपना विचार प्रकट किया और उन्हें ग्रन्थ साहिब का टीका लिखने के लिए प्रार्थना की । इन सन्तों के मुखी उस समय गिआनी बदन सिंह थे । आपने गुरु ग्रन्थ साहिब का अच्छी तरह मनन किया था। आपने विद्वान सन्तों के सहयोग से इस कार्य को पूर्ण किया । इस टीका को महाराजा ब्रजिन्दर सिंह ने 1906 ई. में प्रकाशित करवाया । इसी का द्वितीय संस्करण 1925 ई. में महाराजा हरिन्दर सिंह ने प्रकाशित कराया । व्याकरणाचार्य स्वामी अर्जुन सिंह मुनि ने निर्मल सन्तों के हिन्दी संस्कृत के ग्रन्थों की सूची संक्षिप्त इतिहास निर्मल पंचायती अखाड़ा में इस प्रकार दी है :–

ग्रन्थ नाम	निर्माता
1. अभाव रहस्य (संस्कृत)	विद्यावारिधि श्री महन्त ऊधम सिंह जी निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल ।
2. आश्रम धर्म रहस्य	–,,–
3. गुरुमतनिर्णय सागर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र	पं. तारा सिंह जी नरोत्तम
4. गुरु गिरार्थ कोष	पं. तारा सिंह जी नरोत्तम
5. गुरुतीर्थ संग्रह	पं. तारा सिंह जी नरोत्तम
6. भक्तवाणी पर टीका	
7. श्री गुरुग्रन्थ साहिब पर श्री राग तक टीका	पं. तारा सिंह जी नरोत्तम
8. अद्वैत सिद्धि की सुगमसार चन्द्रिका (संस्कृत)	श्रीमान पं. सदा सिंह जी चेतन मठ काशी ।
9. जपुजी की संस्कृत टीका	श्री पं. निहाल सिंह जी
10. श्रीगुरु सिद्धान्त	श्री पं. हरा सिंह जी ब्रह्मकुटी, काशी
11. मुहूर्त चिन्तामणि हिन्दी पद्यात्मक	पं. मंगल सिंह जी

12. पिंगल प्रस्तार संग्रह छंदोग्रन्थ	श्रीमान पं. संगत सिंह जी
13. सत्यार्थ प्रकाश का खण्डन–'सत्यार्थ विवेक'	पं. साधु सिंह जी, पीलीभीत ।
14. गुरु कौमुदी संस्कृत	पं. कौर सिंह जी
15. मलेच्छ मंतखण्डन	पं. भाग सिंह जी
16. गुरु शिक्षा प्रभाकर	पं. साधु सिंह जी
17. गुरु सिद्धान्त रवि	
18. वाहिगुरु मन्त्रार्थ संस्कृत व्याख्या	पं. ईश्वर सिंह जी शास्त्रार्थमहारथी ।
19. गुरुमत दिग्विजय	पं. ईश्वर सिंह जी शास्त्रार्थमहारथी ।
20. श्री गुरुग्रन्थ साहिब की टीका	ज्ञानी बदन सिंह जी
21. अद्वैतानुभवप्रकाश	वेदान्तवागीश पं. स्वामी हरि सिंह जी कथावाले ।
22. नैष्कर्म्य–सिद्धि की टीका	
23. वेदान्त–सिद्धान्त मुक्तावली हिन्दी टीका	पं. स्वामी गुरुदत्त सिंह जी
24. गुरुमत–सिद्धान्तसार	पं. स्वामी गुरुदत्त सिंह जी
25. वेदान्त–परिभाषा हिन्दी टीका	
26. न्यायमुक्तावली हिन्दी टीका	पं. स्वामी गोबिन्द सिंह जी कांशी
27. उद्योग तथा प्रारब्ध	
28. इतिहास गुरु खालसा	
29. गुरु प्रताप सूर्य वाल्मीकीय–रामायण	कविराज पं. सन्तोष सिंह जी साहित्याचार्य ।
30. गुरु नानक प्रकाश	
31. पन्थ प्रकाश तथा निर्मल प्रदीपिका और तवारीख गुरु खालसा	ज्ञानी ज्ञान सिंह जी
32. नारायण हरि–उपदेश	पं. स्वामी हरिदेव सिंह जी
33. कवीन्द्र प्रकाश, अकाल नाटक, पंथ प्रबोध	सन्त निहाल सिंह जी
34. ममुक्षु–बोध–प्रकाश	सन्त तारा सिंह जी
35. योगशिक्षा प्रभाकर	बाबा मोहन सिंह जी
36. भारत–मत दर्पण निर्मल इतिहास और अनेक वैद्यक ग्रन्थ	महन्त गणेशा सिंह जी, अमृतसर
37. मोक्ष पन्थ प्रकाश अध्यात्म–रामायण, (हिन्दी प्रबोधचन्द्र नाटक भावरसामृत)	पं. स्वामी गुलाब सिंह जी साहित्य वाचस्पति ।[12]

शमशेर सिंह अशोक ने भी एकसूची इस प्रकार दी है–

पुस्तक	रचनाकार
1. प्रबोध चन्द्रोदय नाटक	साधु गुलाब सिंह
2. मोक्ष पन्थ प्रकाश	साधु गुलाब सिंह
3. गुरु गिरार्थ कोष (दो भाग)	पं. तारा सिंह नरोत्तम
4. गुरु तीर्थ संग्रह	पं. तारा सिंह नरोत्तम
5. गुरमत निर्णय सागर	पं. तारा सिंह नरोत्तम
6. गुरुग्रन्थ साहिब सटीक (श्री राग तक)	पं. तारा सिंह नरोत्तम
7. भगता दी बाणी सटीक	पं. तारा सिंह नरोत्तम
8. स्वामी दयानन्द का मत और अद्वैत सिद्धि	पं. आत्मदेव सिंह
9. अकाल नाटक (इतिहास)	पं. निहाल सिंह लाहौर
10. निर्मल प्रभाकर	पं. निहाल सिंह लाहौर
11. सिक्खी प्रभाकर	पं. निहाल सिंह लाहौर
12. जगत गुरु पंथ प्रबोध	पं. निहाल सिंह लाहौर
13. कवीन्द्र प्रकाश	पं. निहाल सिंह अमृतसर
14. होली हुलास	पं. निहाल सिंह अमृतसर
15. सुधार शतक	पं. निहाल सिंह अमृतसर
16. गुरु सिद्धान्त रवि प्रकाश	पं. निहाल सिंह थोहा
17. चक्रधर चारु चन्द्रिका	पं. निहाल सिंह थोहा
18. टीका (जापु साहिब, दशम ग्रन्थ)	पं. निहाल सिंह थोहा
19. ज्ञान प्रकाश	साधु संगत सिंह तोलेवाला
20. मत संग्रह	साधु संगत सिंह तोलेवाला
21. नेष्क्रम्य सिद्धि	साधु गुरदित्त सिंह
22. सत्यार्थ विवेक	पं. साधु सिंह
23. श्री मुख वाक्य सिद्धान्त	पं. साधु सिंह
24. गुरु कीर्ति कवितावली	पं. साधु सिंह
25. गुरु सिख्या प्रभाकर (पांच भाग)	पं. साधु सिंह
26. गुरु सिद्धान्त रवि	पं. साधु सिंह
27. टीका जपु जी	पं. तारा सिंह अमृतसरी
28. हरि अदृष्ट सतसई	कर्म सिंह
29. इतिहास गुरु खालसा	गोबिन्द सिंह
30. श्री गुरु पन्थ प्रकाश	ज्ञानी ज्ञान सिंह
31. श्री गुरु पन्थ प्रकाश टीका	अर्जुन सिंह मुनी ।[13]

उपर्युक्त सूची के आधार पर हम देखते हैं कि निर्मल सन्तों ने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका अध्ययन क्षेत्र इतना विशाल था कि उन्होंने किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ा। निर्मल सन्तों के हिन्दी साहित्य में वैदिक धर्म, दर्शन, टीका ग्रन्थ छन्द शास्त्र, आलोचना, अलंकार प्रत्येक विषय की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनके लिए प्रतिपाद्य का अत्यन्त महत्त्व था। भाषा के विषय में ये निर्मल सन्त अधिक परवाह नहीं करते थे। इनमें से कुछ पुस्तकें ब्रज भाषा में होते हुए भी गुरुमुखी लिपि में हैं, लेकिन कुछ देवनागरी में भी प्रकाशित मिलती हैं। अभी तक पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन अपेक्षित है। गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञ हिन्दी विद्वान इस निधि से अभी तक अपरिचित है। वैसे तो सारे पंजाब को ही हिन्दी साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है मगर साम्प्रदायिक साहित्य के अन्तर्गत निर्मल सन्तों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके इस योगदान के अनेक महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। अधिकांशतः पंजाब के हिंदी कवियों का कार्य क्षत्र पंजाब अथवा पंजाब के निकटवर्ती प्रदेश रहे। वहां निर्मल सन्तों ने पंजाब से बाहर भारत के विभिन्न प्रान्तों में गुरुबाणी का प्रचार किया और तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा में अपने उपदेश दिए। सोलहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पंजाब में ब्रजभाषा में विशाल साहित्य भण्डार रचा गया, परन्तु लगभग यह सारा साहित्य ब्रजभाषा में था। गुरु साहिबान की वाणी, उनके दरबारी व्यक्तियों की रचनाएं उदासियों निर्मले और हिन्दू सिक्ख कवियों की रचनाएं ब्रज बोली और गुरुमुखी लिपि में ही मिलती है।[14] रीतिकालीन साहित्य अधिकांशतः प्रान्तीय भाषाओं में ही रचा गया मगर ब्रजभाषा उस समय प्रचलित साहित्यिक भाषा थी। अतः अपनी कीर्ति को फैलाने हेतु सभी कवि ब्रजभाषा में ही रचना करते थे। दूसरे साम्प्रदायिक धरातल पर तो यह और भी अनिवार्य हो जाता है कि साहित्य उस भाषा में रचा जाए, जो अधिक लोग जानते हों, जिससे उस सम्प्रदाय का प्रसार और विस्तार हो सके। यही कारण है कि उस समय का साम्प्रदायिक साहित्य अधिकांशतः ब्रज में ही मिलता है। इस विस्तार के कारण ब्रज भाषा साहित्य अत्यन्त समृद्ध भी हुआ। साथ ही क्षेत्रीय वैशिष्ट्य भी उसमें आए वस्तुतः इन क्षेत्रीय वैशिष्टयों का अध्ययन अभी तक किया ही नहीं गया है। सिक्ख धर्म के प्रधान गुरुओं तक में ब्रजभाषा को माध्यम बनाया था। बहुत–सा साहित्य गुरुमुखी लिपि में आज उद्घाटित हुआ है।[15] आज कुछ विद्वानों के सद्प्रयासों से इस साहित्य के विषय में खोज कार्य आरम्भ हो चुका है, जिससे इस साहित्य का सही मूल्यांकन होगा और हिन्दी साहित्य में इसके सम्मिलित हो जाने से हिन्दी साहित्येतिहास को नई दिशा प्राप्त होगी। इससे कुछ नये तथ्यों के उद्घाटित होने की भी सम्भावना है।

–प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद अथवा रूपान्तर की हिन्दी में प्राचीन परम्परा है, निर्मल सन्तों ने भी उसमें अपना योगदान दिया है, लेकिन गुरुवाणी की व्याख्या और टीकाएं लिखने की परम्परा अठारहवीं शताब्दी में निर्मल सन्तों के प्रयासों से आरम्भ हुई।[16] निर्मल सन्तों ने अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु गुरुवाणी को सरलतम ढंग से प्रस्तुत

किया । उन्होंने अपनी शैली में इसकी व्याख्या प्रस्तुत की जो आज भी निर्मला प्रणाली के नाम से प्रचलित है । इस प्रणाली के प्रसिद्ध व्याख्याकार भाई सन्तोष सिंह, पं. गुलाब सिंह, पं. ईशरदास, पं. तारा सिंह नरोत्तम, ज्ञानी ज्ञान सिंह प्रभृति विद्वान हुए हैं । निर्मल विद्वान जिस परिवेश से शिक्षा ग्रहण करके आए थे, उसका प्रभाव उनकी व्याख्या पद्धति पर पड़ना स्वाभाविक ही था । उन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या करते समय वैदिक सिद्धान्तों का भी आश्रय लेने में संकोच नहीं किया । उन्होंने गुरुमत को मुख्य रूप में प्रस्तुत किया लेकिन अपने मत की पुष्टि के लिए वेदों उपनिषदों से भी दृष्टान्त लिए । अकाल पुरुष, जीव, ब्रह्म, नाम, सृष्टि आदि का स्वरूप स्पष्ट रूप से जानने के लिए और अपनी बात की प्रौढ़ता के लिए कई प्रमाण प्रस्तुत किए । मूलतः इनकी व्याख्या पद्धति समन्वयात्मक ही है । निर्मल सन्तों के साहित्य का प्रतिपाद्य गुरुवाणी है । गुरुवाणी का प्रचार और प्रसार करते समय वे गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं । कुछ विद्वानों ने इस परिप्रेक्ष्य में मौलिक रचनाएं भी की हैं । कुछ ने केवल व्याख्या ग्रन्थों को ही लिखा है । मौलिक ग्रन्थों की संख्या कम है । व्याख्या ग्रन्थों, अनुवादों, टीकाओं की संख्या अधिक है । गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले तथा गुरुवाणी के टीका ग्रन्थों की प्रधानता होने के कारण सम्पूर्ण निर्मल साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । वैसे इसका कोई ठोस विभाजन नहीं हो सकता । लेकिन अध्ययन की सुविधा के लिए हमने इसे दो भागों में विभक्त किया है–

(क) वाणी सम्बन्धी ग्रन्थ ।

(ख) आलोचनात्मक (टीका ग्रन्थ)

निर्मल साहित्य में यह दोनों प्रकार के ग्रन्थ हिन्दी–संस्कृत–पंजाबी तीनों भाषाओं में उपलब्ध होते हैं ।

गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज वाणी को जन–जन तक पहुंचाने एवं उसके अर्थों को स्पष्ट करने में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका इस साधु वर्ग ने निभाई, उसका श्रेय इसके लेखकों और कवियों को है । इन्होंने दर्शन, साहित्य, इतिहास, टीका, कोश क्या नहीं लिखा । गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरुवाणी के साथ–साथ अनेक प्रान्तों के भक्तों, भाटों की वाणी भी शामिल की गई है, जिसके फलस्वरूप उसमें अनेक प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों की भरमार है ।

भाषा की इस विविधता की शब्दार्थ की समस्या का हल करने के लिए एक कोश की आवश्यकता थी । कोश के इस अभाव को पूरा करने वाले पं. तारा सिंह नरोत्तम का नाम निर्मल सन्तों में अग्रगण्य है । ऐसे कोश की कमी को महसूस करते हुए पंडित तारा सिंह नरोत्तम (1822 ई.–1891 ई.) ने गुरु ग्रन्थ साहिब के अन्दर प्रयुक्त संस्कृत हिन्दी की शब्दावली के अर्थ, व्याख्या पूर्ण सुचारू रूप से की गई थी ।[17] यह कोष गुरुमत साहित्य की अमूल्य निधि है । बाद में आने वाले कोशकारों ने भी गुरुवाणी के अनेक शब्दों का सही अर्थ जानने के लिए इसी कोश को आधार बनाया है । जैसा कि भाई कान्ह सिंह नाभा ने महान कोश के लेखन के समय इसे आधार बनाया है । उन्होंने इस कोश से ली

गई सहायता का अपने कोश में वर्णन भी किया है ।[18] पं॰ तारा सिंह नरोत्तम ने गुरु गिरार्थ कोश में शब्दों की विस्तृत व्याख्या की है । यह उनकी रचनाओं में सब से प्रौढ़ रचना है । उन्होंने शब्दार्थ करते समय इसमें पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय अनेक प्रकार के विषयों का संकलन किया है । शब्दार्थ करते समय इन्होंने उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं । प्रस्तुत कोश को साहित्यिक कोश भी कहा जा सकता है ।

गुरु ग्रन्थ साहिब में वर्णित गुरुमत सिद्धान्तों से अवगत कराने के लिए, सिक्ख दर्शन और गुरुमत मर्यादा सम्बन्धी जानकारी देने के लिए पं. तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुमत्त सागर की रचना की । बाद में भक्त वाणी, जपुजी, रहरास, कीर्तन, सोहला आदि वाणियों की टीकाएं भी कीं । गुरु तीर्थ संग्रह इनकी अनन्यतम पुस्तक है, जिसमें इन्होंने प्रथम बार सभी ऐतिहासिक गुरुद्वारों की सूची देकर उनका इतिहास प्रस्तुत किया है । इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए महन्त साधु सिंह जी ने गुरुमत्त के मौलिक पक्ष को उजागर करने के लिए गुरु सिद्धान्त रवि नामक ग्रन्थ की रचना की । इसके बाद गुरु सिखिया प्रभाकर की रचना भी की । पं. ईशर सिंह ने वाहिगुरु मन्त्रार्थ और गुरुमत दिग्विजय की रचना करके सिक्खमत के आदर्श स्वरूप का निरूपण किया । इसी प्रकार अनेक निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी की टीकाएं और भाष्य रच कर साहित्य में श्रीवृद्धि की । उनके ग्रन्थों में काव्य शास्त्र, इतिहास, जीवनीपरक पौराणिक, मौलिक एवं अनूदित सभी प्रकार के ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । ब्रज भाषा के रचित होने के कारण इसे ब्रजभाषा साहित्य में पर्याप्त सम्मान एवं उचित स्थान प्राप्त है । ब्रजभाषा साहित्य में डा. सत्येन्द्र ने निर्मल सन्तों की रचनाओं का उल्लेख किया है ।

डा. सत्येन्द्र के अनुसार निर्मल सन्तों के ब्रजभाषा ग्रन्थ

1.	पं. टहल सिंह	अलंकार सुधा सागर	काव्यशास्त्र ग्रन्थ
2.	पं. सन्तोष सिंह	गुरु प्रताप सूर्योदय	जीवनी विषयक
3.	बाबा गणेश सिंह वेदी	जन्मसाखी गुरु नानक	,,
4.	वीर सिंह	सुधा सिंह रामायण	
5.	सन्त गुलाब सिंह	अध्यात्म रामायण	
6.	बुध सिंह	अद्भुत नाटक	
		राजा अम्बरीष कथा	
7.	गणेश कवि	फतहनामा श्री गुरु खालसा जी का	
8.	सन्त निहाल सिंह	सिक्ख धर्म विषयक	
9.	पं. तारा सिंह	सिक्ख धर्म विषयक	
10.	आत्म सिंह	सिक्ख धर्म विषयक	
11.	साधु सिंह	सिक्ख धर्म विषयक	
12.	भाई मनी सिंह	सिक्ख धर्म विषयक[19]	

कुछ निर्मल विद्वानों ने व्याख्यात्मक पुस्तकों की रचना की। दार्शनिक दृष्टि से वेदान्त दर्शन पर पुस्तकें रचने के कारण आम जनता को इनके गुरसिक्ख होने के बारे में सन्देह पैदा हुआ। तब इन्हें अपने आपको गुरु घर के सेवक होने का प्रमाण देने के लिए गुरुवाणी की व्याख्या कर सप्रमाण किया कि वे गुरमत विचारधारा से अनुप्राणित है। इस साहित्य की शैली कुछ आलोचनात्मक हो गई है। सन्त निहाल सिंह (लाहौर वाले) ने निर्मल प्रभाकर और सिक्खी प्रभाकर महन्त दयाल सिंह ने बाबे नानक दा निर्मल पन्थ तथा सन्त गुरदित्त सिंह ने गुरमत्त सिद्धान्त सार की रचना इसी उद्देश्य से की। इन सभी ग्रन्थों की लिपि गुरुमुखी है और भाषा ब्रज। कहीं–कहीं पंजाबी भाषा का पुट भी आ गया है। निर्मल सन्तों द्वारा रचित ये गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रजभाषा के ग्रन्थ गुरमत साहित्य की अमूल्य निधि है। गुरुमुखी लिपि मध्यकाल में पंजाब के साहित्य लेखन की आधारशिला रही है। राज दरबारों और गुरु–दरबारों में ब्रज भाषा सृजन के लिए इस लिपि का प्रयोग होता रहा है।[20]

इस काल का साहित्य हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है। विशेष रूप से साम्प्रदायिक साहित्य।

किसी भी लेखक की भक्ति भावना का मूल्यांकन करते समय उसकी रचनाओं में कोई आधारभूत भेद नहीं किया जा सकता। फिर भी लेखक की पृष्ठभूमि, उसके मूलभूत सिद्धान्त और उसकी प्रवृत्ति के आधार पर उसकी कुछ रचनाओं को इसका प्रमुख आधार बनाया जा सकता है।[21]

निर्मल सन्तों की भक्ति मूलक कृतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व न्योछावर करके जिस श्रद्धा निष्ठा और भावना से गुरुमत का प्रचार किया, वह अपने आप में एक उदाहरण है। एक ही निर्मल सन्त को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार देखा जाए, तो उसके जीवन के सभी पहलू गुरुवाणी से जुड़े हैं। उसका जीवन दर्शन ही गुरुमत दर्शन है। उन्होंने अपने आपको गुरुवाणी से इस ढंग से आत्मसात् किया कि उनका सर्वस्व ही गुरुवाणी है। उनकी रचनाओं को पढ़ कर ऐसे लगता है, जैसे सारे विश्व का ज्ञान सिमट कर निर्मल सन्तों के पास आ गया हो। कोई ऐसा साहित्य का क्षेत्र नहीं जिधर इनकी लेखनी ने ग्रन्थ न रचे हों। भाषा की सीमाओं का उल्लंघन करके भी ये लोग अपनी बात को स्पष्ट करने में संकोच नहीं करते थे। कहीं–कहीं इनकी भाषा मिश्रित सी हो गई है।

सिक्ख इतिहास और निर्मल सम्प्रदाय के आरम्भ और विकास एवं महत्त्व से अवगत कराने हेतु कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी रचना की। जिनमें ज्ञानी ज्ञान सिंह और पंडित गण्डा सिंह का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

–ज्ञानी ज्ञान सिंह ने 'पन्थ प्रकाश' (काव्य रूप) और 'तवारीख खालसा' में अपनी खोज प्रतिभा से साखियों में से खोज करके गुरु साहिबान की जीवनियां और पूरा सिक्ख इतिहास रचा है। इसकी प्रामाणिकता और ऐतिहासिक महत्ता को प्रसिद्ध इतिहासकारों ने

स्वीकारा है और बाद के सिक्ख इतिहासों में इनके सन्दर्भ दिए गए हैं । दूसरे प्रसिद्ध इतिहासकार पंडित गण्डा सिंह ने 'इतिहास गुरु खालसा' नाम की पुस्तक हिन्दी में लिख कर हिन्दी पाठकों को सिक्खों की विरासत से परिचित कराया है ।[22]

इसी प्रकार भाई सन्तोष सिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' की रचना करके सिक्ख गुरुओं की जीवनी एवं इतिहास पर पर्याप्त सामग्री प्रदान की है । पं. तारा सिंह नरोत्तम ने 'गुरु वंश तरु दर्पण' तथा गुरु 'तीर्थ संग्रह' की रचना करके ऐतिहासिक गुरुद्वारों का परिचय कराया है । भाई सन्तोष सिंह ने तो सिक्ख धर्म की अनेक पहलुओं से सेवा की है । उनकी 'गरब गंजनी टीका', जपुजी की प्राप्त टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ टीका है।–टीका गरब गंजनी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रचना है । गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी रचनाओं में इसका विशिष्ट स्थान है । यह धर्म काव्य शास्त्र, भाषा विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र के कई पक्षों से संबंधित है ।[23]

इस प्रकार निर्मल संतों ने साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया है और भाषा की कोई सीमा निर्धारित नहीं की ।

3. पंजाबी साहित्य :–

–उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशकों में निर्मल विद्वानों का झुकाव पंजाबी लेखन की ओर हो जाता है । प्रसिद्ध विद्वान साधु सिंह पंडित तारा सिंह नरोत्तम के गुरु भाई जिन्होंने गुरमत सिक्ख प्रभाकर और गुरु सिद्धान्त ज्योति दो बड़े ग्रन्थ ब्रज में लिखे हैं वे भी अपनी कलम को पंजाबी की ओर मोड़ लेते हैं । पंजाबी बोली के लिए उनकी वर्णनीय पुस्तक उत्थानिका श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की है, जो 1898 ई. में प्रकाशित हुई है ।229 इसके समकालीन साहित्य में अधिकतर टीकाएं, साखियां गुरमत व्याख्या, जीवनी और इतिहास आदि विषयों पर ही पुस्तकें रची गईं । भले ही इस काल की रचनाओं में पंजाबी बोली के साथ–साथ ब्रज शब्दावली का प्रयोग भी किया गया है, तो भी अधिकांश संख्या शुद्ध पंजाबी पुस्तकों की है । कुछ पुस्तकें तो ऐसी भी हैं, जिसमें ब्रज और पंजाबी का अद्भुत सम्मिश्रण है । तथा कुछ का आधा भाग ब्रज में और आधा शुद्ध पंजाबी में है । ऐसे साहित्य के लिए भाषा सम्बन्धी विभाजन देखा खींचना अथवा वर्गीकृत करना कठिन हो जाता है । पं. हरदेव सिंह ने सन् 1937 ई. में अपने गुरुदेव की जीवनी 'नारायण हरि उपदेश' प्रकाशित की । भाषा की दृष्टि से इस पुस्तक के गद्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । नारायण सिंह जी के जीवन का आरम्भिक भाग पंजाबी में रचा गया है और बाकी भाग ब्रज भाषा में है ।[25] वैसे भी देखा जाए तो कुछ निर्मल सन्तों की भाषा ऐसी हो गई है कि उनके ग्रन्थों को सूचीबद्ध करना कठिन हो गया है । निर्मल सन्तों के समूचे साहित्य का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि इनकी प्रारम्भिक रचनाएं संस्कृत और ब्रज के प्रभावान्तर्गत रची गई हैं । जिनमें इनकी वेदान्त सम्बन्धी पुस्तकें और टीका साहित्य सम्मिलित किया जा सकता है । इनकी पुस्तकों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इन्होंने अपने साहित्य को सामान्य जनता तक पहुंचाने के लिए संस्कृत भाषा को

कठिन मान कर प्रचलित जनभाषा ब्रज में पुस्तकें रची इनके ब्रज में रचे ग्रन्थों में भी पंजाबी का अंश विद्यमान है । भले ही इस प्रकार के साहित्य को पंजाबी साहित्य में सम्मिलित नहीं किया जा सकता लेकिन इससे उनका पंजाबी भाषा का ज्ञान अवश्य प्रमाणित हो जाता है । कुछ पुस्तकें ऐसी भी हैं, जिनमें पंजाबी का प्रभाव अधिक और ब्रज का प्रभाव कम है । ये पुस्तकें लगभग 19वीं शती के अन्त में मिलती है जिससे यह प्रामाणित हो जाता है कि धीरे-धीरे निर्मल सन्तों का झुकाव ब्रज भाषा से हट कर पंजाबी की ओर गया है । सन्त, साधु सिंह कृत उत्थान का श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं ।

—एक सिंघ श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के आगे हाथ वैद्य ठाढ़ा भया । तो को देख कर श्री गुरु जी ने पूछिया कि भाई सिक्ख तेरे मन में की प्रयोजन है, सो प्रकट कर कहु । तब तिस सिक्ख ने कहिया कि जी सच्चे पातशाह जी आपने एक रोज़ में दीवान में बैठया आगिया करी सी कि भाई सिक्खों श्री ग्रन्थ साहिब जी की उत्थानका का एक ग्रन्थ भी गुरु अर्जुन देव जी का बनाइया होइया है सो ग्रन्थ कोई सिक्ख सानू लिया कर देवे तो तिस सिक्ख नूं असीं बड़ा मुरातबा वखशांगे । जी सच्चे पातशाह जी सो पोथी एक सिक्ख पास है जी ।[26]

निर्मल सन्तों के साहित्य में इस प्रकार की मिश्रित भाषा के परिणामस्वरूप उनके पंजाबी की ओर बढ़ रहे रुझान को स्पष्टतः देखा जा सकता है ।

धीरे-धीरे यह प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि अनेक निर्मल सन्तों ने अपने ग्रन्थ पंजाबी भाषा में लिखने आरम्भ कर दिए। मूल रूप से वे ब्रज के प्रभाव को त्याग न सके । ब्रज-भाषा मिश्रित पंजाबी का प्रयोग अनेक सन्तों ने किया है, केवल शुद्ध पंजाबी का प्रयोग कम । मगर आज पंजाबी साहित्य का अपना साहित्येतिहास होने के कारण इन पंजाबी पुट वाली ब्रज रचनाओं को विशेष महत्त्व मिला है और इसे पंजाबी की रचनाएं स्वीकार किया गया है । अनेक पंजाबी के विद्वानों ने ऐसी रचनाओं का उल्लेख किया है, जो विशुद्ध पंजाबी की है । लेकिन निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि निर्मल सन्तों की पंजाबी रचनाओं पर ब्रज का प्रभाव नहीं है । ऐसी ही रचनाओं का उल्लेख आगे किया जा रहा है ।

पंजाबी साहित्य

पंजाबी के कवि और लेखक (1830–1868)

सन्त मोहर सिंह अपरा (जालंधर)

1.	ग्रन्थ भ्रम तोड़	सन्त मोहर सिंह
2.	बेंत	सन्त मोहर सिंह
3.	शोहर की	सन्त मोहर सिंह

4.	बैंता सम सोती की आं	सन्त मोहर सिंह
5.	कोरड़े	सन्त मोहर सिंह
6.	विवेक विलास	सन्त मोहर सिंह
7.	फकर नामा	सन्त मोहर सिंह
8.	मन्त्र ते गुर उस्तुतिक बिताव की	सन्त मोहर सिंह
9.	बारां मांहां	हमीर सिंह
10.	वीर मृगेन्द्र गुर विलास	सन्त शेर सिंह
11.	उत्थानका गुरु ग्रन्थ साहिब	साधु सिंह
12.	गुरुमत सिद्धान्त सार	साधु गुरदित्त सिंह
13.	तबवारीख गुरु खालसा (3 भाग)	ज्ञानी ज्ञान सिंह
14.	शमशेर खालसा	ज्ञानी ज्ञान सिंह
15.	राज खालसा (दो भाग)	ज्ञानी ज्ञान सिंह
16.	श्री गुरु पन्थ प्रकाश	ज्ञानी ज्ञान सिंह
17.	निर्मल पन्थ प्रदीपका	ज्ञानी ज्ञान सिंह
18.	गुरु धाम दीदार	ज्ञानी ज्ञान सिंह
19.	रिपुदमन प्रकाश (पांच भाग)	ज्ञानी ज्ञान सिंह
20.	इतिहास बागड़ियां	ज्ञानी ज्ञान सिंह
21.	इतिहास अमृतसर	ज्ञानी ज्ञान सिंह
22.	भारत मत दर्पण	गणेशा सिंह
23.	निर्मल भूषण	गणेशा सिंह
24.	बाबे नानक दा निर्मल पंथ	दयाल सिंह
25.	निर्मल पन्थ दर्शन (4 भाग)	दयाल सिंह
26.	ज्ञान भूमिका	दयाल सिंह
27.	निर्मल (साप्ताहिक)	दयाल सिंह

जिस समय पंजाब में गुरुमुखी लिपि में इस साहित्य का सृजन हो रहा था, उसी समय यहां राजनैतिक संघर्ष चल रहा था। इस ऐतिहासिक संघर्ष की तैयारी के लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने सभी हिन्दू शक्तियों का समन्वय किया। शैवों, वैष्णवों, शाक्तों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धापूर्वक भाषानुवाद करना तथा करवाना इस समन्वय का सबसे बड़ा प्रमाण है।[27] उन्होंने महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ का अनुवाद कार्य अपने दरबार में विद्यमान विभिन्न प्रान्तों से आए कवियों से सम्पन्न करवाया। इससे बड़ा राष्ट्रीय एकता का सबल प्रमाण और क्या हो सकता है। उन्होंने उस समय के अनुसार आवश्यकता अनुभव की कि कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को जन भाषा में प्रस्तुत किया जाए। उस समय लिपि गुरुमुखी थी और भाषा ब्रज। मध्य देश में जिसे भाषा कह कर सम्बोधित किया गया है, वह पंजाब में गुरुमुखी लिपि का बाना पहने हुए है। पंजाब की विस्तृत सीमा में जिस साहित्य ने जन्म

लिया, उसकी गुरुमुखी लिपि होना स्वाभाविक ही है। गुरुमुखी लिपि के आविष्कर्ता गुरु अंगद देव जी हैं।–पंजाब के अतिरिक्त प्रदेशों के भाषा साहित्य को भी गुरुमुखी लिपि में सुरक्षित रखा गया है।[28]

पंजाब में जो गुरुवाणी साहित्य रचा गया, उसकी यह अनिवार्यता थी कि उसे गुरुमुखी लिपि में ही प्रस्तुत किया गया। गुरुमत्त की भावना एवं निष्ठा में पूर्णता हेतु गुरु प्रदत्त लिपि के प्रति निष्ठावान होना स्वाभाविक ही था। भाषा पंजाबी हो या हिन्दी मगर उनकी लिपि अधिकांशतः गुरुमुखी ही रही है। जो रचनाएं गुरुमुखी लिपि में हैं और हिन्दू लेखकों की है, वे मूल रचनाएं हो सकती हैं परन्तु ऐसी रचनाओं को पंजाबी के घेरे में से निकालने के लिए निरन्तर और चेतन्य यत्न हो रहे हैं। आज इन्हें हिन्दी का नाम देकर न केवल पी.एच.डी. की डिग्रियां प्राप्त की जा रही हैं अपितु इनका देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरण करके इन्हें हिन्दी बनाया जा रहा है।[29] ऐसे आरोप लगाने से पूर्व यह विचार कर लेना समीचीन होगा कि जिस ग्रन्थ का लिप्यन्तरण किया जाता है, उसकी मूल भाषा को उसी रूप में सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है, केवल लिपि ही परिवर्तित होती है भाषा नहीं। अतः पंजाबी भाषा की रचनाएं मात्र लिप्यन्तरण से हिन्दी की नहीं हो सकती। वर्गीकरण के लिए रचनाओं का आधार भाषा होता है लिपि नहीं। कोई भी रचना किसी भी लिपि में लिखने से उसी भाषा में सम्मिलित की जाती है। पंजाब में हिन्दू और सिक्ख साहित्यकरों ने गुरुमुखी लिपि का ही प्रयोग किया है, रचना भले ही किसी भी प्रकार की हो और मुस्लमानों ने अरबी फारसी। देवनागरी पंजाब में कभी भी प्रचलित नहीं हुई। देवनागरी लिपि में लिखी पुस्तकें पंजाब में कम प्राप्त होती हैं।[30] यह भी एक भ्रामक तथ्य है वर्तमान शोध के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि गुरुमुख लिपि में रचित साहित्य के समानान्तर ही देवनागरी लिपि में भी पर्याप्त साहित्य रचा जाता रहा है। उदासी और निर्मल सम्प्रदायों के साहित्य को अच्छी प्रकार देखने के बाद यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। सिक्ख गुरुओं और सिक्ख मतावलंबी गुरु भक्त नरेशों का दरबार ब्रजभाषा के लिए ऐसा शाद्धल रहा है, जिसके चारों ओर पंजाबी भाषी एवं ब्रजभाषी क्षेत्र फैला हुआ था। निश्चय ही ब्रजभाषा पर पंजाबी छन्द शैली का प्रभाव पड़ा। परन्तु उच्चारण सम्बन्धी कतिपय प्रभावों के अतिरिक्त रचनाएं ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत की गई।[31] ब्रजभाषा पंजाबी की अपेक्षा जनसम्पर्क के क्षेत्र से दूर होती गई। अतः लोगों को समझने में कठिनाई अनुभव होने लगी। दूसरे गुरुमुखी लिपि पंजाब में जितनी प्रचलित हुई दूसरे प्रान्तों में नहीं हो सकी। देवनागरी लिपि के ज्ञाता विद्वान गुरुमुखी लिपि में रचित साहित्य से अनभिज्ञ ही रहे। इधर पंजाबी के विद्वान गुरुमुखी लिपि से परिचित होने पर भी ब्रजभाषा के ज्ञान के अभाव में इस साहित्य को न पहचान सके। यही कारण है कि– पं. रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आजतक हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक पंजाब के इस हिन्दी साहित्य से प्रायः अपरिचित ही रहे। राष्ट्रभाषा हिन्दी और इसके साहित्य का इतिहासकार पंजाब के अन्तस में शताब्दियों से अलक्षित रूप से बह रही इस सरस्वती का

साक्षात्कार आज तक न कर पाया । इसे दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है ।[32] पन्द्रहवी–सोलहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती तक का सम्पूर्ण पंजाब का हिन्दी साहित्य इसी साहित्य से पुष्ट होता है । गुरुमत साहित्य और दरबारी साहित्य के मूल्यांकन हो जाने पर हिन्दी साहित्य के समृद्ध हो जाने की पूर्ण सम्भावनाएं हैं । इससे हिन्दी साहित्येतिहास का पुनर्लेखन अनिवार्य हो जाएगा । साहित्य के इतिहास में सम्प्रदायों द्वारा रचित साहित्य की प्रभूत मात्रा उसे हृष्ट करती है । सम्प्रदाय की लीक में बंध कर भी प्रतिभा कैसे नए स्वरों को छूती है, यह एक अद्भुत तत्व सदा उद्घाटित होता रहता है । अतः यह सत्य है किं धार्मिक सम्प्रदायों ने सभी ने ब्रज साहित्य को सींचा है ।[33] पंजाब में सदैव प्रान्तीयता को प्रमुखता दी है । समूचे पंजाब में जब गुरुवाणी का प्रचलन हो रहा था, तो उस समय की भाषा ब्रज थी । जिस समय अन्य प्रान्तों में रीतिकालीन श्रृंगारिक साहित्य की रचना हो रही थी, उस समय पंजाब में गुरुमत साहित्य का रचना कार्य ज़ोरों पर था । अनुवादों, टीकाओं, लिप्यंतरण ग्रन्थों के द्वारा गुरुमुखी लिपि से कलेवर में ब्रजभाषा के ग्रन्थों का रचना कार्य ज़ोरों पर था । सिक्ख धर्म के अनुयायियों सेवकों के द्वारा गुरुवाणी के प्रचार और प्रसार हेतु अनेक साधन प्रयोग में लाए जा रहे थे, जिनमें से एक था, संस्कृत हिन्दी के देवनागरी ग्रन्थों का गुरुमुखी लिपि में लिप्यन्तरण । कुछ विद्वानों के अनुसार ग्रन्थ साहित्य में दर्ज भक्तों और सन्तों की भाषा जो पंजाब से बाहर थे, ब्रज (हिन्दी) रही है । मगर उसे भी गुरुमुखी लिपि में लिप्यन्तरण किया गया है । यदि यह मान भी लिया जाए कि गुरु ग्रन्थ साहिब और सन्तों साधुओं की वाणी हिन्दी भाषा में थी, तो इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि पंजाब में हिन्दी भाषा के लिए देवनागरी का प्रयोग कदापि नहीं हुआ यह सदा गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जाती रही है ।[34] लिपि कोई भी हो मगर उत्तर मध्यकालीन पंजाब में विरचित साहित्य का प्रतिपाद्य गुरुवाणी से सम्बन्धित हो रहा है । गुरुवाणी के टीके एवं व्याख्या करके अनेकसन्तों, विद्वानों ने इसके सन्देश को घर–घर तक पहुंचाने में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया है । उदासी, सेवापन्थों तथा निर्मल सन्तों ने अपनी सशक्त लेखनी का सदुपयोग इसी कार्य के लिए किया । इन सन्तों ने हिन्दी और पंजाबी, देवनागरी और गुरुमुखी दोनों क्षेत्रों में अपनी ग्रन्थ रचना की ।

–निर्मल साधुओं के यह ग्रन्थ संस्कृत हिन्दी और पंजाबी तीनों भाषाओं में हैं । पंजाबी में तो अभी–अभी थोड़ा–सा काम हुआ है । अधिकांश काम तो सन्त भाषा में ही होता रहा । चाहे प्रकाशित गुरुमुखी लिपि में ही होता था ।[35] भले ही इनकी भाषा में मिश्रित शब्दावली मिलती है क्योंकि प्रचार के कारण अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्द आ जाते हैं । कुल मिला कर हिन्दी और पंजाबी में इन सन्तों ने साहित्य सृजन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

–हिन्दी सन्तों से आशय उन सन्त कवियों से है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है । उसी प्रकार पंजाबी सन्तों से आशय उन्हीं सन्तों से है जिनकी मातृभाषा पंजाबी रही है । यह आवश्यक नहीं कि इन सन्तों ने अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में पद रचना

नहीं की हिन्दी सन्तों के पद पंजाबी भाषा में भी प्राप्त होते है । पंजाबी भाषी सन्तों की हिन्दी रचनाओं का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंका उनका अधिकतर साहित्य हिन्दी भाषा में ही है । गुरु तेग बहादुर एवं गुरु गोबिन्द सिंह की तो समस्त रचनाएं हिन्दी में ही हैं । उन्होंने बहुत कम पंजाबी में लिखा है । इन सन्तों ने दोनों भाषाओं के साहित्य में परस्पर भारी योगदान दिया है ।[36]

इतना ही नहीं इन्होंने संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का भी अनुवाद किया । निर्मल सम्प्रदाय के अनेक सन्त संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित हुए हैं, जिन्होंने अपनी विद्या का लाभ उठा कर संस्कृत जानने वालों के लिए गुरुवाणी की टीकाएं संस्कृत में रच कर गुरुवाणी के प्रचार का क्षेत्र और विस्तृत किया । साम्प्रदायिक सन्तों ने जितना साहित्य रचा है, उसमें संस्कृत, हिन्दी (ब्रज) और पंजाबी साहित्य समान रूप से उपलब्ध होता है । आज तक इस साहित्य के अध्ययन की समस्या बहुत से लोगों की गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञता है । गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब का हिन्दी साहित्य जितना महनीय है उतना ही उपेक्षित भी रहा है । पंजाबी भाषा और साहित्य के इतिहासकार प्रायः इस विशाल साहित्य विशेषतः इसके प्रकाशनादि को पंजाबी के लिए एक खतरा ही समझते रहे । क्योंकि पंजाबी के इतिहास में खड़ी बोली (अथवा ब्रजभाषा) की ये गद्य पद्य रचनाएं कदाचित् विशुद्ध पंजाबी की रचनाओं से बहुत प्राचीन हैं । फलतः इस साहित्य के प्रकाश में आने से पंजाबी का ऐतिहासिक पक्ष इन इतिहासकारों को कमजोर पड़ता दिखाई दिया । यही कारण है कि यह साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उपेक्षित ही पड़ा रहा है ।[37]

आज नई खोजों के आधार पर जबकि लिपि और भाषा की समस्याओं के अनेक निराकरण झूठे किए जा रहे हैं । मुद्रण कला के विकास ने लिप्यंतरण को बढ़ावा दिया है । यह गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध साहित्य हिन्दी और संस्कृत साहित्य के समान रूप से प्रतिष्ठित हुआ है । वास्तव में गुरुओं और सन्तों ने संकीर्णता के घेरे से ऊपर उठ कर ही राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत आदि ग्रन्थ का सम्पादन करके एवं गुरुवाणी का प्रचार करके पूरे भारत के कोने–कोने में गुरुमत का सन्देश पहुंचाने के लिए तत्पर थे । गुरुओं की वाणी को गुरु गोबिन्द सिंह जी ने गुरु गद्दी सौंप कर सम्मानित तो किया ही साथ ही उसकी पृष्ठभूमि को जानने समझने पर भी बल दिया ।

इस समय की संस्कृत की सांझ गुरु गोबिन्द सिंह की दृष्टि की परिचायक है । महाभारत का कई खण्डों में अनुवाद अथवा चौबीस अवतारों की कथा योजना उस समय के पंजाब की सांस्कृतिक कड़ियों को प्रकाशित करती है । गुरु गोबिन्द सिंह ने स्वयं भी ओर अपने कवियों से भी ब्रज भाषा में उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएं लिखवाई और लिखी– ।[38]

गुरु गोबिन्द सिंह ने इस भाषा और संस्कृति के महत्त्व को भली–भान्ति जान लिया था और इसे जीवित रखने के लिए ही उन्होंने स्वयं कटिबद्ध होकर लेखनी चलाइ । इस

विश्व व्यापी आन्दोलन के लिए उन्होंने देश देशांतरों के विद्वानों, कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया । इनकी यह उदारता ही साहित्यिक विरासत को सम्भालने के लिए सहायक सिद्ध हुई । गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने शिष्यों में भी यह भावना भर दी कि साहित्य ही मानव को नई दिशा दे सकता है । इसीलिए उन्होंने अपने शिष्यों को अध्ययनार्थ कांशी भेजा था । गुरु नानक के परवर्ती सिक्ख गुरु अपने सन्देश को भारत के अन्य भागों तक पहुंचाने की दृष्टि से सचेत रहे । स्वाभाविक था कि वे अपनी रचनाओं के लिए ऐसी भाषा का चुनाव करते जो पंजाब के बाहर भारत के अन्य भागों में भी समझी जा सकती है । परिणामस्वरूप सिक्ख गुरुओं की रचनाओं का झुकाव धीरे–धीरे पंजाबी से हिन्दी की ओर बढ़ता चाल गया ।[39] प्रत्येक साहित्य अपने युग और धारा के अनुकूल होता है । जब गुरुओं ने वाणी की रचना की तो उस समय पूरे भारत में एक ऐसा समृद्ध और प्रौढ़ साहित्य रचा जा रहा था, जिसका एक मात्र उद्देश्य था सम्प्रेषणीयता अपनी बात दूसरों तक पहुंचाना । गुरुवाणी के सन्देश को भी जन–जन तक पहुंचाने के लिए तत्कालीन प्रचलित साहित्यक ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया गया । पंजाब के बाहर गुरुमत का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए यह उस समय की अनिवार्यता थी । यही कारण है कि उस समय का सम्पूर्ण गुरुमत सम्बन्धी साहित्य गुरुमुखी में होने के बावजूद भी ब्रजभाषा में ही रचा गया । बाद में इस बात की कठिनाई हुई कि जो लोग इस लिपि को नहीं जानते वे इसे कैसे पढ़े उनके लिए इसका देवनागरी में लिप्यंतरण करने की प्रथा चली ।

–देवनागरी लिपि के अभिनव प्रचार ने जहां लाभ पहुंचाया है, वहां हानि भी कम नहीं पहुंचाई है । देवनागरी के प्रचार से पूर्व (भाषा) हिन्दी गुरुमुखी लिपि में लिखी जाती थी और उसे दो–दो लिपियों को अपनाने का गौरव प्राप्त था । देवनागरी लिपि के दबाव के कारण गुरुमुखी (भाषा) हिन्दी से कट कर पंजाबी साहित्य की गोद में जा पड़ी है ।[40] आज हिन्दी और पंजाबी का जो रेखांकित विभाजन हम देख रहे हैं, यह पहले नहीं था । पंजाबी भाषा देवनागरी में और हिन्दी (व्रज) गुरुमुखी में लिखने का प्रचलन शताब्दियों से चला आ रहा था । केवल क्षेत्रीयता की संकीर्णता ने और विषाक्त साम्प्रदायिकता ने भाषाओं का सीमांकन कर दिया । आज प्रायः यह माना जाने लगा है कि पंजाबी भाषा की लिपि गुरुमुखी है और हिन्दी की देवनागरी । जबकि मध्यकालीन प्रान्तीय हिन्दी साहित्य विशेष रूप से पंजाब के हिन्दी साहित्य में यह बात प्रायः देखने को मिलती है कि भाषा और लिपि का कोई भिन्नभेद है ही नहीं ।

–भारत के भाषा और साहित्येतिहास का अगर अध्ययन किया जाए तो 12वीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक उत्तरी भारत धर्म और दर्शन का केन्द्र रहा है । पूर्व मध्यकाल में पंजाबी में अवधि, ब्रज, अपभ्रंश के प्रचलन के कई उदाहरण मिलते हैं । वास्तव में भक्ति लहर एक धार्मिक आंदोलन होने के साथ–साथ पुनर्जागरण का आन्दोलन भी था । भारतीय भाषाओं और लिपियों को प्रोत्साहित करने

की ऐतिहासिक भूमिका भी इसी आन्दोलन ने निभाई ।[41] यही कारण है कि पंजाब में रचित उत्तर मध्यकालीन साहित्य भी देवनागरी और गुरुमुखी दोनों में समान रूप से रचा जाता रहा है । विशेषतः गुरुवाणी और गुरुवाणी की व्याख्या एवं तत्कालीन दरबारी साहित्य इस बात का सबल एवं पुष्ट प्रमाण है ।

–उस युग में पंजाब में जो साहित्य रचा गया उसमें भी आध्यात्मिक भावों की प्रधानता रही और दस सिक्ख गुरुओं के जीवन से प्रभावित होने के कारण जनसाधारण के कल्याण के लिए लिखा गया है । इसलिए उसमें चमत्कार प्रदर्शन का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि सभाओं में मान प्राप्त करने के लिए रीति ग्रन्थ लिखने को भी यहां के साहित्यकार उत्कंठित नहीं थे ।[42] निर्मल सम्प्रदाय के सन्तों ने अधिकांशतः टीका कोश तथा व्याख्या ग्रन्थों का ही प्रणयन किया । कुछ विद्वानों ने केवल काव्य ग्रन्थों को रचा । कुछ ने गद्य में कुछ संस्कृत के अनुवाद ग्रन्थ गद्य पद्य मिश्रित है । निर्मल सन्तों ने हिन्दी और पंजाबी दोनों ही भाषाओं में पर्याप्त साहित्य रचा है । इस सम्पूर्ण साहित्य का प्रमुख विषय, गुरुवाणी की व्याख्या, गुरुमत का महत्त्व प्रतिपादन, गुरु धामों की खोज, सिक्ख इतिहास, ज्योतिष और वैद्यक के ग्रन्थ तथा निर्मल सम्प्रदाय का इतिहास रहे हैं । पहले कुछ मौलिक तथा अनूदित ग्रन्थ काव्यात्मक हैं, बाद में गद्य का प्रचलन हो जाने से बहुत से ग्रन्थ गद्य में रचे गए हैं । वास्तव में देखा जाए, तो हिन्दी साहित्येतिहास में गद्य का आरम्भ 18वीं शती से होता है । गद्य की दृष्टि से 19वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध का हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है–1800 से 1857 ई. तक के काल का सिंहावलोकन करते समय साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा गद्य ही हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट करता है ।[43]

निर्मल सन्तों ने भी युगानुरूप गद्य शैली को अपनाया और टीका ग्रन्थों एवं अनुवादों को गद्य में किया । इनका गद्य तार्किक और उपदेशात्मक है । आरम्भिक गद्य ब्रज भाषा में और बाद का गद्य पंजाबी भाषा में उपलब्ध होता है । इनकी पंजाबी भाषा की रचनाओं में भी ब्रज और खड़ी बोली के शब्दों का पुट मिलता है । मुख्य रूप से इन्होंने साध भाषा का प्रयोग ही किया है । निर्मल सम्प्रदाय विरचित साहित्य का भण्डार अभी तक पूर्ण रूपेण प्रकाशित नहीं हो सका है । फिर भी जो रचनाएं प्रकाश में आ सकी हैं इनका विवेचन यहां किया जा रहा है । प्रामाणिकता के आधार पर इस श्री साहित्य के आरम्भिक कवि लेखक पंडित गुलाब सिंह निर्मला को माना जाता है । इससे पूर्व की रचनाएं अनुपलब्ध है । उन्होंने प्रथम रचना भाव रसामृतं 1834 में रची । उससे पूर्व का कोई निर्मल सन्त विरचित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । हां उल्लेख अवश्य मिलता है ।

–पन्थ प्रकाश अते अन्नते गुरु बिलास 1718 ई. दे करीब किसे निर्मल सन्त दीयां पुस्तकें थीं पर खेद है गुम हो चुकी हैं ।[44]

अतः निर्मल साहित्य का आरम्भ पं. गुलाब सिंह जी की रचना भाव–रसामृत से ही मान लेना उचित होगा । पं. गुलाब सिंह की प्रमुख रचनाएं हैं–

1. भाव रसामृत–1834 वि. (1777 ई.)
2. मोक्ष पन्थ–1835 वि. (1778 ई.)
3. अध्यात्म रामायण–1836 वि. (1779 ई.)
4. प्रबोध चन्द्रोदय नाटक–1841 वि. (1784 ई.)

इनके अतिरिक्त महन्त गणेशा सिंह ने इसकी दो अन्य कृतियों स्वप्राध्यायी तथा कर्म विपाक का भी उल्लेख किया है ।[45]

पं. गुलाब सिंह की प्रतिभा बहुमुखी थी । उन्होंने काशी में रहकर वेद, शास्त्रों, वेदान्त, व्याकरण न्याय, योग आदि का विधिवत् अध्ययन किया था । इसीलिए उनका साहित्य भी विविध विषयों को प्रकाशित करता है । उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए डा. हरिभजन सिंह ने कहा है–

–गुलाब सिंह त्यागी है किन्तु मानवीय सम्वेदना से रहित नहीं । उनका काव्य न कोरा उपदेश है हृदयहीन सिद्धान्त निरूपण । उनके छन्दों की विशुद्ध प्रगीत संज्ञा तो नहीं हो सकती किन्तु प्रगीतात्मकता का एक प्रमुख तत्वगुण आत्माभिव्यक्ति इनमें स्पष्ट रूप से विद्यमान है ।[46] पं. गुलाब सिंह की रचनाओं का परिचय इस प्रकार है–

भाव रसाम्रित :–

भाव रसाम्रित काव्य के स्तर पर और भक्ति के स्तर पर एक उत्तम और मूल्यवान कृति है । भावरसामृत गुलाब सिंह को मौलिक कृति है । चन्द्रकान्त बाली ने इसे संस्कृत की पुस्तक 'वैराग्यशतकम्' का अनुवाद बताया है ।[47] इसी बात को गोबिन्द नाथ राजगुरु ने भी स्वीकार किया है । भर्तुहरि कृत वैराग्यशतकम के कई पदों की झलक भावरसाभृत के कई पदों पर पड़ी है ।[48] पं. गुलाब सिंह के इष्ट गुरु नानक और भगवान राम थे । कवि ने भक्ति तत्वप्रधान इस ग्रन्थ की रचना अपने पाठकों को भक्ति रस की महिमा से अवगत कराने के उद्देश्य से ही की मौलिक संसार के सभी आकर्षणों से विरक्त के सूचक भाव भाव रसामृत में आए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि केवल काव्य के क्षेत्र में ही नहीं साधना के क्षेत्र में भी पं. गुलाब सिंह की यह प्रथम रचना है । इसमें कुल 130 छन्द हैं । इस खण्ड काव्य में भक्ति और वैराग्य का उपदेश दिया गया है ।

भाव रसाम्रित कवि गुलाब सिंह की एकाएक मौलिक रचना है, जिसमें सासांरिक पदार्थों को नश्वर बता कर जिज्ञासु को वैराग्य के लिए प्रेरित तथा परमार्थ तत्व की ओर आकर्षित किया गया है । यह छोटी सी रचना ज्ञान गंगा है, जिसमें अनुभवी हृदय से स्फुटित हुए भाव तथा रस पूर्ण विचार संकलित किए गए हैं ।[49]

मोक्ष पंथ :–

अद्वैत दर्शन की प्रौढ़तम कृति 'मोक्ष पंथ' है । यह रचना पांच निवासों (अध्यायों) में विभक्त है । ये निवास आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । प्रस्तुत रचना भारतीय दर्शन शास्त्र का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करने में सक्षम है । भारतीय दर्शन की विस्तृत

विवेचन गुरुमुखी अक्षरों में इस पुस्तक में हुआ है । सम्भव है किसी अन्य पुस्तक में हुआ हो । यह गुलाब सिंह की मौलिक रचना है । उपनिषदों के उदाहरणों का स्थान–स्थान पर प्रयोग इस रचना की मुख्य विशेषता है ।

–रज्जू सर्प के उदाहरण 'सीप रजत' जैसी तुलना से मोक्षपन्थ को वेदान्त दर्शन की प्रामाणिक पद्धति पर प्रतिष्ठित किया गया है । ज्ञान की सात भूमिकाएं 'ओउम' का उल्लेख भी पं. गुलाब सिंह ने बड़ी स्पष्टता और मर्मज्ञान से किया है ।[50]

मोक्ष पन्थ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है मोक्ष अर्थात मुक्ति के लिए मार्ग दर्शक है । इसमें मुक्ति के लिए आवश्यक साधनों पर प्रकाश डाला गया है । यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई । साधु गोबिन्द सिंह (गंगा सिंह) ने इस पुस्तक को टीका सहित मुम्बई से देवनागरी में प्रकाशित कराया था ।

चन्द्रकान्त बाली ने इस 'स्वराज्य सिद्धि' नामक रचना का अनुवाद बताया है ।[51] परन्तु उन्होंने इसकी पुष्टि नहीं की । स्वराज्य सिद्धि संस्कृत का प्रसिद्ध वेदान्त ग्रन्थ है ।

आध्यात्म रामायण :–

पं. गुलाब सिंह जी की अनूदित रचनाओं में अध्यात्म रामायण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रौढ़ रचना है । पं. गुलाब सिंह ने मूल रचना के केन्द्रीय भाव को दृष्टिगत करके इसका अनुवाद किया है । इसमें उनकी अद्वैत दृष्टि की पूर्णरूपेण व्याख्या हुई है । चाहे इस अनुवाद को उन्होंने अक्षरशः अनुवाद के रूप में नहीं किया, तो भी मूल के अति निकट होने के कारण इसे भावानुवाद या छायानुवाद कहा जा सकता है । यह रचना सात भागों में विभक्त है । काण्ड कई अध्यायों में विभक्त हैं । संस्कृत की सुप्रसिद्ध रचना अध्यात्म रामायण का यह अनुवाद अति सुन्दर बन पड़ा है । इसके अनुवाद की शुद्धता तथा मूल पाठ के प्रति इसकी पूरी आस्था स्वीकार की गई है । गुलाब सिंह ने ब्रज भाषा में इसका काव्यानुवाद करके पंजाब की राम काव्य परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

–संवत् 1839 (1782) ई. में रची गई पं. गुलाब सिंह की प्रमुख और प्रसिद्ध रचना अध्यात्म रामायण अन्य रामायणों के समान काण्डों और अध्यायों के रूप में विभक्त है । इसकी भाषा बहुत ही सुन्दर और सरस ब्रज है ।[52] राम को अपने इष्ट के रूप में मान कर और उसे अद्वैतवाद के कुछ के रूप से चित्रित कर उन्होंने अपनी विद्वत्ता का प्रमाण दिया है ।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक :–

संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक प्रबोध चन्द्रोदय कृष्ण मिश्र की रचना है । यह एक प्रतीकात्मक नाटक है । समाज में फैले धार्मिक आडंबरों को हटा कर मानवोचित गुणों की ओर अग्रसर करना ही इस नाटक की रचना का मूल उद्देश्य है । हिन्दी में इस नाटक के अनेकधा अनुवाद–भावानुवाद हुए पं. गुलाब सिंह ने इसका अनुवाद गुरुमुखी लिपि में किया और गुरुमुखी जानने वालों को इस महत्त्वपूर्ण कृति से अवगत कराया । यह नाटक भाव प्रधान है ।

—नाटकीय दृष्टि से तो इसका मूल्य भले ही अधिक नहीं परन्तु भावों को प्रतीकात्मक पात्रों के रूप में प्रस्तुत करके श्री कृष्ण मिश्र ने भावी नाटककारों को एक दिशा प्रदान की है । पं. गुलाब सिंह ने इस संस्कृत नाटक का अनुवाद ब्रजभाषा के शब्दों में किया है ।[53]

पं. गुलाब सिंह ने इसका अनुवाद संवत् 1846 (1789 ई.) में किया जो आज पंजाब में कई रूपों में उपलब्ध हैं । भले ही यह अनुवाद कहा जा सकता है मगर इसमें उनकी मौलिकता की झलक भी है उन्होंने इस नाटक का अनुवाद अनेक छन्दों में किया है, उनकी यह रचना उन्हें एक सफल रचनाकार और विद्वान प्रमाणित करने में सक्षम है ।

स्वप्नाध्यायी :—

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें स्वप्नों पर आधारित घटनाओं का विवरण है । कुछ स्थानों पर इसका नाम भविष्यत अर्थ प्रकाश भी लिखा गया मिलता है । इसके अनुसार इसमें स्वप्नों के आधार पर आगे आने वाले (भविष्य) की घटनाओं की चर्चा है ।

पं. गुलाब सिंह के पश्चात् निर्मल सम्प्रदाय के प्रमुख गद्यकार पं. तारा सिंह नरोत्तम का नाम लिया जा सकता है । आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । आपने गुरुवाणी का कोश तैयार करके सर्वप्रथम गुरुवाणी को समझने का मार्ग प्रशस्त किया । नरोत्तम जी ने कई सहस्त्र पृष्ठ व्यापी गद्य सामग्री हिन्दी साहित्य को दी है थोड़ी बहुत पद्य रचना भी उन्होंने की है । उनका प्रधान क्षेत्र है गद्य । विशुद्ध गद्य की दृष्टि से उनकी रचनाओं में तत्सम प्रधान शब्दों का व्यापक प्रयोग हुआ है । पंजाबी शब्दों और मुहावरों की पुट उनके गद्य की उल्लेखनीय विशेषता है । प्रभावपूर्ण तथा शक्तिशाली भाषा के वे मनस्वी शिल्पी हैं । इन उपकरणों के साथ के गुरुवाणी की व्याख्या एवं गुरु ग्रन्थ का शब्द कोष प्रस्तुत करते हैं ।[54] अधिकांशतः नरोत्तम ने मौलिक साहित्य की ही रचना की अनुवाद की और उन्होंने ध्यान नहीं दिया । उनकी कुछ रचनाएं आज उपलब्ध नहीं होतीं । इनकी रचनाओं की संख्या 13 के लगभग बताई जाती है । भाई कान्ह सिंह नाभा ने महान कोश में इनकी निम्नलिखित रचनाओं का विवरण दिया है—

1. मोक्षपन्थ टीका
2. सुरतरु कोश
3. गुरुमत निर्णय सागर
4. गुरु वंश तरु दर्पण
5. जपु रहिरास सोहला
6. भगतां दी वाणी
7. गुरु तीर्थ संग्रह
8. श्री राग टीका
9. गुरु गिरार्थ कोश[55]

पं. तारा सिंह नरोत्तम की इन रचनाओं के दो प्रमुख आधार हैं । गुरुवाणी की व्याख्या और कोश कारिता । गुरुवाणी की व्याख्या में जपु आदि की टीका और श्री राग टीका बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । कोश ग्रन्थों में सुरतरु कोश और गुरु गिरार्थ कोश अद्वितीय हैं । टीका ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है—

1. गुरु भाव दीपिका :–

इस ग्रंथ में 'जपुजी' रहिरास, सोहिला और शब्द हजारे की टीका संकलित है । टीका का आरम्भ मंगला चरण से किया गया है । प्रथम गुरु से लेकर दशम गुरु तक सभी गुरुओं की निष्ठा से स्तुति की गई है । एक ओंकार की विस्तृत व्याख्या की गई है। तारा सिंह नरोत्तम ने अत्यन्त विस्तार के साथ विभिन्न प्रसंगों से अद्वैतपरक दृष्टिकोण द्वारा जपुजी साहिब की व्याख्या की है, उसमें निमित उपादान कारण, कृत्रिम अकृत्रिम रूप, कारण अकारण स्वरूप निषेध वचनों और तटस्थ लक्षणों के द्वारा जपुजी की व्याख्या की गई है ।[56]

नरोत्तम ने गुरुवाणी की व्याख्या शब्दार्थ और भावार्थ दोनों को दृष्टिगत रख कर की है, कहीं–कहीं शब्दों का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है । उन्होंने गुरुवाणी को सरल एवं स्पष्ट रूप में समझाने हेतु हर सम्भव प्रयास किया है । सिक्ख सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के ज्ञाता होने के कारण वे गुरुमत के सन्दर्भों को अच्छी प्रकार स्पष्ट कर सके हैं ।

2. टीका श्री राग :–

तारा सिंह नरोत्तम की टीका पुस्तकों में यह उनकी टीका पद्धति का सर्वोत्कृष्ट नमूना है । पहले शंका समाधान पुनः उत्थानिका, विचार निष्ठता एवं वाणी मर्मज्ञता का सबल प्रमाण पुष्ट करने वाली यह टीका अद्वितीय है । पौराणिक सन्दर्भों को माध्यम बना कर उन्होंने अनेक बातों को सहज ही समझा दिया है । यह उनके गहन अध्ययन का ही परिणाम है । जहां कहीं वाणी का अर्थ स्पष्ट करने में कठिनाई पेश आती है वहां वे भावार्थ प्रस्तुत करते हैं व्याख्या के अन्तराल अपने भावों के स्पष्टीकरण के लिए स्थान–स्थान पर प्रमाण दिए हैं । टीका के समय वे वाच्यार्थ को लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की अपेक्षा अधिक प्रधानता देते हैं । यही कारण है कि उनकी टीका व्याख्या सजीव है ।[57] आदि ग्रन्थ की टीकाओं में इस टीका कारों ने इस ग्रन्थ से बहुत सहायता ली है ।

3. वाणी भगतां सटीक :–

आदि ग्रन्थ में गुरुवाणी के अतिरिक्त कुछ अन्य भक्तों की वाणियां भी संकलित हैं । जिनमें जयदेव, नामदेव और कबीर आदि के नाम प्रमुख हैं । इन्हें भक्त वाणीयां भक्तां दी वाणी कहा जाता है । तारा सिंह नरोत्तम ने इन भक्तों की वाणियों की व्याख्या सविस्तार की है । और यह व्याख्या गुरुमत विचारधारा के अनुसार की गई है । भक्त वाणी के सम्बन्ध में अनेक संशयों का निराकरण भी किया गया है । भक्त वाणी को आदि ग्रन्थ में स्थान क्यों और कैसे मिला ?

–नरोत्तम की धारणा है कि यह वाणी ग्रन्थ अर्जुन ने आदि ग्रन्थ का संकलन तैयार करते समय भक्तों के भावानुकूल स्वयं परन्तु उनके नाम से तैयार की है ।[58] इस पुस्तक के दो भाग हैं एक भाग (पृष्ठ 396 तक) गूजरी राग और दूसरे भाग में 520 पृष्ठ हैं ।

4. गुरमत निर्णय सागर :–

नरोत्तम जी की व्याख्या का सब से शुद्ध रूप एवं टीका सम्बन्धी दृष्टिकोण गुरमत निर्णय सागर में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके अनुसार केवल शब्दार्थ ही टीका अथवा व्याख्या नहीं होता अपितु टीका का उद्देश्य भावार्थ प्रकट करना होता है। गुरुमत्त निर्णय सागर' में टीकाएं दो प्रकार की दर्शायी गई है। एक पिंजका दूसरी अपिंजका। आगे इनके दो दो प्रकार हैं। एक अवतरण वाली दूसरी प्रतीक वाली।[59] यह कृति गुरुमत सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में इतनी सशक्त सिद्ध हुई कि इसे गुरुवाणी सिद्धान्त की प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है। सम्पूर्ण रचना चार खण्डों में है और चारों खण्ड 31 उर्मियों में बांटे गए हैं। लगता है नरोत्तम ने सागर को उर्मियों के माध्यम से परिलक्षित किया है। भक्ति इसका प्रतिपाद्य है। गुरुमत का सूक्ष्म विवेचन इस रचना की अन्य विशेषता है।

5. अकाल मूरत प्रदर्शन :–

इस रचना में अकाल पुरुष के स्वरूप का वर्णन है। इसमें नरोत्तम ने पौराणिक सन्दर्भों को भी आधार बनाया है। यह अकाल शिवका ही स्वरूप है। यही बल भी है। लोग उसे ही रुद्र के रूप में पूजते हैं। उनके अनुसार गुरु जी ने भी रुद्र को महाकाल के रूप में पूज्य कहा है। उन्होंने अकाल को सगुण स्वरूप में मनोहर एवं भयंकर दोनों रूपों में मान्यता दी है।

6. वाहिगुरु शब्दार्थ :–

यह लघु रचना गुरुमत निर्णय सागर का ही एक भाग है 19 पृष्ठों की यह लघु रचना जिसमें वाहिगुरु मत का अर्थ एवं महत्त्व स्पष्ट किया है 'वाहिगुरु शब्दार्थ' के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव में यह कोई अलग रचना नहीं है।

7. परीख्या परिकरण :–

आदि ग्रन्थ और दशम ग्रन्थ के अतिरिक्त जो गुरवाणी प्राप्य है, उसकी प्रामाणिकता और अप्रमाणिकता सम्बन्धी निर्णय इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। 39 पृष्ठों की यह लघु रचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन सभी प्रमाणों को प्रस्तुत करके नरोत्तम ने अपनी शोध परक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

8. कालादि शब्दार्थ :–

दशम ग्रन्थ में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने काल का जो स्वरूप बताया है, उन्हीं शब्दों, प्रतीकों, विशेषताओं को इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है। यह रचना गुरुमत निर्णय सागर में परिशिष्ट रूप में संकलित है। उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह जी का इष्ट देव महाकाल स्वीकार किया है।

गुरु तीर्थ संग्रह :–

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस रचना में गुरुओं से सम्बन्धित तीर्थ स्थलों की (गुरुद्वारों) की जानकारी विद्यमान है । इसमें गुरु नानक देव से लेकर गुरु गोबिंद सिंह पर्याप्त सभी संबंधित स्थानों 'गुरु धामों' का विवरण दिया है । तीर्थ का महत्त्व स्पष्ट किया है । उन्होंने तीर्थ को चतुर्वर्ग प्राप्ति का साधन माना है ।

कोश (गुरु गिरार्थ कोश) :–

टीका व्याख्या और गुरुमत संबंधी ग्रन्थों के पश्चात नरोत्तम जी की प्रमुख रचना गुरु गिरार्थ कोश है । उन्होंने दो कोश रचे ।[60] 1. सुरतरुकोश (चार सहस्त्र शब्द) 2. गुरु गिरार्थ कोश (दो भाग) । खेद है सुरतरु कोश आज विलुप्त हो चुका है । गुरु गिरार्थकोश उनकी प्रौढ़ावस्था की रचना है । यह दो भागों में उपलब्ध होता है ।

पूर्वार्द्ध (अ से लेकर ह तक) ।

उत्तरार्द्ध (त से लेकर ड तक) ।

तारा सिंह नरोत्तम ने यह कोश आधुनिक दृष्टि से तैयार किया है । इसके द्वारा नरोत्तम गुरवाणी के प्रथम कोशकर्त्ता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं । केवल पंजाब में ही नहीं, पंजाब से दूर हिन्दी के क्षेत्र में भी नरोत्तम से पुराना कोशकार शायद ही मिल सके । नरोत्तम विविध भाषाओं के ज्ञाता थे उन्होंने एक शब्दों को अनेक सन्दर्भों में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

–नरोत्तम ने अपने शब्दकोश की भूमिका में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भाषा शास्त्र की दृष्टि से विचार किया है । कतिपय संस्कृत फारसी और अरबी शब्दों का भाषिकी की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन इस कोश की विशेषता है । इस पद्धति पर कुछ लेटिन, युनानी (ग्रीक) एवं अंग्रेज़ी शब्दों पर भी विचार किया गया है ।[61]

नरोत्तम पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आधुनिक पद्धति के आधार पर अनुक्रमणिका सहित कोष तैयार किया । इससे पूर्व गुरुवाणी के शब्दार्थ का कोई कोश उपलब्ध नहीं होता । परवर्ती कोशकारों ने इससे पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण कर अपने कोश तैयार किए हैं ।

–तारा सिंह नरोत्तम ने जपु, रहिरास, सोहला और शब्द हजारे की जो टीका की है, उसके द्वारा विशेष टीका पद्धति के लक्षण स्पष्ट होते हैं । इस टीका में सिक्ख परम्परा को वाणी से जोड़ कर सांस्कृतिक गुण ढूंढे गए हैं, इस टीके में तारा सिंह नरोत्तम ने स्थान–स्थान पर आदिग्रन्थ की सम्पादनकला के बारे में टिप्पणी के रूप में कुछ शब्द दिए हैं ।[62]

नरोत्तम की व्याख्या पद्धति में इनके गहन अध्ययन एवं विचार निष्ठता की सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त है । इन्होंने शब्दों की व्याख्या इतने सुंदर ढंग से की है कि पुनः संशय की

गुंजाइश ही नहीं रह जाती । पंजाब की गुरुवाणी व्याख्या परम्परा से पं. तारा सिंह नरोत्तम जी का अत्यन्त विलक्षण एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

साधु सिंह निर्मल सम्प्रदाय के उच्च कोटि के विद्वानों में एक थे । आप संस्कृत और हिन्दी के महान पंडित तथा गुरुवाणी के गम्भीर अध्येता थे । आपकी रचनाओं को पढ़ कर महन्त गणेशा सिंह जी ने कहा था–आपने जो कुछ रचना कीती सो सम गुरु घर दे ही प्रमाण द्वारा भरपूर है । आपनू गुरु घर दे व्यास कहिया जावे, तां अत्योक्ति नहीं ।[63] आपकी दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं, जिनके द्वारा आपको अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई । आप पं. तारा सिंह नरोत्तम के गुरु भाई थे । आपकी रचनाएं–

1. श्री मुख वाक्य सिद्धान्त ज्योति
2. गुरु सिख्या प्रभाकर ।

श्री मुख वाक्य सिद्धान्त ज्योति पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है । पूर्वार्द्ध में तेरह अंश तथा उत्तरार्द्ध में चौदह अंश हैं। कुल 759 पृष्ठ हैं । यह रचना गुरुवाणी सम्बन्धी रचनाओं में एक प्रमुख कृति कही जा सकती है, जिसमें दार्शनिक तत्त्व तथा अद्वैतवादी सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है । गुरुवाणी के अतिरिक्त अन्य कई विषयों की चर्चा भी हुई है । प्रतिपाद्य की दृष्टि से गुरुवाणी की व्याख्या के सन्दर्भ में वेदान्त आचार शास्त्र एवं कई अन्य साम्प्रदायिक विषयों की चर्चा इसमें की गई है ।[64]

गुरु सिख्या प्रभाकर :–

इस रचना में ईश्वर के सच्चिदानंद परब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है । द्वैत का निषेध कर अद्वैत ब्रह्म की स्थापना की गई है । वह ब्रह्म सर्वव्यापक है । वह सृष्टि के कण–कण में विद्यमान है । नरोत्तम की गुरुमत निर्णय सम्बन्धी रचनाओं की परम्परा में साधु सिंह की यह कृति भाषा और प्रतिपाद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है । नरोत्तम की अपेक्षा साधु सिंह का दृष्टिकोण अधिक शास्त्रनिष्ठ है, परन्तु उनकी शैली बोझिल और अग्राह्य सी है । नरोत्तम की सरल और रुचिर गद्य शैली की तुलना में पं॰ साधु सिंह का गद्य पंडिताऊ अधिक है ।[65]

चक्रधार चारु चरित्र चन्द्रिका :–

इन्होंने दशम ग्रन्थ में संकलित गुरु गोबिन्द सिंह विरचित जाप साहब पर 'चक्रधर चारु चरित्र चन्द्रिका' नाम से टीका लिखी । यह दो भागों में विभक्त है पूर्वार्द्ध में 35 अंश तथा उत्तारहे में 16 अंश हैं । आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी । सन्त निहाल सिंह बहुत गुणों का संग्रह थे । वह आत्म रसिक गुरु का खालसा सफेद वेश में तैयार सिंह थे । वे संस्कृत के पंडित तथा उर्दू फारसी, अरबी जांनने वाले गुरवाणी के ज्ञानी थे । वे उच्च कोटि के हकीम और ज्योतिषी थे । वे ब्रजभाषा (हिन्दी) के प्रसिद्ध कवीश्वर और सूझवान लेखक भी थे । ये सभी विशेषताएं उनकी महान रचना श्री जाप साहिब की टीका में से टपक

पड़ती है ।[66] इस टीका के लगभग 600 पृष्ठ हैं। इसमें गुरु नानक जी के जीवन सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख भी किया गया है । आपने भारतीय दर्शन, वेदान्त, पुराण आदि का गहन अध्ययन किया था । अतः इनकी भाषा में दार्शनिक, पौराणिक शब्दावली का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक ही था । भाषा की दृष्टि से इस कृति में प्रवाह और माधुर्य है साम्प्रदायिक हठधर्मिता से बचते हुए ठाकुर जी ने भारतीय तत्वज्ञान के व्यापक परिवेश में दशम गुरु की वाणी जाप साहेब की व्याख्या सरल शब्दों में की है ।[67]

भाई सन्तोख सिंह जी ब्रज के अग्रगण्य साहित्यकारों में से एक हैं । आपने गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लिखा । आप गुरुवाणी के टीकाकार के रूप में भी प्रसिद्ध हुए । आपने आनन्दघन की 'जपु टीका' का खण्डन करने के लिए 'गरब गंजनी' नाम से जपु जी की टीका की । आपने गुरुवाणी का प्रचार और प्रसार करने के लिए अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की । गोबिन्द नाथ राज गुरु ने आपकी रचनाओं की सूची इस प्रकार दी है–

1. नामकोश (अमरकोश टीका)
2. श्रीगुरु नानक प्रकाश (पद्य)
3. गरब गंजनी टीका (गद्य)
4. बाल्मीकि रामायण (पद्य) अनुवाद
5. गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ (पद्य)
6. आत्म पुराण टीका (अनुपलब्ध)[68]

इन रचनाओं की भाषा के आधार पर उन्हें सशक्त कवि माना जा सकता है । आपने अपनी भाषा में और टीका में अनेक पौराणिक ग्रन्थ सन्दर्भों का आश्रय लिया है । निर्मल सन्तों की व्याख्या पद्धति ही रही है कि वे अपनी बात की पुष्टि के लिए वेदों, पुराणों, उपनिषदों, श्रुतियों स्मृतियों से उद्धरण देते हैं । भाई सन्तोष सिंह की शैली भी वेदान्त परक ही है । आपकी ख्याति का आधार ग्रन्थ गुरु प्रताप सूरज है, जिसमें आपने गुरु काल का इतिहास एवं गुरु स्तुति अत्यन्त श्रद्धा और निष्ठा से प्रस्तुत की है ।

–गुरु प्रताप सूरज के रचयिता भाई सन्तोष सिंह (1788–1843) का नाम पंजाब के शीर्षस्थ हिन्दी कवियों में ही नहीं, वरन समग्र हिन्दी जगत के पहली पंक्ति के कवियों में लिया जा सकता है ।[69] गुरु प्रताप सूरज के कथानक में ऐतिहासिक, पौराणिक काल्पनिक तथा प्रासांगिक कथाओं का समावेश है । गुरुओं, देवों का मंगलाचरण किया गया है । राम–कृष्णादि अवतारों का भी चित्रण हुआ है । सिक्ख मत के सिद्धान्तों की भी प्रौढ़ता की गई है ।

वाल्मीकि रामायण :–

भाई सन्तोष सिंह जी ने संस्कृत की वाल्मीकि रामायण का भाषानुवाद किया यह

अनुवाद पद्य में है । कवि ने दोहो चौपाई शैली में इस ग्रन्थ का अनुवाद करके अपनी काव्य शास्त्रीय विद्वत्ता का परिचय दिया है ।

कवि की अनुवाद कला भी निर्दोष है । वाल्मीकि रामायण मूलतः करुणा प्रधान है । यहां कवि ने भाव की पूर्ण रक्षा की है । राम बनवास सीता विरह, लक्ष्मण मूंर्छा आदि प्रसंगों में कवि की करुणाधारा बह निकली है ।[70]

कवि उर्दू और फारसी का भी ज्ञाता है । इसका सहज प्रमाण रामायण में प्रयुक्त शब्दावली से ही मिल जाता है । पंजाब के राम काव्य में इस ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भाई सन्तोष सिंह ने वाल्मीकि रामायण का भावानुवाद प्रस्तुत कर पंजाब में रचित हिन्दी राम काव्य को समृद्ध किया है ।

'टीका गरब गंजनी' अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों की अनेक त्रुटियों को दूर करने हेतु संस्कृत शैली में लिखा 'जपु' जी का यह टीका अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है । इस पर साहित्य दर्पण, चन्द्रालोक और कुवलयानंद का प्रभाव है ।

--भाई सन्तोष सिंह का व्रजभाषा, संस्कृत आदि भाषाओं पर भी अधिकार था। अतः 'गरब गंजनी' की भाषा ब्रजभाषा और संस्कृत की शब्दावली से लदी हुई है ।[71]

इस टीका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने गुरु नानक की वाणी की व्याख्या वेदान्त को आधार बना कर की है और उसकी सरलता और महानता की प्रशंसा की है । यह टीका को हिन्दी की प्रथम आलोचनात्मक टीका है । भाई सन्तोष सिंह जी के टीके को निर्मल सम्प्रदाय का आरंभिक टीका माना जाता है । भाई सन्तोष सिंह जी ने इस टीके के केन्द्र में यह विचार किया है कि गुरुवाणी की व्याख्या के लिए बौद्धिकता का आधार श्रद्धा से अधिक सही निर्णय नहीं देता । भाई सन्तोष सिंह ने अपने गरब गंजनी टीके में जपुजी के अलंकारों की भी चर्चा की है । इससे पूर्व अन्य किसी में भी टीकाकार ने ऐसी काव्य शास्त्रीय पद्धति का सहारा नहीं लिया । भाई सन्तोष सिंह का दृष्टिकोण उदार है ।[72]

ज्ञानी ज्ञान सिंह निर्मल सम्प्रदाय के इतिहासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं । आपने पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ रचे । आपने गुरमत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की आपके अधिकांश ग्रन्थ पंजाबी में हैं । ब्रज (हिन्दी) में आपकी दो रचनाएं उपलब्ध होती हैं ।

—पंथ प्रकाश और रिपुदमन प्रकाश कविता और भाषा के दृष्टिकोण से ब्रजीयां हिन्दी रचनाएं हैं । ज्ञानी जी क्योंकि निर्मल (संतों) की संगति में रहते थे । अतः उनके प्रभावाधीन ही उन्होंने ब्रजी में अपनी कविता रचना शुरू कर दी थी । ज्ञानी जी अपने आपको पंडित तारा सिंह नरोत्तम का शिष्य समझते थे ।[73]

पंथ प्रकाश :—

विष्य वस्तु की दृष्टि से पंथ प्रकाश एक ऐतिहासिक महाकाव्य है । जिसमें सिक्ख इतिहास की विस्तृत चर्चा की गई है । ज्ञानी ज्ञान सिंह भ्रमण करने के शौकीन थे । अतः

उन्होंने स्थान–स्थान पर जाकर अध्ययन करके इस ग्रन्थ की रचना की । आपने अपने पूर्ववर्ती इतिहासों का अध्ययन भी किया । पंथ प्रकाश में आपने लिख़ा है ।

रतन सिंघ भी तब लिख दीओ,
रची किताब मौलबी बी ओ ।।
और किताबों तै जो पाई

अर व्रिघन है सुन अधिकाई
या विधि बहु बटोर के साखी
ऐस ग्रन्थ माही सब राखी–।74

रत्न सिंह (भंगू) के प्राचीन पंथ प्रकाश में पूर्ण सिक्ख इतिहास उपलब्ध नहीं होता था, उसमें केवल गुरु नानक से लेकर मिसल शासन तक का इतिहास था । ज्ञानी जी के श्री गुरु पंथ प्रकाश में गुरु नानक साहब से लेकर अंग्रेज़ी शासन तक की सबी परिस्थितियां बताई गई और सिक्खों की प्रसिद्ध सम्परदायें विशेषकर नामधारी निर्मले, उदासी निहंग आदि का विवरण दिया गया है ।75

आपको इतिहास से बहुत प्रेम रहा है । आपने पंजाबी में तवारीख गुरु खालसा नाम से भी एक सिक्ख इतिहास की रचना की है । आप इतिहासकार होने के साथ–साथ एक श्रेष्ठकोटि के कवि भी थे । पंथ प्रकाश आपकी काव्यमयी रचना है । ऐतिहासिक ग्रन्थकारों में काव्य ग्रन्थ रचने वाले शायद आप ही पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपनी तथ्य परक सूझबूझ को सरस एवं सुबोध काव्य शैली में प्रस्तुत करने का गौरव अर्जित किया ।

ज्ञानी ज्ञान सिंह जी के श्री गुरु पंथ प्रकाश की कविता नियमबद्ध कविता है, जिसमें भाव, छन्द और अनुकूल अलंकार मिलते हैं यह शायद एक ही ऐसा महाकाव्य है, जिसमें सारा सिक्ख इतिहास ठोस और नवीनतम कविता में लिखा हुआ उपलब्ध होता है।76 आपका जीवन एक पर्यटक के रूप में व्यतीत हुआ । आप जहां भी जाते गुरुद्वारों के दर्शन अवश्य करते उस स्थान से संबंधी ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित करते थे सब से अधिक प्रभाव यह हुआ कि निर्मल सन्तों की संगित के कारण आप भी निर्मल सन्त हो गए । निर्मल सन्तों के प्रभाव से ही आपने सिक्ख इतिहास लिखा ।

गुरु ग्रन्थ साहिब की टीकाओं में अर्जुन सिंह मुनि की टीका का विशेष स्थान है । आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे । आपने गुरु ग्रन्थ साहिब की 'प्रेम प्रबोधिनी' टीका की है । जो दो खण्डों में उपलब्ध है । प्रथम खण्ड में जपुजी कीर्तन सोहला और रहिरास प्रकाशित है, दूसरे खण्ड में राग माझ और श्रीराग हैं । आपकी इस टीका की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है । हिन्दी प्रदेशों के लोगों के लिए की गई यह टीका निर्मल सम्प्रदाय की उदारता की परिचायक है । अर्जुन सिंह मुनि व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री, हरिद्वार के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ।

वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली :–

यह पं. गुरदित सिंह द्वारा लिखा गया टीका ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ वेदान्त के सिद्धान्तों का सरल रूप प्रस्तुत करने हेतु रचा गया प्रतीत होता है । इसकी भाषा हिन्दी (व्रज) है यह ग्रन्थ निर्मल सन्तों की टीका पद्धति एवं दार्शनिक दृष्टि को परिलक्षित करता है । संस्कृत के प्रसद्धि वेदान्त (दर्शन) के ग्रन्थों का अनुवाद करने में पं. गुरदित सिंह का नाम अग्रगण्य है । वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली की हिन्दी टीका उनकी टीका पद्धति का श्रेष्ठतम नमूना है । यह ग्रन्थ 1914 ई. में लाहौर प्रिंटिंग वर्क्स में प्रकाशित हुआ ।

नेष्क्रम्य सिद्धि :–

स्वामी शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वगाचार्य की इस प्रसिद्ध कृति का अनुवाद भी पं. गुरदित्त सिंह ने किया । इससे उन्होंने दार्शनिक आधारों को प्रमुख रूप से साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । इसकी भाषा में आपकी संस्कृत निष्ठता और विद्धता की साफ झलक दिखाई देती है । वेदान्त के विचारों का आप पर इतना प्रभाव है कि गुरुवाणी के एक–एक शब्द पर आप वेदान्त की विचारधारा ही प्रतीत करते हैं । साधारण, सरल स्पष्ट विचारों को भी आपने गूढ़, रहस्यमयी और मार्मिक बना कर अर्थ किए हैं । भाषा भी अत्यन्त कठिन और सन्त भाषा है ।[77]

गुरुमत सिद्धान्त सार :–

गुरुमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादक कराने वाला यह ग्रन्थ गुरदित्त सिंह ने इसी उद्देश्य से लिखा प्रतीत होता है कि जनसाधारण भी गुरमत को जान सके । यह ग्रन्थ हिन्दी में हैं और गहन विचार धारा का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है । शैली तर्क प्रधान है और भाषा सरल । देहधारी गुरु की मान्यता निर्मल सम्प्रदाय और गुरमत के दूसरे अनुयायियों में विवाद का विषय बना हुआ है । गुरदित्त सिंह ने इस विषय पर सविस्तार चर्चा करके निर्मले सम्प्रदाय के दृष्टि कोण को प्रकाशित किया है । इसके अतिरिक्त वेदान्त और गुरुवाणी के अन्तर और समानता को संक्षेप रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।[78]

जीवन चरित्र पं. हरि सिंह जी :–

यह ग्रन्थ उन्होंने अपने गुरु पं. हरि सिंह जी के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने हेतु रचा है । जिसमें उनका संक्षिप्त जीवन परिचय है और उनके उपदेशों के कुछ प्रमाण भी दिए गए हैं, जो मनुष्य का मार्ग दर्शन करते हैं । यह ग्रन्थ तीन बार प्रकाशित हुआ, जो इस ग्रंथ की लोकप्रियता को दर्शाता है ।

सन्त हरिभजन सिंह हिन्दी, संस्कृत और पंजाबी के अच्छे विद्वान थे, आप पिंगल शास्त्र के ज्ञाता कवि थे। आपने 'जपुजी' की हिन्दी में टीका की जोकि अत्यन्त सरल हिन्दी है । इसकी भूमिका में आपने सतगुरु नानकेदव जी का जीवन अत्यन्त खूबसूरती के

साथ लिखा । इसका नाम आपने जपु जी की सरल बोध टीका रखा । इसकी भाषा साधभाषा नहीं अपितु शुद्ध अति सुन्दर भाषा है । आपकी शुद्ध हिन्दी पढ़ कर बहुत आनन्द आता है । यह पुस्तक 94 पृष्ट की है। आपने गागर में सागर भर दिया है ।[79]

गण्डा सिंह पं. निहाल सिंह कर्ता चक्रधर चारुचन्द्रिका के शिष्य थे ।

न्याय मुक्तावली टीका :-

पं. गण्डा सिंह बहुत बड़े विद्वान थे । आपने भारतीय दर्शन शास्त्र का अध्ययन इस दृष्टि से किया था कि आप उसमें से भ्रामक तथ्यों को निकाल सके । आपने न्याय मुक्तावली की भूमिका में श्री शंकराचार्य पर तीखी टिप्पणी की है । चूंकि शंकराचार्य ने दूसरे पांचों ही शास्त्रों को अवैदिक अर्थात वेद विरोधी बता कर उनके कर्त्ता ऋषियों के मजाक उड़ाए हैं । आपने बड़े उत्साह से लिखा है कि पहले किसी भी दर्शन शास्त्री ने किसी भी दार्शनिक ऋषि का खण्डन नहीं किया अपितु एक-दूसरे की पूर्ति ही की है ।[80] न्याय मुक्तावली की टीका करने का उद्देश्य था कि वे भ्रामक तथ्यों को दूर कर सही तथ्य प्रस्तुत कर सकें । आपने शंकराचार्य के प्रत्येक मत का खण्डन तर्क द्वारा किया है । यह ग्रन्थ शुद्ध हिन्दी में लिखा गया है ताकि हिन्दी जानने वाले भी इस टीका द्वारा 'न्याय मुक्तावली' के प्रतिपाद्य से अवगत हो सके ।

इतिहास गुरु खालसा :-

पं. गण्डा सिंह ने ऐतिहासिक खोज एवं पड़ताल करके इस ग्रन्थ की रचना की है । आप उर्दू और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे । आपके इस इतिहास पर भी उर्दू और फारसी का प्रभाव देखा जा सकता है । आपकी गुरु घर में अटूट श्रद्धा थी । इसीलिए आपने यह ग्रन्थ हिन्दी में रच कर पंजाब से बाहर हिन्दी प्रान्तों में रहने वाले और गुरु चरणों से प्रेम करने वाले लोगों के लिए गुरु खालसा इतिहास की रचना करके बहुत बड़ा उपकार किया है ।

इसके अतिरिक्त आपने उद्योग तथा प्रारब्ध वेदान्त परिभाषा तथा वैराग्य शतक की टीका आदि ग्रन्थ भी रचे हैं ।

इतिहास गुरु खालसा आपका भक्ति ग्रन्थ है ।

नारायण हरि उपदेश :-

यह पं. हरदेव सिंह की रचना है । यह पुस्तक आपने अपने गुरु पं. नारायण सिंह जी की याद में रची । यह पुस्तक उनके उपदेशों का भण्डार है । आपने इस पुस्तक में गुरुवाणी और वेदों शास्त्रों के प्रमाणों से अपनी बात की पुष्टि की है । आप हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी के विद्वान थे । आप सिंधी और उर्दू में भी लिखते थे । आपका स्वभाव अत्यन्त सरल और कोमल था । पहले यह पुस्तक गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित हुई । बाद में आपने

इसे देवनागरी में भी प्रकाशित करवाया ताकि हिन्दी के पाठक भी इससे लाभान्वित हो सके । यह ग्रन्थ प्रमाणों, दृष्टांतों का विलक्षण संग्रह कहा जा सकता है ।

भाषा की दृष्टि से इस पुस्तक को दो भागों में बांटा जा सकता है । नारायण सिंह के जीवन का आरम्भिक भाग पंजाबी में है और उत्तरार्द्ध ब्रज भाषा में है । जिसमें विशिष्ट शब्दों और वाक्यों का प्रयोग है । प्रथम भाग अपने आप में एक अलग रचना है ।[81]

वाहिगुरु मन्त्रार्थ :–

पं. ईशर सिंह संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे । आपके सामने बहुत बड़े प्रकाण्ड कहलाने वाले घुरन्धर विद्वान भी कुछ कहने में संकोच करते थे ।

–आपकी धूआंधार बहस के आगे मुकाबिलों की जुबान बन्द हो जाती । इसलिए आपका उपनाम 'कलयुग' बन गया था । कुंछ तो आपका नाम सुन कर ही सभा में से चले जाते ताकि पराजय का मुंह न देखना पड़े । आप गुरमत के पक्के प्रेमी थे ।[82] आप पं. साधु सिंह जी के शिष्य थे । आप सितार वादक भी थे । आपने वाहिगुरु मन्त्रार्थ की रचना पहले संस्कृत में की बाद में इसे हिन्दी भाषा (गुरुमुखी लिपि) में प्रकाशित करवाया ताकि जो संस्कृत नहीं जानते थे वे भी इसे पढ़ सकें । आपके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ गुरमत दिग्विजय और बुद्धि वारिधि है ।

प्राण संगली :–

सन्त सम्पूर्ण सिंह तरनतारन निवासी थे । आपने भाई गुरदास जी के कवित्त और सवैयों की सुन्दर व्याख्या भी की है । आप हिन्दी के अच्छे विद्वान थे । आपने 'प्राण संगली' का सम्पादन किया है, जो हिन्दी में प्रकाशित हुआ है । इसकी भाषा शुद्ध एवं प्रौढ़ हिन्दी है ।

अध्यात्म प्रकाश टीका :–

महन्त सुखदेव (सुक्खा) सिंह द्वारा प्रणीत अध्यात्म प्रकाश का टीका रच कर गणेशा सिंह ने अपनी वेदान्त सम्बन्धी गहन सूझ का परिचय तो दिया ही है, साथ ही सरल एवं सुबोध भाषा में कठिन पदों की व्याख्या कर गुर सिक्खों कों वेदान्त का ज्ञान कराने का सफल प्रयास भी किया है । इनके पच्चीस के लगभग ग्रन्थ बताए जाते हैं । आपके साहित्य में विविधता के दर्शन होते हैं । खोज, इतिहास और चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ आपके साहित्य का श्रृंगार है । 'अध्यात्म प्रकाश' की टीका की भाषा सरल हिन्दी है । लिपि गुरुमुखी है । भूमिका में महन्त गणेशा सिंह लिखते हैं–

–चाहे यह टीका विद्वानों के लिए हास्य स्थान ही है, तथापि भाषा के बाल वेदान्त बांछ को नितान्त सहाई होगी इसको पूर्ण कंठ करने से वेदान्त के आवश्यक पदार्थों का

ज्ञान हो आवेगा । टीका भी ऐसी सरल रची है जिसे न्यून से न्यून विद्या वाला भी पढ़ सकता है ।[83] व्रज मिश्रित साध भाषा की यह कृति वेदान्त साहित्य की अनुपम देन है ।

जपु प्रदीप टीका :–

सन्त देवा सिंह निर्मला संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और आपने वेदों शास्त्रों का अध्ययन किया था । जपु जी का अर्थ स्पष्ट करने के लिए आपने इस टीका की रचना की । भाषा कुछ कठिन अवश्य हैं लेकिन अपने अर्थ स्पष्ट करने के लिए टीका मर्यादा का पूर्णतः पालन किया है । अपने मत की पुष्टि के लिए पूर्ववर्ती टीकाओं और ग्रन्थों की सहायता भी ली है । इस टीका में जो वेदों की श्रुतियों और शास्त्रों, स्मृतियों के सन्दर्भ दिए हैं वे शब्दार्थ और व्याख्या में तो गुरुमुखी अक्षरों में है परन्तु अन्त में 18 पृष्ठों में उनका मूल संस्कृत (देवनागरी अक्षरों) में दे दिया है । ताकि कोई पाठक उससे सन्दर्भों का पाठ मिलाना चाहे, तो मिला ले ।[84]

सुगम जपु प्रदीप :–

'जपु प्रदीप' टीका की भाषा क्योंकि जटिल हो गई थी । अतः इस सरल भाषा में रचने हेतु उन्होंने 'सुगम जपु प्रदीप' टीका प्रस्तुत किया । कुछ लोग गुरुमुखी अक्षरों में भी संस्कृत नहीं पढ़ सकते । अतः सरल अक्षरों में उन्होंने इस टीका का निर्माण किया–इस टीका में व्याख्या और शब्दार्थ जपुप्रदीप के अनुसार ही है और भावार्थ भी वही है परन्तु इसमें श्रुति–स्मृति आदि के प्रमाण नहीं रचे । केवल मूल का अर्थ ही लिखा है ।[85]

पर्याय गुरु ग्रन्थ साहिब :–

सन्त देवा सिंह ने कनखल में गुफावाले सन्त शाम सिंह जी विरक्त और मन्ना सिंह जी आदि के साथ मिल कर गुरु ग्रन्थ साहिब पर्याय तैयार किए । इनके साथ ही टीकाकार ने सुगम जपु प्रदीप शामिल किया है । इस पर्याय में टीकाकार ने शास्त्रीय पद्धति के अनुसार अर्थ किया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल सन्तों द्वारा रचित संस्कृत हिन्दी एवं पंजाबी भाषा में उपलब्ध साहित्य में टीका साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसी से निर्मल सन्तों के साहित्य की एक अलग पहचान बन सकी है । इन ग्रन्थों में भी उनके गुरु मुखी लिपि ब्रजभाषा के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है । यह ग्रन्थ अनेक विषयों का प्रतिपादन का है । विविध भाषाओं में रचित निर्मल सन्तों के इस सम्पूर्ण साहित्य का वर्गीकरण करके ही इसके अध्ययन को महत्त्वपूर्ण बनाया जा सकता है । पंजाब के किसी भी सम्प्रदाय ने हिन्दी साहित्य को इतने ग्रन्थ नहीं दिए, जितने इस निर्मल सन्तों ने प्रदान किए हैं । इसीलिए उनके समुचित अध्ययन के लिए वर्गीकरण अनिवार्य है । जिससे उसका उचित मूल्यांकन हो सके ।

=========

निर्मल सन्तों की हिन्दी रचनाएँ

प्रमुख निर्मल सन्तों की हिन्दी रचनाओं का वर्गीकरण

हिन्दी साहित्येतिहास की सुदीर्घ परम्परा में अनेक साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है और समय–समय पर अनेक नई सूचनाओं से अवगत कराया है । लेकिन साहित्येतिहास लेखन इतना सरल और सहज नहीं है । आचार्य शुक्ल ने अत्यंत वैज्ञानिक और प्रामाणिक इतिहास रचा तो भी उसमें प्रान्तीय लिपियों में रचित हिन्दी साहित्य की गणना नहीं की गई । अन्य प्रान्तों की तरह पंजाब में भी हिन्दी साहित्य की रचना बहुत बड़ी संख्या में हुई । लेकिन प्रान्तीय भाषा एवं लिपि की समस्या के कारण हिन्दी विद्वान इसे समझ पाने में असमर्थ रहे । विशेषतः पंजाब का मध्यकालीन साहित्य इस समस्या से अधिक ग्रस्त हुआ । यहाँ के रचनाकारों ने सर्वसम्मत ब्रजभाषा को तो माध्यम रूप में शिरोधार्य किया, किन्तु स्थानीय मोह, धरती की गन्ध और अतीव प्रभावशाली, पंजाब की गुरु परम्परा से प्रभावित होकर स्थानीय लिपि 'गुरुमुखी' का प्रयोग करने लगे ।[86] गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य दोनों ओर से ही उपेक्षित रहा । हिन्दी के विद्वान लिपि गुरुमुखी होने के कारण इसे पंजाबी का साहित्य मानते रहे और गुरुमुखी के विद्वान भाषा ब्रज होने के कारण इसे हिन्दी का साहित्य मानते रहे । पंजाब में ऐसे साहित्य की एक विस्तृत परम्परा मिलती है । मध्यकाल में तो ऐसे साहित्यकारों का एक वर्ग स्थापित हो गया था । जो सांसारिकता से अलग रह कर केवल साहित्य रचना करते थे । परवर्ती मुगल काल में गुरुमत की शिक्षा पर अमल करने वाले तलवारें पकड़ कर मुगल राज्य का वृक्ष काटने में लग गए । उन्हें साहित्य की ओर ध्यान देने का समय न था । फिर भी कुछ लोग अकेले बैठ कर साहित्य रचना करते रहे । गुरु गोबिन्दसिंह के निर्मल सन्त ऐसे ही एकान्त में रहने वाले लोग थे । परन्तु निर्मलों पर ब्रज–भाषा का प्रभाव अधिक था ।[87]

सिक्ख धर्म की गुरु परम्परा में सम्पूर्ण वाणी गुरुमुखी लिपि में रखी गई, जिनमें अधिकांशतः रचनाएँ ब्रजभाषा की हैं । गुरु तेगबहादुर की दिव्य अनुभूतियों, आन्तरिक भक्तिपूरित एवं विमल ज्ञान संवलित वाणी अपनी अभिव्यक्ति सादगी में रेखता जैसी सजीवता तथा दो चार पंजाबी शब्द विभूति से युक्त होकर भी आधार भाषा की दृष्टि से शुद्ध रूप में तत्कालीन परिनिष्ठित ब्रज ही है ।[88] उनकी वाणी एक प्रवाहात्मकता और प्रौढ़ता को लिए हुए हैं । इसके अतिरिक्त चिन्तनधारा एवं धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से पूर्ववर्ती सिक्ख गुरुओं के अनुरूप होते हुए भी उसमें अनुभव की प्रामाणिकता तथा अनुभूति को तीव्रता के कारण ताजगी और मार्मिकता है । उसमें सम्प्रेषण, प्रभावित तथा प्रेरित करने की अद्भुत क्षमता है ।[89] इसके अतिरिक्त अप्रामाणिक (कच्ची) वाणी, निर्मला तथा उदासी संप्रदायों की वाणी, गुरुभक्तों की रचनाएं, प्रेमाख्यानक, वीर तथा

श्रृंगारिक रचनाएं उपलब्ध होती हैं । दशम गुरु गोबिन्दसिंह जी की तथा उनके दरबारी कवियों की सम्पूर्ण वाणी इसी कोटि में आती है । तत्पश्चात् भाई सन्तोष सिंह, सुक्खा सिंह कोअर सिंह आदि मनीषियों ने भी इसी शैली में गुरमत साहित्य रचा । इसके अतिरिक्त गुरुवाणी की व्याख्या हेतु अनेक विद्वानों ने टीका ग्रन्थ रचे । आदर्श गुरु सिक्ख भाई गुरदास की वाणी को 'गुरुवाणी की कुंजी' कहा गया है ।[90] इसके प्रकार के विद्वानों ने गुरुवाणी की व्याख्या द्वारा गुरमत साहित्य में श्रीवृद्धि की है । श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी की अध्यक्षता, नेतृत्व तथा टीकाकारी के प्रशिक्षण द्वारा निर्मल और ज्ञानी (सम्प्रदाय) टीका टक्सालें स्थापित हुई, जो अब तक चली आ रही हैं ।[91] इस प्रकार पंजाब में ब्रज भाषा में पर्याप्त साहित्य रचा गया । इस साहित्य की एक अन्य विशेषता यह है कि यह भारतीय परम्परा के अनुकूल है, जिसमें वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा सूत्र ग्रन्थों के सार तत्व हैं । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने पांच शिष्यों को भारतीय संस्कृति एवं चेतना का स्वरूप जानने के लिए बनारस भेजा था । साहित्य रचना का सम्पूर्ण कार्य आप प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार रह कर कराना चाहते थे । निश्चय ही आप सारे वेद साहित्य से अपने साहित्यकारों को परिचित कर रखना उचित समझते थे ।[92] उनके ये शिष्य विद्यापार्जन कर जब वापिस लौटे तो इन्हें निर्मल कहा गया । निर्मल फारसी शब्द 'खालिस का' संस्कृत पर्याय है । इस दृष्टि से निर्मल पंथ खालसा पंथ से भिन्न नहीं है । सभी निर्मल पन्थी लेखक अपने आपको खालसा पंथ का अभिन्न अंग मानते रहे हैं ।[93] वास्तव में देखा जाए तो 'खालसा' और 'निर्मल' शब्द का अर्थ एक ही है । दोनों ही गुरु गोबिन्दसिंह जी द्वारा ही प्रचलित मत हैं । गुरु जी ने धर्म के दो मार्ग निर्धारित किए । प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग । प्रवृत्ति मार्ग पर चल कर सिक्ख परम्परा को निभाने वाले 'खालसा' तथा निवृत्ति मार्ग पर चलने वाले 'निर्मला' कहलाए । इसलिए दोनों में कोई अन्तर नहीं है । जिस प्रकार सिक्ख विद्वान गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा प्रवर्तित खालसा पन्थ को सिक्ख मत से अभिन्न मानते हैं, उसी प्रकार निर्मला पन्थी विद्वान भी ।[94] निर्मल क्योंकि निवृत्ति मार्ग को अपना कर चले थे । अतः उन्होंने विरक्त भाव से गुरमत सिद्धान्तों को अपनाया । संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान होने के कारण संस्कृत साहित्य एवं संस्कारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । अतः दोनों के मध्यस्थ वन कर इन्होंने गुरुवाणी का प्रचार और व्याख्या की । गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत पर्याप्त साहित्य रचना हुई । उस समय की साहित्यिक भाषा ब्रज थी । सभी महत्वपूर्ण विषयों पर ब्रजभाषा में ही साहित्य रचा गया । 'निर्मल साधुओं' का क्षेत्र चाहे भिन्न था परन्तु उन्होंने इस श्रृंखला को बनाए रखा ।[95] उन्होंने सिक्खधर्म के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार हेतु पर्याप्त साहित्य रचा और स्थान--स्थान पर घूम--घूम कर अपने लक्ष्य की पूर्ति की । यह सिक्ख धर्म का विद्वान अध्यापक वर्ग है, जो अन्य गुरुमुखों से अपना अलग स्थान रखता है । संस्कृत ग्रन्थों

के अध्ययन के कारण ही निर्मल सन्तों के चिन्तन एवं उपासना पद्धति में कुछ ऐसी विशिष्टता आ गई है कि वे सहज ही अन्य सिक्ख जनता से अलग पहचाने जा सकते हैं ।[96] इनकी वेशभूषा, प्रचार पद्धति तथा रहन सहन अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं । गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या भी अपने ही ढंग से करते हैं । उन्होंने गुरवाणी के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इन्होंने केवल गांवों में ग्रामीण, अनपढ़ों को ही नहीं अपितु अपनी विद्वत्ता का लाभ उठाते हुए हिन्दी प्रदेशों में बड़े–बड़े नगरों में जा–जा कर संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वानों से शास्त्रार्थ करके गुरुवाणी के महत्त्व को समझाया । इसके लिए उन्होंने पर्याप्त साहित्य की रचना भी की ।

ब्रजभाषा के ग्रन्थ रचयिता प्रमुख निर्मला विद्वान हैं :–

साधु गुलाबसिंह (प्रबोध चन्द्रोदय नाटक अध्यात्मरामायण, मोक्ष पंथ प्रकाश, भाव रसमामृत) पं॰ तारासिंह नरोत्तम (गुरुमत निर्णय सागर, गुरु गिरार्थ कोश) दो भाग (गुरु तीर्थ संग्रह, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब सटीक, पं॰ आत्मदेव सिंह) स्वामी दयानन्द का मत और अद्वैत सिद्धि (पं॰ निहाल सिंह) अकाल नाटक, निर्मल प्रभाकर सिक्खी प्रभाकर (साधु गुरुदित्त सिंह) नैष्क्रम सिद्धि, टीका जपु जी साहिब (पं॰ निहाल सिंह) कवीन्द्र प्रकाश, होली हुलास, सुधासर शतक) महन्त तारासिंह अमृतसरी (टीका जपु जी साहिब), पं॰ साधु सिंह (सत्यार्थ विवेक श्री मुख वाक्य सिद्धान्त, गुरु कीर्ति कवितावली, श्री गुरु सिखिया प्रभाकर (पांच भाग गुरु सिद्धान्त रवि), पं॰ निहाल सिंह थोहा खालसा) गुरु सिद्धांत रवि प्रकाश, चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका (जपु साहिब दशम ग्रन्थ), साधु करमसिंह) हरि अदृष्ट सतसई, साधु गोविन्दसिंह (इतिहास गुरु खालसा) ज्ञानी ज्ञानसिंह (पंथ प्रकाश), पं॰ अर्जुनसिंह मुनि (श्री गुरु पन्थ प्रकाश टीका), भाई सन्तोखसिंह (गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ, भाई सुक्खा सिंह) गुरु विलास पातसाही दसवीं ।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु हैं, जिन्होंने निर्मल सम्प्रदाय में दीक्षित होकर गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करके गुरुवाणी के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया । इनके साहित्य की विशिष्टता यह है कि यह अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिमार्जित साहित्य के विद्वान होने के कारण ये विद्वान वर्ग को गुरुवाणी का सन्देश देने के लिए रचना करते थे । इन्होंने माध्यम बनाया ब्रज को जो उस समय की प्रचलित भाषा थी । जिससे इस साहित्य की प्रतिष्ठा बढ़ी । इस साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि यह जीवन के अधिक निकट हैं । मध्यकालीन समाज में प्रचलित मत मतांतरों में निर्गुण विचारधारा अधिक लोकप्रिय हुई । क्योंकि इनका ज्ञान अनुभवाधारित था । दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में पंजाब के निर्गुणी काव्यकारों ने सभी तत्वों के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्व स्वानुभूति को दिया है तत्वों को निर्दिष्ट आदर्शों की कसौटी पर कसने की अपेक्षा अनुभव द्वारा प्रमाणित करना वे अधिक श्रेय समझते थे ।[97] जिसने अपने जीवन को निकट से देखा हो और

वास्तविकता को जान लिया हो, वही उसका दर्शन है । फिलासफी में केवल प्रकृति का ज्ञान है बल्कि समाज का भी, यदि इस ज्ञान का आधार तत्व और प्रयोग हो यह विज्ञान कहा जाता है । परन्तु यदि प्रयोग की जगह केवल अनुभव हो, मैं इसे फिलासफी ही कहूँगा ।[98] यही उद्देश्य सिक्ख गुरुओं का रहा । तत्कालीन परिस्थितियों में गुरु नानक ने भी यही किया । भारतीय दार्शनिक, धार्मिक, रहस्यवादी और साहित्यिक परम्पराओं के धरातल पर गुरु नानक की काव्य वाणी से निर्गुण काव्य का आरम्भ होता है । अपनी महान प्रतिभा, सहज सृष्टि और गम्भीर अनुभव के कारण नानक इस काव्यधारा के प्रवर्तक स्थापित होते हैं ।[99] प्रस्तुत काव्यधारा में उन्होंने अपने जीवन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों से जुड़ कर सुव्यवस्थित ढंग से सिक्ख दर्शन तथा गुरमत दर्शन को प्रस्तुत किया । इन सिद्धान्तों में एक गुरु सिक्ख के आदर्शों रहित मर्यादा तथा आचरण पर प्रकाश डाला गया है । गुरु नानक भारतीय दर्शन की विचारवादी परम्परा से हुए हैं, जिसकी केन्द्रीय स्थापना यह है कि विश्व का परम यथार्थ एक शुद्ध आध्यात्मिक सत्ता है ।[100] बाद में आने वाले गुरुओं ने भी इन्हीं परिपाटी को अपनाया । गुरुवाणी (आदि ग्रन्थ) में लगभग सभी गुरुओं, भक्तों तथा सन्तों के आत्मानुभव ही संकलित हैं । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता को समझते हुए इसे 'गुरु' की संज्ञा दी । इसमें सिक्ख दर्शन की सभी मान्यताओं का विस्तृत विवेचन मिलता है । इसमें ईश्वर गुरु, जीव, जगत, गुरमुख, मनमुख मोक्ष आदि पर विस्तार से लिखा गया है । आत्मा परमात्मा के स्वरूप एवं सम्बन्ध पर गुरुओं, सन्तों भक्तों के निजी अनुभव विद्यमान हैं । अन्तिम लक्ष्य मानव जीवन के लिए हैं, उसकी आत्मा का परमात्मा में विलय दर्शन विद्या की उत्पत्ति का प्रयोजन है दुःख सामान्य (अशेष दुख) की निवृत्ति और सुख सामान्य (उत्तम सुख) की प्राप्ति) ।[101] सम्पूर्ण गुरुवाणी में सिक्ख दर्शन का विस्तृत विवेचन मिलता है । सभी सिक्ख गुरुओं ने इस दर्शन को जन–जन तक पहुँचाने में सक्रिया योगदान दिया उन्होंने अपने शिष्यों को इस काम में लगाया । भाई गुरदास जैसे अनेक विद्वान गुरु सेवकों ने अपना सारा जीवन इसी दर्शन को अर्पित कर दिया और अपनी वाणी से हिन्दी, पंजाबी तथा संस्कृत भाषाओं में व्याख्या करके देश प्रदेश में प्रचार और प्रसार किया 'उन्होंने साधक के विचारों' को गहराई से जानने का प्रयास किया और तंत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या प्रस्तुत की आपने अपनी रचनाओं में दैनिक जीवन के आधार व्यवहार के उदाहरण लेकर जनता को सही मार्ग दिखाया है ।[102] इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने पांच विद्वान शिष्यों (भाई गण्डासिंह, भाई वीर सिंह, भाई करम सिंह, भाई सैणा सिंह तथा भाई रामसिंह) को काशी में संस्कृत पढ़ने भेजा । ....सैंकड़ों सिक्खों ने वाणी के भावार्थ सीख कर गुरुवाणी के विशेष भाष्य रचे ।[103] बाद में ये निर्मल सन्तों के रूप में प्रसिद्ध हुए । आज कल यह सिक्ख धर्म के एक

विशेष सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिसे निर्मल सम्प्रदाय कहा जाता है । ये लोग वाणी का प्रचार व प्रसार करना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं । जहाँ ये लोग गुरुवाणी के विद्वान होते हैं वहाँ इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन भी किया होता है । संस्कृत और ब्रजभाषा के महान पंडित, इसी सम्प्रदाय की उपज हैं ।[104] ये लोग अपनी विद्वता का लाभ उठा कर वेदों और उपनिषदों में संकलित ज्ञान को तथा गुरुवाणी की व्याख्या को तुलनात्मक दृष्टि से जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । जिसका कारण है वैदिक परम्परा में वेदान्त को जानने वाले भी गुरुवाणी को जानने में समर्थ हो सके । ये किसी भी मत का खण्डन नहीं करते, अपितु अपना तर्क प्रस्तुत करने के लिए दूसरे धर्म ग्रन्थों से प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । जिसे हम सिक्ख धर्म के सम्बन्ध में दर्शन कहते हैं । वह वास्तव में भारतीय दर्शन ही है । भारतीय दर्शन में ब्रह्म का निर्गुण पक्ष प्रस्तुत किया गया है । जिसका प्रकटीकरण सिक्ख धर्म में निर्मल सन्तों ने किया है.........निर्मल सन्तों ने इस दर्शन के कुछ अनिवार्य पक्षों की दृष्टि से सिक्ख धर्म का अध्ययन किया, जो अपने आप में बड़ा अमूल्य परिश्रम था ।[105] निर्मल सन्तों का दार्शनिक दृष्टिकोण 'अद्वैतवादी' है । भ्रमपूर्ण बात यह है कि शंकराचार्य जो वेदांती थे वे भी 'अद्वैतवाद' के प्रचारक थे । महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि शंकराचार्य का मत आधारित है उपनिषदों (वेदों, भगवतगीता और ब्रह्म सूत्र पर और उसे अद्वैत–वेदान्त कहा जाता है । परन्तु निर्मल सम्प्रदाय का मत आधारित है । 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब', सुखमनी और जपु जी आदि पर, और उसके अद्वैत से वेदान्त शब्द जोड़ना उचित नहीं ।[106] 'इन निर्मल सन्तों' ने सिक्ख गुरुओं को ही वाणी का अनुसरण किया है । अलग दार्शनिक सिद्धान्तों का नहीं । यह निर्गुण ब्रह्म की सत्ता में विश्वास करते हैं और गुरुवाणी की व्याख्या कर माध्यम औपनिषदिक भाषा को अपनाते हैं क्योंकि उस साहित्य के अध्ययन का प्रभाव इनकी शैली पर पड़ना स्वाभाविक ही है । इसी पर सिक्ख सम्प्रदाय की निर्गुण वादी प्रवृत्तियों की छाप स्पष्टतया परिलक्षित होती है । इस पर किसी भी बाह्य इस्लाम, क्रिश्चियन आदि धर्मों का प्रभाव नहीं है । पंजाब के निर्गुण साहित्य का एकेवर वाद जैसा कि पाश्चात्य चिन्तनानुयायियों का विचार है, इस्लाम की देन नहीं, प्रत्युत्त शुद्ध औपनिषदिक चिन्तन का सार तत्व है । वेदों में प्रकृति के विभिन्न अंगों में सामान्यतः अलौकिक शक्तियों का दर्शन करके देवत्व स्थापित किया गया है । ....किन्तु प्रस्तुत काव्य में जीवों और प्रभु के बीच देवताओं के सत्ता को अनावश्यक माना गया है ।[107] गुरुवाणी में उस ईश्वर को निर्गुण निराकार, अजूनी, तीनों गुणों से परे, रुप न रंग न रेख कछू, त्रिहगुण ते प्रभु भिन्न ।[108] सम्पूर्ण सृष्टि को उस ईश्वर का ही विस्तार माना गया है । उसे अविनाशी और एक ऊंकार कहा गया है । नाना विधि कीनो विसथारु, प्रभु अविनाशी एकं कारु ।[109] निर्मल विद्वानों ने भी ईश्वर का स्वरूप गुरवाणी के अनुकूल ही माना है । उन्होंने अपने पूर्व रचित ग्रन्थों की व्याख्या अथवा अनुवाद करके उन्हें हिन्दी

तथा संस्कृत विद्वानों के अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया । जिसके फलस्वरूप गुरवाणी हिन्दी प्रदेशों में भी लोकप्रिय हुई । यह अत्यन्त दुष्कर कार्य था जो निर्मल के सद्प्रयासों से सम्पन्न हुआ । कुछेक ने केवल हिन्दी में लिखा जैसे सन्त साधु सिंह जी पीलीभीत, जिन्होंने सारे गुरु ग्रन्थ साहिब को पर्याय हिन्दी में रचे । आपने जपुजी की टींका भी हिन्दी भाषा में ही की । ऐसी ही हिन्दी टीकाओं से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश के कुछ सिक्ख विद्वानों ने भी जपु जी के बारे में लिखा । इनमें शंकर दयाल जी का अंग्रेजी अनुवाद (जो कि शायद अंग्रेजी में प्रथम अनुवाद है) ऐसे ही पं॰ साधु सिंह जी के गुरु ग्रन्थ प्रदीप से प्रभावित होकर बाबू छुट्टन बखश अहिलमद सब–जज गोडा ने जपु जी का अनुवाद उर्दू भाषा में किया और साथ ही व्याख्या भी की ।[110] ये विद्वान निर्मले अपने उद्देश्य हेतु गुरुवाणी की व्याख्या करते और नवीन साहित्य की सृजना भी करते ।[111] लेकिन अपनी मातृभाषा के मोह को न त्याग सके । इनकी व्याख्या का माध्यम तो ब्रज–भाषा हिन्दी रही मगर लिपि गुरुमुखी । इनके सामने सिक्खों के अन्दर संस्कृत भाषा के साहित्य पर आरुढ़ होकर, वेदान्त दर्शन के प्रकाश में गुरुवाणी की व्याख्या का प्रयोजन था । ....वेदान्त के ग्रन्थों के अत्यधिक अभ्यास के कारण इनके अपने रचित ग्रन्थों में गुरुमत और वेदान्त को मिला दिया ।[112] गुरुमत सिद्धान्तों के साथ–साथ वेदान्त का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया है । ये सिक्ख धर्म का विद्वान अध्यापक वर्ग है, जिसका कार्य अध्ययन अध्यापन करना है । ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु गोबिन्द सिंह एक स्थायी गुरुकुल की स्थापना का बीजारोपण करके संस्कृत प्रेम को खालसा रीति नीति का स्थायी अंग बना देना चाहते थे । निर्मल संत इस विशिष्टता का निर्वाह वर्तमान काल तक करते चले आ रहे हैं ।[113] इन्होंने व्याख्या के लिए अलग से टीका पद्धति अपनाई है जो आजकल भी निर्मला टीका पद्धति के रूप में प्रचलित है जो प्रसिद्ध निर्मल विद्वान पंडित तारा सिंह नरोत्तम द्वारा आरम्भ की गई । इस टीका पद्धतियों के अन्य प्रसिद्ध विद्वान हैं भाई सन्तोष सिंह, पं॰ गुलाब सिंह, पं॰ ईशर दास, ज्ञानी ज्ञानसिंह आदि । पंजाबी साहित्येतिहास में भी इन विद्वानों का नाम अत्यंत श्रद्धा से लिया जाता है । लिपि गुरुमुखी होने के कारण इनकी कुछ रचनाएँ पंजाबी साहित्य में सम्मिलित कर ली गई हैं । इन विद्वानों ने जो टीकाएँ की हैं, उनका गद्य रुप भी महत्वपूर्ण है, साहित्येतिहास में गद्य के स्वरूप एवं विकास परम्परा का अध्ययन करते हुए इन्हें आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता । मगर खेद है कि हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों का ध्यान आज तक इस ओर नहीं गया । इस दृष्टि से भी इनकी व्याख्या अत्यंत महत्वपूर्ण कही जा सकती है । गुरुवाणी के भावार्थ, परमार्थ और टीका लिखना । शुरु शुरु में इन्हीं महापुरुषों का ही काम है । उस समय की जपु परमार्थ और टीका सिद्ध गोष्ट आदि मिलते हैं ।[114] इतना ही नहीं इनका काफी गद्य–पद्य साहित्य विखरा पड़ा है । जिसे संकलित कर हिन्दी साहित्य में श्री वृद्धि

की जा सकती है । इनकी रचनाएँ हस्तलिखित नुसखे के रूप में कई डेरों और धार्मिक स्थानों में बिखरी हुई हैं । उनकी खोज और सम्भाल के लिए उद्यम अनिवार्य है ।[115] निर्मल सन्तों का केवल धार्मिक, साहित्यिक अथवा साम्प्रदायिक महत्त्व ही पर्याप्त नहीं है, इनका सांस्कृतिक महत्त्व ही भारतीय संस्कृति के अनुरूप होने के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है । इनके साम्प्रदायिक मूल्य सम्पूर्ण भारत के सभी धर्मों से अपना सम्पर्क स्थापित किए हुए हैं । सामाजिक विषयों के प्रति जीवन की अभिरुचियां सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण करती हैं.................विभिन्न जातियों, वर्गों, लिंग और तत्त्वों की सामाजिक स्थिति एवं महत्व, अनुराग और वैराग्य का सामाजिक चलन कर्मनिष्ठा, कर्त्तव्य पालन तथा धर्मानुसार विधि निषेधात्मक पारस्परिक व्यवहार भी मूलतः सांस्कृतिक मूल्य ही है ।[116] सिक्ख धर्म में ये सभी लक्षण उपलब्ध हैं । इनके द्वारा प्रेरित निर्मला सन्तों ने भी गुरु गोबिन्दसिंह जी के आदेश से सिक्ख सिद्धान्तों को आत्मसात कर सम्पूर्ण देश में छा गए थे । उन्होंने भारतीय संस्कृति की महता को पहचान लिया था । लगता है उन्होंने किसी रहस्य को जान लिया था । गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने विद्रोह आन्दोलन के सांस्कृतिक आधार को परिपुष्ट करने के लिए संस्कृत के महत्व को पहचाना । इस आधार के बिना कोई भी आन्दोलन देशव्यापी रूप धारण न कर सकता था । संस्कृत प्रेम को वे सामयिक आवश्यकता के रूप में नहीं बल्कि स्थायी आधार के रूप में ग्रहण करना चाहते थे ।[117] आपने अच्छी प्रकार से जान लिया था कि भारतीय साहित्य और संस्कृति तथा प्राचीन परम्परागत विचारधारा को जाने बिना समाज की पुनस्थापना असम्भव है । आपने अपने शिष्यों को अनेकानेक ग्रन्थों का पठन–पाठन कराया ताकि वे प्राचीन सांस्कृतिक विशेषताओं से अवगत हो सकें । निर्मल सन्तों को विशेष रूप से यही काम सौंपा गया । बाद में सदा उन्हें अपने पास रखा और यथा समय उनसे परम पवित्र ज्ञान का प्रकाश कराते रहते थे । इतना ही नहीं निर्मल सन्तों ने सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

पहले तो घूम–घूम कर गांव–गांव, नगर–नगर जा कर गुरमत का प्रचार करते थे । ब्राद में अन्य सम्प्रदायों के समान इन्होंने भी अपने आश्रम (डेरे) स्थापित किए ।[118] सिक्ख मिसलों के सरदारों ने डेरे दार निर्मल साधुओं को जागीरें देने की पेशकश की । जिसके विषय में पट्टों के रूप में प्रमाण मिलते हैं । ये लोग डेरों में कथा कीर्तन करते थे लोग नित्य प्रति इनके पास आते थे । राजा–महाराजा भी आने लगे और प्रसन्न होकर भेटा के रूप में जागीरें दान में देने लगे । पं॰ गुलाब सिंह के गुरु पं॰ मान सिंह ने कुरुक्षेत्र में 1743 ई॰ को धर्मार्थ जमीन पट्टे पर ली । सन् 1752 में महाराज आला सिंह की पुत्री बीबी प्रधान कौर ने बरनाला के बाबा गांधासिंह वाले डेरे के महन्त निक्का सिंह को 30 गांवों का पट्टा लिखकर दिया ।[119] सिक्ख पंथ में निवृत्ति मार्ग को अपना कर भी निर्मल सन्तों ने प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । राजनीतिक संघर्षों में भी

वे पीछे नहीं हटे । निर्मल पंथ, खालसा पंथ का अभिन्न अंग होने के कारण किन्हीं भिन्न सिद्धान्तों अथवा मान्यताओं में विश्वास नहीं रखता, किन्तु निर्मल पन्थ को कतिपय विशिष्ट कर्त्तव्य सौंपे गए थे । अतः रीतिनीति में ये साधारण सिक्ख जनता से कुछ विशिष्ट ही प्रतीत होते हैं ।[120] इन्होंने अपने समय की सिक्ख धर्म की समस्याओं को भी आंका और समय पर सहायता भी की । अवसर पड़ने पर वे सशस्त्र हो कर युद्ध में जाने में भी हिचकिचाते नहीं थे । ऐसे शूरवीरों में भाई महाराजासिंह (बहिल सिंह) जी का नाम अग्रगण्य है । पुनः पंजाब में असलदारी होने पर चाहे निर्मल साधुओं ने निरंकारी लहर नामधारी लहर के समय सिक्ख पंथ का पूर्ण सहयोग दिया, परन्तु वाद में सन् 1920 से सन् 1925 तक अकाली लहर के समय गुरु के बाग का मोर्चा, बाघीयां का मोर्चा और जैतों का मोर्चा लाने के समय निर्मल साधुओं ने जत्थों में शामिल होकर कुर्बानियां दीं और अंग्रेज हुकूमतों की जेलों के कष्ट झेले, वह लिखने कहने और सुनने से बाहर हैं ।[121] इस प्रकार निर्मल सन्त निर्भीक योद्धा और विद्वान दोनों ही थे । निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी की व्याख्या ही नहीं की । समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप अन्य सम्प्रदायों के समान ही अपना अस्तित्व भी स्थापित किया । उदासी सम्प्रदाय, सेवापंथी सम्प्रदाय के समान ही अपने प्रचार केन्द्रों की स्थापना की और अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की स्थापना की तथा उन्हें नियमित रूप दिया । इतना ही नहीं इस सम्प्रदाय की अनेक शाखाएं विकसित हुईं, जो आज भी भारत के प्रत्येक भाग में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं और गुरुवाणी के प्रचार में संलग्न हैं 'पाकिस्तान से आए सन्तों महन्तों ने और कुछ पूर्वी पंजाब में ही रह रहे सन्तों ने फिर से डेरे कायम करने शुरु किए । इसी क्रम में हरिद्वार, ऋषिकेश, दिल्ली, मुरादाबाद, अम्बाला शहर, मोदीनगर, सहारनपुर, बैलपड़ा, मिर्जापुर, कानपुर, काशी, जम्मू आदि शहरों में नये डेरे बने ।[122] इसके अतिरिक्त छोटे–छोटे शहरों और गांवों में भी डेरे बने । नगरों और गांवों के लोगों को समान रूप से गुरमत का उपदेश देकर इन्होंने एक देशव्यापी धार्मिक आन्दोलन चलाया । जिससे गुरुवाणी का समझना सरल हो गया लोग श्रद्धा से इन सन्तों के सामने सिर झुकाते और भेंट में अमूल्य वस्तुएं दे जाते । यहाँ तक कि लोगों ने बड़ी इमारतें इन्हें सौंप दीं जहाँ ये स्थायी रुप से रहने लगे । वहाँ इन्होंने गुरुवाणी की निष्पक्ष रूप से व्याख्या की । इन्होंने भारतीय धर्म सिद्धान्त का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया और अद्वैतवादी सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की । क्योंकि गुरु ग्रन्थ केवल सिक्खों का ही ग्रन्थ नहीं, चाहे ये इसे गुरु तुल्य मानते हैं, अपितु यह ग्रन्थ उन सब के लिए पूज्य एवं श्रद्धेय है जो ब्रह्म में विश्वास रखते हैं ।[123] हिन्दी और संस्कृत के उन सभी ग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया था जिनमें उस ब्रह्म की सत्ता के बारे में जानकारी मिलती है । वेद, उपनिषदों और षड्दर्शनों तक का मन्थन किया था । जिसका प्रभाव इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है । बुद्धमत से लेकर

गुरमत तक की विचार धारा का विकास ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दोनों पक्षों से बहुत महत्व पूर्ण है । गुरमत और बुद्धमत में अलग–अलग ऐतिहासिक पड़ावों के अनुसार बहुत सी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक समानता है ।[124] निर्मला साहित्य की यह विशेषता रही है कि इन्होंने अपने उद्देश्य हेतु भारतीय परम्पराओं को अपनाया है । भारत की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को अपना कर इन्होंने भारतीयों की निर्जीव सभ्यता में पुनः प्राण फूंक कर उन्हें उनके स्वरूप से अवगत कराया । भारतवर्ष में अन्य धर्मों के होते हुए भी इन्होंने प्राचीन संस्कारगत जीवन को अपना कर समसामयिक समस्याओं के समाधान हेतु ऐसा साहित्य रचा जिसका एक छोर सामान्य जीवन से तथा दूसरा भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और साहित्य से सम्बद्ध था । इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों ने ब्रज, हिन्दी और संस्कृत को ही साहित्य सृजन का माध्यम बनाया है और इनके साहित्य में पंजाबी बोली का अभाव है ।[125] संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने के कारण इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ है । जिसमें सामान्य भाषा से कुछ जटिलता अनुभव होती है । इनके ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं ।

1. अद्वैत सिद्धि की सुगम पार चन्द्रिका (पं॰ सदा सिंह)
2. जपु गूढार्थ दीपका (जपु जी टीका) पं॰ निहाल सिंह थोहा)
3. श्री गुरु सिद्धान्त पारिजात पं॰ हरासिंह जी
4. श्री गुरु कौमुदी, न्याय मुक्तावली, पं॰ कौरसिंह (चेतसिंह) ।
5. वाहिगुरु मन्त्रार्थ प्रकाश पं॰ ईशर सिंह काशी ।
6. गुरु नानक स्तोत्र नैष्यक्रम्य सिद्धि टीका ।
   वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली, नवें महल्ले के श्लोकों की संस्कृत टीका ।
7. गुरु स्तोत्र ।
8. अभेदा खण्ड चन्द्रमा ।

इन ग्रन्थों में मौलिक (हिन्दी एवं संस्कृत) तथा अनूदित सभी प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई । हिन्दी पुस्तकों में एक बड़ी संख्या संस्कृत ग्रन्थों के भाषानुवाद की है ।[126] इससे स्पष्ट होता है कि निर्मल सन्त तत्कालीन भाषा से ऊपर उठ कर एक शुद्ध साहित्यक भाषा का विषयानुरूप प्रयोग कर रहे थे । किसी भी लेखक के लिए सब से दुष्कर कार्य टीका करना होता है । जिसे निर्मल विद्वान सन्तों ने बड़े सुयोग्य ढंग से निभाया और हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया । इसके साथ ही इन भाषाओं के ज्ञाताओं तक गुरवाणी के सन्देश को पहुँचाया । इस साहित्य की मूल समस्या यही है कि सम्पूर्ण साहित्य गुरुमुखी लिपि में है । विक्रमी की समूची 18वीं तथा 19वीं शताब्दियों में मूल संस्कृत ग्रन्थों को गुरुमुखी लिपि एवं ब्रजभाषा काव्यानुवाद में प्रस्तुत करने का प्रवाह बता रहा है ।[127] यही सबसे बड़ी समस्या है कि लिपि और भाषा ने इस साहित्य को मंझधार में ला खड़ा किया । यदि इन रचनाओं को धीरे–धीरे लिप्यन्तरण कर प्रकाशित किया जा सके अथवा इन पर कोई सशक्त शोध कार्य करवाया जा सके तो हिन्दी जगत् के विद्वानों का ध्यान इधर आकर्षित किया जा सकता है ।[128]

निर्मल सन्तों का साहित्य हिन्दी साहित्येतिहास की अमूल्य निधि है । आवश्यकता है, इसे पहचानने और संभालने की । अब पर्याप्त सामग्री प्रकाश में आ चुकी है । शमशेर सिंह अशोक, सं॰ प्रीतम सिंह, डा॰ हरिभजन सिंह, डा॰ मनमोहन सहगल, डा॰ जयभगवान गोयल, डा॰ गोबिन्दनाथ राजगुरु, महीप सिंह, डा॰ सुरेन्द्र सवाड़ा, तथा डा॰ हरजीतकौर मदान ने इस क्षेत्र में काम भी किया है और पर्याप्त सूचनाएं दी हैं । निर्मल साहित्य विशाल समुद्र की तरह विस्तृत है । और इसकी एक–एक रचना पर शोध कार्य सम्भव है । मगर पहले इस साहित्य की सीमा, स्तर और प्रामाणिकता सिद्ध करने की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । आशा है यह साहित्य हिन्दी साहित्येतिहास में नई उद्भावनाएं लाने में सक्षम होगा और साहित्येतिहासकारों को नई दिशा मिलेगी ।

हिन्दी साहित्येतिहास में अभी तक विभिन्न प्रान्तों में विद्यमान सम्प्रदायों का उल्लेख नाम मात्र है । वास्तविकता तो यह है कि भक्ति काल को स्वर्णिम युग बनाने में ब्रज भाषा के पूरे साहित्य का विलक्षण योगदान है । भारतीय साहित्येतिहास इस तथ्य की मांग करता है कि मध्य युगीन चेतना तभी आलोक्ति हो सकती है, जब विभिन्न लिपियों में बिखरा हुआ ब्रजभाषा का साहित्य एक ही साहित्येतिहास के मानचित्र पर अंकित हो । हमारा यह विनीत प्रयास इस दिशा में अनुसन्धान के वातायनों को खोल सकता है । अतः हिन्दी साहित्येतिहास में निर्मल सन्तों की वाणी का ऐतिहासिक सांस्कृतिक, समाजिक एवं साहित्यक अध्ययन रिक्त पृष्ठों की पूर्ति को सम्भव बना सकता है ।

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेव ने स्वरचित पदों द्वारा अपने मत का प्रचार किया और देश–देश घूम कर लोगों का मार्ग दर्शन किया । उन्होंने अपना प्रचार कार्य जिन पदों के माध्यम से गा–गा कर किया वे कालान्तर में 'गुरुवाणी' के रूप में प्रसिद्ध हुए । साधु प्रवृत्ति के कारण स्थानीय बोलियों का समावेश उनकी भाषा में सहज ही हो गया है । ये भजन कुछ तो पंजाबी भाषा में हैं और कुछ देश की सामान्य काव्य भाषा हिन्दी में हैं । यह हिन्दी कहीं कहीं तो देश की काव्य–भाषा या ब्रजभाषा है कहीं–कहीं खड़ी बोली, जिसमें इधर उधर पंजाबी के रूप भी आ गए हैं ।[129] अतः गुरु नानक देव के समय से ही पंजाब में हिन्दी साहित्य का लेखन कार्य आरम्भ हो गया था । बाद में आने वाले सिक्ख गुरुओं ने भी उसी परिपाटी का अनुसरण किया । इतना ही नहीं अन्य प्रान्तों के भक्तों और सन्तों की वाणी भी आदिग्रन्थ गुरुग्रन्थ साहिब में सम्मिलित कर ली गई । क्योंकि उनकी भाषा भाव और स्तर गुरुवाणी के अनुकूल था ।

अभी तक पंजाब में रचे गए हिन्दी साहित्य का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया और न ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसे कोई स्थान मिल पाया है । पंजाब में रचे गए हिन्दी साहित्य के विषय में विद्वानों में मतभेद है । भाषा और लिपि की समस्या को लेकर कुछ ग्रन्थों के विषय में निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि इसे किस भाषा का माना

जाए । विशेष रूप से गुरुवाणी और गुरुवाणी से संबंधित साहित्य जो कि गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है हिन्दी प्रदेशों के इतिहासकारों और आलोचकों की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी । हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों ने इस विपुल सामग्री को अछूता छोड़ दिया । यही सब अन्य प्रान्तों के विभिन्न लिपियों में रचित हिन्दी साहित्य के साथ भी हुआ । उस समय पंजाब के कवियों ने ब्रजभाषा में ही अपने ग्रन्थ रचे । भक्तिकाव्य में ब्रजभाषा आध्यात्मिक तथा धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिष्ठित हो चुकी थी । ....सिक्ख गुरु उनके विचार, भाषा, शैली तथा लिपि (गुरुमुखी) जनता के लिए आदर्श बन चुकी थी । गुरु दरबारी कवियों तथा अन्य समकालीन एवं परवर्ती कवियों द्वारा ब्रजभाषा का प्रयोग संयोग की बात नहीं थी । इस भाषा एवं लिपि के साथ भावनात्मक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे ।[130] गुरुमुखी लिपि का गुरुवाणी के सम्पूर्ण साहित्य के साथ अनन्य सम्बन्ध रहा है । इस सहित्य के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग लगभग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शुरु होता है । बाद में पंजाब में प्रचलित सिक्ख धर्म के अनेक सम्प्रदायों ने भी इस परम्परा को आगे बढ़ाया । विशेष रूप से उदासी, निर्मले और सेवापन्थी इस क्षेत्र में अधिक क्रियाशील रहे । कुल मिलाकर पंजाब में इस साहित्य ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । महीपसिंह के शब्दों में..............

—वैसे तो सारे पंजाब की ही हिन्दी साहित्य को अमूल्य देन है परन्तु निर्मल सन्तों की देन के अनेक पहलू हैं । जहां पंजाब के अधिकांश हिन्दी कवियों की कर्मभूमि पंजाब अथवा पंजाब के निकटवर्ती प्रदेश रहे, वहां निर्मल सन्तों ने पंजाब के बाहर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में भी अपने डेरे बनाए और वहां के निवासी लोगों को लगभग सारे भारत में समझी जाने वाली ब्रजभाषा में गुरुमत के सिद्धान्तों की जानकारी दी ।[131]

पंजाब में रचित इस बहुआयामीय हिन्दी साहित्य के अध्ययन की और विद्वानों का ध्यान नहीं गया । इधर नई खोजों ने या फिर शीघ्र प्रबन्धों के माध्यम से कुछ प्रयास आरम्भ हुए हैं । आशा है अच्छे परिणाम निकलेंगे । देखने में आया है कि पंजाब में रचित गुरुवाणी साहित्य के अन्तर्गत अनेक कवियों ने गुरुवाणी की रचना एवं व्याख्या के साथ--साथ दर्शन शास्त्र, काव्यशास्त्र, ज्योतिष आदि के ग्रन्थ भी रचे । जब हिन्दी साहित्येतिहास में रीतिकालीन ग्रन्थों की रचना की जा रही थी, तो पंजाब के कवि यहां की परिस्थितियों के अनुरूप 'गुरुवाणी' साहित्य में तल्लीन था । 'हिन्दी के रीति साहित्य पर किसी दर्शन का प्रभाव नहीं है मगर पंजाब का रीति साहित्य गुरुमत दर्शन से जुड़ा हुआ है । यह युग गुरुवाणी की व्याख्या प्रणालियों से सम्बद्ध है यही कारण है कि पंजाब के रीति प्रबन्धों पर भी गुरुवाणी का प्रभाव परिलक्षित होता है ।[132] गुरुवाणी के व्याख्याकारों की शैली भी

श्रृंगारात्मक हो गई थी जैसा कि भाई गुरदास के कबित सवैयों में बहुत से दृष्टांत श्रृंगार परक है । इसी प्रकार पंजाब के दरबारी साहित्य पर भी रीतिकाल की प्रवृत्तियों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

किसी भी साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए उसका उचित वर्गीकरण किया जाना अनिवार्य होता है । पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य का वर्गीकरण करना कुछ जटिल–सा प्रतीत होता है क्योंकि एक ही ग्रन्थ भाषा और प्रतिपाद्य एवम् शैली के अनेक रूपों को अपने में संजोए हुए हैं, तो भी सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् इसका निराकरण हो सकता है । किसी भी सम्प्रदाय द्वारा विरचित साहित्य विशेषतः जो विद्वान वर्ग द्वारा रचा गया हो, उसका वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है । क्योंकि विषयों के वैविध्य के कारण उसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जाता है । किसी भी साहित्य के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित आधार अपनाए जा सकते हैं :–

1. भाषा के आधार पर हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी उर्दू आदि ।
2. प्रतिपाद्य (विषय) के आधार पर इतिहास, काव्य शास्त्र, वैदिक, ज्योतिष आदि ।
3. शैली के आधार पर–गद्य, पद्य, चम्पू (मिश्रित) ।
4. मौलिक । अनूदित । लिप्यन्तरण ।
5. व्याख्या । टीकाएं ।

शमशेर सिंह अशोक ने भाषा की दृष्टि से निर्मल सन्तों द्वारा प्रतिपादित साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

1. संस्कृत साहित्य ।
2. ब्रजभाषा और हिन्दी साहित्य ।
3. सिन्धी साहित्य ।
4. पंजाबी साहित्य ।

इस निर्मल साहित्य में वैदिक धर्म, दर्शन, टीका छन्द शास्त्र, बाद–विवाद, खण्डन मण्डन, अलंकार काव्य आदि लगभग सभी पुस्तकें आ सकती हैं ।[133] लेकिन यह वर्गीकरण एकांगी ही कहा जाएगा क्योंकि इसमें केवल भाषागत अन्तर है विषय प्रतिपादन का वर्गीकरण नहीं है । यह ठीक है कि निर्मल सन्तों ने उपर्युक्त सभी भाषाओं में अपने अमूल्य ग्रन्थ रचे हैं, लेकिन इस बहुआयामीय साहित्य का वर्गीकरण करना निस्सन्देह जटिल कार्य है ।

विषय–वस्तु के आधार पर सुरेन्द्रसिंह ने निर्मल लेखकों के साहित्य को चार भागों में वर्गीकृत किया है–

1. आदिग्रन्थ की वाणी की टीकाएं ।
2. गुरुमत की व्याख्या और रहतनामें।
3. वेदान्त की व्याख्या ।
4. सिक्ख इतिहास ।

उपरोक्त निर्मल साहित्य के विषयागत विभाजन में वैद्यक, पिंगल, ज्योतिष तथा काव्य–शास्त्र के ग्रन्थों का वर्णन नहीं किया गया, जिससे यह प्रतीत होता है कि हिन्दी ग्रन्थों की पूर्णतः जानकारी प्राप्त न होने के कारण केवल कुछ ग्रन्थों के आधार पर ही यह वर्गीकरण किया गया है । इसके अतिरिक्त अनेक विषयों पर निर्मल सन्तों के ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं ।[134]

महीपसिंह ने निर्मल सन्तों द्वारा विरचित हिन्दी साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–[135]

1. निर्मल सन्तों द्वारा किए गए प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद, रुपांतरण और टीकाएं ।
2. निर्मल सन्तों द्वारा की गई गुरुवाणी की टीकाएं और कोश ।
3. निर्मल सन्तों द्वारा लिखे गए सिक्ख ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ ।
4. निर्मल सन्तों द्वारा लिखे गए पौराणिक विषयों के काव्य ग्रन्थ ।

प्रस्तुत वर्गीकरण के अनुसार लगभग निर्मल सन्तों के सभी ग्रन्थ साहित्य को समूचे रूप में एक साथ एक विस्तृत साहित्य परम्परा के रूप में प्रस्तुत करते हैं । अध्ययन की सुविधा के लिए हमने निर्मल सन्तों द्वारा विरचित हिन्दी साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

1. संस्कृत के अनूदित एवं भाष्य ग्रन्थ ।
2. गुरुवाणी टीका ग्रन्थ एवं टीका पद्धति ।
3. सिक्ख ऐतिहासिक ग्रन्थ ।
4. पौराणिक विषयों के ग्रन्थ ।
5. अन्य महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ ।

हिन्दी अनुवाद

1.	गुलाब सिंह	आध्यात्म रामायण प्रबोध चन्द्रोदय मोक्ष पन्थ प्रकाश ।
2.	भाई सन्तोख सिंह	वाल्मीकि रामायण
3.	पं॰ गुरदित्त सिंह	नैष्य क्रम्य सिद्धि, वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली
4.	पं॰ हरीसिंह विरक्त	अद्वैतानुभव प्रकाश
5.	गण्डा सिंह	न्याय मुक्तावली, वेदान्त परिभाषा ।
6.	सन्त निरंकार	विचार सागर की टीका ।
7.	महन्त गणेशा सिंह	अध्यात्म प्रकाश टीका

संस्कृत टीका ग्रन्थ

1.	मंगल सिंह	मुहूंत चन्द्रिका
2.	पं॰ कौरसिंह	गुरु कौमुदी

3. हरा सिंह — गुरु सिद्धान्त पारिजात
4. गुरदित्त सिंह — गुरु नानक स्तोत्र
5. बाबा प्रेम सिंह — गुरु स्तोत्र
6. निहाल सिंह — जपुजी की संस्कृत टीका

हिन्दी टीका ग्रन्थ भाषा

1. भाई सन्तोष सिंह (1787–1843) — जपु टीका गरब गंजनी
2. पं॰ तारा सिंह नरोत्तम — जपु जी, रहरास, शब्द हज़ारे, भगतांदी वाणी, टीका श्री राम, टीका गुरु ग्रन्थ साहिब।
3. सन्त सम्पूर्ण सिंह — भक्त वाणी मर्म बोधिनी टीका (सहसकृति श्लोक, फुनहे, चाँबले, सवैये, श्री मुखवाक और भट्ट सवैये।
4. सन्त टहल सिंह निर्मला — अनेक तुकों और शब्दों का अनुवाद
5. भाई दल सिंह — वावन अखरी भावार्थ प्रकाशनी टीका, टीका गऊड़ी राग
6. सन्त देवा सिंह निर्मला — जपु प्रदीप टीका
7. साधु गुरदित्त सिंह — जपु जी सटीक
8. भाई ज्ञानसिंह ज्ञानी — जपु जी सटीक
9. सन्त निरंकारसिंह — गऊड़ी वावन अखरी महला 5 सते बलवंड दी वार, जैत सिरी वार म॰ 5।
10. पं॰ निहाल सिंह — चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका (टीका जपु जी)
11. पं॰ भगवान सिंह — टीका वार आसा
12. पं॰ निहाल सिंह — टीका आसा दी वार।[136]

पंजाबी पुस्तकें

1. सन्त सम्पूर्ण सिंह — सुधर्म मारग ग्रन्थ, गुरमत सिंह व्योरा साखी प्रमाण मौत रहस्य जीवन गाथा।
2. साधु सिंह — उत्थानिका श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (898)
3. निहाल सिंह थोहा — गुरु विलास गुरु गोबिन्द सिंह
4. पं॰ हरदेव सिंह — नारायण हरि उपदेश पूर्वार्द्ध पंजाबी म॰
5. गुरदित्त सिंह — गुरमत सिद्धान्त सार 1929
6. गणेशा सिंह — भारत मत दर्पण
ग्रन्थ साखी प्रमाण (1908)
निरमल भूषण

7. पं॰ नरैण सिंह	साखी प्रमाण
	भक्त माल सटीक
8. टहिल सिंह निरमले	गुरु गिरा रागमाला मंडन प्रबोध (1903)
9. दयाल सिंह	बाबा नानक जी दा निरमल पन्थ
	निर्मल पन्थ दर्शन (चार भाग)
10. सन्त टहिल सिंह	जीवन प्रकाश (टीकाएं)
	असली गुरु प्रकाश
	टीका जपु जी
	जफरनामा टीका
11. संगत सिंह	पिंगल प्रस्तार संग्रह, ग्रन्थ मत संग्रह ।

हिन्दी पुस्तकें

1. सन्त साधु सिंह	गुरमत सिखिया प्रभाकर, गुरु सिद्धान्त ज्योति ।
2. पं॰ हरदेव सिंह	नारायण हरि उपदेश हिन्दी उत्तरार्द्ध ब्रजी में
3. पं॰ गुरदित्त सिंह	निरमल पत्रिका–1914 (ब्रजी में)
4. गिआनी ज्ञान सिंह	पंथ प्रकाश
5. निरंकार सिंह	विचार सागर का अनुवाद
6. गणेशा सिंह	अध्यात्म प्रकाश (मिश्रित)
7. गिआनी बदन सिंह	फरीद कोटी टीका
	गुरु ग्रन्थ साहिब
8. अर्जुन सिंह मुनी	प्रेम प्रबोधिनी टीका गुरु ग्रन्थ साहिब
9. पं॰ गुरुदित्त सिंह	वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली नैष्कर्म्यसिद्धि
	टीका, जीवन–
	चरित्र हरी सिंह, गुरमत सिद्धान्त सार (हिन्दी)
10. सन्त हरिभजन सिंह	टीका गुरु प्रताप सहज, जपु जी को सरल
	बोध टीका (हिन्दी)
	तत्व दर्पण (हिन्दी)
	अद्वैतामृत (हिन्दी)
	अष्टांग योग (हिन्दी)
11. गण्डा सिंह	टीका न्याय मुक्तावली (हिन्दी)
	उद्योग तथा प्रारब्ध
	टीका वेदान्त परिभाषा
	टीका वैराग्य शतक
	इतिहास गुरु खालसा (हिन्दी)

12.	निहाल सिंह	चक्रधर चारु चंद्रिका (हिन्दी) टीका जाप साहिब, अभाव रहस्य, वरणाश्रम धर्मग्रन्थ
13.	गुलाब सिंह	कर्म विपाक (मौलिक) भावरसाम्रित (मौलिक) स्वप्नाध्यायी, रामगीता अध्यात्म रामायण–हिन्दी अनुवाद प्रबोध चन्द्रोदय नाटक–अनुवाद पन्थ प्रकाश–टीका
14.	ईशर सिंह	गुरुमत दिग्विजय हिन्दी बुद्धि वारिधि वाहिगुरु मन्त्रार्थ संस्कृत–हिन्दी
15.	सम्पूर्ण सिंह	प्राण संगली
16.	मंगल सिंह	मुहूर्त चन्द्रिका
17.	तारासिंह नरोत्तम	टीका गुरु भाव दीपिका
18.	निहाल सिंह थोहा	चक्रधर चारु चन्द्रिका (पंजाबी) भाषा हिन्दी
19.	साधुसिंह पीलीभीत	गुरु ग्रन्थ प्रदीप (जपु सटीक) हिन्दी
20.	पं॰ हरिसिंह (विरक्त)	अद्वैतानुभव प्रकाश कबित सवैये
21.	टहिल सिंह	कबित सवैये
22.	चतुरसिंह निर्मला	श्रीमद्भागवत मोक्ष सागर

संस्कृत के अनूदित एवं भाषा–ग्रन्थ

इस साहित्य के अन्तर्गत निर्मल सन्तों द्वारा पुरातन संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद अथवा टीका ग्रन्थ आते हैं । विषयों की विभिन्नता होते हुए भी ये सभी सन्त एक ही उद्देश्य से अपने ग्रन्थों की रचना कर रहे थे । रीतिकाल में अनुवाद करने की एक परिपाटी सी चल पड़ी थी उसी वातावरण में निर्मल सन्तों ने भी यह कार्य सम्पन्न किया ।

गुरुवाणी के सन्दर्भ में इस काल में टीकाकारी के साथ–साथ व्याख्या, कोशकारी और गुरुवाणी के रचना विधान पर कई व्याकरण भी लिखे गए । इस काल में निर्मल सन्तों द्वारा की गई गुरुवाणी की व्याख्या और टीके बहुत प्रचलित हुए ।[137]

संस्कृत के अनूदित एवं भाष्य ग्रन्थों से ही निर्मल सन्तों की दार्शनिक अभिरुचि एवं विषय विविधता का ज्ञान हो जाता है ।

संस्कृत के भाष्य एवं टीका ग्रन्थों में प्रमुख निर्मल सन्तों द्वारा प्रणीत साहित्य इस प्रकार है–

गुलाब सिंह	अध्यात्म रामायण
	प्रबोध चन्द्रोदय
	मोक्ष पन्थ
सन्तोष सिंह	बाल्मीकि रामायण
पं॰ ईशर सिंह	गुरुमत दिग्विजय, वाहिगुरु मन्त्रार्थ
गुरदित्त सिंह	नैष्क्रम्य सिद्धि, वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली
सदा सिंह काशी	अद्वैत सिद्धि की सुगमसार चन्द्रिका
हरी सिंह	अद्वैतानुभव प्रकाश
निहाल सिंह	जपु संहिता
गण्डा सिंह	न्याय मुक्तावली
	वेदान्त परिभाषा
	वैराग्य शतक
सन्त निरंकार सिंह	विचार सागर
उद्धव सिंह	अभाव रहस्य
	आश्रम धर्म रहस्य
गणेशा सिंह	अध्यात्म प्रकाश
बुद्ध सिंह	तर्क संग्रह

गुरुवाणी के टीका ग्रन्थ एवं टीका पद्धति

निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी की व्याख्या संस्कृत में भी की और हिन्दी में भी गुरुवाणी की व्याख्या सम्बन्धी उनके संस्कृत के ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

पं॰ कोर सिंह	गुरु कौमुदी
पं॰ हरा सिंह	गुरु सिद्धान्त पारिजात, जपु टीका
पं॰ गुरुदित्ता सिंह	गुरु नानक स्तोत्र
बाबा प्रेम सिंह	गुरु स्तोत्र
जपु जी की संस्कृत टीका	निहाल सिंह

हिन्दी टीकाकारों में प्रमुख हैं–

भाई सन्तोष सिंह, पं॰ तारा सिंह नरोत्तम, पं॰ नरैणसिंह, सन्त दयाल सिंह, सन्त निरकारसिंह, सन्त तारासिंह, सन्त देवासिंह, साधु गुरदित्तसिंह ।

सिक्ख ऐतिहासिक ग्रन्थ

गुरु प्रताप सूरज (अर्ध ऐतिहासिक)	भाई सन्तोखसिंह
पंथ प्रकाश	ज्ञानी ज्ञानसिंह

इतिहास गुरु खालसा	गण्डा सिंह
इतिहास निर्मल भेष	गणेशासिंह

पौराणिक विषयों के ग्रन्थ

पं॰ गुलाब सिंह	भाव रसाम्रित
भाई सन्तोषसिंह	गुरुप्रताप सूरज
ज्ञानी ज्ञान सिंह	पन्थ प्रकाश

निर्मल सन्तों की हिन्दी रचनाओं का वर्गीकरण

1. संस्कृत के अनूदित एवं भाष्य ग्रन्थ

गुलाब सिंह	अध्यात्म रामायण, प्रबोध चन्द्रोदय, मोक्ष पंथप्रकाश
सन्तोष सिंह	बाल्मीकि रामायण
सदा सिंह	अद्वैतसिद्धि की सुगम सार चन्द्रिका
बुद्ध सिंह	तर्क संग्रह
मंगल सिंह	मुहूर्त चिन्तामणि
संगत सिंह	पिंगल प्रस्तार संग्रह
गुरदित्त सिंह	नैष्क्रम्य सिद्धि गुरुनानक स्तोत्र
गण्डा सिंह	न्याय मुक्तावली, वैराग्य शतक
निहाल सिंह (ठाकुर)	खालसा शतक

गुरुवाणी के टीका ग्रन्थ

तारासिंह नरोत्तम	गुरुभाव दीपिका, टीका श्रीराग, गुरमत निर्णय
साधु सिंह	गुरु शिष्या प्रभाकर, गुरु वाक सिद्धान्त
सन्तोष सिंह	गरब गंजनी टीका, नाम कोश
अर्जुन सिंह	प्रेम बोधिनी टीका
अर्जुन सिंह	प्रेम बोधिनी
गुरदित्त सिंह	गुरमत सिद्धान्त सार, ज़पुजी, टीका,
हरिभजन सिंह	टीका जपु जी
गणेशा सिंह	श्लोक सहस कृति टीका
ईशर सिंह	वाहिगुरु मन्त्रार्थ
देवा सिंह	जपु प्रदीप, पर्याय गुरुग्रन्थ साहिब
निहाल सिंह	चक्रधर चारु चन्द्रिका (टीका जाप साहिब)
बदन सिंह	फरीदकोटी टीका

विभिन्न विषयों पर रचित अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ

काव्य–शास्त्र	अलंकार सुधासागर, पिंगल प्रस्तार, प्रस्तार प्रभाकर
ज़्योतिष	मुहूर्त चिन्तामणि ।
वैद्यक	व्याधि विनाशक (टीका)
नीति	कबित सवैये, (टहिल सिंह)
वेदान्त	अध्यात्म प्रकाश टीका मोक्ष पन्थ ।'
जीवनी	रिपुदमन प्रकाश, नारायण हरि उपदेश जीवनी हरिसिंह ।
न्यायशास्त्र	न्याय मुक्तावली ।

हिन्दी साहित्येतिहास के आरम्भ में पंजाब रचित हिन्दी साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण दिखाई देता है । आदिकालीन सिद्धनाथ और जैन साहित्य में पंजाब के महत्वपूर्ण योगदान को भुलाया नहीं जा सकता । वर्तमान अनुसंधानों और नई सूचनाओं के आधार पर मध्यकालीन भक्ति काव्य धारा के समानान्तर, रामकाव्य और कृष्ण काव्य की सरस धाराएं प्रवहमान होती देखते हैं । रीतिकालीन श्रृंगारिक वातावरण में गुरुमत प्रचार हेतु गुरुवाणी का प्रचार प्रसार हुआ और अनेक गुरुमत प्रचारकों ने इसकी व्याख्या में अनेक ग्रन्थ रचे । परिणाम स्वरूप अनेक सम्प्रदायों ने इसमें अपने–अपने सिद्धान्तों के निरूपण हेतु मौलिक एवं अनूदित गद्य–पद्य रचनाओं को अपना आधार बनाया । भले ही यह कार्य एक धार्मिक भावना से जुड़ा हुआ था, इससे साहित्यिक महत्व कम नहीं हो जाता । इससे साहित्य की एक तत्कालीन परम्परा का भी बोध होता है । प्रचलित ब्रज भाषा में रचे गए साहित्य के मूल प्रतिपाद्य को समसामयिक अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी सुरक्षित रखने के प्रयास हो रहे थे । पंजाब में इस साहित्य की अपनी समृद्ध परम्परा मिलती है, जिससे पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य के स्वरूप को जाना जा सकता है और भविष्य में हिन्दी साहित्येतिहास लेखन को नई दिशा मिल सकती है ।

मनुष्य आदि काल से ही जिज्ञासु रहा है । उसकी इस जिज्ञासा के फलस्वरूप ही, सभ्यता का विकास, संस्कृति का उत्थान तथा साहित्य का निर्माण हुआ । तत्पश्चात् यही जिज्ञासा अनुशीलन, विवेचन, विश्लेषण मूल्यांकन की प्रवृत्ति के रूप में सामने आई । प्रकृति के अद्भुत दृश्यों को देखते ही उस परम सत्ता को जानने की उमंग ने उसे और भी सचेत किया । उसका वर्णन करते–करते थक गया । अनेक वृहदाकार वेद (ग्रन्थ) उसी की स्तुति व रूप निर्धारण हेतु रचे गए, मगर जिज्ञासा शान्त न हुई । पुनः उपनिषदों में और भी विस्तार से चिन्तन मनन किया गया मगर 'नेति–नेति' कह कर चुप हो गया । बाद में पता नहीं पुराणों आख्यानों, भाष्यों, अनुवादों, टीकाओं के लेखकों ने किन–किन दृष्टिकोणों से अपनी उस परम्परा को प्रस्तुत करने की चेष्टा की । मगर आज तक ब्रह्म

के स्वरूप को, सृष्टि की रचना को, जीव और ब्रह्म के रहस्य को, माया की शक्ति को जानने में असफल रहा । इतना होने पर भी निराश नहीं हुआ । इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक युग में एक ऐसा प्रचारक विद्वान वर्ग अस्तित्व में आता रहा है । जिसने अपनी श्रद्धा और निष्ठा से अपनी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा को विकसित करने में सदैव योगदान दिया । अपनी इस विचारधारा की पूंजी के रूप में साहित्य रूपी तिजोरी में सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति ने ही उन महानुभावों को महान साहित्यकार और दार्शनिक सिद्ध किया । मगर वे दार्शनिक और साहित्यकार अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त न कर सके । अध्यात्म रूप को पान करने से पिपासा ज्ञान चक्षुओं से उस ब्रह्म को जानने की चेष्टा की वे भी उसे 'आत्मानुभूति' और 'गूंगे का गुड़' कह कर ही शान्त हो गए । वास्तव में उस परम सत्ता को जानना इतना सरल नहीं है । उसके लिए अपने अस्तित्व का विलय प्रथम शर्त है ।

उस ब्रह्म को जानने की इच्छा रखने वाले साधकों, दार्शनिकों, साहित्यकारों, प्रचारकों तथा व्याख्यानकारों ने अपनी–अपनी भाषा में अपनी–अनुभूति से अवगत कराया, जिससे अनेक वादों और सम्प्रदायों ने जन्म लिया । मगर बात वही कही, समस्या समाधान न हो सका । प्रत्येक वर्ग सीमित हुआ और अपने सिद्धान्तों की डफली बजाता रहा । अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति ही उसके सन्तोष की कसौटी रही, जिससे खण्डन मण्डन पद्धति का उद्‌भव हुआ । अनेकों ग्रन्थों से तर्क, प्रमाण और दृष्टान्त प्रस्तुत कर अपनी बात को कहने के लिए दृढ़ संकल्प विद्वानों ने तत्कालीन भाषाओं में अनेक ग्रन्थ रच डाले । बहुत से अनुवादकों ने अनुवाद किए और व्याख्याकारों ने व्याख्याएं कीं । व्याख्याकारों ने सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए अनेक विधियों को अपनाया । जिसके फलस्वरूप एक ही ग्रन्थ पर अनेक, भाषा, टीका, कृति, और व्याख्या आदि ग्रन्थ लिखे गए ।

मध्ययुगीन भक्तिकाल के साहित्य में अधिकतर पद्यमयी रचनाओं का ही प्रभाव रहा । आदिकाल से लेकर रीतिकाल पर्यन्त हिन्दी साहित्य का इतिहास कविता का इतिहास है । इसके लिए आचार्य शुक्ल से लेकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा तक के सभी साहित्येतिहासों का अवलोकन किया जा सकता है । लेकिन रीतिकालीन रचनाओं में अनुवाद टीका, व्याख्या के रूप में विभिन्न भाषाओं ने अपनी–अपने साहित्य को पोषित किया । जिस समय अन्य भाषाओं में रीतिपरक श्रृंगारिक रचनाओं का रचना कार्य जोरों पर था, उस समय पंजाब के गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य में साथ ही साथ वीर और भक्ति भावना से ओतप्रोत साहित्य की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई । कुछ कविगणों ने राजाओं के दरबारों में रह कर निरन्तर साहित्य सर्जन किया । 'हिन्दी में रचित पंजाब प्रान्तीय साहित्य का बहुत बड़ा भाग ऐसा है, जिसकी मूल संवेदना हिन्दी के उस साहित्य

से जुड़ी हुई है, जो हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रचा जा रहा था । इस दरबारी साहित्य में भक्ति के ग्रन्थ भी लिखे गए और रीति ग्रन्थ भी । आश्रय दाताओं की अभिरुचि के अनुरूप गीता और भागवत जैसे धार्मिक ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद भी किए ।[138] तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक समन्वय की आवश्यकताओं को ध्यान में रचते हुए सिक्ख गुरुओं एवं प्रचारकों ने अपनी बात को जनसाधारण तक पहुंचाने हेतु आधार भूत मान्यताओं को धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावना की पुट देकर उनका सरलीकृत रूप प्रस्तुत किया । पंजाब में इस कार्य का श्रीगणेश गुरु नानकदेव और भाई गुरदास से माना जा सकता है । गुरु अर्जुनदेव द्वारा आदि ग्रन्थों का सम्पादन और गुरु गोबिन्द सिंह जी का अमूल्य योगदान इस क्षेत्र की सबसे बड़ी उपलब्धि है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह युग संघर्ष का युग था । इस ऐतिहासिक संघर्ष की तैयारी के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने सभी हिन्दू शक्तियों का समन्वय किया । शैवों, वैष्णवों, शाक्तों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धा पूर्वक भाषानुवाद करना तथा करवाना इस समन्वय का सबसे बड़ा प्रमाण है । गुरु गोबिन्दसिंह जैसी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व हमें तत्कालीन भारतीय साहित्य में दूसरा दिखाई नहीं देता ।[139] उन्होंने अपनी देखरेख में अनेक मौलिक और अनूदित ग्रन्थों का रचना कार्य सम्पन्न कराया । इतना ही नहीं तलवार के उस धनी ने कलम भी चलाई और अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ साहित्य जगत् को दिए । इतना ही नहीं उन्होंने पुरातन साहित्य और संस्कृति के महत्व को समझते हुए अपने शिष्यों को उससे अवगत कराना भी अनिवार्य समझा । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने पांच सिंहों (राम सिंह, गण्डा सिंह, कर्म सिंह, वीर सिंह, सोभा सिंह) को ब्रह्मचारी के वेश में संस्कृत विद्या पढ़ने हेतु काशी भेजा । उनकी संज्ञा निर्मल हुई । इन पांचों के शिष्य जो निर्मल वस्त्र धारण कर, शांत चित रह कर विद्या और नाम का अभ्यास और धर्म का प्रचार करते रहे और वे सब निर्मल कहे जाते हैं । सिक्ख कौम में निर्मल साधु विद्या के प्रेमी और विचारवान हैं ।[140]

उन्होंने उन्हें वरदान और आशीर्वाद देकर गुरूमत के प्रचार एवं प्रसार हेतु एक गुरुकुल की स्थापना की । ऐसा गुरुकुल जो स्थान–स्थान पर जा कर लोगों का मार्गदर्शन करे और उन्हें विद्या प्रदान करें । सिक्ख पन्थ के सिद्धान्तों को जन सामान्य तक पहुँचा सके । गूढ़ अनुभवों और रहस्यों को समझा सकें । इसके लिए उन्होंने वैदिक पौराणिक औपनिष्दिक ज्ञान को अनिवार्य समझा और इसे अर्जित करने के लिए प्रेरित ही नहीं किया अपितु मानसिक रूप से तैयार करके प्रस्थान का आयोजन भी किया और कहा– देश में धर्म प्रचारक भी तुम निर्मल सन्त प्रसिद्ध होंगे । अन्त में हमारा वचन यह भी है कि संस्कृत विद्या पढ़ कर शीघ्र ही प्रचार में प्रवृत्त होना क्योंकि पंथ का गुरुकुल भी तुम्हें ही होना है ।[141] इन्होंने वहां रह कर अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया और अपने संशयों का निराकरण करते रहे । साथ ही गुरुवाणी की व्याख्या और गुरुमत का प्रचार भी किया अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और उनकी जिज्ञासाओं और संशयों को दूर किया ।

अनेक विद्वान इनकी विद्वता और भक्तिभावना से प्रभावित हुए । कुछेक तो इनके अनुगामी हो गए और अपने जीवन को गुरु के चरणों में अर्पित करने में ही सार्थकता समझी । यहीं से उनकी विद्वता और गुरु निष्ठा का प्रभाव परिलक्षित होता है । कई वर्षों के वाद विद्वान पंडित बन कर आये और अपने साथ कई और विद्वान पंडित कवियों को भी लाए थे । जिन्हें गुरु साहिब ने अपने दरबारियों में सम्मिलित कर लिया था और इनको मिला कर अन्ततः 52 कवि प्रसिद्ध हुए ।[142] इन्होंने गुरु के चरणों में रहते हुए उनके आदेश से अनेक ग्रन्थों का अनुवाद, लिप्यन्तरण, व्याख्या और टीका प्रस्तुत किए । अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना भी हुई । निर्मल सन्तों ने संस्कृत के ज्ञाता होने के कारण संस्कृत ग्रन्थों की टीका और लिप्यन्तरण पर अधिक बल दिया । इन्होंने संस्कृत, ब्रज और पंजाबी भाषा में अधिक लिखा । मुख्यतः इनकी लिपि गुरुमुखी ही रही । गुरुमत के प्रचारक एवं व्याख्याता होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी था । इनकी अनुवाद पद्धति से प्रभावित होकर बाबू छट्टन बख्श अहिलमद सब जज गोंडा ने जपु जी का अनुवाद उर्दू में किया । और बाबा हरीसिंह की 'राहनुमा ए. दीदार हक' जपु जी की टीका की । जिस निर्मला टीका पद्धति का प्रभाव देखा जा सकता है । शुरु शुरु में विद्वान ऐसे हुए हैं, जिन्हों वाणी की व्याख्या तो गुरुमुखी अक्षरों में लिखी परन्तु संस्कृत के उदाहरण देव नागरी में दिए । बाद में विद्वानों ने गुरुमुखी अक्षरों में संस्कृत लिख कर साथ–साथ देवनागरी में ही श्लोक लिख दिए । फिर धीरे–धीरे संस्कृत का प्रभाव खत्म होता है ।[143]

निर्मल सन्तों की टीका परम्परा पर विचार करने से पूर्व हमें टीका शब्द पर विचार कर लेना समीचीन होगा । टीका का मूल उद्देश्य रचना के भाव मण्डल में प्रवेश करके गहराई तक जाना और उसके अर्थों का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें बताना है ।[144]

टीका केवल अर्थ ही नहीं बताता उसके भावों और सन्दर्भगत अर्थों की पुष्टि भी करता है । विशेष रूप से जब आध्यात्मिक ग्रन्थ का टीका लिखना हो तो एक अर्थ भाव की सम्प्रेषणीयता के लिए पर्याप्त नहीं होता । टीका केवल अर्थावली नहीं होता । एक पद की व्याख्या को दूसरे पद से समन्वित रूप से प्रस्तुत करता है । ताकि लेखक की बात को पाठक तक सुविधापूर्वक पहुंचाया जा सके । एक सफल टीकाकार का परिश्रम तब सार्थक होता है, जब पाठक को किसी भी बात को समझने में कठिनाई महसूस न हो । टीकाकारी सम्प्रेषण की सीधी रीति है । लेखक और पाठक दोनों निःसंकोच भाव से मूक सम्वाद करते हैं । इस मूक सम्वाद का पहला संकल्प टीकाकारी के कारण ही सम्भव हुआ ।[145]

गुरुवाणी साहित्य में टीकाकारी का प्रचलन आदि ग्रन्थ के सम्पादन के बाद अस्तित्व में आया । इससे पहले भी टीकाकारी तो हुई मगर साहित्य दृष्टि से नहीं । मौखिक प्रचार के रूप में कथावली और व्याख्या प्रणाली के रूप में । गुरुवाणी की टीकाकारी और व्याख्या का श्रीगणेश भाई गुरदास जी की 'ज्ञान रत्नावली' और 'कबित सवैये' से होता है ।

आपकी रचनाएं पूर्णतः गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करती हैं । अगर आपके कबित्त–सवैये आपकी यथार्थ अनुभूति के आधार पर सत्य के अधिक निकट कहे जा सकते हैं, तो वारों को गुरवाणी का भाष्य होने का गौरव प्राप्त है ।[146] तत्पश्चात् गुरुवाणी के अनेक श्रद्धालुओं ने गुरु जी के आदेश से स्थान–स्थान पर जा कर प्रचार किया और साहित्य रचना भी की । जिस समय पंजाबेत्तर हिन्दी कवि अपने आश्रय दाताओं के प्रशस्तिगान एवं उनके मनोरंजन के लिए वासना वर्धक कृतियों का निर्माण कर रहे थे । लगभग उसी समय गुरु गोविन्द सिंह आश्रित कवि गुरु महिमा, नवोदित खालसा, सम्प्रदाय विषयक सिद्धान्तों, भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के प्रमुख ग्रन्थं के भाषानुवादों तथा वीर–रस पूर्ण काव्यों की सृष्टिं कर रहे थे ।[147]

एक और तो दरबारी साहित्य रचा जा रहा था, दूसरी ओर गुरुमत प्रचार और प्रसार हेतु निर्मल सन्त मण्डलियों और डेरों में अनुवादों और टीकाओं की परम्परा से जुड़ कर अपने उद्देश्य को सार्थक बनाने में जुटे हुए थे । इसी टीका परम्परा को ध्यान में रखते हुए सुरेन्द्र सिंह शेरगिल ने सम्पूर्ण निर्मला साहित्य को चार मार्गो में विभक्त किया है :–[148]

1. आदि ग्रन्थ की वाणी के टीके ।
2. गुरुमत की व्याख्या और रहत नामे ।
3. वेदान्त की व्याख्या ।
4. सिक्ख इतिहास ।

इसके अतिरिक्त अनेक निर्मल सन्तों ने अन्य विषयों यथा शब्दकोश, ज्योतिष, योगाभ्यास पिंगल (छन्द) दर्शन नवीन मत खण्डन, आयुर्वैदिक, भ्रम निवारक ग्रन्थ, अनेक प्रकार के ग्रन्थ भी रहे । पुनः शैली के आधार पर इनकी रचनाओं में गद्य और पद्य दोनों रूप मिलते हैं । मौलिक, अनूदित और टीका ग्रन्थों में टीका ग्रन्थों की संख्या अधिक है । परम्परागत साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुरूप अधिकांश टीका संस्कृत ग्रन्थों की शैली के अनुरूप ही लिखे गए । यहाँ भाषागत विवाद को न लेते हुए निर्मल सन्तों के समूचे साहित्य पर विचार करना समीचीन होगा । इन विद्वानों ने संस्कृत के जिन ग्रन्थों का गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन किया था, उसका प्रभाव इनकी टीका पद्धति पर पड़ना स्वाभाविक ही था । वैसे भी श्रुति स्मृतियों से प्रमाण उद्घृत करना गुरुवाणी व्याख्याताओं की एक प्राचीन परम्परा रही है ।[149] कुछ विद्वानों ने इनकी टीका पद्धति पर वेदान्ती प्रभाव होने का आरोप लगाया गया है । ये गुरुवाणी की व्याख्या वेदान्त के अनुसार करते हैं । एक तुक के अधिक अर्थ करते हैं । लेकिन अन्त में विशेष अर्थ देते हैं :–

गुरु ग्रन्थ साहिब को को सर्वोत्तम मानते हुए भी पुराण आदि शास्त्रों का सत्कार करते हैं ।[150]

इनकी दैनिक गतिविधियों से भी कुछ सनातनी विचारधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है । इनके कुछ सिद्धान्त सिक्ख मर्यादा से प्रभावित है तो कुछ प्राचीन हिन्दू धर्म से अपना सम्बन्ध जोड़े हुए हैं । जिसके फलस्वरूप आज विद्वान निर्मल साधुओं का यह वर्ग सिक्ख

धर्म की शाखा होते हुए भी एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में अपने ढंग से गुरुवाणी की व्याख्या और गुरुमत का प्रचार कर रहा है । समन्वयात्मक पद्धति को अपना कर चलने वाला यह सम्प्रदाय दिन प्रति दिन गौरवान्वित होता जा रहा है ।

उन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या के लिए जो टीका पद्धति अपनाई वह आज भी 'निर्मला व्याख्या पद्धित' के रूप में प्रचलित है । अनेक निर्मल सन्तों ने गुरवाणी में टीका किए । कुछ मौलिक ग्रन्थ भी रचे हैं । 'जपुजी' के टीकाओं में पं॰ निहाल सिंह जी 'जपु संहिता' और पं॰ साधुसिंह जी का जपु प्रदीप संस्कृत में ही है । निर्मल सन्तों द्वारा प्रमुख संस्कृत ग्रन्थ एवं टीकाएं इस सूची में अंकित हैं :–

1.	ईशरसिंह	गुरमत दिग्विजय (मन्त्रार्थ प्रकाश)
2.	उधव सिंह (हरिद्वार)	आश्रम धर्म रहस्य अभाव रहस्य
3.	सदा सिंह (काशी)	अद्वैत सिद्धि की सुगमसार चन्द्रिका
4.	हरा सिंह (ठाकुर)	खालसा शतक
5.	निहाल सिंह (काशी)	गुरु सिद्धान्त पारिजात, गुरु गोबिन्द सिंह स्तोत्र, कौमुदी
6.	कौर सिंह (चेत सिंह)	गुरु कौमुदी
7.	प्रेम सिंह (ऋषिकेश)	गुरु स्तोत्र
8.	पं॰ आत्मदेव सिंह	अभेदाखण्ड चन्द्रमा
9.	निहाल सिंह (थोहा)	जपु गूढार्थ दीपिका
10.	तारा सिंह तरनतारन	ममुक्षुबोधन प्रकाश
11.	गुरदित्त सिंह	श्री मह गुरु गोबिन्द सिंहाष्टक
		श्री गुरुनानक अष्टक
		स्रोत रामाष्टक
		गुरु नानक स्तोत्र
		नैष्क्रम्य सिद्धि टीका
		वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली
		नवम महल्ला के श्लोकों की टीका

गुरु गोबिन्द सिंह जी स्वयं भारतीय संस्कृति को विकसित करना चाहते थे । उन्होंने सिक्खों की एक ऐसी श्रेणी का चयन किया जो संस्कृत साहित्य के माध्यम से वेदान्त को अपना कर गुरुबाणी का संन्देश घर–घर तक पहुंचा सके । उनके इस उद्देश्य को निर्मल विद्वानों ने अक्षरशः पूरा किया, जो ग्रन्थ संस्कृत में नहीं भी लिखे गए हैं, उन पर भी संस्कृत की गहरी छाप है ।[151] इसके अतिरिक्त ब्रज (हिन्दी) और खड़ी बोली मिश्रित पंजाबी में अनेक टीका ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । मौलिक रचनाओं में भी अधिकांश रचनाएं ब्रज (भाषा) की ही है । इन्होंने लिखा चाहे किसी भाषा में हो मगर गुरुवाणी और गुरुमत के प्रभाव से इनकी लिपि प्रमुखता गुरुमुखी ही रही । एकाध अपवाद को छोड़ कर इनकी समस्त रचनाएं गुरुमुखी लिपि में ही उपलब्ध होती हैं । उत्तर मध्यकाल में गुरमत के प्रचार

हेतु ऐसे साहित्य लेखन की एक विस्तृत परम्परा मिलती है । लेकिन खेद है कि भाषा एवंम् लिपि की इस भिन्नता के फलस्वरूप ही यह साहित्य उपेक्षित रहा । विशेषतः पंजाब का साहित्य इस समस्या से अधिक ग्रस्त हुआ । पंजाब में ऐसा साहित्य रचने वाले सैंकड़ों विद्वान एक साथ काम कर रहे थे ।

निर्मल विद्वानों द्वारा रचित टीका साहित्य की यह विशेषता रही कि ये लोग शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण गुरुवाणी की व्याख्या अत्यन्त विस्तार से करते थे । और भावानुकूल अर्थ देते थे । हिन्दी और संस्कृत के साहित्य के गौरव में अभिभूत इस क्षेत्र में उस साहित्य से परिचित होने के लिए संस्कृत साहित्य की हिन्दी टीकाओं का गुरुमुखी लिपि में अन्तरण किया गया है ।[152] इस साहित्य का प्रमुख प्रयोजन विभिन्न भाषाओं के ज्ञाताओं को गुरवाणी का सन्देश पहुंचाना था । पुनः ये लोग प्रचारक थे प्रचार करने और कथावाती में केवल भाषा की अनुकूलता की समस्या रहती है । लिपि की आवश्यकता नहीं होती । इन्होंने प्रान्तीय भाषाओं की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जन साधारण की सुविधा के लिए जैसा उचित समझा वैसा ही ढंग अपनाया । 'निर्मल साधुओं' का ग्रन्थ सृजन कार्य औपचारिक अध्यापन का संबंध कथावती एवं धर्मप्रचार था ।[153] इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि गुरुवाणी के प्रचार एवं अध्ययन अध्यापन से दो धर्मों, का समन्वय स्थापित हो सका और मानवीय एकता के संकल्प को दृढ़ करने में इन साधकों ने कड़ी का काम किया । अन्य सम्प्रदायों की तरह इनके योगदान को भी आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता । विशाल भारत में गुरमत का प्रचार करते हुए सब से अधिक आवश्यकता और लाभदायक काम उदासी और निर्मल सन्तों ने यह किया कि उन्होंने सिक्खों को हिन्दू महाराष्ट्र से अलग नहीं होने दिया । यह उनके प्रचार का ही प्रभाव है कि हिन्दू और सिक्खों के अनेक बार झगड़ों दंगों के वावजूद भी ये बड़े और छोटे भारत पुत्र एक दूसरे से अलग नहीं हुए और भविष्य में भी आशा है कि जब तक इन सन्तों का तप और तेज कायम है, ये दोनों अटूट प्रेम से जुड़े रहेंगे ।[154]

इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में तो अपना अद्वितीय योगदान दिया ही है साहित्यकि दृष्टि से भी इनकी अमूल्य देन को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता है । गद्य–पद्य में मौलिक, अनुदित, अनुवाद, व्याख्या, लिप्यन्तरण और टीका कारी सभी प्रकार से इन्होंने, हिन्दी, पंजाबी और संस्कृत भाषा के साहित्य को समृद्ध किया है । केवल साहित्य को ही समृद्ध नहीं किया अपितु इन भाषाओं के ज्ञाताओं को गुरवाणी के सन्देश से अवगत भी कराया । इसके लिए उन्होंने भाषा की दीवार को बाधक नहीं बनने दिया । किसी भी लेखक के लिए सब से दुष्कर कार्य टीका करना होता है, जिसे निर्मल सन्तों ने बड़े सुयोग्य ढंग से निभाया और हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया ।[155] कुछ प्रमुख टीकाओं का विवरण इस प्रकार है । अधिकांश टीकायें 'जपुजी' पर हैं–

	विद्वान	टीका ग्रन्थ
1.	भाई सन्तोख सिंह (1787–1843)	जपु जी टीका गरब गंजनी
2.	पं॰ तारा सिंह नरोत्तम	1. (जपु जी, रहरास, सोहिला, शब्द हजारे) शब्द हजारे (गुरुभाव दीपिका)

2. भगतां दी वाणी
3. टीका श्रीराग
4. टीका श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

3. सन्त सम्पूर्ण सिंह	1. भगत वाणी मरम बोधिनी टीका, फनहे, चौबोले, सवैये श्री मुखवाक और सवैये हैं ।
4. सन्त टहल सिंह निर्मला	1. आपने कई तुकों और शब्दों का टीका अपनी आम रचनाओं में किया है ।
5. भाई दल सिंह	1. बावन अखरी भावार्थ प्रकाशनी टीका 2. टीका गउड़ी राग, 3. शब्द हजारे ।
6. सन्त देवासिंह निर्मला	1. जपु प्रदीप टीका 2. सुगम जपु प्रदीप
7. भाई ज्ञान सिंह ज्ञानी	1. जपु जी सटीक
8. साधु गुरदित्त सिंह	1. जपु जी सटीक
9. संत निरंकार सिंह	1. गउड़ी बावन अखरी महल्ला–5 2. संत बलवण्ड दी वार 3. जेतसरी दी बार महल्ला–5
10. पं॰ निहाल सिंह	1. चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका (टीका जपुजी)
11. पं॰ भावनासिंह	1. टीका आसा दी वार
12. पं॰ निहाल सिंह	1. टीका आसा दी वार ।[156]

इन में से प्रमुख टीकाकारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है । तारनसिंह जी ने इसी टीकाकारी जी ने इसी टीका प्रणाली के प्रणेता भाई सन्तोख सिंह को माना है और इस प्रणाली को 'निर्मला प्रणाली' कहा है । इनके वाद नरोत्तम गुलाब सिंह निर्मला, देवासिंह, गणेशासिंह प्रमुख विद्वानों ने गुरुवाणी की इसी टीकाकारी को अपनाया और अब भी अपना रहे हैं ।

भाई संतोख सिंह :– भाई संतोख सिंह मूलतः कवि थे मगर गुरुवाणी से प्रेम होने के कारण उन्होने टीकाकारी में भी योगदान दिया । उन्होंने आत्म पुराण का भी टीका किया मगर अनुपलब्ध है । गरब गंजनी 'जपु जी' का टीका उन्होंने साधु आनन्दघन के टीके की प्रतिक्रिया स्वरूप रचा । भाई सन्तोख सिंह के इस टीके को निर्मल सम्प्रदाय का प्रथम टीका माना जाता है और भाई संतोख सिंह को निर्मल सम्प्रदाय का प्रथम टीकाकार । भाई सन्तोखसिंह जी ने अपने आपको निर्मला कहीं–कहीं लिखा, लेकिन निर्मल विद्वानों ने उन्हें माना है ।[157]

इनकी टीका पद्धति से भी इनके निर्मला होने का पता चलता है । उन्होंने निर्मला सन्तों के समान ही अपनी इस टीका में वेदों, शास्त्रों पुराणों के प्रमाण–जुटाए हैं । इसमें उनकी अद्वैतवादी विचारधारा के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देते हैं । भाषा की दृष्टि से भी यह एक प्रौढ़ और सशक्त टीका है । भाई सन्तोख सिंह जी को ब्रजभाषा और संस्कृत आदि भाषाओं पर भी अधिकार प्राप्त था । अतः गरब गंजनी की भाषा ब्रजभाषा और संस्कृत शब्दावली से लदी हुई है ।[158] इनकी इस टीका में वेदान्त परक शब्दावली का भी प्रयोग मिलता है । जो निर्मला टीका की पहचान कही जा सकती है ।

1. पं॰ तारा सिंह नरोत्तम :– निर्मल सन्तों की टीका परम्परा में भाई सन्तोखसिंह के बाद पं॰ तारा सिंह नरोत्तम का नाम आता है । आप संत गुलाब सिंह के शिष्य थे । आप गुरुमत दर्शन, व्याकरण, पुराण, वेदान्त और कोश के विशेषज्ञः थे । आपकी टीका पद्धति की विलक्षणता यह है कि आप गुरवाणी की पृष्ठभूमि को आधार मान कर ही टीका करते हैं । इनकी भाषा भले ही ब्रज है मगर पंजाबी का पुट भी मिलता है । पौराणिक सन्दर्भों का आश्रय लेकर चलते हैं । इनके प्रमुख टीका ग्रन्थ इस प्रकार हैं :–

1. टीका मोक्ष पंथ
2. टीका जपु, रहिरास, सोहला (गुरु भाव दीपिका)
3. टीका भगतां दी वाणी
4. टीका श्री राग ।

उनके टीका करने का मुख्य प्रयोजन सम्प्रेषणीयता का है । क्योंकि उनकी यह टीका कारी शब्द शक्ति की प्रथम गुणवत्ता से जुड़ी हुई है । हालांकि भावार्थ को स्पष्ट करने के लिए वे लक्षण और व्यंजना आदि शक्तियों का सहारा भी लेते हैं ।[159] कोषकार होने के कारण आप व्याख्या पूर्ण रूपेण सम्पन्न करने में विश्वास करते हैं । एक शब्द को पकड़ कर गहराई तक उसके प्रासंगिक अर्थ को स्पष्ट करना आपकी टीका की विशेषता है । विचारों को अपनी मौलिकता से जुड़े रहने का भरसक प्रयास इनकी विचार निष्ठता को परिपक्व कर देता है ।

इन विद्वानों की टीकाओं का विचार निष्ठता पाठक को मन्त्र मुग्ध कर लेती है । भले ही पाठक इन विचारों से सहमत न हो ।[160] पं॰ तारा सिंह नरोत्तम ने ही निर्मल टीका पद्धति को नई दिशा प्रदान की । आगे चल कर यही पद्धति निर्मला सम्प्रदाय के विद्वानों ने अपनाई, जो आप भी प्रचलित हैं । उनको टीका प्रणाली में पारम्परिक पद्धति से हट कर आधुनिक बौद्धिकता का विकास है । उनकी टीकाकारी में व्याख्या परमार्थ और महात्म, भावार्थ शामिल होते हैं और उत्थानका अथवा प्रमाण हेतु साखियां भी देते हैं ।[161] टीका करते समय इन्होंने एक ही शब्द को इतना विस्तार दे दिया है कि उसकी अन्य मतों से तुलना भी कर दी गई है । भले ही गुरुमत निर्णय सागर में इन्होंने गुरुमत सिद्धान्तों का निरूपण किया है तो भी वैदिक साहित्य के अध्येता होने के कारण उनकी व्याख्या पद्धति में बरबस ही वेद की शब्दावली और प्रभाव आ ही जाता है । गुरुमत की सिद्धान्त परक

व्याख्या और वेदान्त का सर्वाधिक प्रभाव उनकी प्रसिद्ध कृति 'गुरुमत निर्णय सागर' में देखा जा सकता है । इनकी प्रसिद्ध कृति व्याख्या प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ रूप टीका श्री राग है । नरोत्तम जी ने व्याख्या करते समय शब्दार्थ और भावार्थ दोनों को साथ-साथ लिया है । इनकी व्याख्या गुरुवाणी को समझने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है । व्याख्या करते समय अपने सामने अद्वैत परक दार्शनिक दृष्टि रखते हैं ।

3. पं॰ गुलाब सिंह जी :– भले ही गुलाब सिंह जी ने प्रत्यक्ष रूप से गुरुवाणी का कोई भी टीका न लिखा हो, तो भी उनके ग्रन्थ गुरुवाणी पृष्ठ भूमि एवं विषय विश्लेषण पर उनके ऊपर प्रकाश डालते हुए इसे समझने में सहायक सिद्ध होते हैं । भाव रसामृत, और मोक्ष पंथ जैसे अमूल्य ग्रन्थ गुरुवाणी के गूढ़दार्शनिक रहस्यों को खोलते हैं और भारतीय चिन्तन धारा का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करते हैं । मोक्ष पंथ के विषय में डा॰ राजगुरु लिखते हैं– यह रचना भारतीय दर्शन शास्त्र, न्याय दर्शन, मीमांसा दर्शन और वेदान्त दर्शन की प्रायः सभी मुख्य मान्यताओं का विवेचन इस कृति में मिलता है ।[162]

अन्य कृतियां अनूदित हैं । गुलाब सिंह निर्मला प्रचारक थे और उन्होंने वेदों उपनिषदों का अध्ययन किया था । अतः इनकी रचनाओं में विषय प्रतिपादन और व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट हुई है । मोक्ष पंथ प्रकाश में कवि ने श्रुति वचनों और वेदव्यास के श्लोकों के उदाहरण देकर इनकी व्याख्या करके अपने गहन-अध्ययन तथा विश्लेषण का परिचय दिया है ।[163]

4. भाई दल सिंह ज्ञानी :– ज्ञानी दल सिंह प्रसिद्ध निर्मला सन्त थे । इन्होंने गुरुवाणी का प्रचार करते हुए तीन प्रसिद्ध टीके रचे (टीका बावन अखरी 2) टीका गऊड़ी राग 3) शब्द हजारे । इनका टीका बावन अखरी बहुत प्रसिद्ध हुआ ।

अन्य निर्मला सन्तों की तरह इनकी टीकाओं पर भी वेदान्तपरक पृष्ठभूमि प्रभाव दिखाती है । गुरु अर्जुन देव का मंगलाचरण करते हैं, तो स्वाभाविक रूप से ही वेदांतक व्याख्या और शब्दावली का प्रयोग करते हैं । आप शब्दों का भावार्थ सहित टीका करते हैं । अन्य टीकाकारों की तरह आपने भी पूरा जोर पहले टीके पर ही लगा दिया है । गऊड़ी राग टीका उतने विस्तार से नहीं किया, जितना बावन अखरी किया है । .... ज्ञानी दल सिंह ने गुरुमत नित्य नेम को ब्राह्मणी सन्ध्या उपासना के नित्यकर्म के अनुसार ही समझा है ।[164] इनकी टीकाओं की एक अन्य विशेषता यह है कि मुख्य अर्थ के साथ-साथ गौण अर्थ भी देते हैं । जो ज्ञान में वृद्धि करता है ।

5. साधु गुरदित्त सिंह :– इनकी 'जपुजी' पर लिखी टीका मिलती है । इसके दो भाग हैं– पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । इसमें तुक प्रधान अर्थ दिए हैं मगर साथ-साथ ही शब्दों समाधान भी किया गया है । मूलमंत्र की टीका करने के पहले और अन्तिम श्लोक की टीका के बाद ब्रज भाषा में सवैया, दोहा, सोरठा और कबित आदि लिखे गए हैं ।[165] आप संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, जैसा कि आपकी इस कृति से ही स्पष्ट होता है । महान विद्वानों की तरह इन्होंने यह माना है कि गुरुवाणी के अर्थ कहने में समर्थ नहीं हैं ।

कहीं–कहीं वेदांतपरक शब्दावली और सन्त भाषा प्रयोग के कारण इनकी भाषा जटिल हो गई है ।

6. संत सम्पूर्ण सिंह :– आपने गुरवाणी के प्रचार हेतु भाई गुरदास के कबित सवैयों का सिद्धान्त बोधिनी टीका और 'भगतवाणी मर्म बोधिनी' टीका किया । भगतवाणी के अर्थ बिल्कुल सरल भाषा में दिए हैं । अधिक अर्थों या पर्यायवाची शब्दों के चक्कर में नहीं पड़े । अर्थ वाणी के साथ कोष्ठों में रखे हैं । पद विस्तार नहीं किया । इसके अतिरिक्त आपने कुछ ट्रैक्ट भी लिखे, जिनमें प्रमुख हैं :–

1. गुरुमत सिद्धान्त व्यौरा
2. उन्नति दा मार्ग
3. मौत रहस्य
4. मौज सदानन्दी

गुरुमत सिद्धान्त व्यौरा गुरुमत प्रचार की दृष्टि से इनकी महत्वपूर्ण रचना है । विषयवस्तु की दृष्टि से यह अत्यन्त प्रौढ़ रचना है । इसमें सिक्ख सम्प्रदाय के प्रति उठाएं गए संशयों और संख्याओं का निराकरण करने का सफल प्रयास किया गया है । मौत रहस्य आध्यात्मिक विषय से सम्बधित पुस्तक है । इनकी अन्य पुस्तक सुधर्म मार्ग ग्रन्थ भी हैं ।

7. संत निरंकार सिंह :– आपने बावन अखरी सत्ता बलवंड की वार और जैतसिरी की वार की टीकाएं की हैं । आप संस्कृत के प्रतिष्ठित विद्वान थे । आपने निश्चल दास जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विचार सागर' का अनुवाद ब्रज भाषा में किया । इसमें अर्थ सहित टीका प्रस्तुत किया है । आपकी टीका पुस्तकें निम्नलिखित हैं :–

1. पद अर्थ विचार सागर
2. निरंकारी ज्ञान विवेक
3. कल्याण मार्ग ।

कल्याण मार्ग, बावन अखरी, सते बलवंड और जैतसरी की वार की टीकाओं का संक्लन है । इनकी टीकाओं की यह विशेषता रही है कि यह आधुनिक युग की टीकाकारी के अनुरूप है । इसकी शैली अत्यन्त साधारण और स्पष्ट हो गई है ।

8. संत देवासिंह निर्मला :– सन्त देवा सिंह जी के दो टीका ग्रन्थ उपलब्ध हैं । 'जपु प्रदीप' उनका जपुजी का प्रसिद्ध टीका है । इसमें उन्होंने निर्मला पद्धति के अनुसार ही टीका किया है । उन्होंने गीता आदि हिन्दू ग्रन्थों में से गुरवाणी की किसी तुक की व्याख्या के रूप में पूरे प्रमाण पंजाबी में लिप्यन्तरण करके अंकित किए और उनकी भी पंजाबी में टीका व्याख्या सहित दी है .... विचारधारा वेदान्ती और हिन्दू प्रभाव वाली है, बोली साध भाषा है और शैली कठिन है ।[166] आप संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे ।

कहा जाता है कि आपने 'सिद्ध गोष्ठ' टीका भी किया था । इनकी एक अन्य कृति सुगम जपु प्रदीप भी है । यह प्रथम जपु प्रदीप से आसान है । इस टीका का भाव तो वही

है मगर इसके वैदिक ग्रन्थों के प्रमाण नहीं लिखे । केवल मूल अर्थ ही लिखा है । इसी कर्ता ने गुरु ग्रन्थ साहिब के पर्याय भी बनाए हैं । उनके साथ ही यह सुगम जपु प्रदीप शामिल किया गया है । इन पर्यायों में भी टीकाकार ने 'शास्त्र प्रक्रिया अनुसार अर्थ' किया है ।[1647] 'सन्त देवा जी ने सुगम जपु प्रदीप टीका लिख कर यह सिद्ध कर दिया कि निर्मला संत गुरवाणी के सन्देश को विद्वान वर्ग तक ही सीमित न था । अथवा अपनी विद्वता का ही प्रदर्शन न करके जनसाधारण तक सरलतम भाषा में पहुंचाना चाहते थे । यही कारण था कि इन्होंने 'जपु प्रदीप' टीका के पश्चात् सामान्य लोगों के लिए 'सुगम प्रदीप' टीका की ।

9. गणेशा सिंह :– महन्त गणेशा सिंह जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । निर्मला साहित्य की इनकी देन अद्वितीय है । इन्होंने खोज, इतिहास, चिकित्सा सम्बन्धी अनेक विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं । वेदान्त से संबधित श्री सुखा सिंह जी द्वारा रचित ग्रन्थ अध्यात्म प्रकाश की टीका की । अध्यात्म प्रकाश की भूमिका में ये टीकाकारी का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं टीका भी ऐसी सरल रची है, जिसे न्यून विद्या वाला भी पढ़ सकता है । जिसके सादृश्य आज तक ऐसी लघुत्तम पुस्तक कहीं भी नहीं होगी । इस पर भी जरूरी चीजों को टिप्पणी आदि चिन्हों से झलकाया है ।[168] इन्होंने 'श्लोकों–सहसंस्कृति' का टीका भी किया है ।

10. बदनसिंह जी :– बदनसिंह जी ने सम्पूर्ण गुरु ग्रन्थ साहिब का टीका चार खण्डों में सम्पन्न किया है । इसमें इन्होंने वेदान्त के सिद्धान्तनुरूप निर्मला पद्धति की व्याख्या के अनुसार टीका किया है, जो गुरमत सिद्धान्तों के अनुरूप भी है । और गुरुवाणी टीका परम्परा में एक मील पत्थर है । निर्मला साहित्य एक टीका परम्परा में भी इसे महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त है । इसे 'फरीदकोटी टीका' कहा जाता है । क्योंकि यह टीका बदन सिंह जी ने महाराजा फरीदकोट रियासत के आग्रह पर की थी । शैली सरल और स्पष्ट है लेकिन है भावपूर्ण ।

निर्मल सन्तों की टीका परम्परा में एक बात ध्यातव्य है कि उन्होंने प्राचीन संस्कृत की टीका परम्परा को आगे बढ़ाया । इतना ही नहीं उन्होंने हिन्दी पंजाबी के अनुवाद, लिप्यन्तरण और कोशकारी में भी योगदान दिया । 18वीं शती के अन्त में गुरूवाणी की व्याख्या एक टीका भी इन्हीं के सह प्रयासों से प्रारम्भ हुई । हिन्दी पंजाबी के अतिरिक्त संस्कृत के व्याख्या एवं टीका ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है । इन ग्रन्थों में गुरुमत के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया है ।

1.	गुरु सिद्धान्त पारिजात	पं॰ हरा सिंह
2.	गुरु नानक स्तोत्र	पं॰ गुरदित्त सिंह
3.	गुरु स्रोत स्तोत्र	बाबा प्रेमसिंह
4.	जपुजी संस्कृत टीका	निहाल सिंह
5.	न्याय मुक्तावली	कौर सिंह

6. वाहिगुरु मन्त्रार्थ प्रकाश — पं॰ ईशरसिंह
7. नेष्क्रम्य सिद्धि टीका, गुरु नानक स्तोत्र, वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली टीका, नौंवे मोहल्ले के श्लोकों की संस्कृत टीका । — पं॰ गुरदित्त सिंह ऋषिकेश ।
8. अद्वैतसिद्धि की सुगम सार चन्द्रिका — सदा सिंह
9. जपु निबन्ध गूढ़ार्थ दीपिका — निहाल सिंह ।

निर्मला सन्तों ने भले ही टीका ग्रन्थ कम ही रचे मगर अपने प्रचार प्रसार में जिस ढंग से उन्होंने प्रचार किया वह गुरुवाणी की व्याख्या ही है । जिस पर उनकी विद्वता की अमिट छाप रहती है । वेदों का प्रभाव संस्कृत शव्दावली प्रयोग और अर्थ सहित भाव बताना उनकी टीका की कुछ विशेषताएं हैं । पहले तो जपुजी का प्रचार करते थे लेकिन 19वीं शताब्दी के आरम्भ से ही अनेक निर्मल सन्तों ने कोश, टीका, पर्याय, सटीक, आदि ग्रन्थ रचे ।

निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी की समुचित व्याख्या अथवा टीका के लिए अपने संस्कृत अध्ययन का पूरा लाभ उठाया है । निर्मल सन्तों ने वेदों, उपनिषदों की शब्दावली का ही अधिकतर प्रयोग किया है । गुरुवाणी वेद को समझने के लिए जनभाषा में सहायक ग्रन्थ है । निर्मल सन्तों में गुरुवाणी और वेद के प्रतिपाद्य में कोई अन्तर नहीं माना है । अपनी टीकाकारी के माध्यम से इन्होने यह स्पष्ट भी किया है । इसी से कुछ लोगों ने यह कहना शुरु कर दिया कि निर्मला सन्त गुरवाणी की वेदान्त परक व्याख्या करते हैं । इसके अतिरिक्त इनकी व्याख्या प्रणाली से कुछ नई बाते सामने आई ।

1. टीकाओं की भाषा साधारण से प्रौढ़ हो गई और टीके सीधी भाषा में भी रचे गए ।
2. शब्दों के अर्थ संस्कृत के आधार पर स्पष्ट किए जाने लगे ।
3. उपनिषदों और पुराणों के कथा प्रसंगों का प्रयोग किया जाने लगा ।
4. मुख्य अर्थ और गौण अर्थ की परम्परा भी चली ।
5. एक तुक के कई–कई अर्थ किए जाने लगे ।

निर्मल सन्तों की वेदान्त और गुरुवाणी की समन्वयात्मक प्रवृत्ति ने टीकाकारी को एक नई दिशा प्रदान की । तारनसिंह जी ने लिखा है–

–निर्मला प्रणाली का कर्त्तव्य केवल प्रचार करना था और प्रवृत्ति समन्वय की थी । ये सारी भारतीय कौम को सम्बोधन कर रहे थे । ये निरन्तर हिन्दूमत से संवाद में रहे है । इनका झुकाव पीछे की ओर था । ये वेद शास्त्र समर्थक थे । क्योंकि इनकी पढ़ाई लिखाई इसी प्रकार की थी ।[169] निर्मला टीका पद्धति अपनी सीमाओं में रह कर गुरुवाणी की व्याख्या करती है । और उसके आशय को पाठक तक पहुंचाती है । इसकी प्रौढ़ता का

प्रमाण यह कि आज भी अनेक ग्रन्थों का इसी प्रणाली के आधार पर टीका हो रहा है । इन्होंने गुरुमत सिद्धान्तों को जन–जन तक पहुंचाने के लिए जिस पद्धति को अपनाया, वह अत्यन्त सरल और स्पष्ट थी । यही कारण है कि इसे गुरुवाणी के टीका और गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए आज भी अनेक विद्वानों द्वारा अपनाया जा रहा है । सिंह सभा लहर के प्रभाव आधीन और नवीन पश्चिमी विद्या प्रणाली में से ढले कर जो सिक्ख विद्वानों ने गुरुवाणी टीकाकारी के क्षेत्र में आगे जाए वे किसी सीमा तक निर्मला और बहुत हद तक सम्प्रदाय प्रणालियों से ही प्रभावित थे ।[170] यही इनकी टीका कारी की सफलता और लोकप्रियता का प्रमाण है ।

निर्मल सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य गुरुमत प्रचार और गुरुवाणी की व्याख्या करना था । इस मनोरथ की पूर्ति हेतु आदि ग्रन्थ में अंकित वाणी की व्याख्या इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों ने टीका साहित्य रचना शुरु किया ।[171] ब्रज और पंजाबी भाषा में रचित पर्याप्त निर्मला साहित्य इसका प्रमाण है । इस टीका परम्परा ने भावी साहित्य का दिशा निर्देश भी किया और पंजाब में रचित साहित्य को समृद्ध भी ।

आज भी निर्मल सन्तों के डेरों में अनेक विद्वान, टीका, अनुवाद और व्याख्या के कार्य में संलग्न हैं । कुछ ग्रन्थों का देवनागरी में लिप्यंतरण किया जा रहा है ताकि गुरुमत प्रचार का क्षेत्र विस्तृत हो सके । इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल संतों ने अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु जो टीका ग्रन्थ रचे, साहित्य के क्षेत्र में उनसे टीका परम्परा को बहुत बल मिला और नई रचनाएं प्रकाश में आईं । ये उनकी विद्वत्ता और कुशल टीकाकारी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । निश्चय ही निर्मल सन्तों की टीका परम्परा से हिन्दी साहित्य के टीका साहित्य में एक नये अध्याय की श्री वृद्धि होती है ।

=======

सन्दर्भिका

1. प्यारा सिंह पद्म, विद्यापति निर्मले, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 218 ।
2. महीप सिंह, निर्मल सन्तों दी हिन्दी साहित्य नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ 'प्रीतमसिंह (अमृतसर : गु॰ ना॰देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 270 ।
3. वही॰, पृष्ठ 271 ।
4. हरमेन्द्र सिहं वेदी, हिन्दी, पंजाब दा साहिहित्यक विरसा आलोचना, सम्पा॰ गुरचरण सिंह (लुधियाना : पंजाबी साहित अकादमी जुलाई–सितम्बर 1985), पृष्ठ 76 ।
5. प्यारा सिंह पद्म विद्यापति निर्मले, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 218 ।
6. ईशर सिंह नारा, कुछ अनगोले निर्मल सन्त, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसरा :गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 433 ।
7. महीप सिंह, निर्मले सन्ता दी हिन्दी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 269 ।
8. महीपसिंह, निर्मले सन्ता दी हिन्दी साहित नूं देन निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह, (अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 270 ।
9. धर्मान्त सिंह वैदिक गुरमत (जालन्धर : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, 1965), पृष्ठ 223–225 ।
10. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरवाणी दी हिन्दी टीकाकारी पंजाबी दुनियां, सम्पा॰ हरचरण सिंह कैंबलपुरी (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, अप्रैल, 1986), पृष्ठ 59 ।
11. करतार सिंह सूरी, सिक्खमत नूं निर्मला योगदान, निर्मल सम्प्रदाय सम्पादक–प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 136 ।
12. उद्धृत : अर्जुनसिंह मुनि संक्षिप्त इतिहास निर्मल पंचायती अखाड़ा (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1974), पृष्ठ 81–83 ।
13. शमशेर सिंह अशोक साधुआं दी सिक्ख धर्म नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 153 ।
14. महीप सिंह, निर्मल सन्तां दी हिन्दी साहित्य नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 268 ।

15. सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : भारती भण्डार सम्वत 2024), पृष्ठ 8 ।

16. महीपसिंह, निर्मल सन्तां दी हिन्दी साहित्य नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह, (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 270–71 ।

17. करतारसिंह सूरी, सिक्ख मत नूं निर्मल योगदान, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पादक प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 136 ।

18. भाई कान्ह सिंह महान कोष, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1960)–भूमिका (इ) ।

19. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय में उपलब्ध हिन्दी पाण्डुलिपियां, जागृति (हिन्दी), सम्पा॰ अशोक बांसल (चण्डीगढ़ : लोक सम्पर्क विभाग पंजाब नम्बवर 1986), पृष्ठ 62 ।

20. सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य का इतिहास, (इलाहाबाद : भारती भण्डार, सम्वत् 2024, पृष्ठ 681, 686 ।

21. महीप सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी–कविता, (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1969), पृष्ठ 220 ।

22. करतारसिंह सूरी, सिक्खमत नूं निर्मल योगदान, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 138 ।

23. आशानन्द वोहरा, जपुजी का आलंकारिक सौन्दर्य (रोहतक : जैन बुक डिपो, 1975), पृष्ठ 1 ।

24. सुरिन्दर सिंह, निर्मल सन्तां दी पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 250 ।

25. सुरिन्दर सिंह, निर्मल सन्तां दी पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰, प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 253 ।

26. साधु सिंह, उत्थालक श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी, (लाहौर : अकाल प्रैस 1898 ई॰) पृष्ठ 104–105 ।

27. महीपसिंह, गुरु गोबिन्दसिंह और उनकी हिन्दी कविता (दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1969), पृष्ठ 347–348 ।

28. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962) पृष्ठ 38–39 ।

29. गोबिन्द सिंह लांवा, पंजाबी हत्थ लिखित साहित (पटियाला : अमरजीत साहित प्रकाशन, 1981), पृष्ठ 13 ।

30. वही॰, पृष्ठ 36 ।

31. भारतभूषण चौधरी, रीतिकाल के अल्प ज्ञात कवि (कुरुक्षेत्र : सजीव प्रकाशन 1983), पृष्ठ 5 ।

32. सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : भारती भण्डार, संवत् 2024) पृष्ठ 9

33. कान्ता राजगुरु, सेवापन्थ और उसका साहित्य (दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन 1981), पृष्ठ 1, भूमिका ।

34. गोबिन्द सिंह लांबा, पंजाबी हत्थ लिखित साहित (पटियाला : अमरजीत साहित प्रकाशन, 1981) पृष्ठ 14 ।

35. प्यारा सिंह पद्म, विद्यापति निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 218 ।

36. सुदर्शन सिंह मजीठिया, सन्त साहित्य (दिल्ली : रुपकमल प्रकाशन, 1962) पृष्ठ 9 प्राक्कथन ।

37. कान्ताराज गुरु : सेवापन्थ और उसका साहित्य (दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन 1981), पृष्ठ 1 भूमिका ।

38. हरमेन्द्र सिंह बेदी, हिन्दी : पंजाब दा साहित्यिक विरसा, आलोचना, सम्पा॰ गुरचरण सिंह लुधियाना, पंजाबी साहित अकादमी, जुलाई–सितंबर 1985), पृष्ठ 77 ।

39. महीपसिंह, हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, सम्पा॰ मलिक मोहम्द, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, 1977), पृष्ठ 255 ।

40. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस 1962), पृष्ठ 38 ।

41. हरमेन्द्रसिंह बेदी, पंजाब दी भारती साहित नूं देन पंजाबी दुनियां सम्पा॰ हरचरणसिंह कैंबलपुरी (पटियाला : भाषा–विभाग पंजाब, अगस्त 1987), पृष्ठ 39 ।

42. जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य (दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, 1970), पृष्ठ 23 ।

43. हरमेन्द्र सिंह बेदी, हिन्दी साहित्येतिहास पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन (होशियारपुर : प्रतिमा प्रकाशन, 1985), पृष्ठ 122 ।

44. त्रिलोचन सिंह बेदी, पंजाबी वारतक दा आलोचनात्मक अध्ययन (1700–1750) (नं दिल्ली मिसिज अमरजीत कौर–1972) पृष्ठ 51 ।

45. गणेशासिंह निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत् 1994), पृष्ठ 79 ।
46. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर, 1963), पृष्ठ 178 ।
47. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962), पृष्ठ 313 ।
48. गोबिन्द नाथ राजगुरु, पं॰ गुलाबसिंह ते उन्हां दा साहित, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 337 ।
49. प्यारा सिंह पद्म, ज्ञान त्रिवेणी (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 63 ।
50. गोबिन्दनाथ राजगुरु पं॰ गुलाबसिंह ने उनां दा साहित, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 337 ।
51. चन्द्रकान्त वाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962), पृष्ठ 313 ।
52. पं॰ ओम प्रकाश आनन्द, पं॰ गुलाबसिंह ते अध्यात्म रामायण निर्मल सम्प्रदाय, सम्पादक प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1980) पृष्ठ 349 ।
53. गोबिन्दनाथ राजगुरु : पं॰ गुलाबसिंह अते उना दा साहित, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 339 ।
54. गोबिन्दनाथ राजगुरु गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 196 ।
55. कान्ह सिंह नाभा, महान कोश, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1960) पृष्ठ 440
56. हरजीत कौर मदान, पं॰ तारा सिंह नरोत्तम : गुरुवाणी मूल्यांकन निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसह : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 367 ।
57. हरजीत कौर मदान, पं॰ तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व और कृतित्व, प्रबन्ध चण्डीगढ : पंजाब विश्वविद्यालय, 1973), अप्रकाशित सोध, पृष्ठ 107 ।
58. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (चण्डीगढ : लिपि प्रकाशन, 1980), पृष्ठ 197 ।
59. तारा सिंह नरोत्तम, गुरुमत निर्णय सागर (रावलपिण्डी रायबहादुर बूटा सिंह 1877 ई॰) पृष्ठ 36 ।
60. हरजीत कौर मदान, पं॰ तारासिंह नरोत्तम : गुरबाणी मूल्यांकन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पादक : प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 374 ।

61. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (चण्डीगढ़ : लिपि प्रकाशन, 1980) पृष्ठ 200 ।
62. हरमेन्द्रसिंह बेदी, गुरुवाणी दी हिन्दी टीकारी, पंजाबी दुनियां, सम्पादक हरचरण सिंह केबल पुरी (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, अप्रैल 1986), पृष्ठ 58–59 ।
63. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण (अमृतसर : गली बाग वाली, संवत 1994), पृष्ठ 144 ।
64. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दीगद्य (चण्डीगढ़ : लिपिप्रकाशन 1980), पृष्ठ 202 ।
65. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, (चण्डीगढ : लिपि प्रकाशन, 1980), पृष्ठ 202 ।
66. ईशर सिंह नारा, कुछ अनगोले सन्त निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गु. ना. देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 436 ।
67. गोबिन्द नाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (चण्डीगढ : लिपि प्रकाशन 1980), पृष्ठ 203 ।
68. गोबिन्द नाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 190 ।
69. महीप सिंह, हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, सम्पा॰ मलिक मोहम्मद, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज 1977), पृष्ठ 266 ।
70. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज : सन अनुपलब्ध) पृष्ठ 191 ।
71. तारन सिंह, गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां, (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980) पृष्ठ 169 ।
72. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरवाणी दी हिन्दी टीकाकारी पंजाबी दुनियां सम्पादक हरचरण सिंह कैम्बल पुरी (पटियाला; भाषा विभाग पंजाब, अप्रैल, 1986), पृष्ठ 57 ।
73. भगत सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1979) पृष्ठ 100 ।
74. ज्ञानी ज्ञानसिंह, पंथ प्रकाशन (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970) पृष्ठ 17–18 ।
75. किरपाल सिंह, ज्ञानी ज्ञानसिंह दी इतिहास रचना, सम्पा॰ प्रीतमसिंह निर्मल सम्प्रदाय (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980) पृष्ठ 380 ।
76. वही॰, पृष्ठ 381 ।

77. तारण सिंह, निर्मल सम्प्रदाय दी टीका पद्धति निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 282 ।

78. सुरेन्द्र सिंह : निर्मल सन्तां दी पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पादक प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 252 ।

79. हकीकत सिंह अरविन्द निर्मल सन्तां दी दर्शन अते धर्म नूं देन निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतमसिंह, (अमृसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 189 ।

80. वही॰, पृष्ठ 190 ।

81. सुरेन्द्र सिंह, निर्मल सन्तां दी पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 253 ।

82. हकीकत सिंह अरविन्द, निर्मल सन्तां दी दर्शन ते धर्म नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गु. ना. देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 194 ।

83. महन्त गणेशा सिंह, अध्यात्म प्रकाश सटीक (अमृतसर : भाई बूटा सिंह प्रताप सिंह, 1953 सम्वत पृष्ठ 2 भूमिका ।

84. प्रकाश सिंह, निर्मलयां दे जपुजी सटीक, सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 302 ।

85. प्रकाश सिंह, निर्मलयां दे जपुजी सटीक, निर्मल, सम्प्रदाय सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 303 ।

86. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, अनुपलब्ध), पृष्ठ 1, प्राक्कथन ।

87. प्यारा सिंह भोगल, पंजाबी साहित दा इतिहास (जालन्धर छ हरिदेजीत प्रकाशन, 1971), पृष्ठ 296 ।

88. पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु, गुरु तेग बहादुर की काव्य भाषा का प्रकार्य मूलक अध्ययन नवम गुरु पर बारह निबन्ध, सम्पा॰ रमेशकुंतल मेघ) अमृतसर : गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय) पृष्ठ 112 ।

89. जयभगवान गोयल, हिन्दी साहित्य में गुरु तेगबहादुर का स्थान (वही॰) पृष्ठ 28 ।

90. भाई गुरदास, कबित भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध) सम्पा भाई वीर सिंह, (अमृतसर : खालसा समाचार, 1980), पृष्ठ 44 ।

91. तारनसिंह निर्मल सम्प्रदाय की टीका पद्धति, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 275 ।

92. तारन सिंह, निर्मल सम्प्रदाय दी टीका पद्धति, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 276 ।

93. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पंजाब का हिन्दी साहित्य का योगदान, सम्पा॰ लाल सिंह (पटियाला भाषा विभाग, पंजाब 1970), पृष्ठ 167 ।

94. वही॰, पृष्ठ 167 ।

95. गुरदास गुणी, कथा हीर रांझनि की, सम्पा॰ सत्येन्द्र तनेजा (पटियाला भाषा विभाग पंजाब, 1961) पृष्ठ 2 भूमिका ।

96. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, सम्पा॰ लाल सिंह, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 167 ।

97. मनमोहन सहगल, पंजाब हिन्दी साहित्य (पटियाला लीना पब्लिशर्ज अनुपलब्ध), पृष्ठ 18 ।

98. लाल सिंह, गुरु अर्जुन जीवनी एवं रचना (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970) पृष्ठ 52 ।

99. प्रेमप्रकाश सिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973), पृष्ठ 22 ।

100. जगबीर सिंह, गुरु नानक वाणी विच नैतिकता दा संकल्प (पटियाला भाषा विभाग, पंजाब, 1973) पृष्ठ 42 ।

101. वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन (इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन, 1972), पृष्ठ 15 ।

102. निर्मल कुमार कौशिक, भाई गुरदास व्यक्त्वि और कृतित्व (दिल्ली : सूर्य प्रकाशन, 1984), पृष्ठ 45 ।

103. मानसिंह, निरंकारी, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 23 ।

104. मानसिंह, निरंकारी, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 23 ।

105. गुरबचन सिंह तालिब, भारतीय दर्शन, परम्परा दे प्रसंग विच सिक्ख दर्शन दे कुछ पख, सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1975) पृष्ठ 203 ।

106. केवलकृष्ण मित्तल, निर्मल सम्प्रदाय दा दार्शनिक योगदान, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 204 ।

107. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला) लीना पब्लिशर्ज अनुपलब्ध), पृष्ठ 26–27 ।

108. गुरु अर्जुनदेव, सुखमनी साहिब (अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1981), पृष्ठ 91 ।

109. वही॰ , पृष्ठ 93 ।

110. प्रकाश सिंह निरमलियां दे जपु जी सटीक (निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1981), पृष्ठ 295 ।

111. संस्कृत और हिन्दी में जपुजी की प्रमुख टीकाएं–

(क) जपु गुढ़ार्थ दीपका : पं॰ निहाल सिंह थोहा खालसा

(ख) टीका गुरु भाव दीपका : पं॰ तारा सिंह नरोत्तम

(ग) पोथी टीका श्री जपु जी का : पं॰ हरसिंह

(घ) जपु प्रदीप : साधु देव सिंह

(ङ) जपु जी सटीक : साधु गुरदित्त सिंह

(च) जपु जी सटीक (महन्त गणेशा सिंह)

(छ) जपु जी दी टीका गरब गंजनी (भाई सन्तोख सिंह)

(ज) जपु जी साहिब सटीक सन्त निरंकार सिंह निर्मल

(झ) जपु जी सटीक (बाल बोधनी टीका) पं॰ तारा सिंह ।

112. प्रकाश सिंह, निरमलियां दे जपु जी सटीक, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गु. ना. देव. यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 294 ।

113. हरिभजन सिंह निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, सम्पा॰ लाल सिंह, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970) पृष्ठ 170 ।

114. पंजाबी वारतक, 1999 तक, मध्य कालीन पंजाबी साहित, सम्पादक : लाल सिंह, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 233 ।

115. वही॰, पृष्ठ 245 ।

116. मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1971), पृष्ठ 102 ।

117. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, सम्पा लाल सिंह (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970) पृष्ठ 169 ।

118. राय जसवीर सिंह, निर्मल भेख दा आरम्भ, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 35 ।

119. राय जसबीर सिंह, निर्मल भेख दा आरम्भ, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 36 ।

120. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों का हिन्दी साहित्य को योगदान, पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, सम्पा॰ लाल सिंह (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970) पृष्ठ 169 ।

121. निर्मल साधुओं दी सिक्ख धर्म नूं देन, शमशेर सिंह अशोक (निर्मल सम्प्रदाय, सम्प्रदाय, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 157 ।

122. राजिन्द्र सिंह शास्त्री, निर्मल डेरे : इतिहास ते प्रबन्ध, निर्मल सम्प्रदाय (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 64 ।

123. सुरैणसिंह, बिलखू आदि ग्रन्थ के परम्परागत तत्वों का अध्ययन (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973), पृष्ठ 5 ।

124. लाल सिंह ऐतिहासिक पिछोकड़ से संखिप्त सरवेखण, सन्त सिंह सेखों पंजाबी साहित्य दा इतिहास (भाग पहला) (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब 1971), पृष्ठ 15 ।

125. सुरिन्द्र सिंह, निर्मला सन्तों द्री पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह, (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 247 ।

126. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, सम्पा॰ लालसिंह (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970), पृष्ठ 172 ।

127. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, अनुपलब्ध), पृष्ठ 236 ।

128. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, अनुपलब्ध), पृष्ठ 243 ।

129. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 2025), पृष्ठ 85 ।

130. गंगाराम, शोभा श्रृंगार, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, सन् अनुपलब्ध) भूमिका, पृष्ठ 1 ।

131. महीपसिंह, निर्मल सन्तां दी हिन्दी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय (सम्पा॰ प्रीतम सिंह, अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 264 ।

132. हरमेन्द्र सिंह बेदी, पंजाब का हिन्दी रीति साहित्य, सम्पा॰ प्रेम प्रकाश शर्मा, पंजाब सौरभ (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, जुलाई 1986), पृष्ठ 8 ।

133. शमशेर सिंह अशोक निर्मल साधुआं दी सिक्ख धर्म नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय : सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 153 ।

134. सुरेन्द्र सिंह, निर्मल सन्ता दी पंजाबी साहित नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी 1981), पृष्ठ 248 ।

135. महीप सिंह, निर्मल सन्तां दी हिन्दी साहित्य नूं देन, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 270 ।

136. तारनसिंह निर्मल सम्प्रदाय दी टीका पद्धति, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981), पृष्ठ 278–279 ।

137. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरवाणी दी हिन्दी टीकाकारी पंजाबी दुनियां, सम्पादक हरचरण सिंह केबल पुरी, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, अप्रैल 1986), पृष्ठ 56 ।

138. धर्मपाल मैनी, शमीर सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य के हस्तलिखित ग्रन्थ (चण्डीगढ : हिन्दी परिषद, 1984) पृष्ठ 111 भूमिका ।

139. महीप सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1969 ई॰) पृष्ठ 347–48 ।

140. कान्हसिंह नाभा महान कोश (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1960), पृष्ठ 534 ।

141. महन्त गणेशासिंह, निर्मल भूषण अर्थात् इतिहास निर्मल भेख, वैद्यक भण्डार अमृतसर– संवत् 1994, पृष्ठ 43 ।

142. ईशर सिंह नारा, सफरनामा ते जफरनामा (गुरुगोबिन्द सिंह जी), दिल्ली डी॰ लाईट प्रैस, 1971), पृष्ठ 72 ।

143. प्रकाश सिंह, निरमलियां दे जपुजी सटीक, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा॰ प्रीतम सिंह (गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृत 1981), पृष्ठ 206 ।

144. राजा राधाकान्त देव, शब्द कल्पद्रुम, (वाराणसी : चौखम्बा सीरीज 1961 (दूसरा भाग) पृष्ठ 1961 टीकयते गम्यते प्रविश्यते गायते बानया ।

145. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, गुरवाणी दी हिन्दी टीकाकारी, पंजाबी विकास विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, तीसरी पंजाबी विकास कान्फ्रेन्स (9 दिसम्बर 1984), पृष्ठ 5 ।

146. निर्मल कुमार कौशिक, भाई गुरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व, (दिल्ली : सूर्य प्रकाशन, 1984), पृष्ठ 20 ।

147. ईशर सिंह तांघ, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीति काव्य, पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, अनुपलब्ध, पृष्ठ 52 ।

148. सुरेन्द्र सिंह शेरगिल, निर्मला सम्प्रदाय का पंजाबी साहित्य में स्थान आलोचना सम्पन्न गुरचरण सिंह, (लुधियाना : पंजाबी साहित्य अकादमी जुलाई–सितम्बर 1982), पृष्ठ 63 ।

149. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 191 ।

150. जोगिन्द्र सिंह, जपुजी दे टीके (समीक्षात्मक अध्ययन) जालन्धर : हिन्दी प्रैस, 1941) पृष्ठ 1 भूमिका ।

151. निर्मल कुमार कौशिक, निर्मल सन्तों की संस्कृत साहित्य को देन, विश्व ज्योति सम्पा॰ वेद प्रकाश विद्यावाचस्पति होशियारपुर साधु आश्रम, सितम्बर 1984) पृष्ठ 28 ।

152. धर्मपाल मैनी, शमीर सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ चण्डीगढ : हिन्दी परिषद, 1984), पृष्ठ 11 भूमिका ।

153. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर 1973), पृष्ठ 165 ।

154. धर्मानन्त सिंह, वैदिक गुरमत (जालन्धर : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा, 1965), पृष्ठ 227 ।

155. निर्मल कुमार कौशिक, निर्मल सन्तों का हिन्दी साहित्य (शोध पत्र) परिशोध सम्पा॰ जयप्रकाश शर्मा (चण्डीगढ) पंजाब यूनिवर्सिटी, अंक 1985, पृष्ठ 41 ।

156. यह सूची : प्रो॰ प्रीतम सिंह द्वारा, सम्पा॰ पुस्तक निर्मल सम्प्रदाय, प्रकाशन : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1981, पृष्ठ 228–229, डा॰ तारनसिंह निर्मल सन्तां दी टीका पद्धति से उद्धृत हैं ।

157. तारनसिंह गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980, पृष्ठ 121 ।

158. तारन सिंह गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 169 ।

159. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरवाणी की हिन्दी टीकाकारी, पंजाबी विकास कान्फ्रैन्स पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला : (7–9 दिसम्बर 1984)में पढ़ा गया पत्र, पृष्ठ 12 ।

160. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 196 ।

161. तारनसिंह, गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां, (परिभाषा : पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1980 ई०) पृष्ठ 141 ।

162. गोबिन्दनाथ राजगुरु, पं० गुलाब सिंह ते उनां दा साहित, निर्मल सम्प्रदाय सम्पा० प्रीतमसिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, 1981) पृष्ठ 339 ।

163. नवरत्न कपूर (डा०) संत गुलाब सिंह निर्मला : व्यक्तित्व और कृतित्व (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंक 15–1981) साहित्य मार्ग सम्पा० मनमोहन सहगल ।

164. तारन सिंह गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी 1980), पृष्ठ 154–55 ।

165. प्रकाश सिंह, निरमलियां दे जपुजी सटीक, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा० प्रीतम सिंह (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी–1981), पृष्ठ 306 ।

166. तारन सिंह, गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 158 ।

167. प्रकाश सिंह, निर्मलयां दे जपुजी सटीक, निर्मल सम्प्रदाय : अमृतसर (गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, 1971), पृष्ठ 303 ।

168. महन्त गणेशा सिंह, अध्यात्म प्रकाश सटीक, (अमृतसर भाई बूटासिंह प्रताप सिंह–संवत् 1958) भूमिका ।

169. तारन सिंह, गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां (पटियाला : पंजाबी यूनि० 1980) पृष्ठ 18, भूमिका ।

170. तारन सिंह, निर्मलसम्प्रदाय की टीका पद्धति, निर्मल सम्प्रदाय, सम्पा० प्रीतम सिंह (अमृतसर, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1980), पृष्ठ 275 ।

171. सुरेन्द्र सिंह शेरगिल, प्राचीन पंजाबी वारतक नूं निरमलियां दी देन, खोज पत्रिका, स० रतनसिंह जग्गी, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी मार्च 1983 ।

========

रूप–रेखा

खण्ड–चार

परिशिष्ट

खण्ड – चार

निर्मल सन्त साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन

निर्मल सन्त साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन

1. विषय वस्तु :–

प्रत्येक साहित्यकार रचना कार्य के समय अपने समाज तथा चारों ओर के वातावरण के प्रति पूर्ण रुपेण सचेष्ट होता है । तत्कालीन साहित्य में उसकी झलक देखी जा सकती है । मध्यकालीन साहित्य भी इसका उपवाद नहीं है । बाहर से आए आक्रमण–कारियों ने राजनैतिक दृष्टि से तो भारत को प्रभावित किया ही, साथ ही इसे आचार–व्यवहार से सामाजिक दृष्टि से भी पतनोन्मुख कर दिया । समाज के रीति–रिवाजों, खान–पान, रहन–सहन, भाषा–बोली, साहित्य और संस्कृति का क्रमशः आदान–प्रदान होना स्वाभाविक बात थी । धार्मिक कर्मकाण्डों में विषयांतर होते हुए भी समन्वय की भावना पनपी । फलस्वरूप भक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा । समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो ही प्रमुख जातियां थीं । जाति प्रथा प्रधान थी । लोग एक–दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे । भक्ति आन्दोलन के धामिक सन्तों तथा गुरुओं ने रूढ़ियों को तोड़ने का सफल प्रयास किया । मुसलमान शासक हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार करते थे । वे सम्पूर्ण हिन्दू समाज को मुसलमान बना देना चाहते थे । सभी जानते हैं कि मुसलमान कैसे विजयी मनुष्यों की खोपड़ियों के मीनार चिनाते रहे और अपनी विजय की खुशी में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहे । विजय के कारण कई शहरों के मन्दिरों मस्जिदों में बदल दिया गया और वहां के हिन्दू निवासियों को कई दशाओं में बिना भेद तलवार के घाट उतार दिया गया ।[1] ऐसे ही समाज में दास प्रथा एक अन्यतम बुराई के रूप में विद्यमान थी। बाल विवाह और परदाप्रथा इसी की देन है । शासक वर्ग अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता था । मुस्लिम शासन के दीर्घ काल में हिन्दुओं की दशा अत्यन्त तरस के योग्य भी और इन्हें प्रत्येक मुसलमान अपना दास ही समझता था ।[2] भारतीय कर्मकाण्ड रीति–रिवाज़, परम्परागत रूढ़ियां, वर्ण व्यवस्था को अत्यन्त जटिल बना रहे थे । इसके विपरीत मुसलमानों ने अपने धर्म के दरवाजे सभी के लिए खोल दिए थे । हिन्दू समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । शासकों के अत्याचारों और पारस्परिक फूट ने लोगों के नाक में दम कर रखा था । बहुत से तो धर्म को त्याग कर मुस्लिम मत धारण कर रहे थे, अपितु क्षत्रिय भी अपनी जायदाद और इज्जत बचाने के लिए मुसलमान बन रहे थे ।[3] हिन्दुओं ने अपनी सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा हेतु अपने नैतिक सिद्धान्तों का प्रचलन आरम्भ किया । धर्म के अनेक रूप जनता के सामने आए । परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ । धार्मिक सन्तों और गुरुओं के सद्प्रयासों से दोनों संस्कृतियों, सभ्यताओं और धर्मों का समन्वय हुआ । उन्होंने समाज की रूढ़ियों, आडम्बरों और कु–प्रथाओं का निषेध किया । समाज को सुधारने के लिए सती प्रथा और परदे रिवाज से भी सिक्खों को रोका गया । जाति–पाति का भ्रम मिटा कर कई अन्तर्जातीय विवाह किए ।[4] उस समय

ब्राह्मणवाद के प्रभाव के अन्तर्गत लोग एक–दूसरे वर्ण से घृणा करने लगे थे । ब्राह्मणों ने अपना प्रभाव बनाए रखने के लिए लोगों को गलत मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया था । लोग ऊंच–नीच की दृष्टि के धार्मिक कट्टरता में बंध चुके थे । समन्वय के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग न था । कई बार तो ऐसा होता था कि–विशेषतः ब्राह्मण का भोजन जहां पर पक रहा है, और वहां शुद्र की परछाई पड़ जाए, तो भोजन अशुद्ध हो जाता था ।[5] जाति प्रथा के जटिल नियमों को गुरूओं व धार्मिक नेताओं ने तोड़ा था । उन्होंने संगत व पंगत का सिद्धान्त देकर भगवान के नाम का अधिकारी सब को बनाया, कबीर, नानक आदि भक्तों ने जाति–पाति का भेदभाव मिटा कर समन्वय करके एक मानवधर्म की स्थापना की । मध्यकालीन भारतीय स्थितियों में जब भिन्न–भिन्न सामाजिक वर्गों की विचारधारा धार्मिक वैचारिक सीमा से बाहर नहीं जाती थी तब एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति वैचारिक संघर्ष आरम्भ हो जाता था ।[6]

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसी से प्रत्येक युग की सामाजिक प्रवृत्तियों का और जन–चित्तवृत्तियों का बिम्ब उस युग के साहित्यकारों के माध्यम से उनके साहित्य में अंकित होता है । रीतिकालीन साहित्य भी उसका अपवाद नहीं है । तो भी स्थानीय परिस्थितियां उस पर अपना प्रभाव अवश्य डालती हैं । पंजाब में विचरित हिन्दी साहित्य की भी कुछ ऐसी ही विलक्षणता है ।

पंजाब का रीतिकालीन साहित्य, अपनी विरासत को लेकर चला है । पंजाब में उस समय गुरुमत प्रचार का जो आन्दोलन चल रहा था, उसमें लगभग सभी गुरुओं, व्याख्याकारों, कवियों एवं लेखकों ने योगदान दिया । विभिन्न मतों का योगदान भी उल्लेखनीय है ।

इस युग की वीर भावना, सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावना की स्पष्ट अभिव्यक्ति 'दशम ग्रन्थ' तथा 'गुरु शोभा' आदि ग्रन्थों में हुई है । सिक्खमत की प्राणवत्ता एवं जीवन्त शक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही गई । यद्यपि जहां भी अनेक सम्प्रदायों ने जन्म लिया, जिनमें से प्रमुख थे उदासी, सेवापन्थी, सहजधारी, निर्मल आदि । परन्तु इन सम्प्रदायों के अनुयायी सिक्ख साधकों ने भी उस आन्दोलन को क्षीण नहीं पड़ने दिया । वरन् उसे सशक्त और दृढ़ ही किया ।[7]

रीति और भक्ति का समन्वित रूप इस युग की महत्त्वपूर्ण देन है । गुरुमत साहित्य और दरबारी साहित्य दोनों एक दूसरे को आत्मसात किए हुए हैं । गुरुमत प्रचार एवं गुरुवाणी की व्याख्या का यही काल रीतिकालीन शृंगारी भावनाओं का भी पोषक है ।

निर्मल सन्तों का साहित्य हिन्दी साहित्येतिहास के रीतिकाल का समकालीन साहित्य है । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने लगभग 1686 के आसपास इन सन्तों को काशी अध्ययनार्थ भेजा था । तब वापिस आकर पहले इन्होंने मौखिक रूप से ही गुरुमत का प्रचार आरम्भ किया था । साहित्य रचना का कार्य बहुत बाद में आरम्भ हुआ । पं॰ मान सिंह के शिष्य पं. गुलाब सिंह की रचनाएं ही निर्मल साहित्य की आरम्भिक रचनाएं मानी जाती हैं ।

क्योंकि उनसे पूर्व किसी भी निर्मल सन्त की कोई कृति प्राप्त नहीं होती । पं. गुलाब सिंह का जन्म 1732 ई. का है । अतः इन्हें निर्मल साहित्य का आदि कवि कह दिया जाए, तो अत्युक्ति न होगी । सम्भव है, नये अनुसंधानों से इनसे पूर्व किसी निर्मल सन्त की कोई रचना उपलब्ध हो सके लेकिन अब निर्मल साहित्य का आरम्भ पं. गुलाब सिंह से मानना ही उचित होगा । गुलाब सिंह से पूर्व किसी निर्मल सन्त द्वारा रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं । प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर निर्मल साहित्य का आरम्भ गुलाब सिंह द्वारा ही होता है ।[8]

रीतिकालीन साहित्य के समानान्तर पंजाब में जिस साहित्य की रचना हुई । वह अपने आप में एक नया मानदण्ड स्थापित करता है । श्रृंगार–परक प्रकृति के अतिरिक्त, भक्ति और शक्ति की अवधारणा एवं गुरुमत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला साहित्य निश्चय ही निर्मल सन्तों द्वारा विरचित अनूठा साहित्य है । इनके ग्रन्थों में विषयों की विविधता के साथ–साथ वेदान्त और गुरुमत दर्शन के समन्वय की अनुपमता उपलब्ध होती है ।

गुरुवाणी की व्याख्या करने में तत्पर वेदों और पुराणों के अध्येता, हिन्दी और संस्कृत ग्रन्थों के रचयित निर्मल सन्तों के ग्रन्थों का प्रतिपाद्य मूलतः भक्ति सम्बन्धी ही रहा है । लेकिन सैद्धान्तिक निरूपण के लिए इन्होंने दार्शनिक विषयों को भी अपनाया है सुदृढ़ आधार भूमि के कारण ही यह अपने लक्ष्य में सफल हो सके हैं । इन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या वेदान्त चिन्तन के सन्दर्भ में की है । लगभग सभी निर्मल संत अद्वैत वेदान्त दर्शन के पक्षधर थे । अद्वैत दर्शन के अनुसार जीव और ब्रह्म की एकरूपता पर बल दिया जाता है । जैसा कि गुलाब सिंह ने मोक्ष पंथ प्रकाश में कहा है–

जीव और परमात्मा या विध एक स्वरूप
भाखे तृतीय निवास में हरे मिटे तम कूप ।[9]

अद्वैत–वेदान्त दर्शन में निर्गुण और सगुण ब्रह्म को भी भिन्न नहीं कहा गया । वास्तव में दोनों एक ही है । सगुणोंपासना से निर्गुण का महत्त्व कम नहीं हो जाता । वास्तव में निर्गुण ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन उपासना के लिए वही सगुण माना जाता है । सगुण से ही उस निर्गुण ब्रह्म की सत्ता का आभास होता है । अतः सगुण ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण को पाने और जानने में सहायक सिद्ध होता है । निर्मल सन्तों ने केवल दार्शनिक सिद्धान्तों से ग्रन्थ ही नहीं रचे इन्हीं संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों के ग्रन्थों का भाषानुवाद भी किया, जिससे इनके साहित्य में विविधता के दर्शन होते हैं । निर्मल सन्तों को जड़ी–बूटियों का भी गहन ज्ञान था । अतः घूमते–घूमते प्रचार करते–करते लोगों की औषधि, व्याधि आदि की भी सेवा करते थे । इन्होंने वैदिक, ज्योतिष, पिंगल (छन्दशास्त्र) काव्यशास्त्र आदि के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे ।

पं. गुलाब सिंह, भाई सन्तोष सिंह, पं. साधु सिंह तथा तारा सिंह नरोत्तम प्रभृति विद्वानों ने अपने–अपने ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर पौराणिक प्रसंगों को उद्धृत किया है

और विश्वास अभिव्यक्त किया है । धर्म और पुराण के अटूट सम्बन्ध का प्रभाव सिक्ख परम्पराओं पर गहरा पड़ा है । इसलिए नरोत्तम का इन पौराणिक परम्पराओं में विश्वास उनके चिन्तन की कमज़ोरी है । गुरु नानक जी को जनक का अवतार मानना और उपनिषदों में गुरु नानक का नाम ढूंढना उनके इसी पौराणिक विश्वास कीं कमजोरी है ।[10]

निर्मल सन्तों ने चूंकि वेदों और पौराणिक ग्रन्थों का भली-भांति अध्ययन किया था । अतः उस साहित्य का प्रभाव भी उनके साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही था । निर्मल सन्तों की साहित्यिक अभिरुचि में निर्मल पंथ का ग्रन्थ गरुवाणी की व्याख्या वेदान्त के अनुसार करता है । रामकृष्ण आदि अवतारों को मानते हैं । गुरु ग्रन्थ का महत्त्व मानते हुए भी पुराण आदि का परायण करते हैं ।[11] उनके ग्रन्थों में पौराणिक सन्दर्भ एवं कथाएं विद्यमान हैं । पं. गुलाब सिंह निर्मला का भावरसामृत तो पौराणिक आधार पर ही रचा गया प्रतीत होता है । पौराणिक सन्दर्भ को आधार बना कर वे शील का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–

भव मण्डल मांहि सु सुसील फले
पुन सील परलोक बिरवै फल जाए
जग सील कु पालन उत्तम है
तन आपद ते नहि सील गंवाए
तन धार रहे जग भीतर जो
मन । कौन अहे नहिं जो दुख पाए
नृप पाण्डव से वन माहि बसे
जिनके हरि होवत नीत सहाए ।[12]

कवि शील को इतना महत्त्व देता है, तो शील के आगार मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति उसका आकर्षण स्वाभाविक ही है । भगवान राम के जीवन प्रसंगों के माध्यम से उन्होंने भगवान राम के उदात्त गुणों की चर्चा की है ।

सेत करे जिन सागर पै
सब देवन के दुख दूर मिटाए
रावण के दस सीस कटे
सु विभीषण के सिर छत्र फिराए
गौतम नारि उधार करी
मिथिलापति के जिन भौन सुहाए ।[13]

इस प्रकार अनेक स्थलों पर निर्मल सन्तों ने भगवान राम के कथा प्रसंगों को उद्धृत किया है । इतना ही नहीं कहीं--कहीं कृष्ण भक्त कवियों के समान ही कवि की आस्था सख्यभाव से ओतप्रोत हो जाती है । यथा--

बल हीनन के सब काज जिते
निज काजन हेतु सबे सु बिगारे

जग में सुभ काज बिसारत हो
बिधि कौन सुधाम सुख पाउ मुरारे ।[14]

इनके लिए प्रभु एक नामा न होकर बहुनामा है । इन्होंने राम, कृष्ण, हरि आदि को स्मरण करते हुए ही श्रीगुरु नानक देव और दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह का एक साथ स्मरण किया है । इतना ही नहीं इन्होंने गणेश, राम, सरस्वती देवी तथा सिक्ख गुरुओं की स्तुति एक ही पद में प्रस्तुत करके अपने–अपने समन्वयवादी सिद्धान्त को पुष्ट किया है ।

गुण नाइक सरस्वती, रघुवीर
सुनानक जी गुर आदि उदारे
गुरु गोबिन्द सिंह उदार बड़े
पुनि जागु रमे भवसागर तारे ।[15] —पुष्पिका 92

भगवान के आगे और गुरुओं के चरणों में प्रार्थना करने का उद्देश्य है, इस भव सागर से मुक्ति का निवेदन । इसके लिए निर्मल सन्तों ने जहां गुरुवाणी से ज्ञानार्जन करके अपने मार्ग को सुगम बनाया है, वहां इन्होंने वेदों और उपनिषदों के वेदान्तवाद से अद्वैतवाद की अवधारणाओं को साधना का सर्वोत्तम साधन माना है ।

--अद्वैतवादी वेदान्त आचार मीमांसा में मोक्ष प्राप्ति को ही साधक का लक्ष्य माना गया है, संचित प्रारब्ध और संचीय मान नामक त्रिविध कर्मों में से संचित कर्म का नाश तथा संचीय मान कर्म का निवारण किया जा सकता है किन्तु प्रारब्ध कर्म का नाश भोग के द्वारा ही संभावित है ।[16]

इनके लिए ईश्वरीय कृपा और गुरु का ज्ञान सहायक सिद्ध होते हैं और जीव दुःखों से मुक्ति पाने में सक्षम हो जाता है । क्योंकि गुरु के उपदेश से अज्ञान और भ्रम दूर हो जाता है । कहा भी है–

सो वेदान्त है गुरु अधीन
ता पद सेवे होइ सुदीन ।[17]

तथा–

सुसाधन जीवन मुक्त जो हरि गुरपाद मनाह
गुलाब सिंह यामे कहीं यतन करे सुखपाई ।[18]

पौराणिक सन्दर्भों के माध्यम से निर्मल सन्तों में अनेक स्थलों पर भगवान, राम और कृष्ण का गुणगान किया है और ईश्वर की उदारता का परिचय देते हुए कहा है–

गहि तंदुल बामन के कर से
तब आपद ताहि की दूर निवारी
गज कंज दए तब गुहि कटे
फल खाइ की भील सुता सु उधारी ।[19]

गुरुओं का स्मरण करते हुए इन्होंने नामस्मरण के महत्त्व पर अत्यधिक बल दिया है । यथा–

जिह नाम उचारत दूख मिटे
सुख सम्पद होई सदा ग्रहवासी

" " " " "
गुर गोबिन्द के पद व्यंजन से
सुभ जो उर में नित जोति प्रकासी ।[20]

वैदिक प्रभाव के कारण इन्होंने अशुभ फल नाश के लिए वेद मन्त्रों में भी अपनी आस्था व्यक्त की है । इनके ग्रन्थों में वेद मन्त्रों के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया गया है । बुरे स्वप्नों के प्रभाव से बचने के लिए गायत्रीमन्त्र का 'आठ हज़ार' जाप करने का विधान है । प्रातः उठ कर स्नान करके इसका जाप करने से मध्य रात्रि के स्वप्न का प्रभाव नष्ट होता है । कहा है–

ब्राह्मण का दुह सुपन जो आवे निसा मंझारा
प्रात नाई जल ग्रात्री पढ़े सु अष्ट हजारा ॥

इसके साथ ही नाम का महत्त्व बताया है–

स्तोत्र देवन के पढ़े प्रात भले मन लाई
दुहु सुपना फल दुख जो भ्रात सभी मिट जाई ।[21]

स्वप्नाध्यायी में गुलाब सिंह ने दुःस्वप्नों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए प्रभु के नाम को अतिलाभकारी कहा है–स्वप्नों के अच्छे और बुरे फल और उनके उपाय दोहा, चौपाई सोरठा और सवैया में दिए हैं नाम को श्रेष्ठ बताया है–

गुरु नानक और गोबिन्द सिंह की स्तुति बार–बार की गई है । दार्शनिक चिन्तन की दृष्टि से निर्मल सन्तों के ग्रन्थों में वेदांतवादी विचारधारा का अधिक प्रतिपादन हुआ है । कुछ निर्मल सन्तों ने तो वेदान्ती सिद्धान्तों पर पूरे–पूरे ग्रन्थ लिख डाले हैं और गुरुवाणी की व्याख्या में भी इनको आधार बनाया है ।

108 पं. स्वामी गुलाब सिंह जी महाराज विरचित मोक्ष पंथ प्रकाश वेदान्त का अपूर्व भाषा ग्रन्थ है–यह ग्रन्थ गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, स्वराज्य सिद्धि, अद्वैत सिद्धि, सिद्धान्त लेशादि, अद्वैत सिद्धान्त का सारांश लेकर लिखा गया है ।

प्रथम निवास में तत्पदार्थ दूसरे में तत्त्व पदार्थ, तीसरे में अखण्डार्थ, चतुर्थ में जीवन मुक्ति, पंचम में विदेह मुक्ति का निरूपण है ।[22]

अपने अन्य ग्रन्थों में भी वेदान्त के महत्त्व को प्रतिपादित किया है और इसे श्रुतिसार कहा है–

ग्राम अखिल श्रुतिसार भ्रात मैं तोह सुनाई
वेदांति वेद सुभ चरण सु मेरे बेद बताए
जो सरधा कर पढ़े को गुरु भगतिनिरंतरा
सो मम रूप समाह रहे नहरच सुअंतरा
सुन जो मन वन्दननं माहि, पुनि भगत
होई जग ताहि उर,
गुलाब सिंह निज भ्रात को राम
बखानयो ओधिपुर– ।[23]

अब तक उपलब्ध निर्मल सन्तों के साहित्य के आधार पर पं. गुलाब सिंह निर्मला, निर्मल सम्प्रदाय के आदि कवि है, इनकी साहित्यिक परम्परा में बाद में आने वाले कवियों–लेखकों ने इन्हीं के ग्रन्थों को आधार मान कर गुरुवाणी की व्याख्या की है ।

निर्मल सम्प्रदाय के विद्वान साधुओं में नरोत्तम का नाम अग्रगण्य है । वे दर्शन, व्याकरण, पुराण एवं कोश साहित्य के विशेषज्ञ प्रतीत होते हैं उनकी रचनाएं अधिकतर गुरुवाणी की टीका रूप में ही उपलब्ध है ।[24]

विविध विषयों के ज्ञाता होने के कारण इन्होंने अनेक विषयों के ग्रन्थों की रचना करके अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया । गुरु गिरार्थ कोश इनका गुरुवाणी की शब्दावली सम्बन्धी प्रथम कोश है । आपने गुरुवाणी की व्याख्या भी अपने मौलिक ढंग से ही की अपने वेदों और उपनिषदों में से अनेक उद्धरण लेकर गुरुमत सिद्धान्तों की पुष्टि की है ।

इन टीकाओं में उनका गुरुवाणी सम्बन्धी व्यापी अध्ययन और मनन प्रतिफलित हुआ है । गुरुवाणी को अद्वैतपरक सिद्ध करना नरोत्तम की टीकाओं का उद्देश्य जान पड़ता है ।[25]

इन्होंने अपने ग्रन्थों के आदि में गुरु का ध्यान किया है और ग्रन्थ की निर्विघन समाप्ति के लिए प्रार्थना की है । पुनः ग्रन्थ के निर्माण का उद्देश्य और ग्रन्थ की समाप्ति पर दिन, तिथि संवत् आदि का भी उल्लेख किया है–

दोहा– **कहा अर्थ गम्भीर यह कहा मम मति सुमीत**
सद्गुर कृपा न करे का खल हुधि चतुर बकीत
सम्बत नेत्र सिद्धि ग्रह कला निधि शुक्रे मास
दर्श तिथि उशना दिने पूरन भयो विलास
सर्व अर्थ संग्राह को इति चतुरथ अध्याय
ता भाषा गुरुदत्त कीन सु जनसुखदाय [26]

अपने ग्रन्थों में अपने नामधाम माता–पिता, वंश वर्णन आदि की प्रवृत्ति निर्मल सन्तों में अधिक प्रबल है संस्कृत ग्रन्थों की शैली के समान ही ग्रन्थ के आरम्भ में ग्रन्थ का विषय, उद्देश्य निरूपण और अन्त में अपने गुरु का स्मरण और अध्याय का विषय तथा ग्रन्थ का नाम लिखना इनका विशिष्ट गुण है । सन्त कवि निहाल सिंह म्रिगिन्द्र ने दोहरा भेदावली में अपने बचपन का वर्णन इस प्रकार किया है–

माता के माता पिता तब तन पाल्यो मोहि
पढ़ विद्या सत्संग करि कहयो योग यह तोहि ।।121
नाना सुख सिंह जी नानी रूपा जाना
अंम्रित सर तट वास जो इनकी कृपा पछाना ।।123
प्रगट करी लघु मती मैं दोहावली सुनामा
चुक सुधा रहिगे चतुर उपकारी जसधामा । 125

जे सुकवि, साधु सुमति कवि गानी गाते छंदा
ते पढ़ि—पढ़ि दोहावली हवेंगे परम अनंदा ॥126

सोरठा : **स्री ईसा के दास साहब लो के राज मैं**
दोहर वली प्रकास कीना अँम्रितसरितये ॥127
संमत (1914) बान सुचन्द खण्ड ससि सावन विखे
दायक परम अनंद रवि दिन पंचमी सफल भी
सुनु मम नामी बात जात समो जो नात सो ॥ 128
उठ सो नेम प्रभाति रात सफल हरि भजन क्रित ।129

इति स्री दोहा भेदावली श्री गुरु लाल सिंह चरणारविंदमलिंद निहाल म्रिगिन्द क्रित निहाल म्रिगिन्द हित सफल पंचमो संकरवरण समापतोयं पंचम प्रबन्ध : ॥5 ॥1॥[27]

भावपक्ष के साथ—साथ इन कवियों के ग्रन्थों में रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय प्रभाव भी परिलक्षित होता है, कुछ कवियों ने तो इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है, कुछ ने तो इसके सैद्धान्ति पक्ष का निरूपण भी किया है।

टहल सिंह जी के उपलब्ध काव्य ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि इनके काव्य में गुरु गोबिन्द सिंह जी की प्रशस्ति का स्वर मुख्य रहा साथ ही भावपक्ष की दृष्टि से इनकी रचना धार्मिक ही अधिक है । परन्तु भाषा शैली शब्द योजना अलंकृति आदि पर रीतिकाल की कलात्मकता का भाव स्पष्ट है ।

कुछ निर्मल सन्तों ने अपने ग्रन्थों में पौराणिक सन्दर्भों को भी उद्धृत किया है, जिससे यह अनुमान लगाना सहज हो जाता है कि इन्होंने पौराणिक साहित्य का कितना गहन अध्ययन किया था ।[28]

देवताओं और राक्षसों के युद्ध में समुद्र मन्थनोपरान्त जो चौदह रत्न निकले थे, उसका वर्णन करते हुए सन्त टहल सिंह लिखते हैं—

चतर दस रतन विभाग को कबित
मणलछ सारंग सुसंख्यह रतन चारि बिसन को
दीने लीने आपु तै विचार के
वेद जो धन न सो मे खज करै जग ततछकने
ताको उमा किया गार के
अमी देव दत मद घोड़ा सुर वंड लीते टहल सिंह
चौदा पाए सिंध ते नकार के—11 [29]

इनके ग्रन्थों में इनकी ज्योतिष सम्बन्धी विचारधारा का भी संकेत मिलता है । ज्योतिष में स्वप्न विचार आधारित जन्म—मृत्यु के सम्बन्ध में इनका ज्ञान दृष्टव्य है । संस्कृत ग्रन्थों के अध्येता ज्योतिष में भी विशिष्ट ज्ञान के अधिकारी हैं । यह पं. गुलाब सिंह के निम्न पद से स्पष्ट हो जाता है—

जे सुकवि, साधु सुमति कवि गानी गाते छंदा
ते पढ़ि--पढ़ि दोहावली हवेंगे परम्र अनंदा ॥126

सोरठा : **स्री ईसा के दास साहब लो के राज मैं**
दोहर वली प्रकास कीना अँम्रितसरितये ॥127
संमत (1914) बान सुचन्द खण्ड ससि सावन विखे
दायक परम अनंद रवि दिन पंचमी सफल भी
सुनु मम नामी बात जात समो जो नात सो ॥ 128
उठ सो नेम प्रभाति रात सफल हरि भजन क्रित ।129

इति स्री दोहा भेदावली श्री गुरु लाल सिंह चरणारविंदमलिंद निहाल म्रिगिन्द क्रित निहाल म्रिगिन्द हित सफल पंचमो संकरवरण समापतोयं पंचम प्रबन्ध : ॥5 ॥1॥[27]

भावपक्ष के साथ–साथ इन कवियों के ग्रन्थों में रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय प्रभाव भी परिलक्षित होता है, कुछ कवियों ने तो इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है, कुछ ने तो इसके सैद्धान्ति पक्ष का निरूपण भी किया है।

टहल सिंह जी के उपलब्ध काव्य ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि इनके काव्य में गुरु गोबिन्द सिंह जी की प्रशस्ति का स्वर मुख्य रहा साथ ही भावपक्ष की दृष्टि से इनकी रचना धार्मिक ही अधिक है । परन्तु भाषा शैली शब्द योजना अलंकृति आदि पर रीतिकाल की कलात्मकता का भाव स्पष्ट है ।

कुछ निर्मल सन्तों ने अपने ग्रन्थों में पौराणिक सन्दर्भों को भी उद्धृत किया है, जिससे यह अनुमान लगाना सहज हो जाता है कि इन्होंने पौराणिक साहित्य का कितना गहन अध्ययन किया था ।[28]

देवताओं और राक्षसों के युद्ध में समुद्र मन्थनोपरान्त जो चौदह रत्न निकले थे, उसका वर्णन करते हुए सन्त टहल सिंह लिखते हैं–

चतर दस रतन विभाग को कबित
मणलछ सारंग सुसंख्यह रतन चारि बिसन को
दीने लीने आपु तै विचार के
वेद जो धन न सो मे खज करै जग ततछकने
ताको उमा किया गार के
अमी देव दत मद घोड़ा सुर वंड लीते टहल सिंह
चौदा पाए सिंध ते नकार के--11 [29]

इनके ग्रन्थों में इनकी ज्योतिष सम्बन्धी विचारधारा का भी संकेत मिलता है । ज्योतिष में स्वप्न विचार आधारित जन्म–मृत्यु के सम्बन्ध में इनका ज्ञान दृष्टव्य है । संस्कृत ग्रन्थों के अध्येता ज्योतिष में भी विशिष्ट ज्ञान के अधिकारी हैं । यह पं. गुलाब सिंह के निम्न पद से स्पष्ट हो जाता है–

सुपन माहि जो छरद निहारे
चार मांस मों मरणु बीचारे
नख काटे सुपने तन जाके
तीन मास में मरना ताके–। 26 [30]

रीतिकालीन शृंगारी प्रवृत्ति को भी इन्होंने अपने ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नायिका भेद, रीतिकाल के कवियों का प्रमुख विषय रहा है। अनेक निर्मल सन्तों ने भी इस विषय को अपने ग्रन्थों का आधार बनाया और अपने विशद ज्ञान का परिचय दिया है।

बुद्ध सिंह, रस प्रदीपिका में नायिका भेद की चर्चा करते हुए अन्त में आध्यात्मिक पुट देते हैं–

मुगधा मध्या प्रौढ़ मति तिनकी बैस विचार
चारि चारि पुनि भेद हैं समझो कहों सुधार
अधिक लाज मुगधा करी नवल वधु इक भेद
दिन–दिन हुति तन में दियै देखतिल होय खेद
मुगधा पति सो परस के प्राता सिथल हवै गात
सखी जगावै हेतु घरि रस बसि सकल सुहात
प्रौढ़ा पति सो प्रेम अति लाज मांजिगी ताहि
भेद ताहि के कहत हो समझ सुजन मनमांहि
कैसे प्यारी सो मिलो चिन्ता या को नाम
अभिलाषा प्रिय पाईये जबै मिलावे राम
रैनि चेति नहीं आवती बकत अटपटी बात
कहत प्रलाप कवीस सब तपत ताप अति गात [31]

निर्मल सन्तों के व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, रस, छन्द, अलंकार, विवाह पद्धति, न जाने कितने विषयों पर ग्रन्थ लिखे। महन्त गणेशा सिंह विरचित ग्रन्थों की सूची से उनके द्वारा विविध विषयक ग्रन्थों का परिचय मिलता है।

गणेशा सिंह जी की अन्य रचनाएं–

1. स्वर दर्पण सटीक	12. कथा पूरन माशी
2. संभुज हरि स्वरोदय सटीक	13. सन्ध्या विधि
3. खालसा विवाह पद्धति	14. अध्यात्म प्रकाश सटीक
4. निर्मल कोश	15. स्त्री अमृत निषेध
5. भ्रम भेदन	16. अंग्रेज़ मिलाप
6. टके मन मुक्ति	17. भारत दर्शन
7. रति चन्द्रोदय	18. शृंगार शतक भाषा

8. मनुस्मृति भाषा

9. यति निदान सटीक

10. बाल चिकित्सा

11. ऐंग्लोमणी

19. पंज ग्रन्थी सटीक

20. वारतक मेघ

21. ननकाना साहिब गाईड[31]

इसके अतिरिक्त अनेक निर्मल सन्त ने गुरुमत सिद्धान्तों सम्बन्धी अपने ग्रन्थ रचे जिनमें गुरुओं की अवधारणा का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। साधु गुरदित्त सिंह कृत गुरमत सिद्धान्त सार और पं. तारा सिंह नरोत्तम कृत निर्णय सागर उल्लेखनीय है। गुरमत सिद्धान्त सार के उल्लिखित विषय इस प्रकार हैं–

1. देह धारी गुरु का निर्णय

2. अन्य मतों की इस शंका का उत्तर

गुरुवाणी स्थूल बुद्धि वालों के लिए रचा है। उसमें कोई सूक्ष्म विचार (फिलासफी) नहीं है।

3. गुरुवाणी के भेद में आशा कहने वाले भेद वादियों के मत का निषेध कर अभेद में आशा–निरूपण।

4. अनेक मतों की मुक्ति का स्वरूप और गुरुमत के अनुसार मुक्ति का स्वरूप।

5. वेद आदि ग्रन्थों का और गुरुवाणी के महावाक्य में अन्तर भाव निरूपण।

6. महावाक्य के अर्थ का निरूपण।

सिक्ख मत के सिद्धान्तों का निरूपण एवं गुरुवाणी की व्याख्या के साथ ही इन सन्तों के ग्रन्थों ने अनेक विषयों को अपने में समेटा है। इनके ग्रन्थों में भारतीय षड्दर्शन, वेद वेदांग, उपनिषद, सूत्र, रामायण, महाभारत सब को उद्धृत किया गया है। यह उनके विविध विषयों के अध्ययन अध्यापन का प्रभाव है। उन्होंने अपने अधिकांश ग्रन्थ प्रश्नोत्तर शैली में संवाद शैली में अथवा शास्त्रार्थ पद्धति में सम्पन्न किए हैं।[32] जिससे उनकी ज्ञान सम्बन्धी जिज्ञासा स्पष्ट परिलक्षित होती है।

ग्रन्थ के आरम्भ में वे अपने इष्ट, गुरु (गुरुओं) का स्मरण करते हैं। पुनः प्रश्नोत्तर शैली में विषय–उद्घाटन करते हैं, ग्रन्थों से उद्धरण लेकर व्याख्या द्वारा अपने मत की पुष्टि करते हैं। अनेक ग्रन्थों के सिद्धान्तों से तुलनात्मक पद्धति द्वारा अपने पक्ष का निराकरण करते हैं। विशेष रूप से उनके दार्शनिक ग्रन्थों के गुरुमत निरूपण सम्बन्धी विषयों में यह सब विशेषताएं उपलब्ध होती हैं। महन्त गणेशा सिंह के 'सलोक सहसकृति टीका' के इस अंश से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाएगी। ऐसे ग्रन्थों में उनका गद्य और पद्य दोनों शैलियों का विकसित रूप मिलता है।

एक ओंकार संतिनामु करता पुरुषु निरभै निरवैरु
अकाल मूरति, अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

अथ सहंसक्रित सलोक सटीक गुर सिक्ख संवाद लाल सिंह कृत लिख्यते प्रथम सिमरण आतम मंगला चरण करते हैं।

श्लोक : **आदि पूरण मधपूरण अन्त पूर्ण परमेश्वरह**
सिमरत संत सरबत्र रमण नानक अघनास जन जगदीसराह :
अब इस्ट कुल को वन्दना करते हैं–
आदि गुरये नमः जुगाद गुरये नमह
सतगुरये नमः श्री गुरु देवहे नमहै
बारम्बार जुगल कर बन्द के लाल सिंह दास
नमस्कार करता है सोई चार सरूप कैसे गुरु
हुए है तिन कर विखयान करते हैं ।

श्लोक : **गुरु गोबिन्द गोपाल गुर गुरु पूरन नारायण**
गुरु सम रबा दियाल गुरगुर नानक पतत उधारण हार

इससे आगे अपने भेष का एक स्वामी चंदा सिंह विरक्त जी को लाल सिंह नमस्कार करता है ।

सो पांच तत कौन है :–

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इहु पांचो तत हैं, जो इन पांचों के स्वभाव भिन्न–भिन्न हैं, सो कौने स्वभाव हैं । आकाश का लोभ स्वभाव है वायु का त्रिशना, स्वभाव है । अग्नि का क्रोध स्वभाव है, जल का मोह स्वभाव है पृथ्वी का मैं स्वभाव है । अब इनके गुण और रंग स्रवण करो । आकाश का शब्द गुण है रंग स्याम है । वायु का स्पर्श गुण है रंग हरा है अग्नि रूप रंग सुरख है ।

सो इन पांचों ही तत्वों से इन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं, यह कौन–सी इन्द्री है ।

श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका यह पांचों ज्ञान इन्द्रियां हैं और वायु, पाणि, पाद, गुदा, लिंग यह पांचों कर्म इन्द्रियां हैं । आगे इनकी उत्पत्ति सुण–स्रवण ज्ञान इन्द्रिय वाक करम इन्द्रिय यह आकाश ते हुई हैं त्वचा ज्ञान इन्द्री हाथ कर्म इन्द्रियां यह हवा से हुई हैं–नेत्र ज्ञान इन्द्रिय चरण करम इन्द्रिय यह दोनों अगन से हुए हैं । रसना ज्ञान इन्द्रिय लिंग कर्म इन्द्रिय यह जल से हुए हैं नासा ज्ञानेन्द्रियां गुदा कर्म इन्द्रिय यह पृथ्वी से उत्पन्न हुई हैं और शब्द स्पर्श सरूप रस गन्ध यह सूखम तन मात्रा नहीं है ।

सिम्रती आत्मा वाहाहिदमेक एव अग्र असीत यही आत्मा है जो सम्पूर्ण और अग्र होता मिया है इससे आगे कोई नहीं यह आप ही आप है और तीनों करम अब छः स्वरूप हैं । सिम्रती तस्मात ऐतत सिसटात देवधु प्रावस्त यह संसार प्रपंच को रच कर आप ही इसमें प्रवेश कर रहा है । और जो जीव नाम है, वह कल्पना है। सो तू ही उपाय कर जिससे कर्मबंधन से छूटे और मोक्ष का प्राप्त होवे ।

प्र.—हे भगवनः सहसकृत में एका नहीं है, केवल ओउम है और श्री गुरु नानक देव जी ने एक सहित एकोंकार कहा है, जो वेदों में विरुद्ध आता है । यह कैसे कहा है । कृपा कर कहो ।

उत्तर : हे सिक्ख धन्य है, तू जिसने ऐसा प्रश्न किया है । शब्द प्रमाण—

धन्य जननी जिन जायया धन पिता प्रधाना ऐसे प्रश्न रम्स हारियो की माता भी धन्य है और पिता भी धन्य है । अब इसके उत्तर को श्रवण कर ऐसा ही संशय अधिकांश पुरुषों के हृदय में होता है । सो अब तेरे पूछने से सबका संशय नष्ट होगा । हे सोम जैसा तैने मेरे पास प्रश्न किया है, तैसे ही एक समय गुरु अर्जुन देव जी के दर्शन करो कांशी ते पंडित आए । एकका नाम क्रिशन लाल था दूसरे का बृज लाल ।................हे महाराज जोती स्वरूप भगत व वेंद में ओ शब्द कहिया है और एका नहीं कहिया है । इससे बहुत ब्राह्मण हम से विरोध करते हैं ।

श्री गुरोवाच.............एका जो हमने आदि में कहा है, सो अद्वैत परमब्रह्म आत्मा कहा है । जैसे मंगलाचार में देवता का स्मरण करते हैं, तब विघनों का नाश होता है । तैसे हमने ग्ररु ग्रन्थ साहिब जी के मंगलाचरण में परम ब्रह्म आत्मा का स्मरण किया है ।

इति श्री सहंस क्रित सलोक सटीक

लाल सिंह

कृत समाप्त..................स ना 4—13 [33]

2. भाषा :—

गुरु गोबिन्द सिंह ने जिस उद्देश्य से 'खालसा पन्थ' की साजना की थी, उसी उद्देश्य से उन्होंने निर्मल सन्तों को अध्ययन अध्यापन की ओर प्रेरित किया था । गुरु गोबिन्द सिंह के इस प्रयास ने साहित्य और संस्कृति दोनों को अभय दान दिया । उनके इस प्रयास ने जीवन को संतुलित एवं समन्वित किया । मानव को एक नई दिशा प्रदान की, जिससे वह अपने जीवन को सही ढंग से जी सके । उन्होंने अपने दरबार में विभिन्न प्रान्तों के कवियों को आमन्त्रित किया और उनसे अनेक अमूल्य ग्रन्थों के अनुवाद कार्य को सम्पन्न किया । वे स्वयं विद्वत्ता के पुंज थे उन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया । उनके अपने जीवन में हम देखते हैं कि 'भक्ति और शक्ति के अद्भुत संघर्ष से उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था । निवृत्ति और प्रवृत्ति उनके क्रियात्मक जीवन की आधार भूमि रही है । .... वे केवल साहित्य रचयिता ही न थे अपितु साहित्य रचयिताओं के लिए अद्भुत प्रेरक शक्ति एवं उनके संरक्षक भी थे ।[34] 'गुरु गोबिन्द सिंह जी ने विभिन्न प्रान्तों के विद्वानों को अपने दरबार में एकत्रित किया था ताकि वे अमूल्य ग्रन्थों का भाषानुवाद करा सकें । गुरुमुखी लिपि में संस्कृत, फारसी, ग्रन्थों अनुवाद भी इसी योजना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । तब ब्रजभाषा और गुरुमुखी लिपि दोनों का सामंजस्य साहित्य के क्षेत्र में एक नई सूझ का परिणाम थी ।

भक्तिकाल में ब्रजभाषा आध्यात्मिक तथा धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिष्ठित हो चुकी थी । ......सिक्ख गुरु, उनके विचार भाषा शैली तथा लिपि (गुरुमुखी) जनता के लिए आदर्श बन चुकी थी । गुरु दरबारी कवियों तथा अन्य समकालीन एवं परवर्ती कवियों द्वारा ब्रज भाषा का प्रयोग संयोग की बात नहीं थी । इस भाषा एवं लिपि के साथ भावनात्मक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे ।[35]

गुरुमुखी लिपि का आविर्भाव भले ही भक्तिकाल में हो चुका था, लेकिन इसका विकास अधिकांशतः रीतिकाल में ही सम्भव हुआ, पंजाब में तो लगभग सम्पूर्ण रीतिकालीन साहित्य गुरुमुखी लिपि में ही उपलब्ध होता है । ब्रजभाषा के लिखे ग्रन्थों में भी इसी लिपि का प्रयोग हुआ है । भक्ति और रीति की समन्वित इस लिपि ने हिन्दी साहित्येतिहास को एक नई दिशा प्रदान की है । गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी के भक्ति काव्य का निर्माण रीतिकाल के अन्तिम चरण तक निरन्तर होता रहा । अतः पंजाब प्रान्तीय हिन्दी का यह साहित्य भक्ति तथा रीतिकाल की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता । पंजाब में लिपि भेद को इतना महत्त्व नहीं दिया गया । पंजाब में हिन्दू और सिक्ख साहित्यकारों ने गुरुमुखी लिपि का ही प्रयोग किया है । रचना चाहे किसी भी प्रकार की हो और मुसलमानों ने फारसी आदि । देव नागरी पंजाब में कभी भी प्रचलित नहीं हुई इस लिपि में लिखी गई रचनाएं पंजाब में कम ही प्राप्त होती हैं ।[36]

हिन्दी साहित्येतिहास के सन्देश में पंजाब का हिन्दी साहित्य एक नए आयाम को लेकर प्रस्तुत हुआ है । पंजाब में रचित साहित्य की भाषा चाहे फारसी संस्कृत हो, साध भाषा हो, चाहे ब्रज हो लहन्दी अथवा सिंधी मगर उसकी लिपि गुरुमुखी ही रही है इसी परिप्रेक्ष्य में गुरुवाणी सम्बन्धी साहित्य भक्तिकाल का हो या रीतिकाल का अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है ।

पूर्व नानक काल में साध–भाषा तथा ब्रजभाषा का काव्य–जगत में प्राधान्य था । गुरु नानक ने इन भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त लोक भाषा में भी अपने विचारों को व्यक्त किया । कालान्तर में इनमें से दो भाषा शैलियों का जन्म तथा विकास हुआ । गुरु अर्जुन की वाणी में यह पृथकता स्पष्ट हो चुकी थी । इन्होंने पंजाबी तथा ब्रज के साथ लहंदी भाषा में भी काव्य रचना की । इन्हीं के समकालीन भाई गुरुदास ने भी पंजाबी (39 वारें) तथा ब्रज (675) कबित्त सवैये, दोनों भाषाओं का प्रयोग किया ।[37]

पंजाब के आने वाले सभी कवियों ने लगभग इन्हीं दोनों भाषाओं में गुरुमुखी लिपि को प्रयुक्त किया । साथ ही ब्रज भाषा की विशेषताओं को भी संजोए रखा । भावपक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से भी रीतिकालीन साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष अधिक पुष्ट दिखाई देता है । उनकी बहुत प्रतिभा का प्रमाण उनकी विभिन्न विषयों पर रचित पुस्तकों से सहज ही मिल जाता है । उनकी रचनाओं में हमें विविध काव्य विशिष्टता परिलक्षित होती है ।

–काल्पनिक और भाषा सम्बन्धी सौन्दर्य और सुकुमारता उपयुक्त शब्दों के प्रयोग अलंकारों, रसों गुणों आदि को देखते हुए कवियों की काव्य प्रतिभा की सराहना किए बिना नहीं रहा जा सकता । उनकी रचनाओं को समझने के लिए कामशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद शरीर विज्ञान आदि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है ।[38]

इस काल का साहित्य विविध विषयक होने के कारण सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की विशिष्टताओं को अपने में संजोए हुए हैं । पुनः पंजाब की धरती की गन्ध का भी इसमें सम्मिश्रण है । गुरुमंत विचारधारा के साथ–साथ वीरता, नीति, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, श्रृंगार आदि प्रवृत्तियों को यह अपने में संजोए हुए हैं । यही कारण है कि पंजाब में जितने भी कवि हुए हैं, उन्होंने इस विविधता को अपनाया है । पंजाब में अधिकतर गुरुवाणी साहित्य की व्याख्या पर ग्रन्थ रचे गए हैं, जोकि सिक्ख गुरुओं की समन्वयात्मक भक्तिभावना और दार्शनिकता को उद्घाटित करते हैं । रीतिकालीन सम्पूर्ण गुरुवाणी परक साहित्य ब्रजभाषा में रचा गया है लेकिन गुरु भाव एवं श्रद्धा के वशीभूत उस सम्पूर्ण साहित्य की लिपि गुरुमुखी होना स्वाभाविक ही है ।

–गुरुओं की भक्ति भावना और ब्रजभाषा में कथित उनकी वाणी के कारण सिक्ख पंथ के प्रति ब्रज में सदैव सौहार्द रहा है।[39]

ऐसा नहीं है कि रचना नहीं हुई । मगर बहुत कम । कुछ सिक्ख सम्प्रदायों ने दोनों भाषाओं में अपना योगदान दिया है । ब्रज के अतिरिक्त पंजाबी और संस्कृत में भी ग्रन्थ रचे गए ।

--स्थानीय बोलियों में अलग रचना होती ही थी किन्तु ब्रज भाषा में साहित्य की रचना किए बिना जैसे कवियों को चैन नहीं पड़ता था । अतः ऐसे अनेक कवि मिलते हैं, जिन्होंने अपनी बोली के साथ–साथ ब्रज भाषा में भी काव्य रचना की, किसी–किसी ने तो ब्रजभाषा में ही रचना की । ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे, जिन्होंने स्थानीय बोली में कम और ब्रज में अधिक रचना की ।[40]

प्रमुख रूप से उदासी, सेवापन्थी और निर्मल सन्तों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं । लगभग दो शताब्दियों तक इन सन्तों ने ब्रज भाषा को गुरुमुखी लिपि का परिध्धान प्रदान किया । कालान्तर में इनकी व्याख्या पद्धति पर पंजाबी का प्रभाव पड़ने लगा और गुरुमुखी लिपि का सम्बन्ध सीधा पंजाबी भाषा से जुड़ गया ।

बीसवीं शती में शिक्षा प्रणाली और सिंह सभा लहर आदि के कारण गुरुवाणी की टीकाकारी में परिवर्तन हुआ । इस परिवर्तन का प्रभाव निर्मल विद्वानों की लेखन रीति पर भी पड़ा । उनकी टीकाकारी अत्यधिक सीधी हो गई और शैली सरल तथा स्पष्ट ।[41] परिणामस्वरूप गुरुवाणी की टीका पद्धति के लिए गुरुमुखी लिपि और पंजाबी भाषा अधिक उपयुक्त जान पड़ी क्योंकि धीरे–धीरे ब्रज की अपेक्षा पंजाबी भाषा लोगों के अधिक निकट जान पड़ी । पंजाबी लोगों में इतनी लोकप्रिय हुई कि धीरे–धीरे अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अनुवाद भी इस भाषा के गद्य में होने लगे ।

–इस काल में निरोल संस्कृत के अनुवाद भी हुए । पं. सदा सिंह ने अद्धैत सिद्धि 'और पं. बुद्ध सिंह ने तर्क संग्रह का पंजाबी गद्य' में अनुवाद किया ।[42]

इसी परम्परा को आगे बढ़ा कर संस्कृत के विद्वानों ने अपनी विद्वता का लाभ उठाते हुए अनेक संस्कृत ग्रन्थों के भाषानुवाद किए । मगर इनकी भाषा में ब्रजभाषा का प्राधान्य है, प्रारम्भ में इन्होंने अपने ग्रन्थ ब्रज में ही रचे–

–हिन्दी पुस्तकों में भी एक बड़ी संख्या संस्कृत ग्रन्थों के भाषानुवाद की है । निर्मल साधुओं का ग्रन्थ सृजन कार्य औपचारिक भी था और अनौपचारिक भी । औपचारिक अध्यापन संस्कृत ग्रन्थों और गुरुवाणी का होता था । अनौपचारिक अध्यापन का सम्बन्ध कथावार्ता एवं धर्म प्रचार से था ।[43]

अधिकांशतः इनके ग्रन्थ संस्कृत निष्ठ ब्रज से ही प्रभावित हैं, पद्य और गद्य दोनों ही रूपों में इन्होंने गुरुमुखी लिपि को अमूल्य शब्द भण्डार से सुशोभित किया है । अन्य सम्प्रदायों के पंजाबी की ओर उन्मुख हो जाने पर भी निर्मल सन्त ब्रज में ही रचना करते रहे और अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को प्रदान किये ।

गुलाब सिंह (18वीं शती) से लेकर ज्ञानी ज्ञान सिंह (20वीं शती) तक इन्होंने अपनी काव्य कृतियों का माध्यम हिन्दी को ही बनाए रखा । 19वीं शती के अन्तिम और 20वीं शती के प्रथम चरण में जबकि सिंह सभा के प्रचार से सिक्ख लेखक और जनसाधारण पंजाबी की और प्रवृत्त हो रहे थे, निर्मल सन्त हिन्दी के प्रति निष्ठावान रहे । निर्मल सन्तों की एक भी उल्लेखनीय कृति पंजाबी भाषा में उपलब्ध नहीं होती ।[44]

शमशेर सिंह अशोक ने पंजाब में रचित सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन करते हुए इन्हें साध–भाषा या सधुकड़ी मिश्रित ब्रज में सम्मिलित किया है ।

पंजाबी की सभी हस्तलिखित पुस्तकों को अगर समूचे रूप में बोली की दृष्टि से देखा जाए तो उनमें 60% सधुकड़ी बोली में है, जहां कुछ भाग ब्रज भाषा के साहित्य का भी है । इसके बिना 25% शुद्ध और ठेठ पंजाबी में हैं 15% संस्कृत उर्दू फारसी, बांगरु हरियाणवी और रेखते की बोली में ।[45]

जैसा कि पहले कहा गया है लगभग 20वीं शती के आरम्भ में निर्मल सन्तों का झुकाव पंजाबी भाषा की ओर उन्मुख हो गया और इन्होंने ब्रज के साथ–साथ कुछ ग्रन्थ पंजाबी भाषा में भी रचे । ब्रजभाषा में सिक्ख इतिहास लिख़ने की परम्परा के अन्तिम प्रमुख कवि गिआनी गिआन सिंह (1882–1926) थे उन्होंने ब्रज तथा पंजाबी दोनों भाषाओं में साहित्य रचना की ।[46]

गद्य और पद्य समान रूप से निर्मल सन्तों ने ग्रन्थ रचना की है । अधिकांश व्याख्या ग्रन्थ अथवा अनुवाद ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं । मौलिक रचनाएं कम उपलब्ध होती हैं । व्याख्या पद्धति में गद्य और पद्य दोनों में ही इनकी भाषा ब्रज मिश्रित साध भाषा है ।

पं. तारा सिंह नरोत्तम का नाम निर्मल सन्तों में अग्रगण्य है । एक अच्छे साहित्यकार के रूप में उन्होंने गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में पदार्पण किया और अनेक ग्रन्थों का प्रणयन

किया । गुरुवाणी की व्याख्या के साथ–साथ आपने गुरु गिरार्थ कोश की भी रचना की जोकि गुरुवाणी का प्रथम कोश माना जाता है ।

नरोत्तम जी ने कई सहस्त्र पृष्ठ व्यापी गद्य हिन्दी साहित्य को दिया है । थोड़ी बहुत पद्य रचना भी उन्होंने की है । उनका प्रधान क्षेत्र है गद्य । विशुद्ध गद्य की दृष्टि से उनकी रचनाओं में तत्सम प्रधान शब्दों का व्यापक प्रयोग हुआ है । पंजाबी शब्दों और मुहावरों की पुट उनके गद्य की उल्लेखनीय विशेषता है प्रवाहपूर्ण तथा शक्तिशाली भाषा के वे मनस्वी शिल्पी हैं ।[47]

कुछेक कवियों ने तो एक आध रचना के अतिरिक्त सम्पूर्ण साहित्य ही ब्रज भाषा में रचा है । प्रसिद्ध कृति रामगीता के प्रणेता पंडित मोहर सिंह की रचनाओं का अवलोकन करने से विदित होता है कि उनकी आठ कृतियों से केवल एक ही कृति पंजाबी में उपलब्ध होती है ।

आचार्य मोहर सिंह की आठ कृतियां उपलब्ध हैं, जिनमें से रससमूह रचना रीति विषयक है । शेष कृतियों में से रामगीता तथा सोहरफी काव्य कृतियां हैं, शान्ति पर्व, अरूप पर्व, मनोस्मृति तथा जपुजी अनूदित ग्रन्थ है । इन्द्र प्रकाश निघण्टु वैद्यक ग्रन्थ है । इन ग्रन्थों का निर्माण महाराज महेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह, रणजीत सिंह तथा दलीप सिंह की इच्छानुसार हुआ था । 'सोहरफी' पंजाबी भाषा में है । जबकि शेष कृतियां ब्रज भाषा में हैं ।[48]

इनकी भाषा में संस्कृत के अतिरिक्त अरबी–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है ।

अरबी–फारसी युक्त शब्दावली–

जो इन ते हरि नाहि मिले,
तब जामन सिंघ गुलाब तुमारो ।[49]

पंजाबी भाषा का प्रभाव भी यत्रतत्र देखा जा सकता है ।

जग याचक दीनन के गन जेकर
कोप सभै जिन द्वार ते टारे ।।[50]

भाव और भाषा का सामंजस्य बनाए रखने के लिए इन्होंने छन्द की पूर्ति पर अत्यधिक बल दिया है । इसीलिए अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में मिलता है । संस्कृत भाषा का सही उपयोग इन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है, वर्णो की शुद्धता और उच्चारण सम्बन्धी ज्ञान को यह बराबर ध्यान में रखते हैं । यथा 'अगिआन' और 'ग्यान' शब्द ज्ञान (ज + ञ) का प्रयोग देखिए ।

'सो अगिआन' है इह जो लौ
सरब अनरथ है नर तो लो
ताको नासक आतम ग्यान
सो वेदान्त ते नीके अधीन ।[51]

इससे यह ज्ञात होता है कि निर्मल सन्त व्याकरण के ज्ञाता होने के कारण अपनी रचनाओं में व्याकरण के सिद्धान्तों का भी ध्यान रखते थे।

कविता के समान ही उनका गद्य भी अत्यन्त रोचक एवं मधुर है। इन्होंने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थों को भी अत्यन्त रोचक ढंग से रचा है ताकि ऐतिहासिक नीरसता का आभास न हो सके। साधु गोबिन्द सिंह जी ने इतिहास गुरु खालसा को इतने रोचक ढंग से लिखा है कि पढ़ते हुए उपन्यास का सा आनन्द आता है। इतिहास गुरु खालसा की भूमिका में एक विद्वान ने लिखा है--

वह संस्कृत के असाधारण विद्वान थे, हिन्दी के बड़े प्रेमी थे, बड़े शांत थे, बुद्धिमान थे और सामयिक बातों के अच्छे ज्ञाता थे। खेद है कि पुस्तक छपते ही उनका देहान्त हो गया। वह खालसा सम्प्रदाय के बड़े प्रेमी थे। उन्हें खालसा इतिहास का बड़ा अनुभव था। और उन्होंने खूब ही इस विषय का अनुशीलन किया था। बस यह पुस्तक उसी का निचोड़ है। यह पोथी केवल सिक्ख धर्म के अनुयायियों के ही काम की नहीं है। वरन भारत वर्ष का एक सच्चा इतिहास है। भाषा इसकी इतनी रोचक है कि इसे इतिहास के साथ ही उपन्यास का नाम भी दे दिया जाए, तो अनुचित नहीं है।[52]

अतः पद्य की तरह निर्मल सन्तों का गद्य भी अत्यन्त परिमार्जित और पुष्ट है। इनके गद्य में ब्रज और पंजाबी के मिश्रित प्रभाव को स्पष्टतः देखा जा सकता है। यह प्रभाव इनकी भाषा सम्बन्धी उदारता का परिचायक है।

इस भारत वर्ष में कौन बुद्धिमान सज्जन मनुष्य इस वार्ता को नहीं जानता कि श्री गुरु तेग बहादुर साहिब नवम गुरु ने हिन्दू धर्म की रक्षा के वास्ते अपना शरीर ही समर्पण कर दिया जिन्होंने शान्त सागर में डूबती हुई हिन्दू धर्म की नाव को पुनः उत्तीर्ण किया। ....सभी तो इन श्लोकों के महत्त्व को पाठ तथा अर्थ द्वारा जानते ही हैं परन्तु अन्य देश के लोग जोकि इस भाषा से परिचित नहीं तथा जो केवल संस्कृत भाषा से ही परिचित हैं, वह इस अमृत रस के पान से वंचित रहते हैं। वह भी इस अमृतवाणी के रस को पान करें, ऐसा विचार करके मेरे परम मित्र सदा सहकारी श्रीमान सन्त मुकन्द सिंह जी ने प्रेरणा की कि इन श्लोकों को संस्कृत भाषा में अनुवाद करना चाहिए। उनकी शुभ प्रेरणा तथा परम हितवाणी को श्रवण करके मुझ शक्तिहीन का चित इस कार्य के लिए उद्धृत हुआ। यद्यपि छन्द शास्त्र तथा व्याकरण का मुझे कुछ पूर्ण बोध नहीं था तथा शरीर भी व्याधि ग्रस्त था तथापि श्री गुरु तेग बहादुर जी की कृपा से यह कार्य निर्विघन समाप्त हुआ। साथ ही हिन्दी भाषा में संक्षिप्त इन श्लोकों की व्याख्या भी की गई।[53] इनके ग्रन्थों के आरम्भ में संस्कृत में स्तुति एवं उसी शैली में ग्रन्थारम्भ को देखने पर पता चलता है कि इनके साहित्य पर संस्कृत साहित्य का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। बाद में जो गद्य का रूप मिलता है, वह मानो आज का खड़ी बोली का ही गद्य है--

--ॐ तत्सत्सर्वेभ्यो गुरुभ्योनमः ॥ अखण्डानन्दरुपाय गुरुदित्त सिंह ध्यान्तध्वंस पटीय से। नानकादर्येति बोध्याय गुरवे ब्रह्म रुपिणे। नमस्कृत्वा जप व्याख्या भूमिका

रचनाम्यहम् । पश्य तु सज्जनाः प्रीतया प्रोत्फुल्ल, हृदया सदा ॥ ....हम में कारण यह है जोकि एक तो गुरुमुखी अक्षरों में संस्कृत श्लोक तथा श्रुति प्रमाण का लेख ठीक–ठीक नहीं लिखा जाता और यदि किसी प्रकार से अक्षर ज्यादा संकेत करके लिखा जाए तब भी गुरुमुखी के पाठक गणों को मुहावरे को न जानने से यथार्थ उच्चारण नहीं होगा । इस वास्ते नागरी वर्णो में व्याख्यान करना योग्य है। .... जिस प्रकार कोई धर्मात्मा पुरुष बावली कूप तालाब बनवाता है तब वह संकल्प करता है कि इसके जल को सर्व जीव पान करे और अपनी प्यास को बुझा कर शान्त होवे । इसी प्रकार गुरु जी की प्रेरणा से मेरे मन में संकल्प है । इस व्याख्यान से सर्व को परमेश्वर की भक्ति रूप महारस की प्राप्ति होवे ।[54]

इन्होंने सामान्य जनता को दार्शनिक विषयों से ज्ञात कराने हेतु सोद्देश्य रूप से इन ग्रन्थों का गुरुमुखी में लिप्यन्तरण किया देवनागरी से गुरुमुखी में लिप्यन्तरण करके निर्मल सन्तों ने एक बहुत बड़ा उपकार किया है । साथ ही गुरु जी की मनोकल्पना को साकार अभिव्यक्ति दी है । इसलिए निर्मल सन्तों ने दोनों लिपियों में ही ग्रन्थ रचना और अनुवाद कार्य किया ।

श्री गुरु जी का जो संकल्प है कि जिस किसी प्रकार से इन जीवों को भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादिक प्राप्त होवे तैसे यत्न करना चाहिए, इस संकल्प की दृढ़ता गुरु ग्रन्थ के व्याख्यान से ही होवेगी । इस वास्ते ग्रन्थ जी का व्याख्यान गुरुमुखी नागरी में अवश्य कर्त्तव्य है ।

ॐ तत्सत । गंगातीरे समाश्रित्य राजघाटाख्य सुस्थलम् ॥
ॐकारि साधु सिंह ने गुरवाणातुष्टि सिद्धये
वेदसार समुद्धत्य जप व्याख्या मनुत्तमाम ॥ मम श्रम सुफल कुर्वन्तु
सम बुद्धयः ।[55]

अपनी व्याख्या के अन्तर्गत गुरुमत की व्याख्या करते हुए उसी के अनुरूप शब्दावली का चयन करते हैं ताकि वे लोगों तक अपने सन्देश को पहुंचा सकें । कहीं–कहीं इनकी भाषा पर विशेष रूप से गद्य पर पंजाबी का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

–दशम ग्रन्थ में मानो मन में अपने श्री मगांती मनाई चले अतीत के वेस को धार राई । सो इसका अर्थ मालूम हो जोकि एक समय में ही दशम गुरु जी में त्यागी का वेष आनन्दपुर में धारण किया था । सो यह उक्त विचार को जो दशम ग्रन्थ में है । इसी कथन से उक्त त्यागी वेष संधूरी, भगवें वस्त्र को निर्मले सन्त धारण करते हैं ।

आदि गुरु ग्रन्थ साहिब में चौले जिनां के रतड़े पियारे कन्त तिनां दे पास–इत्यादि और भी बहुत पाठ है । इस विचार का तात्पर्य मालूम हो । जोकि इस दस गुरु मत के धारण करने वाले का फिरका (सम्प्रदाय) दोनों श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के पाठ करके निरूपण नहीं होवेगा । सो पुरुष श्री गुरु मत से बोध कहा जावेगा ।[56]

संस्कृत के ग्रन्थों का भावानुवाद इन निर्मल सन्तों का विशिष्ट गुण है । संस्कृत के विद्वान ज़ो गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञ हैं, उन तक गुरवाणी के अमर सन्देश को पहुंचाने

का श्रेय भी निर्मल सन्तों को ही है । गुरुवाणी का संस्कृत के श्लोकों में भावानुवाद द्रष्टव्य है ।

गुण गोबिन्द गायो नहीं जन्म अकार्थ कीन
कंह नानक हरि भजु मना जिहि विधि जल को मीन
गोविन्दय गुवानु कीर्ति रहितो मोर्घ जना जीविति
त्वामस्माद गुरुराह मानस भजे शं वारिमीनो यथा
बलु हो आ बन्धन छुटे सब किछु होत उपाई
नानक सम किछु तुमरे हाथ में तुम ही होत सहाई ।
बल संजायते बन्धास्त्रघन्त्य खिल सिद्धयः
सभमन्तिगुरु प्राद्द सर्व त्व कृपया भवेत ।।[57]

इनके ब्रज भाषा ग्रन्थों में भी यंत्र तंत्र इनकी संस्कृत की छाप दिखाई देती है । संस्कृत भाषा के ज्ञाता होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है ।

कहीं कहीं तो पूरे पद में संस्कृत के शब्दों की भरमार होती है, अन्यथा एक आध शब्द तो आ ही जाता है । संस्कृत अनुरूप समस्त पदावली--

निरावैव अक्रिया प्रधान
तैसे ही परमात्म जान
ताको नाहि सयोगहि होई
भिरावैव अक्रै है दोई ।।[58]

कहीं--कहीं संस्कृत और ब्रज का इतना निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि अन्तर ही स्पष्ट नहीं होता ।

संस्कृत और ब्रज की समवर्तिनी अनुनासिकता--

प्रधान विनासी बखाने विचारो
हनै जीव वंध मती जाइ खारा
अनासी प्रधानं सदा तोहिं मानी ।[59]

कहीं--कहीं कवि की तो पूरी रचना में ही इस प्रभाव को देखा जा सकता है । टहिल सिंह के कबित्तों पर यह प्रभाव अधिक दृष्टिगत होता है ।

उदरि अपार मृगं मोख दाते
सुखी संगतै के बहुलोकिजाते
महाजोगि जोगीसर जोगिधारी
दयाल सरूपे नमानं हमारी--19 ।।
हमं सार खेसो कितानं जु तारे
महा नीजुते ऊच कै कै उबारे
बड़ी बेदी सोभा गुरो की विथारी
दयालं सरूपे नमानं हमारी ।

अकामं नरामेविद मेसु छितियागी
जरी मोहि पासी महा भोग भागी
जपी हेत पी है कुलै जूथ तारी ।
दयाल सरूपे नमामं हमारी
कल के विनासी अल सिद्ध साधी
दबे चित्त बेगं सदा है समाधी
कुसग किन गीत ईमारू हारी
दयालं सरूपेण नमामं हमारी
ति हे पंकज सिंध भीमें विराजे
कहा हान लभि कहा लोक लाजै
महापुनि भागी अहावोघि धारी ।
दयाले सरु पेण नमामं हमारी ।।[60]

इसी प्रकार हर सिंह साधु प्रणीत गुरु सिद्धान्त पारिजात ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा गया ग्रन्थ है, जो गुरमत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है । उसकी भाषा पद्यमय संस्कृत है ।

श्री गुरु सिद्धान्त पारिजात, ब्रह्म कुटी, निर्मल आश्रम, काशी के निवासी संस्कृत साटिक के धुरन्धर विद्वान, संत कवि श्री हर सिंह साधु का लिखा हुआ उच्च कोटि का सद्ग्रन्थ है । इसमें ग्रन्थकार ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के सबल समर्थक, संरक्षक एवं हिन्दुत्व के सहज अभिभावक आर्य गुरुओं (दस सिक्ख गुरुओं) के आदर्श जीवन, सत्य सनातन सिद्धान्त और तत्कालिक घटनाओं का निष्पक्ष कला पूर्ण मार्मिक वर्णन किया है । इस ग्रन्थ के कुल पन्द्रह विश्राम हैं ।

इस ग्रन्थ की भाषा पद्यमय संस्कृत है । सरल, सरस और सर्व गम्य होते हुए भी इसमें भाव गम्भीरता अन्तर्निहित है । महाकाव्य है ।[61]

पहले श्लोक देकर नीचे उसकी व्याख्या की गई है । भाषा शुद्ध संस्कृत है ।

इमं श्रुत्वोपदेश ते विष्णु भक्ति परायणा
गुरोन शिष्यास्तु से जाता निर्मलाख्य पियासवः

श्री गुरु का यथार्थ उपदेश सुन कर, उनके कुछ शिष्य श्री विष्णु की भक्ति में आसक्त होकर निर्मल पंथ (मोक्ष मार्ग के अनुयायी बन गए) ।

गुरूदेवोध शिष्यान्वै सुप्रसन्न उवाचह
इयं का शी मदोपास्ति मोक्ष विद्याप्रदायतः ।।

तब श्रीगुरु ने उन भक्त शिष्यों को स्पष्ट सूचना दी कि यह 'निर्मल पन्थ' (मोक्ष मार्ग) ही मुक्ति प्रद होने से मेरी कांशी पुरी है ।[62]

तथा—

सात्विकेषु दया सिंहो मुख्यः शिष्यों [illegible]
कृत्वा तमग्रतो देवः प्राह वेदादिसम्मतम् ।।

सात्विक (निर्मल) शिष्यों में दया सिंह को प्रधान शिष्य बना कर श्री गुरु ने आर्य सदुपदेश (वेदानुकूल) आरम्भ किया ।[63]

नितनेम (गुरु भाव दीपिका)

एकओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

दोहरा : श्री गुरचरन सरोजवर बार–बार तिन्ह बन्द उतरार्ध जपु अर्थ कहु दायक परमानन्द ।

इस वाणी के पूर्वार्द्ध में गुरु जी ने सोचे सोच न होवई इत्यादिक पाठ के सहित भक्ति के वैराग्यादिक साधन निर्णय किए । और--गाविये सुणिये–इत्यादिक पाठ से प्रणवादिक निर्णय किया ।

अउ असंख कहने में वेद प्रमाण सूचन किया । और अद्वैत बतावन हेत सर्व प्रपंच परपुरख में नामु माझ सता ।

नाम माझ विना अन सता का अभाव
प्रतिपादन कर जीव इसका अभेद बोधन किया ।
मरीथे हथु पेरु तनु देहा
पानी धोते उतर सुखेहा
मुत पलीती कपड़ो होई
देसा कुन कहे ये उह धोई
भरीये मति पापा के संगि ।
उह थोपै नावे के रंगि ।

अरु अन्तःकरण मैले हैं जीव इसका स्वरूप निर्णय करने में असमर्थ है तिन मन्द बुद्धि पुरखों को दृष्टान्त से शुद्ध बुद्धि का उपाय श्री गुरु नानक तिरणे करे हैं ।–मरीयो इति ।

इह हाथ पैर पठसे सिधादिक अंग भी लेने देह पद इहां ग्रीव ने मूल दो आर पर्यन्त धड़ का बोधक है । तनु पद समग्र सरीर पर है । सांते तनु कहीं ये । इस सरीर स्थूल सरीर में हथ पैर आदिक संग अउदेह कहीये ।

तिन अंगों का मध्य भाग धड़ जब खेह कहिये चिकड़ व धूड़ के साथ भरिये नामु मर जावे तब पानी घोते उतर सकहिये । तिसको दूर करने वाले । स्वच्छ जल के घोने से बह खेह उतर जावेंगे । अऊ उतर का सरीर सुद्ध हो जावेंगे । दूसरा हिसान्त कहा–

तुझ विन अवर न जाना मेरे साहिबा
गुण गावां नित तेरे
जीअ जन्तु सब सरन तुम्हारी
सरब चित तुध पासे
जो तुध भावे साई चंगा
हिक नानक की अरदासे ।

अउ तिन उपदेसहुं के ग्रहक भेदरु नामु अंतह करनों में छावाना मु छाया रूप जीव भी पीछे जते नामु से कहे तुमारे हैं ।

याते निखल की सता तुमारे ही अधीन होने ते मैं तुछ बिना और काहु को तत्व नहीं जान तादे मेरे सुआमी । याही ते गुण गांवा नित तेरे कही ये प्रतिदिन तेरे ही पतित पावनादि गुण हुंकार कथन करता हो । अगम अगोचर से ले कहीं बात का संखेप ते अनुवाद करते समापति करे । जीअ इति । जीव विसेख सुर नर अउ जन्तु सामात अतिर्य कये सभी सरनी नामु आसु तुमारी नामु तेरे आम अगोचर के है । बाते सरब मैली न होकर वियाय कहो ने से । करमानुसार फल देने हैत सरब की चिन्ता तुम्हारे पास है । भाव तुम को ही है इसते जो तिन को अद्रिष्टानुसार भोग मोख देना, तेम को रुचे है । हमारी तऊ एक मन मंदर में आत्म पूजन काल में दुखी कोई न रहे सभी सुखी होवे ऐसे सरब के हेत आसीरवाद करता याकी अरदासे नामु प्रार्थना मात्र है । इस प्रकार सरब के कुसल हेत उत्तम जन सब देके पाठ पीछे सदा प्राताकाल में प्रार्थना करे यहि अरदासे कहने से सूचन है ।

इति श्री सरवेश्वर श्री मत परमगुर नानक प्रोक्त बानी तात्पर्य प्रकाश धायो श्री मद गुलाब सिंह चरण शिखिरतारा हरि नरोत्तम क्रितायो गुरुभाव दीपकाया हजारे सबद निवरर्न समाप्त सम्पूर्ण। सुम ममसुसुमं । संमतश्री नानकसा ही ।

3. छन्द :–

निर्मल सन्तों की साहित्य रचना का काल लगभग उत्तर भक्तिकाल का समय है । उस समय ब्रजभाषा साहित्य चरमोत्कर्ष पर था । साहित्य में रीतिबद्ध रीतिसद्धि और रीतिमुक्त परपाटी पर कविता लिखी जा रही थी। भक्तों, सन्तों व गुरुओं ने अपने धर्म प्रचारार्थ रीति मुक्त कविता शैली को ही अपनाया मगर रीतिकालीन प्रभाव से मुक्त न हो सके । भक्ति सम्बन्धी कविता शृंगार का पुट लेकर ही सामने आई । इधर छप्पय, दोहा कबित्त और सवैया--ये आरम्भ से ही प्रकृतितः मुक्तक के अधिक अनुकूल थे ।[64] यही कारण है कि सभी श्रृंगारी एवं भक्ति सम्बन्धी रचनाएं लगभग इन्हीं मुक्तक छन्दों में मिलती है । घनानन्द इस छन्द के हस्तसिद्ध कवि हैं। सवैया रीतिकाव्य का मधुरतम छन्द है, वृत्तात्मक गरिमा के अतिरिक्त इसके संगीत में कुछ ऐसी सुकुमारता मिलती है । जो संस्कृत के अब वृत्तों में लक्षित नहीं होती--गुरु को लघुवत ग्रहण करने की स्वतन्त्रता के कारण इसमें भाषण विशेष स्वाभाविकता के साथ प्रवहमान होती है ।[65] सवैया के समान ही कवित्त भी स्वतन्त्र विचारधारा को वहन करने वाला मुक्तक छन्द है । यह हिन्दी भाषा का अपना छन्द है । और रीतिकाल में ब्रजभाषा में रचित काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है और इसका विकास भी हिन्दी भाषी क्षेत्र में हुआ । 'रीतिकाल में कबित्त' का इतना प्रयोग हुआ कि एक प्रकार से इस छन्द की जितनी परिष्कृति संभव थी, वह हो गयी ।[66] निर्मल सन्तों ने भी अपने समकालीन रचित साहित्य का अनुसरल करते हुए ब्रजभाषा के अनुकूल कबित्त और सवैया छन्द का ही प्रयोग किया भले ही उस समय हिन्दी में एक विशाल रूप में एक परम्परा या रीति के आधार पर हिन्दी के अनेक कवियों ने कबित्त

सवैया छन्दों में रचनाएं की थी और कर रहे थे । भाई गुरदास वह प्रथम कवि है जिसने ब्रज भाषा में सवैये और कबित्त रचे । इस प्रकार साथ ही उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह की ब्रज रचना के लिए रास्ता तैयार किया ।[67]

निर्मल सन्तों में बहुत से ऐसे विद्वान हुए हैं जिन्होंने पिंगल शास्त्र का गहना अध्ययन किया था, जिनमें बुद्ध सिंह रचित पिंगल प्रस्तार प्रभाकर विशेष उल्लेखनीय है, निहाल सिंह का दोहरा भेदावली काव्य शास्त्रीय (छन्द) का महत्त्व पूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में उन्होंने गणों की संख्या गण विस्तार और गणों के स्वरूप का विस्तृत वर्णन लक्षण उदाहरण सहित किया है । इसमें शुभ गणों और अशुभ गणों का निरूपण करते हुए कवि ने शुभ गणों का लक्षण इस प्रकार कहा है ।

अथ शुभ गण नाम (दोहरा)

खस्ट कला गण सुभ सुसिव
पंच कला में वाजा
चतुर कला गण रखिसे
लिकलनगण सुभ साजा
सिव नाम सगण को, बाज नाम भगण को
रखिस नाम मगण को निकल नाम नगण को ।।[68]

निर्मल सन्तों के काव्य ग्रन्थों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है । भले ही वार्णिक और मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्दों में सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन न हो सका हो, तो भी रीतिकालीन काव्य शास्त्रीय परम्परा से वे अनभिज्ञ न थे । यह ठीक है कि उनके ग्रन्थों में कला पक्ष की अपेक्षा भावपक्ष अधिक प्रबल और पुष्ट है । विरक्त भावी एवं प्रचारक होने की प्रवृत्ति के कारण केवल भावाभिव्यक्ति को ही इनके काव्य में महत्त्व दिया गया है । तो भी काव्यानुकूल लयात्मकता, गत्यात्मकता और संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है ।

निर्मला गुलाब सिंह त्यागी हैं किन्तु मानवीय सम्वेदना से रहित नहीं । उनका काव्य न कोरा उपदेश है न हृदयहीन सिद्धान्त निरूपण । उनके छन्दों की विशुद्ध प्रगीत संज्ञा तो नहीं हो सकती किन्तु प्रगीतात्मकता का एक प्रमुख तत्त्व गुण आत्माभिव्यक्ति इनमें स्पष्ट रूप से विद्यमान है ।[69]

इनके काव्य में अनंग शेखर, भुजंग प्रयात, शिखरिणी, दोहा, रोला, चोपाई, सोरठा, कबित सवैया जैसे प्रचलित रीतिकालीन छन्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ है । रीतिकाल के कवियों ने प्रधान रूप से दोहा सवैया तथा कबित्त का बहुत प्रयोग किया है । दोहे की तुलना में सवैयों तथा कवित्तों का प्रचुर प्रयोग हुआ है ।[70] वार्णिक और मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्दों में इनके गहन काव्य शास्त्रीय ज्ञान का परिचय मिलता है । भुजंग प्रयात आदि वार्णिक छन्दों में गण व्यवस्था का पूर्णतः पालन किया गया है लघु–गुरु के हिसाब से प्रत्येक गण का स्वरूप निर्धारित किया गया है । यथा भुजंग प्रयात में चार यगण के क्रम से कुल 16 वर्ण बनते हैं ।

भुजंगप्रयात छन्द

महासान्त रूप तपै पुंज धारी
सदा पावन रुपन नितय बिचारी
कलेस नलेस निरलंभ चारी
दयाले सस्ये नमामं हमारी
सुखी नित पूंज बड़े मान जोगं
लखी लख द्रिसट तरे धार जोगं
जग कंज वे जानथासा सुडारी
दयाले रूप नमामं हमारी
नहीं खो मि जाके कदाचित कोऊ
जिवें खीरि सिंध रिदे सुध सोऊ
परं बोध युगं बिगमं अचारी
दयाले समय नमामं प्यारी
मनकै मनकै धरी वेद रीते
महापानम पावने के पुनीते
असारी वि सारं सुसार सुधारं
दयाल सरूपे नमामि हमारी ।।[71]

अतः यह भुजंगप्रयात छन्द का उदाहरण है । कहीं–कहीं तो निर्मल सन्तों ने पद रचना से पूर्व छन्द का नाम भी उद्धृत कर दिया है । ताकि उस छंद का सही उच्चारण किया जा सके । यथा निम्न पद रचना से पूर्व भुजंग प्रयात छन्द लिख दिया गया है ।

एकओंकार सतिगुर प्रसादि श्री गणेशाय नमः ।।
गणनाथ दाते नमो पाद कजं
सदा सांख्या कारं अल द्वैत भंजं
सदा देव सेवे उरं ओट जानो
धरे भेट आगे नमो पाद ठाने
जिनै नाहि जाने नई द्वैत मारी
जिने भान होई मिटे द्वैत सारी
परे देव रूपं नमो नाथ रामं
तिसै नीत सेवै सरे सरब कामं ।।[72]

इसी प्रकार अनेक कवियों ने प्रत्येक पद (रचना से पूर्व उस छन्द का नाम अंकित कर दिया है, जिससे वह छन्द परिवर्तन का संकेत पहले से ही दे देते हैं । इससे उनकी छन्दों की विविधता का ज्ञान भी लक्षित होता है और पाठक के लिए भी सुविधा रहती है । निम्नलिखित उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जाती है । कवि ने पहले

अनंग शेखर छन्द का प्रयोग किया है । पुनः छन्द परिवर्तन से पहले कर संकेत भी दिया है–

अनंग शेखर छन्द

तिने नमो सदामुदा बिलास बाहु राम जोसु
भीलनी उधार कै कपीस के सखा बणे
जिने कुवास धार के सुसेतु बांध सागर
सिली मुखी बिदर दंत सेख पूरियो रणे
सो भूत ओगामि वरतमान सरवजा भजे
निहार साध सुकुति विचार पुनि को करे
तरंग दुख माल नंमोहु वरत खोमनं कुकाम
ग्राम त्रासन जगत सिंधु को तरे ॥

माधवक छन्द

गोबिन्द सिंह कृपा नाथ, हरे हृद जाडय सदा सुखदाई ।
वही भवसागर पार करे, पदपंकज कीजन जे शरणाई ।[73]
रटै जिन नाम सरे सब काम रहे भव मण्डल चित नहाई
इसो पद पंकज वन्दन हों, निज दासन दास के होहु सहाई ॥[74]

मदरा छन्द

जाति विहीन सुभील तरे
अरु सील विहीन तरी गनिका
रूप विहिन तरी कुब्जा
हरिणा छल रूप तरे बन का
पापि अजामल पार करे
रघुनाथ का द्वेन सुनहु जन का
बे गुण नेम तजे हम नाथ
कि आप त्याग करो प्रण का ॥[75]

त्रोटक छन्द

गुरु गौरव गूढ़ अनूप महां, हरि रूठ जू तारक ग्रन्थ कहां
भव रूप गुरु, पद बन्दक के, तनु भान परं निज नन्दन कै ॥[76]

प्रसिद्ध छन्दों के साथ–साथ कुछ अप्रख्यात छन्दों का भी प्रयोग इन्होंने किया है, दोहरा भेदावली में निहाल सिंह निर्मला ने उररा नामक एक छन्द का प्रयोग किया है, जो या तो नवीन मौलिक प्रतीत होता या फिर अप्रख्यात है । लेकिन कवि ने छन्द से पूर्व ही उसका नाम अंकित कर दिया है । यह उनकी प्रसिद्ध रचना दोहरा भेदावली नामक सैद्धान्तिक ग्रंथ का आरम्भिक छन्द है ।

अथ सी दोहरा भेदावली निहाल सिंह निरमले क्रित सेवक निहाल सिंह हित प्रारंभयते–

उररा छन्द

चिदानन्द अक्रे नमस्कार ताहि
लखे जाहि उर माल ज्यो दुख नसाहि ॥1॥
जरे कंपिये ज्यो लहें दल सुफुला
तथा देव गुरु हूं सुचिद बंद मूला ॥2॥ [77]

चूंकि निर्मल सन्त गुरुवाणी के प्रचारक थे। अतः उन्होंने अपनी बात कहने के लिए विस्तृत आकार वाले छन्दों का ही चयन किया, जो रीतिकाल में प्रचलित भी थे और उनकी आवश्यकतानुसार भी । उपरोक्त वर्णित छन्दों के अतिरिक्त और भी अनेक छन्द उनकी रचनाओं में प्रयुक्त हैं ।

दीर्घ त्रिभंगी छन्द

ऋषि नारि उधारी, सबरी तारी
रावण आरी देवन ते
शिव चाप बिदारी सागर तारी
रण अरि मारी सील रते
श्रुत कण्डल धारी अलकै कारी
आभ न्यारी रूप अते
जय–जय रघुनायक जन सुखदायक
अरि दल धायक भूमि पते ॥[78]

नराज छन्द

तथा प्रभाव हेरियो अनन्त जीव जाल में
पदार बिन्द पाइयो सुभाग पुआ भाल में
कुबन्ध को मिटाइयो सुराम को दिखार कै
करु सुपाद कज को नमामिशीश धार के ॥436

निर्मल सन्तों ने अपनी वाणी हेतु मुख्य रूप से जिन छन्दों का चयन किया है । उनमें कबित्त प्रमुख हैं । इसका अन्य नाम घनाक्षरी भी है । क्योंकि मनहरण कबित्त और घनाक्षरी नाम एक ही छन्द के लिए प्रयुक्त होता है । घनाक्षरी में 32 अक्षर होते हैं, 16, 16 पर यति होती है, अन्तिम वर्ण गुरु होता है ।[89] इसे मुक्तक दण्डक की श्रेणी में रखा गया है । इसमें गण व्यवस्था निर्यामत नहीं होती । निर्मल सन्तों ने अपनी कविता के लिए इस छन्द को इसलिए चुना होगा क्योंकि कविता लिखना तो उनका ध्येय था नहीं । उन्होंने अपने प्रचार कार्य को रोचक एवं सरस बनाने के लिए ही इस मुक्तक छन्द का चयन किया होगा ।

सवन प्रखितु सुसब दसुख देवर दै
मजनु प्रहलाद बात एक रस कीजिए
पाद सेव लक्ष्मी जिउ अर चाप पिथ राव
अकसर वन्दना सी वन्दना को लीजिए
दास भाव हनुमान सरवां प्रीत पारल की
सरबंस वार बलराजे जिउ सु दीजिए
नोधायो भगत की जै लीजे
मत्स्टयात माके टहल सिंह रारा हु वैरव बंध को कटीजीए ।।[81]

उक्त छन्द को देखने से पता चलता है कि इसमें घनाक्षरी की सी विशेषता तो है, मगर प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या भिन्न है । इसका मूल कारण यह है कि यह छन्द मुक्तक दण्डक जाति का है । छब्बीस अक्षरों से अधिक अक्षर यदि किसी पद्य के एक पाद में हों तो उसे दण्डक कहते हैं । यह दण्डक संज्ञा इसलिए है कि इन पद्यों को यदि लिखा जाए, तो लम्बे दण्ड के समान दीखते हैं ।[82] मुक्तक से अभिप्राय है कि इसमें रीति कालीन कवियों के समान गण, मात्रा आदि का ध्यान नहीं रखना पड़ता । कोई बन्धन नहीं होता विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में बाधा नहीं होती । इनमें गण व्यवस्था नियमित नहीं होती, केवल कहीं–कहीं गुरु–लघु का नियम होता है । 26 से अधिक अक्षर तो होंगे ही ।[83]

निर्मल सन्तों के कबित्तों में कई–कई पादों में विभिन्न अक्षर संख्या मिलती है । अन्त में गुरु मिलता है । 15 या 16 पर यति मिलती है । कई यादों में इनकी संख्या 31 के स्थान पर 32 भी हो जाती है । निर्मल सन्त कबित्त को अपना कर भी पूर्णतः उसके बन्धन में नहीं बन्धे । भावाभिव्यक्ति पर ही अधिक बल दिया है ।

कबित्त पर काव्य रूप है । कविता की मुख्य पहचान उसकी लयात्मकता, उसकी गेयता तथा छन्द प्रधानता है । यही गुण कविता को गद्य से पृथक्क्करता है । शब्दों की नियमित और लयमयी रचना को छन्द कहा जाता है.........भारतीय काव्य कला में वर्णों या मात्राओं की संख्या प्रधान है ।[84] कविता में आकर्षण होता है । इसीलिए भक्तिकाल के सभी भक्त कवियों, सन्तों तथा गुरुओं ने अपने उपदेश काव्यमयी भाषा में दिए हैं ।

'कबित्त' रीतिकाल का प्रधान छन्द रहा है । मगर इसका प्रयोग रीतिकाल से पूर्व भी मिलता है । कबित्त छन्द गणात्मक न होकर केवल वर्णनात्मक है । लघु गुरु का कोई सुनिश्चित क्रम न होने से इसका विघान एक विशेष प्रकार के प्रक्रट के अनूकूल सिद्ध होता है, जिसमें मात्रिक छन्दों की आरोह–अवरोह मय गेयता के स्थान पर निर्भर की–सी श्रृंखलित ध्वनि का अनुरणन प्रधान दिखाई देता है ।[85] कबित्त छन्द एक मुक्तक छन्द होने के कारण कई रूपों में प्रचलित रहा है । रूप भेद के अनुसार इसके कई नाम प्रचलित हुए हैं । 'घनाक्षरी' के अर्थ में कबित्त शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है । वीर काव्य में कबित्त शब्द 'छप्पय' छन्द के लिए व्यवहृत होता था ।[86]

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि अधिकांश रीतिकालीन कवियों ने अपनी इस हिन्दी रचना के लिए कबित्त सवैया छन्दों को ही क्यों चुना ? इसका प्रमुख कारण यह है कि एक तो यह छन्द तत्कालीन कवि–समाज में प्रचलित छन्द था । दूसरे ब्रजभाषा के अत्यन्त अनुकूल है । निर्मल सन्तों का काव्य व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभूति का काव्य है, जिसके लिए एक मुक्तक एवं विशाल हृदयी छन्द की आवश्यकता है । उन्होंने कबित्त लिखने के लिए कविता नहीं लिखी । निर्मल सन्तों ने अपने कबित्तों में विभिन्न विषयों को संजोया है और कबितों का शीर्षक भी उसके विषयानुरूप ही निर्धारित किया है । यथा निम्न कबित्त से स्पष्ट हो जाता है ।

अथ सन्त चिंना बिंल माला को कबित्त

पारबती पति को जु प्यारो ब्रिल व्रिछनी को
ताके फल गुल सों परोए रिदे आई है
राम नाम गाईये को सो प्रेमी केरि झाइबे को
सन्त द्वारे जाइवे के खूब छवि छाई है
सन्त खुशी म्रिग राज फकर कहाइबे का
भीख मांग खाइबे को अति सुखदाई है ।
अपमान पाइवे को तरक कराइवे को
मूरख हसाइबे को बिल माल पाई है ।।[87] (109)

यह आवश्यक नहीं है कि कबित्तों में मात्राओं या वर्णों का वही निर्धारित स्तर हो जो रीतिकालीन कवियों का है । छोटे पादों वाले कबित्त भी उपलब्ध होते हैं ।

टहिल सिंह के कबित्तों में हमें विविध प्रकार की मात्राओं वाले कबित्तों के दर्शन होते हैं । उन्होंने अपने कबित्त टहिल सिंह ग्रन्थ में कबित्तों के अनेक रूपों को उद्धृत किया है ।

कबित्त

करै जु सेव भाव के लहै सुबेग दानको
काल क मेटि जंत तके निसंक रति मान को
बेअन्त अन्त ते गुरु बकति बेन चारि है
गुरु बहाल सिंह को नमामि बार–बार है ।।[88]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्य रीतिकालीन कवियों के समान ही निर्मल सन्तों ने भी कबितों का सफल प्रयोग किया है । और अन्य छन्दों का प्रयोग करते हुए भी कबित्त को अपनी कविता कामिनी का श्रृंगार बनाया है ।

सवैया

कबित्त के समान ही अनेक सन्तों ने सवैया छन्द का भी अत्यधिक प्रयोग किया है । सवैया वास्तव में दोहा का ही विकसित रूप है । प्राचीन काव्य अथवा लक्षण ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता । 'प्राकृत–पैगलम्' में भी सवैया जैसे किसी छन्द का लक्षण

नहीं दिया है । केवल 'दुर्मिल' तथा 'किरीट' नामक दो छन्दों का वर्णन वृत्तों के प्रसंग में किया गया है ।[89] ब्रजभाषा के एक पिंगल शास्त्री 'हरिराम' वृत्त छन्द रत्नावली में दुर्मिल और किरीट के अतिरिक्त 'इन्दव', 'झूलना', अमलान नामक तीन और वृत्त दिए गए हैं । जो स्वरूप विस्तार और गणात्मक प्रकृति से सवेया के भरे दिखाई देते हैं ।[90] सवैया छन्द में साधारणतया 22 से 23 तक वर्ण होते हैं । सवेया छन्द में भी कोई निश्चित नियम न होने से इसके रूप भेदारित कई नाम प्रचलित हैं । यथा मदिरा, मतगयंद, किरीट, दुर्मिल, सुन्दरी, लवंगलता आदि इस के प्रसिद्ध भेद हैं । भाई गुरदास ने कबित्त के समान विशेषताओं के कारण ही इसे भी अपनी कविता में विशेष स्थान दिया है । मगर सवैया छन्द का प्रयोग कम ही है । 'वर्णनात्मकता तथा गीति तत्व दोनों का किसी मुक्तक छन्द में यदि श्रेष्ठतम समावेश हुआ है, तो वह इसी छन्द में मिलता है ।'[91]

सवैया (समान)

सवैया को समान छन्द भी कहते हैं । समान छन्द में जिसे सवेया भी कहते हैं 32 मात्राएं, 16–16 पर यति और अन्त में भगण होता है । ....कई आचार्य अन्त में भगण हो । इस नियम को आवश्यक नहीं मानते ।[92] सवेया के कई रूप प्रचलित हैं । उनकी अक्षर संख्या भी विभिन्न है । इसमें भी कबित्त के समान गण निश्चित नहीं होते, सवैया की पहचान लक्षण के आधार पर आदि और अन्त देख कर की जाती है ।

सवैया अथवा कवित्त पंजाब का अपना छन्द नहीं, यह पंजाबेतर क्षेत्र के प्रभाव का सूचक है । इसका सर्वप्रथम प्रयोग गुरु दरबार में पंजाबेतर क्षेत्र से आए हुए भाटों द्वारा हुआ । तत्पश्चात् पंजाबेतर क्षेत्र में प्रचारार्थ निवसित भाई गुरदास द्वारा और फिर हिन्दी भाषा क्षेत्र में पालित तथा इधर प्रभाव ग्रहण करने में परम उदार गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा हुआ ।[93] बाद में यही प्रभाव निर्मल सन्तों की साहित्य रचना पर भी पड़ा । कवि गुलाब सिंह ने इसी परम्परा को अपना कर भाव रसाम्रित इसी छन्द में रचा है । अन्य निर्मल सन्तों ने भी कवित्त के समान ही इस प्रसिद्ध छन्द को अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है । टहिल सिंह ने कवित्तों के साथ ही इसका प्रयोग किया है ।

सवैया

दास से दास अनेक उदास
ससु दै सुख साभ करे बनवासी
पापरु ताप मिटाह कलंक
समै सुनि संक कैर सुख रासी
बोध प्रकास हुलास बिलास दै
नास करी सभि आस की पासी
दे सुमि मेति कुमेति हरी सु
टरी रति की सति की ब्रितभासी ।।[94]

ऐसे ही अनेक निर्मल सन्त कवियों ने सवैया छन्द का सफल प्रयोग किया है । निर्मल सन्तों के प्रथम कवि पं. गुलाब सिंह निर्मला ने भी इस छन्द का प्रयोग किया है । वास्तव में कबित्त के साथ ही सवेया का प्रयोग भी रीतिकाव्य की अनन्य विशेषता रही है । अतः अनेक निर्मल सन्तों ने कबित्त के समान ही इसका भी प्रयोग अपने ग्रन्थों में किया है ।

सवैया

जग उतपति पालन संहारा
माया भासै है अविकारा
अर्चित रूप अनंद सरूपा
सीतापति निज बांध अनूपा–।[94]
विदत ततु अमल तनु जोई
राम भजो पर पूरना सोई
पोराणोतम रामायण सारा
याह पदे जे लोक उदारा [95]
अथवा सुन निरन्तर जोहे
नित रामायण को मुख कहे1 ।[96]

सोरठा– सम तेरह, विषमेश, दोहा उलटा सोरठा ।[97]

सोरठा छन्द के विषय (1, 3) पाद में 11–11 मात्राएं और सम (2, 4) में 13–13 मात्राएं होती हैं [98] ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि सोरठा दोहा का ही उलटा रूप है । लक्षण से भी स्पष्ट ही है । यह अर्ध सम मात्रिक छन्द है । दोहा वैसे भी सोरठा की अपेक्षा पढ़ने में सरल, सरस, रोचक और आसान लगता है । लयात्मकता और गति बनी रहती है । दूसरे इससे कवि की विद्वत्ता और प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है । दोहा को उलटने से सोरठा बनता है । यह दोहे के समान गेय तो नहीं होता लेकिन इसको पुनः उलटा कर लेने से इसे दोहे के समान पढ़ा जा सकता है । यह भी एक प्रसिद्ध छन्द है, निर्मल सन्तों ने भी इसका कई स्थलों पर प्रयोग किया है । यथा–

सोरठा– तत मसि यहि मान स्रुति विराजे रिखि मत
पेचक को नहि मान कोविद प्रगट निहारही [99]

दोहरा (दोहा)–

तेरह विषम, न जादि हे, सम शिव दोहा लान्त ।

'दोहा' के विषम पादों (1, 3) में 13 मात्राएं होती हैं और विषम चरणों को आदि में जगण नहीं होना चाहिए । सम (2, 4) पादों में 11 मात्राएं होती हैं । दोहा छन्द भक्ति और रीति दोनों प्रकार के साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय छन्द है । दोहरा या दोहा निर्मल सन्तों का प्रिय छन्द रहा है । लघु आकार का छन्द होने के कारण इसका प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है । कई निर्मल सन्तों ने तो पूरा–पूरा ग्रन्थ ही दोहा छन्द में लिखा है ।

अब ग्रन्थोतपती लिखयते—दोहरा—[100]

ननु भव सागर सेतु बर, ग्रन्थ जु सुखद बिसाल ॥
ताके आर जु लिख्यो तुम दोहा नाम मराल ॥10॥
ननु भव सागर सेतू बर, ग्रन्थ जु सुखद बिसाल ।
ताके आद जु लिख्यो तुम, दोहा नाम मराल ॥

दोहा छन्द में रचना करना वास्तव में कलात्मक बुद्धि का ही काम है, दो पंक्तियों में ही एक पूर्ण घटना या तथ्य का वर्णन करना सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं है । निर्मल सन्तों ने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन करके छन्द शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था । अतः उनके ग्रन्थों में रीतिकाल में सामान्य रूप से प्रयुक्त दोहा छन्द का प्रयोग अत्यन्त सफलता के साथ हुआ है । निम्न दोहे में निहाल सिंह निर्मला ने अशुभ गणों के विषय में अत्यन्त कुशलता से दोहे में वर्णित किया है ।

अथ असुभ गण नामी (दोहरा)—

पंच कला सूरज गगन सूली केहे बनाय
चतुर कला में कर उरज यही नहीं सुभ खग राय

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल सन्तों के काव्य ग्रन्थों में जहां एक और कबित्त सवेया जैसे बड़े आकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, वहां दूसरी और लघु आकार के दोहा (दोहरा), चौपाई जैसे छन्दों का भी अत्यन्त सफल प्रयोग हुआ है । उनके प्रिय छन्द, सोरठा, दोहा, चौपाई, भुजंग प्रयात, अनंग शेखर, उररा, मदरा, त्रिभंगी, कबित्त और सवैया रहे हैं ।

4. अलंकार :—

तददोषो शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति
पुनः क्वापि इति ।

अर्थात दोष रहित, गुण सहित तथा अलंकारों से विभूषित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं ।[101]

अलंकार काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है । मानव काया के आभूषणों के समान ही अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं । पाठकों को इस भ्रम की निवृत्ति हो जानी चाहिए कि अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं पैदा नहीं करते । साहित्य दर्पणकार ने कहा है—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तो लंकारास्ते ऽङगदादिवत् ॥

अर्थात् शोभा को अतिशय करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है, वे अंगद (बाजू बन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं ।[102]

निर्मल सन्तों ने भी अपनी काव्य शोभा की वृद्धि हेतु अलंकारों का उपयोग किया है । उन्होंने काव्य शास्त्रीय सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया है । निर्मल सन्तों की कविता में उपमाओं की गहन और विस्तृत कल्पना है, जैसे कालिदास में है, जैसे भवभूति में है ।

अब ग्रन्थोतपती लिखयते—दोहरा—[100]

ननु भव सागर सेतु बर, ग्रन्थ जु सुखद बिसाल ॥
ताके आर जु लिख्यो तुम दोहा नाम मराल ॥10॥
ननु भव सागर सेतू बर, ग्रन्थ जु सुखद बिसाल ।
ताके आद जु लिख्यो तुम, दोहा नाम मराल ॥

दोहा छन्द में रचना करना वास्तव में कलात्मक बुद्धि का ही काम है, दो पंक्तियों में ही एक पूर्ण घटना या तथ्य का वर्णन करना सामान्य व्यक्ति के बस की बात नहीं है । निर्मल सन्तों ने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन करके छन्द शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था । अतः उनके ग्रन्थों में रीतिकाल में सामान्य रूप से प्रयुक्त दोहा छन्द का प्रयोग अत्यन्त सफलता के साथ हुआ है । निम्न दोहे में निहाल सिंह निर्मला ने अशुभ गणों के विषय में अत्यन्त कुशलता से दोहे में वर्णित किया है ।

अथ असुभ गण नामी (दोहरा)—

पंच कला सूरज गगन सूली केहे बनाय
चतुर कला में कर उरज यही नहीं सुभ खग राय

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल सन्तों के काव्य ग्रन्थों में जहां एक और कबित्त सवेया जैसे बड़े आकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, वहां दूसरी और लघु आकार के दोहा (दोहरा), चौपाई जैसे छन्दों का भी अत्यन्त सफल प्रयोग हुआ है । उनके प्रिय छन्द, सोरठा, दोहा, चौपाई, भुजंग प्रयात, अनंग शेखर, उररा, मदरा, त्रिभंगी, कबित्त और सवैया रहे हैं ।

4. अलंकार :—

तददोषो शब्दार्थौं सगुणावनलंकृति
पुनः क्वापि इति ।

अर्थात दोष रहित, गुण सहित तथा अलंकारों से विभूषित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं ।[101]

अलंकार काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है । मानव काया के आभूषणों के समान ही अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाते हैं । पाठकों को इस भ्रम की निवृत्ति हो जानी चाहिए कि अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं पैदा नहीं करते । साहित्य दर्पणकार ने कहा है—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तो लंकारास्ते ऽगदादिवत् ॥

अर्थात् शोभा को अतिशय करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है, वे अंगद (बाजू बन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं ।[102]

निर्मल सन्तों ने भी अपनी काव्य शोभा की वृद्धि हेतु अलंकारों का उपयोग किया है । उन्होंने काव्य शास्त्रीय सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया है । निर्मल सन्तों की कविता में उपमाओं की गहन और विस्तृत कल्पना है, जैसे कालिदास में है, जैसे भवभूति में है ।

परन्तु यह सारा बल गुरु भक्ति के लिए प्रयोग किया है । जैसे जै देव ने गीत गोबिन्द में कृष्ण की उपमा में सम्पूर्ण काव्य बल लगा दिया है ।[103] निर्मल सन्तों के सम्पूर्ण काव्य में अलंकारों की भरमार है । कभी–कभी तो अलंकारों की बौछार ही लगा देते हैं । यह सब उनकी पर्यटन प्रवृत्ति और व्यावहारिक ज्ञान का ही प्रमाण है । सचमुच ही वे अलंकारों और विशेष कर दृष्टान्तों के बादशाह हैं । अलंकारों से एक और तो उनकी कल्पना शक्ति का अनुभव होता है । दूसरी और उनकी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं ।

इन सन्तों ने गुरुवाणी के भाव को स्पष्ट करना था अतः उन्हें सरल से सरल अलंकारों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी । इन्होंने अपनी काव्य भाषा में दैनिक जीवन में प्रयोग किए जाने वाले मुहावरों, कहावतों के माध्यम से ऐसे अलंकारों का प्रयोग किया है कि सम्पूर्ण अलंकार उनके काव्य का श्रृंगार बन जाते हैं । आपने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का खुल कर प्रयोग किया है । अनुप्रास अलंकार की बहुत बार आवृत्ति हुई है । उनके अलंकार ज्ञान की पुष्टि उनके एक पद से ही हो जाती है ।

निर्मल सन्तों के काव्य की भाषा स्वाभाविक रूपेण ही अलंकारमयी हो गई है भले ही इन्होंने जानबूझ कर अलंकारों का प्रयोग न किया हो लेकिन जहां कहीं भी आवश्यकता हुई, इनकी भाषा स्वयं उनके शब्द चयन की कला से अलंकृत हो गई है । कहीं भी शब्दों या अलंकारों का बरबस प्रयोग नहीं हुआ है । कवि गुलाब सिंह ने अपने इष्ट राम का स्वरूप जिस प्रकार अलंकृत भाषा में चित्रित किया है, वह दृष्टव्य है–

किंचित है अलिका श्रुत ऊपर
कुण्डल है शुभ कानन माहीं
कुण्डल के कच मेचक में
लसके तड़िता घन मेचक मांही
बोल सभै छवि पुंज तरंग
कपोलन सागर ते निकसाही
नैन हरें मद कंजन को
सम आनन के शशि कोटिक नांही ॥[104]

काव्य की शोभा अलंकारों का बलपूर्वक प्रयोग करने में नहीं अपितु उनके यथा स्थान यथास्थान उपयोग में है । अलंकार भाषा के शोभाकारक धर्म है । यहां कहीं भाषा स्वयं ही शोभानीय हों, वहां इनका प्रयोग करना अनिवार्य नहीं । इन कवियों की वर्णन शैली भी चित्रात्मक हो गई है । अत्यन्त संजीव चित्रण करना उनकी भाषा का आलंकारिक गुण ही कहा जायेगा । कवि गुलाब सिंह ने वृद्धावस्था का वर्णन भी इसी चित्रात्मक भाषा में किया है ।

तन के बल ने अब पीठ दई
अर हार परे दृग बाल संगाती
तज के इस लोक विखे हम कउ

चल आप गए सुर लोक सजाती
जगमीत सखा मुख फेर गए
अब सेव कहां ? न पूछे ममबाती
मम आहि पलांगम हे तृष्णे ।
इक तू मम संग रही दिन राती ॥[105]

स्वाभाविकता कुछ प्रचलित अलंकार निर्मल सन्तों के काव्य की शोभावृद्धि करने में सहायक सिद्ध हुए हैं । यथा–

उत्प्रेक्षा–

भृकुटी कुटिला सुभ भाल बिसाल सुकुंकम की युग रेख सुहाई
युग कांचन के सर लै रतिनाह मनो मणि की सुकमान चढ़ाई
कच घुंघरवंत सुमन्द समीर फुरे तिनकी छवि यौ मन आई ।
सुमनो मुख कंज अमोद गहे भ्रमरावलि का भ्रम है बिगसाई ॥[106]

अत्युक्ति–

जिनके रथ नेम दरारन ते सत सागर है अबलो जगमाही
जिन चापन गोशन के बल ते सब सैल बटोरि घरे घर माहीं ॥[107]

रीतिकालीन काव्य शास्त्र पद्धति का अनुसरण करते हुए कुछ निर्मल कवियों ने प्रयोगात्मक दृष्टि से अपने पदों में अलंकारों को जानबूझ कर प्रदर्शित करने का सफल प्रयास भी किया है । उन्होंने अलंकारों का विशिष्ट रूप में प्रयोग किया है और अपनी अलंकार सम्बन्धी विलक्षण विद्रता का परिचय भी दिया है । जैसे निम्न लिखित सवैया में पं. गुलाब सिंह ने विशिष्ट प्रयास द्वारा प्रहेलिका अलंकार का प्रदर्शन किया है । इसमें कुछ शब्दों के पहले अक्षर लेकर पश्चात उनके अन्तिम अक्षर जोड़ दिए गए हैं। जैसे मोह, मद, दगा, काम, छल, रस, लोभ आदि को कभी भी मन में धारण नहीं करना चाहिए तथा राम, हरि, बोध सम खिमा देन इन चीजों को कभी मन से दूर नहीं रखना चाहिए ।

शान्ति गुर भजो
वेद सुनो, सदा पन्थ चलो
प्रतिदिन सम्भल सम्भल कर

यदि ऐसा करने पर भी प्रभु की प्राप्ति न हो, तो कवि गुलाब सिंह आपका जामन होगा ।–

मो मद का छर लोह दगा मल
सभ कवि उर माहि न धारो
राय अबे सखि दे मर यं
धम माद सदा उर ते नहिं टारो
शांगु भर्वे सु स पंच इनी
तिरुजो, दनो दा थ लो नेत संभारो

जो इनते हरि नाहीं मिले
तब जामन सिंह गुलाब तिहारो– (129)[108]

यह सवैया चित्रालंकार सा प्रस्तुत करता है परन्तु विशेष प्रयास के कारण कुछ दुरूह सा हो गया है । भावार्थ जानने के लिए इस प्रकार पढ़ना चाहिए–

मो	**भ**	**द**	**का**	**छ**	**र**	**लो**		
ह	**द**	**गा**	**म**	**ल**	**स**	**भ**		**कभी उर माहीं न धारो ।**
रा	**ह**	**अ**	**बो**	**स**	**खि**	**दे**		
म	**रि**	**पं**	**ध**	**म**	**मा**	**व**		**सदा उर ते नही डारो ।**
शां	**गु**	**भ**	**वे**	**सु**	**स**	**पं**	**च**	
ति	**रु**	**जो**	**द**	**नो**	**दा**	**थ**	**लो**	**इ नी नेत सम्भारो**

जो इन ते हरि नाहि मिले
तब जामन सिंह गुलाब तुम्हारो ।।[109]

इससे कवि की मौलिक सूझ एवं काव्य में अलंकारों का सफल प्रयोग का प्रमाण स्वतः ही मिल जाता है ।

प्रायः निर्मल कवियों के पदों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का बाहुल्य पाया जाता है । गुरु स्तुति में प्रायः उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग बहुत हुआ है ।

जे हरि के पद पंक भजे
अरु पुन करे जगमाहि उदारे
ज्ञान लहे गुरु सेव भले
पुनि जीवत हि तिन काल बिदारे
नाहिक छूउ रहे तिन को पर
पूरन ब्रह्म भये सुख सारे
ज्ञान विहीन सुजे नर हैं
तिन के हित होवत साग विचारे ।[110]

तथा–

गुरु नानक गोबिन्द गुरु
भजे जांहि जग सारा
बन्दो पद पंकज सदा
देहु सुबुद्धि उदारा ।।[111]

रूपक :–

जहां एक वस्तु के रूप को दूसरी वस्तु पर आरोपित किया जाए, वहां रूपक अलंकार होता है । संस्कृत में रूपकम् तत्समारोपात्1 रुपम एवं रुपकम रूप–कम्र) या रूपयति इति अथवा आरोपायति इति ।।[112]

इस प्रकार व्याख्या की गई है । निर्मल सन्तों ने भी इस अलंकार का अधिकांशतः प्रयोग किया है । यथा–

भव फंधक की दिढ़ फास तुही
गुरवैन असी खिन भीतर खोई ।।[113]
कुच कुंकम से सर तीखन ।।[114]

तथा–

सांग रूपक : बोल सभे छवि पुंज तरंग कपोलन
सागर ते निकसाही ।[115]

कहीं–कहीं शब्दों की सार्थक आवृत्ति भी हुई है । यहीं यमक अलंकार का लक्षण है 'यमक' अलंकार का प्रयोग भी शब्द की आवृत्ति की सार्थकता का द्योतक है । यथा निम्न लिखित पद में विंद शब्द की आवृत्ति हुई है । अतः यह यमक अलंकार का उदाहरण है ।

सुनाथ मान सिंह के पदार विन्दते गिरे
अनूप वार विंदु को मुखार विंद में परे ।।[116]

भले ही ये कवि अलंकारों के मोह में नहीं उलझे हैं, तो भी–

कोप हुतासन (44) पद संख्या
मात समान सुगंग (96) ,,
इक त्याग चाये तृण ज्यों (19). पद संख्या
निस पेखन डीलहि तार समं (34) ,,
कृत पुण्य फले द्रुम ज्यो ऋतु माही 1 (25) पद संख्या [117]

पद्य के समान ही गद्य में भी निर्मल सन्तों ने उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, अनुप्रासादि अलंकारों का अत्यन्त सफलता से प्रयोग किया है । व्याख्या ग्रन्थों में विशेष रूप से इन अलंकारों का स्वभाविक प्रयोग हुआ है ।

5. रस :–

कविता मानव मन को आनन्द प्रदान करती है, वही आनन्द जो अलौकिक है और योगियों को समाधिस्थ होने पर उपलब्ध होता है । इसी लिए शायद साहित्य में इसे 'रस' की संज्ञा दी गई है । आचार्य विश्वनाथ ने कहा–

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।।[118]

अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं । इतना ही नहीं रस के बिना काव्य की महत्ता ही नहीं है । आगे श्लोक में विश्वनाथ ने इसे काव्य की आत्मा कहा है ।

काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्
रसादिश्चात्मा, गुणा शौर्यादिवत्, दोषा काणत्वा–
दिवत रीतयो वयवसंस्थान विशेषवत्, अलंकाराः
कटक कुण्डिलादिवत्, इति ।[119]

अर्थात शब्द और अर्थ काव्य के शरीर है और रसादिक आत्मा है । माधुर्यादि गुण शौर्यादि की भांति श्रुत कटुत्वादि की तरह, वेदर्भी आदि रीतियां अंग रचना के सदृश और उपमादिक अलंकार कटक, कुण्डलादि के सदृश्य होते हैं ।

अतः स्पष्ट है कि कविता में रस का होना अनिवार्य है । काव्य भाषा में रस स्थायी भाव पर आधृत होते हैं । यह पैदा नहीं होता, इसकी निष्पति होती है । निर्मले सन्तों के काव्य में अधिकतर शृंगार (संयोग, वियोग दोनों) करुण और शान्त रसों का अधिकतर प्रयोग मिलता है । अगर ध्यानपूर्वक निर्मल सन्तों की रचनाओं का अध्ययन किया जाए तो लगभग 90% पदों में भक्ति रस मिलता है । कभी–कभी तो एक ही कबित्त में अनेक रसों का होना पाया जाता है ।

काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के अध्येता निर्मल सन्तों ने रस–सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है और अन्य रीतिकालीन कवियों के समान ही इन्होंने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण की परम्परा का पालन किया है । पं. बुद्ध सिंह की रस प्रदीपका इस सम्बन्ध विचार का महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है । कवि ने रस के बहु चर्चित विषय को थोड़े ही में जानने के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना की है । इससे निर्मल कवियों की काव्य सम्बन्धी सूझ का परिचय मिलता है । ग्रन्थ की समाप्ति पर कवि ने इस बात का उल्लेख भी किया है ।–

जाते रस रस समुझिये थोरे ही में बीर
कही सुजन हित प्रेम सो रस प्रदीप का धीर
मान सिंह हित को भवनर वन रूप हित मानि
प्रकट कहि कवि बुद्धि सिंह रस प्रदीपका जान ॥
संवत अठ दस बाहठो
अम्रित सर सुमथाना रटी
बंटी दुख की कटी नटी
नंद बल ठाना1 ॥
इतिहास प्रदीपका सम्पूर्ण
मसत सुभ मसत सुभं ॥

कवि ने रस के अंगों का विवेचन भी पद्य शैली में ही किया है, यथा विभाव, अनुभाव, आलम्बन, उद्दीपन आदि का रस निष्पत्ति में क्या स्थान है ? इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है–

अथ भाव उच्यते

मन में होह सुजानिये मुख द्रिग बच इन द्वार
भाव तास को कहत कवि ताके पंच प्रकार
प्रगटे जगत अनेक रस कहिये ताहि विभाव
आलम्बन उदीपनो जुगल रूप कवि भाव
आलम्बन सो मदन जब आलम्बत निरसंका
उद्दीपन दीपक करेपिय त्रिय के बल अंका
इन दोनों अनुकरण जैसो अनुभाव विचार
बुद्धि बल गुन जन जानिये कवि वरकरत उचार
विभचारी पुन भाव जे नव रस में तिन बास
बिना नेम कवि जन कहे सुनि सुनि होत हुसास ॥[121]

कवि ने नव रसों का सांगोपांग विवेचन भी किया है, ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने ग्रन्थ रचना का प्रयोजन बता कर मंगलाचरण से आरम्भ किया है ।

एकओंकार श्री गणेशाय नमः अथ श्री रस प्रदीपका लिख्यते

दोहरा : **शिव सुत पद पंकज नमो रिधि सिधि सुखधाम ।**
बरनत हो हित सुजन अब रस प्रदीपका नाम ॥
नवरस कहत संखेप सो दोहा सुगम बनाई
अष्ट नायिका सखिनयुत हाव भाव सुखदाई ।
स्याम स्वरूप आनन्द प्रद सोभा संयुत सोई
ताहि सिंगारु किचारिये कहत कवि सुर लोई ।
उजल बपु आनन्दयुत सुन्दर रसक सुहात ।
हसु बखानत वुध जन अदभुत या की बात ॥[122]

भक्ति सम्बन्धी पदों में तो शत–प्रतिशत शांत रस का ही निरूपण हुआ है । वैराग्य प्रवृत्ति के कारण इन सन्तों के पदों में स्वतः ही शान्त रस की उद्भावना प्रकट होती है । शान्त रस की निष्पति निर्वेद नामक स्थायी भाव से होती है । निर्वेद स्थायी भाव को उद्बुद्ध करने के लिए निर्मल सन्त सांसारिक पदार्थों की अस्थिरता एवं नश्वरता के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं । हर्ष विषाद का असमान वितरण भी हमारे मर्म (निर्वेद) को स्पर्श करता है । निर्मल सन्तों की शांत रस के प्रति भी उतनी रुचि है जितनी प्रेम के प्रति । वस्तुतः उनका शांत उनके प्रेम का अभिन्न सहचर है । प्रेम के लिए जिस अनन्यता, एवं निष्ठता तथा एकाग्रता की अपेक्षा है, वह सासारिक पदार्थों से मन हटाये बिना प्राप्त नहीं होती । कुछ वे प्रेम के लिए भी एकान्त भू घर–कुंज दरी अथवा गंगा तीर को आवश्यक समझते हैं, यहां सांसारिक पदार्थों एवं जीवों की अस्थिरता अथवा परिवर्तनशीलता तथा दुःख के असमान वितरण का एक उदाहरण दिया जा रहा है–

जिनके रथ नेम दरारन से सत सागर है अब लों जग माही
जिन चायन गोशन के बल ते सब सैल बटोर धरे घर माही
सुर राज भजे जिनके बल ते यमराज जिते जिहने जग माही
मन ते जग भीतर नाहि रहे अब और से कुछ को जगमाही ॥18॥[123]

यह रस निरूपण तथा रस की सैद्धान्तिक व्याख्या निर्मल सन्तों की भावात्मक रुचि की परिचायक है । विविध विषयों का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने भावों की सुरक्षा का पूरा--पूरा ध्यान रखा है । उनके विनय सम्बन्धी पदों में करुणरस उद्भुत होता है । शृंगार रस तो यत्रतत्र उपलब्ध हैं । गुरु चरणों से प्रीति करने में संयोग श्रृंगार ओर विरह सन्तप्त विषयों पर वियोग शृंगार को देखा जा सकता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल सन्तों ने बहुधा अपनी भावाभिव्यक्ति को अनेक भावों द्वारा शान्त, करुण शृंगार आदि रसों द्वारा ही अभिव्यक्त किया है । अपनी प्रचार पद्धति को रोचक एवं व्याख्या प्रणाली को सरल बनाने के लिए उनके काव्य में रस–प्रतिपादन अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ ।

हिन्दी साहित्येतिहास और निर्मल साहित्य

1. पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य :–

हिन्दी साहित्येतिहास में पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है । पंजाब में हिन्दी साहित्येतिहास के आरम्भिक आदिकाल में ही हिन्दी साहित्य रचना का सूत्रपात हुआ तथा सिद्धों नाथों का साहित्य इसी धरती पर रचा गया । तदनन्तर भक्तिकालीन राम काव्य और कृष्ण काव्य धाराओं का प्रभाव भी पंजाब के कवियों की रचनाओं पर पड़ा और इसके साथ ही सन्त साहित्य और सूफी काव्य के प्रभावान्तर्गत पंजाब में सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार के साहित्य की रचना हुई । इसी परम्परा में रीतिकाल में श्रृंगारी गुरुवाणी सम्बन्धी व्याख्या प्रणालियों और टीकाओं का साहित्य उपलब्ध होता है । आधुनिक युग में अनेक सम्प्रदायों के सन्तों महन्तों ने अपने डेरों, आश्रमों में अत्यन्त निष्ठा के साथ प्रचार के माध्यम के रूप में रचा साहित्य पंजाब के हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है, यह सम्पूर्ण साहित्य ब्रजभाषा में उपलब्ध होता है ।

हिन्दी साहित्येतिहास के मध्यकाल में शताब्दियों से चली आ रही ब्रजभाषा ने साहित्य में अपना--अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था । पूर्व मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्यधारा ने इसे अत्यधिक प्रश्रय दिया । साहित्यिक प्रतिष्ठा ने इसे समृद्ध किया । उस समय इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही न था । न तो उस समय हिन्दी भाषियों का किसी नवीन जाति से सम्पर्क स्थापित हुआ था और न कोई ऐसा आन्दोलन ही छिड़ा जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करती, जिस प्रकार मध्य युग में भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप स्वयं ब्रजभाषा ने किया था ।[124] गुरु काव्य--धारा ने हिन्दी साहित्य में एक नए अध्याय का सूत्रपात किया । गुरुओं ने मध्यकाल में एक नई लिपि को इस साहित्य के लिए प्रयुक्त किया, जो कालान्तर में गुरुमुखी लिपि के नाम से प्रचलित हुई । और आज इसमें पंजाबी भाषा का समृद्ध साहित्य उपलब्ध होता है । पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य में इस विलक्षणता ने एक अद्‌भुत स्थिति पैदा कर दी । गुरुमुखी लिपि में रचित यह ब्रजभाषा का साहित्य हिन्दी साहित्येतिहास रचयिताओं के लिए रहस्य ही बना रहा और दूसरी तरफ पंजाबी विद्वानों द्वारा भी यह उपेक्षित ही रहा । हिन्दी के विद्वान गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञ थे तथा दूसरी और पंजाबी के विद्वान भाषा की कठिनता के कारण इसे पंजाबीतर भाषा मान कर चुप रहे । यही कारण है कि काफी समय तक इस साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया । न ही इसे हिन्दी साहित्य का अंश माना गया और न ही पंजाबी के इतिहासों में इसे पर्याप्त स्थान मिला ।

पंजाबी साहित्य के इतिहास में गुरुमत साहित्य सूफी साहित्य, किस्सा साहित्य, वार साहित्य आदि को विशेष स्थान प्राप्त है मगर इस्लामी साहित्य वेदान्ती साहित्य मिहर बलीयां साहित्य हंदरलियां का साहित्य सेवा पंथियों का साहित्य अनेक पक्ष हैं, जिनका साहित्य बड़ी मात्रा में मिलता है जिसका वर्णन इन इतिहासों में नहीं ।[125] इस प्रकार भाषा और लिपि भेद ने इस साहित्य के प्रति उपेक्षा भाव बनाए रखने में बाध्य किया और इस अमूल्य साहित्य के विषय में भ्रमोत्पादक स्थिति पैदा हुई ।

पंजाब के इस साहित्य ने भाषा और लिपि के इस अद्भुत संयोग से एक ऐसा साहित्य रचा जो पंजाब के हिन्दी साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण आधारभूमि प्रदान करता है, जिससे हिन्दी साहित्य में एक नई सम्भावना का उदय होता है, इसकी रचना धार्मिता को सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखना ही समीचीन होगा और इससे नये तथ्य उद्घाटित होंगे । पंजाबी चिन्तन भारतीय चिन्तनधारा से अलग ही रहा है, मेरे विचार से यह शुभ प्रवृत्ति नहीं । भारतीय मध्यकालीन रचना को पश्चिमी आधुनिक चिन्तन विधि द्वारा परखने का मैं विरोधी नहीं । धर्म की सैकूलर व्याख्या का अपना महत्त्व हो सकता है लेकिन भारतीय मध्यकालीन रचनाओं को यदि भारतीय मध्यकालीन रचना पद्धति के द्वारा देखा जाए, तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियां प्राप्त होती हैं ।[126]

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य साहित्येतिहास लेखन की नई उद्भावनाओं को उद्घाटित करता है । रीतिकालीन साहित्य के साथ–साथ गुरुकाव्य धारा का भक्तिपरक एवं वीर भावना पोषक साहित्य की रचना पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य को प्रवत्यात्मक दृष्टि से भी प्रभावित करता है । गुरु काव्य के साथ ही यहां के रियासती राजाओं के दरबारों में यह साहित्य प्रचुरमात्रा में रचा गया । पंजाब का उत्तर मध्यकालीन साहित्य गुरु दरबारी और राज दरबारी है, पंजाब में दरबारी साहित्य के प्रमुख चार केन्द्र थे पटियाला, नाभा, कपूरथला और संगरूर । इन दरबारों में राम और कृष्ण काव्य के साथ रीति साहित्य की रचना भी की गई ।[127]

इस दरबारी साहित्य में मौलिक ग्रन्थों की रचना के साथ–साथ गुरुवाणी की टीका व्याख्याकारी तथा अनुवाद कार्य भी सम्पन्न हुआ । मौलिक रचंनाओं के माध्यम से रीतिकालीन कवियों ने गुरु स्तुति, गुरु इतिहास, पिंगल, ज्योतिष, वैद्यक, आदि के ग्रन्थ रचे तथा अनुवाद में हिन्दी रीति–ग्रन्थों का गुरुमुखी में अनुवाद करके रीति साहित्य का प्रचार और प्रसार किया । यह सभी ग्रन्थ ब्रज भाषा में रचे गए उस समय की प्रचलित रीति परम्परा का प्रभाव इन कवियों पर विशेष रूप से पड़ा, विशेषतः ब्रजभाषा के मोह को यह नहीं छोड़ सके । लिपि गुरुमुखी हो या देवनागरी भाषा ब्रज ही रही–

पद्य में तो आज भी ब्रॅजभाषा का प्रभुत्व कई अंशों में विद्यमान है और अभी कुछ समय तक हमारी पुरानी पथा के कविजन इसकी ममता छोड़ते दिखाई नहीं पड़ते पर गद्य

में इसी परिवर्तन काल से खड़ी बोली का पूर्ण प्रभुत्व जम गया और पद्य में उसका यथेष्ट आदर होने लगा है ।[128]

अब लिपि भेद के अनुसार ही दोनों भाषाओं का अपना–अपना अस्तित्व है और दोनों का अपना साहित्य है मगर मध्यकाल में इसमें कोई अन्तर न था । ब्रज का प्रयोग पद्य में हो या गद्य में लिपि देवनागरी हो या गुरुमुखी भाषा ब्रज थी अब गुरुमुखी लिपि के लिए पंजाबी भाषा की रचना अधिक उपयुक्त मानी जाने लगी है । वर्तमान हिन्दी गद्य का उद्भव भी पंजाब की धरती पर ही हुआ । खड़ी बोली का गद्य जिसे साधारणतया वारतक भाषा मुक्ति (मुक्त) भाषा आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है । पंजाब में ईसा की 16वीं शती से ही मिलने लगता है । 20वीं शती के प्रारम्भिक दशकों तक खड़ी बोली का गद्य ही पंजाब में प्रचलित रहा है ।[129]

गद्य और पद्य रचनाओं में अधिकांशतः पंजाब के कवियों ने गुरुवाणी को ही अपने लेखन का आधार बनाया । यह रचनायें ज्यादातर टीकाओं, व्याख्याओं, भाष्य एवं अनुवाद के रूप में उपलब्ध होती है । पंजाब में हिन्दी में गद्य का प्रयोग भक्तिकाल से ही होना शुरू हो जाता है । शोध के अभाव के कारण हिन्दी गद्य परम्परा को रेखांकित नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार पंजाब में भी हिन्दी गद्य की एक पुरानी परम्परा रही है, यहां पर अधिकांश साहित्य गुरुमुखी लिपि में लिखा जाता था और विद्वान इस लिपि में अपरिचित होने के कारण यह मानते रहे हैं कि गुरुमुखी लिपि में जो साहित्य है, वह पंजाबी का है । वस्तुतः पंजाब में खड़ी बोली गद्य व पद्य की एक चार पांच सौ वर्ष पुरानी समृद्ध परम्परा विद्यमान रही है ।[130] सोढी मेहरबान, हरि जी, दिआल नेमी आदि खड़ी बोली गद्य के अनेक लेखक हुए हैं । 17वीं, 18वीं तथा 19वीं शती में अनेक लेखकों ने गुरुमुखी लिपि में गद्य साहित्य रचा । इस समय दार्शनिक, अनूदित, टीका तथा उपयोगी साहित्य लिखा गया । प्रदत्त कालाविधि की गद्य रचना में पौराणिकता, धार्मिकता एवं उपयोगिता की प्रवृत्तियों की बहुलता पाई जाती है । धार्मिकता एवं पौराणिकता उन दिनों किसी भी प्रदेश की रचना का मूलाधार हो सकती थी । पंजाब की विशिष्टता तो यह है कि यह धर्मभावना से ओतप्रोत होकर तत्कालीन साहित्यकारों ने पौराणिक उद्धरणों पर तो गद्य रचनाएं की हों साथ ही नवीन पौराणिक स्थितियों को भी उजागर किया गया । पंजाब के गुरुओं की जीवनियों, जन्म साखियों वाणी व्याख्याओं के पीछे यही धर्म भावना कार्यरत है, तो भाषा योगवशिष्ट के इतर गुरुकाल की ऐतिहासिक घटनाओं की चमत्कार का पुट देकर नवपुराण की कल्पना पौराणिक प्रवृत्ति की देन है ।[131]

गुरु काव्यधारा ने पंजाब के हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अन्य विषयों और प्रवृत्तियों के साथ–साथ गुरु काव्य इन कवियों की रचनाओं का प्रमुख विषय रहा है । कुछ कवियों ने तो केवल गुरु काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों की ही रचना की है ।

गुरुवाणी पंजाब के साहित्य की मुख्य प्रेरणा कही जा सकती है । गुरुवाणी के सन्दर्भ में व्याख्या कोश तथा व्याकरण ग्रन्थ समय--समय पर लिखे गए । गुरुवाणी को उपजीव्य मान कर अनेक कथाओं और प्रसंगों की सृष्टि हुई और तुलनात्मक धर्म एवं भाषा शास्त्र की चर्चा भी गुरुवाणी के उपजीवी साहित्य के रूप में ही हुई ।[132] जिस समय इस साहित्य की रचना हो रही थी तभी पंजाब में सिक्ख गुरुओं द्वारा गुरुमुखी लिपि का प्रचलन हुआ और तमाम गुरुवाणी साहित्य गुरुमुखी लिपि में ही रचा गया । मगर इस साहित्य की भाषा तत्कालीन प्रचलित साहित्यिक भाषा ब्रज ही रही । यह उस समय की अनिवार्यता ही कही जा सकती है । क्योंकि उस समय ब्रजभाषा ही साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित थी । यह पंजाब में रचित हिन्दी (ब्रज) भाषा के साहित्य की विडम्बना ही कही जायेगी कि गुरुमुखी लिपि में रचित होने के कारण हिन्दी के विद्वान इसे पहचानने में असमर्थ रहे और इसे गुरुमुखी लिपियों में रचित होने के कारण ही पंजाबी की रचनाएं मानते रहे ।

--यदि लिपि भेद को ही भाषा भेद मान लिया गया तो दक्खिनी और सूफी आदि के अनेक कवि हिन्दी से पृथक हो जायेंगे ।[133] आज नई खोजों के आधार पर लिपि भेद को मिटा कर हिन्दी साहित्य की नवीन उपलब्धियों को ध्यान में रख कर हिन्दीतर प्रदेशों के हिन्दी साहित्य को देखते हुए कुछ नए परिणाम सामने आए हैं, कुछ प्रदेशों में तो हिन्दी प्रदेशों से भी अधिक हिन्दी साहित्य रचा गया है । मगर अभी उसकी खोज और पड़ताल की आवश्यकता है । प्रत्येक हिन्दीतर प्रदेश में हिन्दी की प्रगति के लिए और हिन्दी साहित्य भण्डार को समृद्ध करने के लिए किए गए महत्त्वपूर्ण कार्यों का लेखा जोखा करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य अपने वर्तमान स्वरूप को हासिल करने से हिन्दी प्रदेश की अपेक्षा हिन्दीतर प्रदेशों के प्रति अधिक ऋणी है ।[134]

इन हिन्दीतर प्रदेशों में पंजाब सब से अधिक उर्वरा रहा है, जिसने अल्पावधि में ही हिन्दी साहित्य की परम्परा को पुष्ट किया है । विविध विषयों और विधाओं में रचित पंजाब के हिन्दी साहित्य के रचयिता किसी भी प्रान्त से पीछे नहीं है अगर प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो पंजाब अग्रणी होगा ।

सच्चाई यह है कि भारत के किसी भी हिन्दी भाषी प्रदेश की अपेक्षा पंजाब अपने धामिक एवं सामाजिक तत्वों पर बने हिन्दी साहित्य की दृष्टि से किसी भी अवस्था में निर्धन नहीं है ।[135]

पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य का यदि साहित्येतिहास रचा जाए तो सम्पूर्ण हिन्दी साहित्येतिहासों का पुनर्मूल्यांकन करके एक नये इतिहास लेखन की आवश्यकता होगी । इससे बहुत सी नई सम्भावनाएं हैं ।

–गत सात सौ वर्षों में अकेले पंजाब ने हिन्दी को इतना दिया है कि इस सामग्री के लिप्यन्तरित होकर प्रकाश में आने पर हिन्दी जगत को हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की अनिवार्यता झेलनी होगी । यह मध्यकालीन साहित्य की कहानी है, पंजाब हिन्दी भारती के विकास यज्ञ में आज भी निरन्तर आहूतियां डाल कर मातृ ऋण से उऋण होने का प्रयास कर रहा है ।[136]

अतः आज हिन्दी साहित्य की विपुलता को देख कर पंजाब की इस महत्त्वपूर्ण देन को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता ।

2. गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी साहित्य :–

साहित्य रचना की दृष्टि से पंजाब अत्यन्त समृद्ध प्रान्त रहा है । यहां की विषम परिस्थितियों ने यहां की जनता की चित्तवृत्ति को अनेक दिशाएं प्रदान कीं । अतः यहां बहुमुखी प्रवृत्यात्मक साहित्य की रचना हुई । हिन्दी प्रान्तों के समान ही पंजाब में भी युगीन परिस्थितियों ने साहित्यकारों को ऐसा आधार प्रदान किया, जिसके अनुसार पंजाब की संस्कृति उनके काव्य में स्वतः साकार हो उठी । पंजाब में भक्तिकालीन साहित्य यहां के गुरमत सिद्धांत का प्रतिपादन करता है और गुरुओं के आदर्शों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है । गुरु काव्य पंजाब में रचित तत्कालीन भक्ति साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है । गुरु काव्यधारा में गुरुमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो है ही साथ ही राम काव्यधारा, कृष्ण काव्यधारा दरबारी साहित्य श्रृंगार परक साहित्य का सूत्रपात भी इसी साहित्य से होता है । वास्तव में यह साहित्य पंजाब की बहुमुखी विचारधाराओं का पोषक साहित्य है ।

गुरु–काव्य की जिस परम्परा ने जहां एक ओर सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का पुनर्मूल्यांकन किया, वहां दूसरी ओर पंजाब के गुरुओं सन्तों, भक्तों ने भारतीय संस्कृति को खण्डित होने से बचाया । विदेशियों के आक्रमणों ने भारत को जिस विध्वंसता के गर्त में धकेलने का प्रयास किया था, उससे निकालने की प्रबल चेष्टा पंजाब के इस साहित्य में परिलक्षित होती है ।

पंजाब के गुरु–साहित्य के माध्यम से न केवल पतनोन्मुखी, मानवता की रक्षा ही हो सकी है, प्रत्युत यह भारतीय संस्कृति की सर्वांगीण पुनर्स्थापना का आधार भी है ।[137]

पंजाब प्रान्त के साहित्य की यह विशेषता है कि इसने समय–समय पर अन्य प्रान्तों के साहित्य से सामंजस्य भी स्थापित किया है । विषय, भाषा और शैली की दृष्टि से पंजाब का साहित्य एक समन्वयात्मक साहित्य है । मध्यकाल में सम्पूर्ण भारतीय हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा में रचा गया । पंजाब का साहित्य भी इस दृष्टि से पीछे नहीं है ।

यदि गहरी दृष्टि से गुरुनानक भाषा को देखे तो पता चलता है कि गुरुदेव ने रेखता और ब्रज भाषा का भी आवश्यकता के अनुसार प्रयोग कर लिया है । कहीं–कहीं सिन्धी

और हरियाणवी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त किए हैं । गुरु जी ने अपनी निजी छाप लगा कर इसे बहुत स्वादिष्ट, शहद से भी अधिक मधुर, अमृत के प्रभाव वाली मिश्रित पंजाबी के रूप में साकार किया है ।[138]

पंजाब में भक्ति काव्यधारा का सूत्रपात ब्रज और पंजाबी के मिश्रण के साथ ही हुआ और धीरे–धीरे ब्रज में पंजाबी के शब्दों का प्रयोग एक सामान्यस्तर पर होने लगा । गुरुवाणी के व्याख्याकारों तथा प्रचारकों की भाषा (गद्य–और पद्य दोनों) में इस प्रभाव को देखा जा सकता है । गुरु नानक देव के परवर्ती साहित्य पर भी ऐसा ही प्रभाव है । पंजाब का हिन्दी साहित्य पंजाबी भाषा में भी रचा गया और हिन्दी में भी । चूंकि गुरुमत के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करने के लिए सिक्ख गुरुओं, सन्तों, साधुओं ने अन्य प्रान्तों के लोगों को अपने साहित्य का ज्ञान कराने के लिए यह आवश्यक समझा कि यह प्रचार उनकी भाषा में ही हो ।

गुरु नानक के परवर्ती सिक्ख गुरु अपने सन्देश को भारत के अन्य भागों तक पहुंचाने की दृष्टि से सचेत रहे, स्वाभाविक था कि वे अपनी रचनाओं के लिए ऐसी भाषा का चुनाव करते जो पंजाब के बाहर भारत के अन्य भागों में समझी जा सकती परिणामस्वरूप सिक्ख गुरुओं की रचनाओं का झुकाव धीरे–धीरे पंजाबी से हिन्दी की ओर बढ़ता चला गया ।[139]

हिन्दी साहित्य का आरम्भ पंजाब में बहुत पहले से हो गया था । अमीर खुसरो से पूर्व बाबा फरीद शंकर गंज की रचनाओं में खड़ी बोली को देखा जा सकता है । कालान्तर में गुरुमुखी लिपि का आविभीव हो जाने से सभी कवियों का झुकाव इस ओर हुआ फलतः देवनागरी का स्थान इस लिपि ने ले लिया । अतः पंजाब का सम्पूर्ण साहित्य इसी लिपि में रचा गया विशेषतः गुरुवाणी साहित्य की रचना इसी लिपि में हुई ।

पंजाब की विस्तृत सीमा में जिस साहित्य ने जन्म लिया उसकी लिपि गुरुमुखी होना स्वाभाविक है । गुरुमुखी लिपि के आविष्कर्त्ता गुरु अंगददेव जी हैं । गुरु परम्परा में गुरु नानक के प्रथम उत्तराधिकारी के नाते श्री अंगद देव का असाधारण सम्मान स्वाभाविक है ।[140] पंजाब में गुरु श्रद्धा एवं भक्ति भावना के कारण गुरु काव्य को अधिक स्तुतिपरक ढंग से रचा गया और पंजाब के सांस्कृतिक वातावरण के अनुकूल ही उसका प्रचार प्रसार हुआ । मगर अन्तर केवल इतना था कि भाषा ब्रज होने के कारण वे इसे समझ तो पाते थे लेकिन लिपि भेद के कारण उनकी लिपि देवनागरी रही । अतः यह काम अनेक ऐसे साधकों प्रचारकों द्वारा हुआ जो दोनों लिपियों के ज्ञाता थे । इस दृष्टि से सिक्ख सम्प्रदायों में विशेष रूप से सेवापंथियों, उदासियों और निर्मल सन्तों का प्रचार कार्य उल्लेखनीय है ।

हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य की सर्जना में देवनागरी लिपि को अपनाया जा रहा था, चाहे ब्रजभाषा का साहित्य हो या अवधी भाषा का या राजस्थानी का सब की

लिपि प्रायः देवनागरी ही रही है । इसके विपरीत पंजाब में ब्रजभाषा को अपना लिया गया लेकिन लिपि के रूप में देवनागरी को नहीं अपनाया जा सका ।[141] पंजाब के कवियों और लेखकों ने देवनागरी को जटिल लिपि मानते हुए गुरुमुखी को ही सामान्य जनता के लिए अधिक उपयुक्त समझा, आरम्भ में कुछ साहित्यकारों ने दोनों लिपियों में साहित्य रचना की मगर धीरे–धीरे पूर्ण रूपेण गुरुमुखी लिपि को अपना लिया । पंजाब में उत्तर मध्यकाल का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य लगभग गुरुमुखी लिपि में ही रचित है ।

गुरुमुखी के होते हुए पंजाब के सपूत दूसरी लिपि क्यों अपनाते ? परिणाम यह हुआ कि दस गुरुओं ने तथा दूसरे अनेक लेखकों ने इसी लिपि को अपनाया । आज स्थिति यह है कि पंजाब में हस्तलिखिति प्रतियां केवल गुरुमुखी अक्षरों में ही मिलती है । नागरी या अन्य अक्षरों में इस प्रकार के साहित्य का लगभग अभाव है ।[142]

पंजाब के साहित्यकारों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने पंजाब के परिवेश को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है, भाषा कोई भी हो, लिपि कोई भी हो मगर उनका साहित्य पंजाबीपन से अछूता नहीं है । पंजाब में विरचित साहित्य की एक अनन्य विशेषता है । भाषा और लिपि का समन्वय एक नवीन लिपि का उदगम और उसमें सम्पूर्ण साहित्य की रचना निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है ।

यहां के रचनाकारों ने सर्वसम्मत ब्रजभाषा को तो माध्यम के रूप में शिरोधार्य किया किन्तु स्थानीय मोह, धरती की गन्ध और अतीव प्रभावशाली पंजाब की गुरु परम्परा से प्रभावित होकर स्थानीय लिंपि गुरुमुखी का प्रयोग करने लगे ।[143] यह युग भाषा और लिपि के सामंजस्य का युग था । यह साहित्येतिहास के क्षेत्र में एक क्रान्ति थी । पंजाब प्रान्तीय यह साहित्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपनी अलग पहचान रखता है ।

डा. हरमहेन्द्र सिंह बेदी ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी भक्ति साहित्य की पहचान रेखांकित करते हुए इस साहित्य के दो प्रमुख लक्षणों को आलोंकित किया है ।

(क) हिन्दी भाषा मध्य युग में इतनी सशक्त थी कि किसी भी प्रान्त की लिपि की दीवार उसके प्रसार को अवरुद्ध नहीं कर सकी ।

(ख) गुरुमुखी लिपि का प्रचलन और प्रयोग इतना व्यापक था कि प्रमुख भारतीय भाषा (हिन्दी) को भी उसका सहारा लेना पड़ा ।[144]

पंजाब का लेखक या कवि कहीं भी हिन्दी साहित्येतिहास की विचारधारा से अलग नहीं है । उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी की उन प्रवृत्तियों का पोषक है, जो समय–समय पर परिवर्तित होती रही है । स्थानीय परिस्थितियों के कारण कुछ भिन्नता तो प्रत्येक प्रान्तीय साहित्य में रहती है, जो उसकी अलग पहचान होती है मगर पंजाब का हिन्दी साहित्य इस क्षेत्र में और भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसने गुरु काव्य परम्परा के अतिरिक्त रीति, भक्ति और वीर काव्य की प्रवृत्तियों को भी अपने में संजोया है । अगर इस साहित्य

का सही मूल्यांकन हो और इसे हिन्दी साहित्येतिहास में उचित स्थान दिया जाए, तो निश्चय ही हिन्दी साहित्य की रूपरेखा परिवर्तित होगी ।

हिन्दी में रचित पंजाब प्रान्तीय साहित्य का बहुत बड़ा भाग ऐसा है, जिसकी मूल सम्वेंदना हिन्दी के उस साहित्य से जुड़ी हुई है, जो हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रचा जा रहा था ।[145]

आज पंजाब में रचित इस हिन्दी साहित्य को लेकर विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वानों ने पंजाब में रचित साहित्य को हिन्दी साहित्य मानने से इन्कार किया है । वास्तव में उन्हें एक भ्रम पैदा हो गया है कि गुरुमुखी की रचना पंजाबी की ही रचना है और देवनागरी की रचना ही हिन्दी की रचना है । लेकिन नई सामग्री के प्रकाश में आ जाने से और निरन्तर चल रहे नए अनुसन्धानों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि अन्य प्रान्तों के समान ही पंजाब में भी ब्रजभाषा का साहित्य रचा गया और गुरुवाणी (गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित) तथा अन्य तत्कालीन रचनाएं ब्रजभाषा की ही रचनाएं हैं । लेकिन उनकी लिपि गुरुमुखी है ।

यदि यह मान भी लिया जाए कि गुरु ग्रन्थ साहिब तथा और सन्तों साधुओं की वाणी हिन्दी भाषा में थी, तो इस बात के साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि पंजाब में हिन्दी भाषा के लिए देवनागरी का प्रयोग कदापि नहीं हुआ । यह सदा गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जाती रही है ।[146]

पंजाब के साहित्य में गुरुमुखी लिपि का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । इससे भाषा और लिपि के सामंजस्य की भावना परिलक्षित होती है । इस साहित्य में अनेक अमूल्य रचनाएं उपलब्ध हुई हैं। अभी खोज जारी है । पंजाब के और पंजाब से बाहर के अनेक विद्वानों ने इस क्षेत्र में काम किया है । जिससे अनेक उत्साह वर्धक परिणाम निकले हैं । अगर इस सम्पूर्ण साहित्य को मिला कर हिन्दी साहित्येतिहास की रचना की जाए, तो हिन्दी साहित्य का स्वरूप कुछ और ही होगा ।

3. सन्त साहित्य और निर्मल साहित्य :–

मध्यकाल में 15वीं 16वीं शती में दिल्ली पर लोधी वंश का शासन था । उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती शासकों के समान भारतीयों को भिन्नता की दृष्टि से ही देखा । सिकन्दर लोधी (1488–1527) जोकि दिल्ली का शासक था 16वीं शती के आरम्भ में हिन्दुओं पर अनेक पाबंदियां लगा दी ।[147] हिन्दुओं के साथ सोतेली मांका सा व्यवहार किया जाने लगा हिन्दुओं को 'जज़िया कर' और तीर्थ स्थान पर इसीलिए देने पड़ते थे क्योंकि वे हिन्दू थे । मुसलमानों को किसी भी प्रकार की पाबन्दी न थी । उन्हें राजदरबार में पूरा सम्मान मिलता था । मुसलमान शासकों के जुलम दिन–प्रतिदिन बढ़ रहे थे । अत्यन्त जुलम के पीड़ित और गुलामी के जंजीरों में जकड़े बेबस हिन्दू नैतिक तौर पर मर रहे

थे ।[148] छोटे–छोटे राज्यों के अधिकारी एक–दूसरे को अपनी शक्ति दिखाने के लिए जनता को व्यर्थ ही में परेशान कर रहे थे सामन्ती व्यवस्था निम्न वर्ग को निगल रही थी । दासवृत्ति की जड़े फैल गई थीं । शासकों के पिट्ठू जनता की ओर ध्यान न देकर धन बटोरने में लगे थे । तत्कालीन राजनैतिक समाज में जमींदारों का जमीन पर आधिपत्य होना, उच्चाधिकारों की प्राप्ति धरती पर या उसकी उपज पर अधिकार इस समय की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात थी ।[149] इन जमींदारों को शासक वर्ग की ओर से जागीरे अथवा नकद धन प्राप्त होता था । मनसबदारी प्रथा का प्रचलन तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का एक प्रमुख अंग थी । सम्राट की ओर से प्रदत्त धरती में से या इलाके में से मनसबदार आय कर और दूसरे प्रकार का निर्धारित उपज के रूप में कर एकत्र करते थे । कर आदि न चुकाने पर सब कुछ नीलाम कर देने का विधान भी था । समाज की उच्च–मध्य और निम्न तीन श्रेणियां थीं । शासक वर्ग उच्च वर्ग में था, सामन्त, जागीरदार और 'मनसवदार' मध्यवर्ग में और शेष जनता निम्न वर्ग में थी । शासक वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था । जनता शोषित की जा रही थी । खोखले दर्प में आपसी कलह के कारण राज्यशक्ति क्षीण होती जा रही थी । निम्न वर्ग के लोग निर्धनता के कारण दुर्व्यसनों से दूर थे । शासक वर्ग में नारी और मदिरा दो ही प्रिय वस्तुएं थीं । अमीर हिन्दुओं की आमदन कम करने हेतु उन्हें टैक्स आदि लगा दिये जाते थे, जोकि अन्याय[150] था । इसके अतिरिक्त, अन्याय बेईमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, दुर्व्यसनों से उस समय का शासक वर्ग घिरा हुआ था । हारे को 'हरिनाम सहाय' तथा 'निर्बल के बल राम' के अनुसार जनता ईश्वर की शरण में जाने को विवश हुई । अनेक सन्तों भक्तों ने अपनी वाणी द्वारा सन्तप्त हृदयों को शान्त किया ।

भक्ति ने ही नाथपंथियों निरंजन पंथियों आदि के निर्गुण मत से मिल कर उस महान साहित्य को पैदा किया था, जिसे निर्गुण सन्त साहित्य कहते हैं । भक्ति ने ही सूफी साधना को वह भारतीय रूप दिया, जिसे प्रेममार्गी साधना कहते हैं और मलिक मोहम्मद जायसी जैसे भक्त जो साधना के अग्रणी हैं । भक्ति ने ही रामावतार और कृष्णावतार का आश्रय करके उसके बेजोड़ प्रेम साहित्य का निर्माण किया, जिसकी तुलना वह स्वयं आप ही हैं ।[151] भक्ति और ज्ञान के द्वारा उस समय धार्मिक नेताओं ने एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की जिसने दो सांस्कृतियों को समन्वित रूप प्रदान करने में जनता का मार्गदर्शन किया । उन्होंने अनुभूति पक्ष को अपने साहित्य में अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया, कबीर, दादू, पीपा, गुरु नानक आदि अनेक सन्तों ने अपनी दार्शनिक दृष्टि को अपनी वाणी में उद्धृत कर देश और जाति की दीवारों को तोड़ कर, आडम्बरों का निराकरण करके एक सार्वभौमिक ज्ञान का उदय किया, सन्त का वास्तविक लक्षण भी यही है ।

सन्त पर न किसी योनि का अधिकार है, न किसी देश का, न किसी काल का सन्त हर योनि में हर देश में और हर काल में रहते हैं। समस्त निर्गुण भक्ति साहित्य में सन्त शब्द की यही अर्थ स्थिति है।[152]

उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों की भ्रमात्मक धारणाओं को खण्डित करके जनता को पथ भ्रष्ट होने से बचाया और सद्साहित्य की रचना करके अपने अनुभूति पक्ष को उस साहित्य के माध्यम से ही जनता तक पहुंचाया।

–सन्त शब्द एक विशेष वर्ग के भक्तों के लिए प्रयुक्त होता है। जिनमें निर्गुण भक्तों को ही गिना जाता है। इन सन्तों ने परमात्मा को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है और अपने भक्ति मार्ग में गुरु को विशेष महत्त्व दिया है।[153]

उनकी दार्शनिक विचारधारा, में निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर अधिक बल दिया गया है। कहीं–कहीं कुछ सन्तों ने अपने साहित्य में निर्गुण और सगुण दोनों को समान महत्त्व दिया है। लेकिन सगुण का निर्गुण से भिन्न नहीं माना है। विशेष रूप से सिक्ख धर्म के प्रवर्तक और उनके अनुयायी गुरुओं ने इसी विचारधारा को अपनी वाणी में महत्त्व दिया है। इसी प्रकार अनेक सन्तों ने निगुर्ण में ही सगुण की सत्ता को स्वीकार करके एक नवीन विचारधारा प्रस्तुत की। इनके साहित्य में भी ब्रह्म की एकरूपता, माया का निषेध, आत्मा की पहचान, गुरु का महत्त्व, अहं का नाश, आडम्बरों का खण्डन आदि विषयों को ही चरितार्थ किया है। उनकी साधना पद्धति जीवन के अत्यधिक निकट हैं, वे सांसारिकता से विरक्त नहीं है।[154]

सन्त साहित्य भावात्मक एवं अनुभूति प्रवण है, उसमें किसी शास्त्र अथवा सिद्धान्त के प्रति आग्रह व्यक्त नहीं हुआ है। यह बात साधना क्षेत्र और साहित्य जगत दोनों ही ने समान रूप से लक्षित होती है। निर्गुण काव्य धारा के संत कवि सम्भाव्य तथा समाज के निम्न वर्गों में आर्विभूत हुए थे। समाज ने उन्हें सम्भाव्य नहीं समझा–वे साधन विहीन वातावरण में उत्पन्न हुए तथा साहित्य भाषा, व्याकरण आदि के अनुशीलन से वंचित रहें। इसलिए इनकी काव्य भाषा में परिष्कार, परिमार्जन, परिनिष्ठता और साहित्यिकता नहीं है। संतों का भाषा दर्शन सहजता और सरलता की ओर उन्मुख है। सत्य का निरूपण सत्य का विवेचन एवं सत्य का प्रचार प्रसार उनकी कविता का मूल लक्ष्य था।[155]

सन्त काव्य धारा में विशेषतः कबीर, गुरु नानक, दादू, सुन्दरदास और हरिदास निरंजनों की साखियों एवं पदों में सशक्त अभिव्यंजना, गम्भीर रहस्यात्मक उक्तियों प्रभावशाली प्रतीक और भाषा का स्वाभाविक प्रवाह विद्यमान है। साहित्य की जो लौकिक सीमायें तथा काव्य शास्त्रीय एवं भाषा वैज्ञानिक स्वीकृतियां हैं, इससे इस काव्य धारा को नहीं बांधा जा सकता है परन्तु पारमार्थिक अलौकिक जगत की झांकियों को प्रस्तुत करने वाले संत साहित्य का अपना महत्त्व है।

इसी सन्त साहित्य के द्वारा मध्यकालीन धार्मिक चेतना का उदय हुआ और अनेक छुटपुट सम्प्रदाय इसी के अन्तर्गत विलीन हुए । कबीर से पूर्व सभी धार्मिक सम्प्रदाय अपने–अपने सिद्धान्तों के आधार पर जनता को पथभ्रष्ट कर रहे थे और अनैतिकता की ओर ले जा रहे थे, वे एकाएक ध्वंस्त हो गए । कबीर के पश्चात् सिक्ख धर्म संस्थापक गुरु नानक देव जी के आर्विभाव से कबीर के सिद्धान्तों को और अधिक बल मिला ।

–मध्य युग के अन्य सन्तों का सन्देश धार्मिक और सामाजिक जीवन तक ही सीमित था । गुरु नानक देव ने उसे वृहत्तर पटभूमि पर रखा । उनके द्वारा संस्थापित भक्ति मार्ग सम्पूर्ण मानव जीवन को आत्मसात् करता है । यह एक बहुत बड़ी विशेषता है, जो गुरु नानक देव के पहले भारत वर्ष में सैंकड़ों वर्ष तक किसी दूसरे महात्मा को नहीं प्राप्त हुई ।[156]

सन्त साहित्य में सिक्ख गुरुओं द्वारा रचित वाणी का विशेष महत्त्व है । कबीर आदि सन्तों के समान ही सिक्ख गुरुओं ने भी निर्गुणवादी परम्परा का ही अनुसरण किया और सिक्ख धर्म के अनुयायी सम्प्रदायों ने भी इन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार किया । इनमें सेवापन्थी, उदासी, निरंजनी और निर्मल सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय हैं । सिक्ख धर्म में आदि ग्रन्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को आधार मान कर जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया गया । उन्हीं के आधार पर इन सम्प्रदायों ने समय की आवश्यकता के अनुसार सामाजिक एकता के लिए गुरुवाणी का प्रचार किया । इसमें निर्मल सम्प्रदाय अधिक सक्रिय रहा है ।

–17वीं–18वीं शताब्दियों की ऐतिहासिक परिस्थितियों ने जिस समन्वयात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया था, उसका निर्वाह वर्तमान काल में भी निर्मल साधुओं द्वारा होता चला आ रहा है ।[157]

उन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या द्वारा गुरुमत सिद्धान्तों को जनता तक पहुंचाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । इन्होंने, अनेक शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके भारतीय दर्शन की मूल चेतना को पहचान कर उसी के सन्दर्भ में अपनी व्याख्या प्रस्तुत की । गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने शिष्यों को वेद विद्या के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव करते हुए संस्कृत विद्या पढ़ने के लिए तैयार किया । इसके बिना भारतीय संस्कृति, दर्शन और साहित्य का ज्ञान असम्भव था । संस्कृत साहित्य की अमीर विरासत को उन्होंने अपने शिष्यों को ग्रहण करने का आदेश दिया । गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय में हिन्दू शिक्षा संस्थाओं केन्द्रों में विशेष करके काशी में ब्राह्मणों को छोड़ कर अन्य जातियों को वेद शिक्षा नहीं दी जाती थी । दशमेश पिता जी ने पांच शिष्यों को संस्कृत शिक्षा ग्रहण करने के लिए बनारस या काशी भेजा, ताकि वे प्रत्येक सम्भव विधि से वहां के माननीय पंडितों से वेदशास्त्रों की गहन शिक्षा प्राप्त करके आये । काशी के पंडितों का यह सिद्धान्त था कि वे किसी गृहस्थी को अपनी गहन विद्या का दान

नहीं देते थे । दशमेश जी यह नहीं चाहते थे कि भारत की पुरातन विद्या और विचार-कोष किसी मनुष्य के लिए इसलिए बन्द रहे कि वह गृहस्थी है या जन्म से किसी नीच जाति का है । गुरु साहब ने उन्हें आदेश दिया कि जो भी पंडितों के रीति-रिवाज़ है, वे सब करो, परन्तु विद्या अवश्य प्राप्त करके आवो । उन्होंने हिन्दू साधुओं वाले गेरुयें वस्त्र पहन लिये और ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली । कांशी में विद्या प्राप्ति के लिए उन्हें कोई बाधा न हुई । वेद शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता होकर वे गुरु जी के सम्मुख उपस्थित हुए और सदगुरु ने उन्हें निर्मल (मल रहित) पदवी से विभूषित किया ।[158] कांशी से लौट कर इन विद्वानों ने सिक्ख जगत् को संस्कृत ग्रन्थों की विद्या दी और इस तरह निर्मला-पंथ ही बन गया, जो सिक्ख पन्थ का अंग है ।

इस पंथ ने अपने अमूल्य ज्ञान से अनेक विषयों में सैंकड़ों ग्रन्थों की रचना करके अपनी पुरानी विरासत को अग्रसारित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । यह सन्त अपनी विचारधारा को वैदिक और गुरुवाणी के सिद्धान्तों के समन्वय से प्रस्तुत करते हैं । इनके साहित्य में बहुधा गुरुवाणी की व्याख्या के ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं, गुरु महिमा, ब्रह्म, जीव, माया, जगत् सम्बन्धी दृष्टिकोण अन्य मध्यकालीन सन्तों जैसा ही है मगर यह त्यागी सन्त है, गृहस्थ में विश्वास नहीं रखते, मगर संसार का त्याग भी नहीं करते, गुरु सिक्खों की मर्यादा का पालन करते हैं, दसों गुरुओं की स्तुति इनके साहित्य का मुख्य श्रृंगार है । दृष्टान्तों के माध्यम से अपनी बात को स्पष्ट करते हैं । ये संन्यासी साधु सिक्ख धर्म का प्रचारक वर्ग है और अपने अनेक ग्रन्थों की रचना करके इन्होंने सिक्ख सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है ।

निर्मल मार्ग सन्यास मार्ग ही है । निर्मल वर्ग वस्तुतः सिक्ख धर्म का पंडित वर्ग है विद्या पढ़ना और पढ़ाना इनका मुख्य कर्त्तव्य है । विवाह का इनके लिए निषेध है । निर्मल मार्ग और सन्त मार्ग में यहां अपनी सी समानता दिखाई देती है किन्तु सन्त मार्ग त्याग का उपदेश ही नहीं देता । भोग, नारी (अतः गृहस्थी) की निन्दा करता है ।[159]

निर्मल सन्तों ने बहुधा ब्रजभाषा में ही अपने ग्रन्थ रचे हैं जिनमें पद्य और गद्य दोनों विधाओं के ग्रन्थ सम्मिलित हैं । इनके साहित्य में अधिकांशतः भाषा अनुवाद टीका ग्रन्थ या व्याख्या ग्रन्थ आते हैं । संस्कृत, ब्रज, पंजाबी, लहंदा आदि सभी भाषाओं में इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की । इस बहु भाषायी साहित्य रचना के कर्ता निर्मल सन्त उत्तर मध्यकालीन रीति साहित्य काल में भी भक्ति और ज्ञान की ज्योति को अक्षुण्ण रखने वाले निश्चय ही अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण विशिष्ट सम्मान के अधिकारी हैं । गुरु गोबिन्द सिंह जी की दूरदर्शिता को प्रत्यक्ष करने वाले निर्मल सन्तों का साहित्य निश्चय ही महत्त्व पूर्ण है ।

—वस्तुतः यदि वर्तमान के निर्मल पन्थ के साधु लोगों की ओर दृष्टि करी जावे, तो गुरु गोबिन्द सिंह जी की कृपा का तथा उनके भविष्यत वचन का स्पष्ट ही परिचय मिल सकता है । ॐ नमः सिद्धम् से लेकर वेद वेदांग शास्त्रों तक कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं हो सकता जोकि औरों को आता हो और निर्मलों को न आता हो । उन्हीं दिंनों में गुरु जी ने अपने शिष्यों से तथा और पंडित लोगों से भागवत, महाभारत, विष्णु पुराण, उपनिषद इत्यादि अनेक ग्रन्थों का अनुवाद भी करवाना प्रारम्भ किया था । छोटे–छोटे प्रकरण भाषा कराकर अल्प श्रुत शिष्य लोगों में प्रचार करते थे । क्योंकि हर वक्त आपके चित्त में यही भाव रहता था कि हमारे शिष्य लोग शस्त्र तथा शास्त्र दोनों के मर्म को भली प्रकार पावें तो किसी तरह से भावी में क्लेश नहीं उठावें ।[160]

इनके साहित्य में विषयों की विविधता को देख कर इनकी बहुज्ञता का परिचय सहज ही हो जाता है । इनकी रचनाओं से एक ओर जहां रीतिकालीन प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती हैं, वहां दूसरी ओर भक्तिकालीन विचारधारा का भी प्रतिपादन हुआ है । समूचे रूप में इन सन्तों का साहित्य रीति और भक्ति की समन्वयात्मक सम्प्रेषणीयता का द्योतक है । और निर्मल सन्तों का साहित्य मध्यकालीन सन्त साहित्य के समान ही गुणों का धारणी है, तथा सन्त साहित्य की समता रखता है । अथवा सन्त साहित्य के समान ही निर्मल साहित्य भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

4. निर्मल साहित्य का हिन्दी साहित्य में स्थान एवं महत्त्व :—

हिन्दी साहित्येतिहास का भक्तिकाल स्वर्णिम काल है । यह उस समय के प्रचलित सम्प्रदायों का इतिहास है, जिसमें सन्त काव्य सूफी काव्य, राम काव्य तथा कृष्ण काव्य सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इनके दार्शनिक सिद्धान्तों को जाना जा सकता है । निर्गुण और सगुण ब्रह्म का संकल्प लेकर रचा गया यह भक्तिकालीन साहित्य कविता में रचा गया दर्शन ही है । जब पूरे भारत में इस दर्शन का प्रचार हो रहा था तो उत्तरी भारत में विशेषतः पंजाब में इसी भक्ति आन्दोलन का प्रभाव गुरुवाणी के माध्यम से प्रचलित हुआ । श्री गुरु नानक देव के आविर्भाव से इसका सूत्रपात हुआ और सिक्ख गुरु परम्परा से इसका प्रसार हुआ । इतिहास दर्शन के अनुसार कभी भी कोई आन्दोलन या लहर समाप्त नहीं होती । हां उसका रूप अवश्य परिवर्तित हो जाता है । आगे चल कर सिक्ख धर्म के अनेक सम्प्रदायों ने सिक्ख धर्म के सिद्धान्तों को पंजाब से बाहर प्रचार करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।

जब अन्य प्रान्तों में हिन्दी साहित्य की रचना हो रही थी, तो सिक्ख सम्प्रदायों के कुछ मनीषी कवि और लेखक भी गुरुवाणी को हिन्दी में प्रस्तुत करने में लीन थे और उदासी, निर्मल और सेवा पन्थियों की सेवा साधना विशेष महत्त्वपूर्ण है । उस समय [illegible] भाषा गुरुमुखी में भी लिखी जाती थी । अतः पंजाब का लगभग सारा [illegible]

गुरुमुखी लिपि में ही रचित है । कुछ विद्वानों ने ब्रज के स्थान पर पंजाबी का प्रयोग भी किया है । उस समय लिपि और भाषा भेद का इतना अन्तर भी माना जाता था । क्योंकि पंजाब हिन्दी साहित्य रचना में किसी भी अन्य प्रान्त से पीछे नहीं रहा है ।

हिंन्दी साहित्य को पंजाब की देन भारत के किसी भी अन्य अहिन्दी भाषी प्रदेश की अपेक्षा अधिक एवं विशिष्ट है । पंजाब में हिन्दी (ब्रज) साहित्य और पंजाबी साहित्य का आरम्भ लगभग साथ–साथ हुआ ।[161]

यह सम्पूर्ण हिन्दी पंजाबी का साहित्य सिक्ख सम्प्रदायों, सन्तों एवं भक्तों की कड़ी साधना का फल है । निर्मल सम्प्रदाय के साधुओं, सन्तों ने आजीवन गुरुवाणी की व्याख्या एवं टीका करके अनेक अमूल्य ग्रन्थ साहित्य जगत को दिए ।

हिन्दी संस्कृत के विद्वान निर्मल सन्तों ने संस्कृत और हिन्दी के प्रति अपनी अधिक रुचि दिखाई और विशेष उद्देश्य से इन्होंने हिन्दी प्रान्तों में गुरुवाणी का प्रचार करने के लिए अपने ग्रन्थ हिन्दी संस्कृत में रचे निर्मल सन्तों का हिन्दी प्रेम तो विख्यात है । कुछ एक संस्कृत ग्रन्थों को छोड़ कर उनकी अधिकांश रचनाएं हिन्दी (सरल ब्रज) में है । गुलाब सिंह (18वीं शती) से लेकर ज्ञानी ज्ञान सिंह (20वीं शती) तक इन्होंने अपनी काव्य कृतियों का माध्यम हिन्दी बनाए रखा । 16वीं शती के अन्त और बीसवीं शती के प्रथम चरण में जबकि सिंह सभा के प्रचार से सिक्ख लेखक और जन साधारण पंजाबी की ओर प्रवृत्त हो रहे थे, निर्मल सन्त हिन्दी के प्रति निष्ठावान रहे ।[162]

पंजाबी के विद्वानों ने भी निर्मल सन्तों के इस अद्वितीय योगदान को स्वीकार किया है, आरम्भ में निर्मल सन्तों ने विशेष रूप से हिन्दी प्रान्तों के लिए ही काम किया क्योंकि वे पंजाब से बाहर भी गुरुमत सिद्धान्तों का प्रचार करते थे तथा संस्कृत जानने वालों तक भी गुरुजनों का सन्देश पहुंचाना चाहते थे । अतः उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की । भले ही बाद में उनकी भाषा में पंजाबी का प्रभाव दिखाई देता है और कुछ रचनाएं पंजाबी में भी लिखी है, तो भी उनका हिन्दी साहित्य स्वीकार्य है ।

निर्मल सन्तों ने पंजाबी के अतिरिक्त कुछ हिन्दी साहित्य भी गुरुमुखी लिपि में रचा है, भाषा की दृष्टि से इनके साहित्य की छानबीन करने से गुरुमुखी अक्षरों में रचे हिन्दी गद्य में भी पंजाबी के शब्द और वाक्यांश मिलते हैं ।

जो भी हो इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि निर्मल सन्तों द्वारा रचित साहित्य से हिन्दी साहित्य में एक नया अध्याय जुड़ जाता है । मगर खेद है कि हिन्दी साहित्येतिहास लेखकों ने अहिन्दी प्रान्तीय-हिन्दी साहित्य को आंखों ओझल कर दिया । हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की बहुत बड़ी विडम्बना यह रही है सम्पूर्ण भारत के साहित्य को दृष्टि में न रख कर एक क्षेत्र विशेष के ही हिन्दी साहित्य के आधार इतिहास रचे गए ।

पंजाब में जो भक्तिकालीन और रीतिकालीन हिन्दी साहित्य रचा गया उसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया । आज नए अनुसन्धानों से तथा शोधार्थियों एवं विद्वानों के निरन्तर प्रयासों के फलस्वरूप कुछ नए तथ्य सामने आए हैं । कुछ विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम भी किया है । गुरुमुखी लिपि के ज्ञाता ही इस क्षेत्र में काम कर सकते थे । अतः पंजाब के बाहर के विद्वान इस लिपि से अनभिज्ञ थे । अतः इस लिपि में रचित साहित्य को न जान सकना उनकी एक विवशता थी । अतः इस अमूल्य साहित्य का उल्लेख नहीं हुआ । हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों से तो गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध इस विभूति के सम्बन्ध में कुछ जानकारी पाना सम्भव नहीं था, क्योंकि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने नागरी लिपि के अतिरिक्त अन्यान्य लिपियों में उपलब्ध हिन्दी (गद्य–पद्य) साहित्य का अभी अनुशीलन ही नहीं किया है । साधारणतया उत्तर प्रदेश के दो चार ज़िलों की सीमा ही हिन्दी की सीमा मान ली गई है ।[163]

आज पंजाब के इस महत्त्वपूर्ण हिन्दी साहित्य के प्रकाश में आने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि हिन्दी साहित्येतिहास का पुनर्लेखन सम्भव हुआ है । और पंजाब की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं और उनके रचयिता को हिन्दी साहित्येतिहास में उचित स्थान मिलेगा । प्रत्येक प्रान्त की हिंदी साहित्य सम्बन्धी खोज को बल मिलेगा ।

निर्मल सन्तों द्वारा रचित इस हिन्दी साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्यकार के लिए भाषा लिपि प्रान्त की सीमा कोई महत्त्व नहीं रखती । उनकी भक्ति, दर्शन, रीति, भाषा, टीका, काव्य शास्त्र, इतिहास, वैद्यक, ज्योतिष सम्बन्धी रचनाएं किसी भी हिन्दी प्रान्तीय लेखक से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । उनका साहित्य हिन्दी प्रान्तीय साहित्य की समता करने में सक्षम है ।

अगर हिन्दी साहित्येतिहास का पुनर्लेखन हो और निष्पक्ष रूप से पंजाब के इस हिन्दी साहित्य को उचित सम्मान एवं स्थान दिया जाए, तो हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप ही कुछ और होगा । निर्मल सन्तों की इस अद्वितीय साहित्य साधना ने पंजाब के हिन्दी साहित्य में जितना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया उतना शायद किसी अन्य सम्प्रदाय ने नहीं । अतः कहा जा सकता है कि निर्मल साहित्य का हिन्दी साहित्य को अभूतपूर्व योगदान है ।

=======

सन्दर्भिका

1. आई. बी. बैनर्जी, खालसे दी उत्पति, जिल्द पहली, अनु. प्रीतपाल सिंह, (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1976), पृष्ठ 33 ।
2. प्यारा सिंह पद्म, संखेप सिक्ख इतिहास (पटियाला : कलामन्दिर लोअर माल 1979), पृष्ठ 137 ।
3. सुरिन्द्र कोहली, नानक कालीन पंजाब यूनिवर्सिटी, पंजाबी साहित दा इतिहास (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी, 1973), पृष्ठ 147 ।
4. प्यारा सिंह पद्म संखेप सिक्ख इतिहास, (पटियाला कला मंदिर, लोअर माल 1979), पृष्ठ 24 ।
5. खुशवंत सिंह – 'ए हिस्ट्री आफ द सिक्ख' (दिल्ली : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी 1977), पृष्ठ 43 ।
6. क. ज. अमराफिआन, गुरु नानक अते उनां दा समां, सम्पा॰ गुरबंख्श, (मास्को : प्रगति प्रकाशन, 1972), पृष्ठ 13 ।
7. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, 1970), पृष्ठ 17 ।
8. हरिभजन सिंह गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारतीय साहित्य मन्दिर– 1963), पृष्ठ 168 ।
9. गुलाब सिंह, मोक्ष पंथ प्रकाश (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977) पृष्ठ 522 ।
10. जोगिन्द्र सिंह, जपुजी दे टीके (जालन्धर : हिन्दी प्रैस, 1981), पृष्ठ 25 ।
11. सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य का इतिहास, (इलाहाबाद : भारती भण्डार, संवत 2024), पृष्ठ 290 ।
12. गुलाबसिंह, भाव रसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पद्म (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठ 91 ।
13. गुलाब सिंह, भाव रसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, पृष्ठ 71 ।
14. वही॰, पृष्ठ 86 ।
15. गुलाबसिंह, मोक्ष पंथ प्रकाश (कनखल : श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977), पृष्ठ 611 ।
16. नवरत्न कपूर, सन्त गुलाब सिंह निर्मला व्यक्तित्व और कृतित्व, साहित्य मार्ग : सम्पा॰ मनमोहन सहगल (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, अंक 12, 1981) पृष्ठ 150 ।

17. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ प्रकाश, (कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977), पृष्ठ 579 ।
18. वही॰, पृष्ठ 13 ।
19. गुलाबसिंह, भाव रसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 101 ।
20. वही॰, पृष्ठ 72 ।
21. गुलाबसिंह, स्वज्नाध्यायी, पाण्डुलिपि संख्या एन. एस. 526, (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी) पृष्ठ 10 ।
22. गुलाबसिंह निर्मला, मोक्ष पन्थ, प्रकाश (कनखल, श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977), पृष्ठ 3 ।
23. गुलाबसिंह, रामगीता, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. 255 (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी) पृष्ठ 61–62 ।
24. गोबिन्दनाथ राजगुरु गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन–1969), पृष्ठ 196 ।
25. वही॰, पृष्ठ 196 ।
26. गुरदित्ता सिंह, नैष्कर्म्य सिद्धि की प्रेमाख्या भाषाटीका (लाहौर : बाम्बे मशीन मुद्रणालय, 1925) पृष्ठ 371 ।
27. निहाल सिंह (मिग्रिन्द) दोहरा भेदावली, पाण्डुलिपि सं॰ 170 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ 94 ।
28. ईशर सिंह तांघ, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीतिकाव्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज सन् अनुपलब्ध), पृष्ठ 109 ।
29. टहिलसिंह, कबित टहिलसिंह, पाण्डुलिपि सं. 232 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ 39 ।
30. गुलाब सिंह, स्वज्नाध्यायी, पाण्डुलिपि सं॰ 184, (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब), पृष्ठ 99 ।
31. गणेशासिंह, व्याध विनाशक ग्रन्थ (अमृतसर : हरीसिंह गुरदित्त सिंह, संवत 1873) पृष्ठ 31 भूमिका ।
32. गुरदित्त सिंह, गुरमत सिद्धान्त सार (लाहौर : मदन प्रिंटिंग प्रैस, 1931 ई॰), पृष्ठ भूमिका ।
33. गणेशासिंह, श्री सहसक्रित श्लोक सटीक, पाण्डुलिपि संख्या 220, (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ 3, 4, 7, 9 ।
34. धर्मपाल मैनी, गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व (इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन–1972) पृष्ठ 8, प्राक्कथन ।
35. गंगाराम, शोभा श्रृंगार (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, सन अनुपलब्ध) पृष्ठ 1 ।

36. गोबिन्दसिंह लांबा पंजाबी हस्तलिखित साहित्य दी खोज, पंजाबी दुनियां (पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब, अंक फरवरी–1973), पृष्ठ 72 ।
37. गंगा राम, शोभा श्रृंगार (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, सन अनुपलब्ध), पृष्ठ 1 ।
38. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका (इलाहाबाद : हिन्दी परिषद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, 1952), पृष्ठ 235 ।
39. प्रभदयाल मीतल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1988), पृष्ठ 577 ।
40. सत्येन्द्र : ब्रज साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : भारती भण्डार, संवत 2024), पृष्ठ 8 ।
41. तारन सिंह, गुरवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980) पृष्ठ 188 ।
42. सतिन्द्रकौर, उन्नीसवीं सदी विच पंजाबी वारतक, इक आलोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित सोध प्रबन्ध) (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी 1978), पृष्ठ 59 ।
43. हरिभजन सिंह, गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर, 1963), पृष्ठ 165 ।
44. वही॰, पृष्ठ 166 ।
45. शमशेर सिंह अशोक, पंजाबी हत्थ लिखित साहित पंजाबी दुनियां (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, अंक जुलाई 1965) पृष्ठ 19 ।
46. महीप सिंह, हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, सम्पा॰ मलिक मोहम्मद (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, 1977), पृष्ठ 267 ।
47. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (दिल्ली : राज कमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 196 ।
48. ईशर सिंह तांघ (गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीतिकाव्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, सन् अनुपलब्ध), पृष्ठ 292 ।
49. गुलाब सिंह भावरसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 115 ।
50. गुलाब सिंह, भावरसाम्रित सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब–1969) पृष्ठ 86 ।
51. गुलाबसिंह मोक्ष पन्थ प्रकाश (कनखल : श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977) पृष्ठ ।
52. गोबिन्द सिंह (साधु) इतिहास गुरु खालसा (बम्बई : श्री वैंकटेश्वर सटीक यन्त्रालय, सन् अनुपलब्ध), पृष्ठ भूमिका ।
53. गुरदित्त सिंह (साधु) गुरु गिरा रूपान्तर (लाहौर : करकन टायल प्रैस, 1935), पृष्ठ 1–2 ।
54. साधुसिंह, गुरु ग्रन्थ प्रदीप (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1952), पृष्ठ 1–2 ।

55. साधुसिंह, गुरु ग्रन्थ प्रदीप, (अजिल्द) (कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा संवत 1952), पृष्ठ 3 ।
56. ईशर सिंह काशी, श्री गुरमत दिग्विजय, (लाहौर : श्री गुरवख्श प्रैस, संवत शाही 440 (सं॰ 1760 वि॰) पृष्ठ 83–84 ।
57. गुरदित्त सिंह (साधु) गुरु गिरा रूपान्तर (लाहौर : करकन टायल प्रैस, 1935) पृष्ठ 1–2 ।
58. गुलाब सिंह, मोक्षपंथ प्रकाश, (कनखल श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा–1977) पृष्ठ 61 ।
59. वही॰, पृष्ठ 49 ।
60. टहिल सिंह, कबित्त टहिल सिंह, पाण्डुलिपि सं॰ 332 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ 3 ।
61. हरसिंह (साधु श्री गुरु सिद्धान्त पारिजात (जम्मू : श्रीराम प्रकाशन–1974) पृष्ठ 1 भूमिका ।
62. वही॰, पृष्ठ 45 ।
63. वही॰, पृष्ठ 154 ।
64. सम्पा॰ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1973), पृष्ठ 2 ।
65. जगदीश गुप्त : रीति काव्य संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा॰ लि॰, सन् 1970), पृष्ठ 120 ।
66. वही॰, पृष्ठ 123 ।
67. सम्पा किरपाल सिंह कसेल, पंजाबी साहित दा इतिहास (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1971) पृष्ठ 520 ।
68. निहाल सिंह (मिग्रिन्द्र) दोहरा भेदावली, पाण्डुलिपि, सं॰ 170 (पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब) पृष्ठ 4 ।
69. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर–1963), पृष्ठ 178 ।
70. माधवराव (रेगुलपाटी, छन्द विश्लेषण स्रोत एवं विकास (हैदराबाद, दक्षिणा चालीय साहित्य समिति–1982), पृष्ठ 40 ।
71. टहलसिंह, कबित टहलसिंह, पाण्डुलिपि सं॰ 232 (पटियाला–भाषा वि॰ पं॰) पृष्ठ 2
72. निर्मल स्वामी, वेदांत ग्रन्थ, पाण्डुलिपि सं॰ 58 (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) पृष्ठ 1 ।
73. गुलाबसिंह, स्वप्नाध्यायी, पाण्डुलिपि सं॰ एम. एस. 526 । (अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, पृष्ठ 1) ।
74. गुलाब सिंह, मोक्ष–पन्थ प्रकाश (कनखल, श्री निर्मल पंचायतो अखाड़, 1977) पृष्ठ 5 ।

75. गुलाब सिंह, भाव रसाम्रित (सम्पा॰ प्यारा सिंह पद्म (पटियाला भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 101–102 ।
76. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ प्रकाश (कनखल श्री निर्मल पंचायती, अखाड़ा 1977) पृष्ठ 2 ।
77. निहाल सिंह निर्मला, दोहरा भेदावली पाण्डुलिपि सं॰ 170, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 1 ।
78. गुलाब सिंह, भाव रसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पद्म (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठ 73 ।
79. गुलाबसिंह, मोक्ष पंथ प्रकाश (कनखल, श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा 1977), पृष्ठ 6–7 ।
80. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, 1957), पृष्ठ 134–135 ।
81. टहिल सिंह, कबित्त टहिल सिंह, पाण्डुलिपि सं॰ 232 (पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब), पृष्ठ 39 ।
82. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष, (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, 1953), पृष्ठ 130 ।
83. वही॰, पृष्ठ 130 ।
84. लालसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृ॰ 198 ।
85. जगदीश गुप्त, रीति काव्य संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य भवन, प्रा॰ लि॰ 1970) पृष्ठ 122 ।
86. वही॰, पृष्ठ 121 ।
87. निहाल सिंह निर्मला, दोहरा भेदावली, पाण्डुलिपि संख्या 170, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 92 ।
88. टहिल सिंह, कबित्त, टहिलसिंह, पाण्डुलिपि संख्या, 232 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब) पृष्ठ 2 ।
89. जगदीश गुप्त, रीतिकाव्य संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य भवन, प्रा॰ लि॰ 1970), पृष्ठ 120
90. जगदीश गुप्त, रीतिकाव्य संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य भवन, प्रा॰ लि॰, 1970) पृष्ठ 120
91. वही॰, पृष्ठ 121 ।
92. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, 1953), पृष्ठ 191 ।
93. हरिभजन, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन (पंजाब का हिन्दी साहित्य का योगदान (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब 1970), पृष्ठ 193 ।
94. टहलसिंह, कबित्त टहल सिंह, पाण्डुलिपि सं॰ 232 (पटियाला : भाषा विभाग, पं॰) पृष्ठ 4 ।
95. गुलाबसिंह, रामगीता, पाण्डुलिपि संख्या एम. एस. 255, (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी), पृष्ठ 1–2 ।

96. गुलाब सिंह, रामगीता, पाण्डुलिपि सं. एम. एस. 255 (अमृतसर : गुरुनानकदेव यूनिवर्सिटी, पृष्ठ 1–2 ।
97. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, 1953) पृष्ठ 198 ।
98. निर्मल स्वामी वेदान्त ग्रन्थ (पाण्डुलिपि संख्या 58 (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, पृष्ठ 7 ।
99. निहाल सिंह, मिग्रिन्द, दोहरा भेदावली, पाण्डुलिपि संख्या 170, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 1 ।
100. वही॰, पृष्ठ 4 ।
101. मम्मट, काव्य प्रकाश (मेरठ, साहित्य भण्डार, 1979) पृष्ठ 18 ।
102. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण (दिल्ली : मोती लाल बनारसीदास, 1977) पृष्ठ 273 ।
103. शेरसिंह, मध्याकालीन कविता, संघ कालीन पंजाबी साहित, सम्पा॰ लालसिंह (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970) पृष्ठ 27 ।
104. गुलाब सिंह निर्मला, भावरसाम्रित, (सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969) पृष्ठ 106 ।
105. वही॰, पृष्ठ 89 ।
106. गुलाब सिंह, निर्मला, भाव रसाम्रित, सम्पादक प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 106–7 ।
107. वही॰, पृष्ठ 77 ।
108. गुलाब सिंह निर्मला, भावरसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब 1969), पृष्ठ 115 ।
109. गुलाब सिंह निर्मला, भाव रसाम्रित सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 69 ।
110. गुलाब सिंह, स्वप्नाध्यायी, पाण्डुलिपि संख्या एम. ए., 526 (अमृतसर : गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी) पृष्ठ ।
111. वही॰, पृष्ठ ।
112. धनंजय, दशरूपक्रम, (मेरठ : साहित्य भण्डार, 1979) पृष्ठ 7 ।
113. गुलाबसिंह भावरसाम्रित, सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग, पजाब, 1969), पृष्ठ 110 ।
114. वही॰, पृष्ठ 76–77 ।
115. वही॰, पृष्ठ 106 ।
116. गुलाबसिंह मोक्ष पन्थ प्रकाश, (कनखल : श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977) पृष्ठ 6 ।
117. गुलाब सिंह, भाव रसाँम्रित, सम्पादक प्यारा सिंह, पदम (पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब, 1969), पृष्ठ 86, 104, 77, 83, 80 ।

118. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण (दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1977), पृष्ठ 19 ।
119. वही॰, पृष्ठ 16 ।
120. बुद्ध सिंह, रस प्रदीपका, पाण्डुलिपि संख्या 184, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 103 ।
121. बुद्ध सिंह, रस प्रदीपका, पाण्डुलिपि संख्या 184, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 100 ।
122. बुद्ध सिंह, रस प्रदीपका, पाण्डुलिपि संख्या 184, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब), पृष्ठ 91 ।
123. गुलाबसिंह, भाव रसाम्रित सम्पा॰ प्यारा सिंह पदम (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969), पृष्ठ 77 ।
124. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दीसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद : हिन्दी परिषद इलाहाबाद, यूनिवर्सिटी–1952), पृष्ठ 44–45 ।
125. गोबिन्दसिंह लाम्बा, पंजाबी हत्थ लिखित साहित्य (पटियाला : अमरजीत साहित्य प्रकाशन, 1981), पृष्ठ 39 ।
126. आशानन्द वोहरा, जपुजी का अलंकारिक सौन्दर्य, (रोहतक : जैन बुक डिपो, 1975) पृष्ठ 1 ।
127. हरमेन्द्र सिंह बेदी, पंजाब दी भारती साहित नूं देन, पंजाबी दुनियां, सम्पा॰ हरचरण सिंह कैंबल पुरी (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, अंक अगस्त 1987), पृष्ठ 41 ।
128. मिश्रबन्धु (गणेश बिहारी श्याम बिहारी, शुकदेव बिहारी) मिश्र बन्धुविनोद (लखनऊ : पर्वतीय पुस्तक सदन–1979), पृष्ठ 42 ।
129. गोबिन्दनाथ राजगुरु गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (चण्डीगढ़ : लिपि प्रकाशन, 1980), पृष्ठ 14 ।
130. जयभगवान गोयल, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, (दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, 1970), पृष्ठ 381 ।
131. मनमोहन सहगल, तथा ओमप्रकाश शर्मा शास्त्री, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य, पंजाब का सन्दर्भ (दिल्ली सन्मार्ग प्रकाशन, 1985) पृष्ठ 334 ।
132. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दीगद्य (दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1969), पृष्ठ 190 ।
133. मलिक मोहम्मद, हिन्दी की प्रगति एवं विकास में हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, सम्पा॰ मलिक मोहम्मद (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, 1977) पृष्ठ 20 ।

134. मलिक मोहम्मद, हिन्दी की प्रगति एवं विकास में हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, सम्पा० मलिक मोहम्मद (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज, 1977), पृष्ठ 15 ।
135. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962), पृष्ठ 42 ।
136. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य, (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज सन् अनिर्दिष्ट) पृष्ठ 16 ।
137. मनमोहन सहगल, पंजाबी हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, पृष्ठ 17 ।
138. काला सिंह वेदी, श्री गुरुनानकदेव की भाषा–नीति नानक प्रकाश 4, सम्पा बलकार सिंह (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी अंक दिसम्बर 1984), पृष्ठ 158 ।
139. महीप सिंह, हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, सम्पादक मलिक मोहम्मद (दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज, 1977), पृष्ठ 255 ।
140. चन्द्रकान्त बाली, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962), पृष्ठ 38–39 ।
141. धर्मपाल मैनी, शमीर सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ चण्डीगढ़ : हिन्दी परिषद, 1984), पृष्ठ 11 भूमिका ।
142. गोबिन्दनाथराजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दीगद्य (चण्डीगढ़ : लिपि प्रकाशन, 1980) पृष्ठ 24 ।
143. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज सन अनिर्दिष्ट), पृष्ठ 1 प्राक्कथन ।
144. हरमेन्द्र सिंह बेदी, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी भक्ति साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (भागलपुर : भागलपुर विश्वविद्यालय, 1987) अप्रकाशित, डि० लिट् शोध प्रबन्ध, भूमिका ।
145. धर्मपाल मैनी, शमीर सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ, (चण्डीगढ़ : हिन्दी परिषद, 1984), पृष्ठ 3, भूमिका ।
146. गोबिन्दसिंह लांबा, पंजाबी हस्त लिखित साहित्य (पटियाला : अमर जीत प्रकाशन, 1981), पृष्ठ 14 ।
147. के. एस. नारंग, हिस्ट्री आफ दी पंजाब (दिल्ली : यू. सी. कपूर एण्ड सन्ज, 1969), पृष्ठ 24 ।
148. सुरिन्दर कोहली, नानक काल, पंजाब यूनिवर्सिटी : पंजाबी साहित्य का इतिहास, सम्पा० सुरिन्दर सिंह कोहली, (चण्डीगढ़ : पंजाबी यूनिवर्सिटी 1973), पृष्ठ 147 ।

149. एम. अथर अली, दि मुगल नोविलिटी अण्डर औरंगजेब (बम्बई : एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1970), पृष्ठ 3 ।
150. खुशवंत सिंह, ए हिस्ट्री आफ दि सिक्स (दिल्ली : आक्सफोर्ड प्रैस, 1977) पृष्ठ 28
151. हजारी प्रसाद द्विवेदी, आलोक पर्व (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1972) पृष्ठ 220
152. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली आर्यवुक डिपो, 1974) पृष्ठ 7
153. श्री निवास शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास (नई दिल्ली तक्षशिला प्रकासन, 1978), पृष्ठ 44 ।
154. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका (नई दिल्ली, आर्य बुक डिपो, 1974) पृष्ठ 20
155. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1973) पृष्ठ 140 ।
156. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण (नई दिल्ली : राजकम प्रकाशन, 1979), पृष्ठ 54 ।
157. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर 1963), पृष्ठ 164 ।
158. गुरुमत दर्शन, शेरसिंह (अनु०) चमनलाल नारंग (लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1970), पृष्ठ 9–10 ।
159. हरिभजन सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य (दिल्ली : भारती साहित्य मन्दिर, 1963), पृष्ठ 172 ।
160. गोबिन्दसिंह (साधु) इतिहास गुरु खालसा (बम्बई, श्री वैंकटेश्वर सटीक यंत्रालय सन अनुपलब्ध, पृष्ठ 333–37 ।
161. महीप सिंह, हिन्दी साहित्य को पंजाब की देन, हिन्दी साहित्य को हिन्दीत्तर प्रदेशों की देन, सम्पा० मलिक मोहम्मद (दिल्ली : रामपाल एण्ड सन्ज, 1977), पृष्ठ 254 ।
162. हरिभजन सिंह, निर्मल कवियों की हिन्दी साहित्य को देन, पंजाब का साहित्य को योगदान सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1970), पृष्ठ 173 ।
163. गोबिन्दनाथ राजगुरु, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, (चण्डीगढ़ : लिपि प्रकाशन : 1980) पृष्ठ 9–10 ।

======

उपसंहार

उत्तरी भारत की सन्त–परम्परा ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध साहित्य प्रदान किया है। लेकिन इतिहास दर्शन की दृष्टि से उस साहित्य का पूर्णरूपेण सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो पाया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उत्तरी भारत की सन्त परम्परा ग्रन्थ में उत्तरी भारत के कुछ प्रमुख सन्तों को ही लिया है। जिससे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के रचयिताओं की ओर उनका ध्यान नहीं गया। विशेषतः प्रान्तीय भाषाओं में रचित–साहित्य रचना करने वाले अनेक ऐसे सन्त है, जिनकी हिन्दी रचनाएं सन्त कवियों के समकक्ष ठहरती हैं। मध्ययुगीन भक्ति काव्यधारा ने पंजाब के सन्तों को दार्शनिक आधारभूमि प्रदान की। जिससे पंजाब में दार्शनिक साहित्य अत्यधिक मात्रा में रचा गया। पंजाब के विभिन्न सम्प्रदायों (उदासी, निर्मल और सेवापन्थी) के सन्तों ने इसी दार्शनिक आधार भूमि पर अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार किया। इस दृष्टि से निर्मल सन्तों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निर्मल सन्तों ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से जिस दर्शन का प्रतिपादन किया, उसका सीधा सम्पर्क भारतीय दर्शन से है। निर्मल सन्तों ने गुरुवाणी की व्याख्या के लिए ही वेद, पुराण, षड्दर्शन, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया। इनका काव्य युगीन चेतना से भी प्रभावित है, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है और भक्ति काव्य के आदि स्रोतों से प्रभावित है।

निर्मल–सम्प्रदाय के प्रथम सन्त साहित्यकार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं पं. गुलाब सिंह निर्मला, अब तक की खोज के अनुसार उनसे पूर्व किसी भी निर्मल–सन्त की कोई कृति उपलब्ध नहीं होती। पं. गुलाब सिंह का समय संवत् 1700 के बाद का है। हिन्दी साहित्येतिहास के सर्व सम्मत काल विभाजन एवं नामकरण के अनुसार वे रीतिकाल के कवि है। मगर पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य में रीतिकाल में भी भक्ति, प्रधान रचनाओं का प्राधान्य रहा है। विशेष रूप से निर्मल सन्तों ने विविध विषयों पर पुस्तकें लिखी हैं। प्रमुख निर्मल सन्तों के कुछ प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं–

1. पं. गुलाब सिंह निर्मला, मोक्ष पंथ प्रकाश भावरसामृत
2. पं. तारा सिंह नरोत्तम, गुरु गिरार्थ कोष, गुरमत निर्णय सागर।
3. पं. आत्मदेव सिंह, स्वामी दयानंद का मत और अद्वैत सिद्धि।
4. पं. निहाल सिंह (थोहा खालसा) चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका।
5. पं. करम सिंह निर्मला, हरि अदृष्ट सतसई।
6. साधु गोबिन्द सिंह, इतिहास गुरु खालसा।
7. भाई सन्तोष सिंह, गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ।
8. ज्ञानी ज्ञान सिंह, पंथ प्रकाश।
9. अर्जुन सिंह मुनि, टीका, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (प्रेम बोधिनी टीका)
10. निहाल सिंह कवीन्द्र, कवीन्द्र प्रकाश।

इस साहित्य का सम्यक् अध्ययन करने पर विदित होता है कि यह साहित्य भक्तिकालीन साहित्य से किसी क्षेत्र में भी पीछे नहीं है । ग्रन्थों की संख्या में भी और गुणवत्ता की दृष्टि से भी । निर्मल सन्तों द्वारा रचित हिन्दी साहित्य पंजाब की रीतिकालीन भक्ति काव्यधारा का प्रतिनिधित्व कता है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी निर्मल सन्तों का साहित्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । पंजाब प्रान्तीय राजनैतिक अशान्ति को अपने गुरमत प्रचार एवं व्याख्या पद्धति के द्वारा जिस प्रकार स्थान–स्थान पर डेरे डाल कर इन्होंने जनता के हृदयों में अमृत का संचार किया वह ऐतिहासिक, परिवर्तन ही है । राजनीति से प्रायः निर्लेप ही रहे । क्योंकि विरक्त भाव से निवृति मार्ग को अपना कर जीवन यापन करने वाले इन वरद–गुरु–पुत्रों ने राजनीति में प्रवेश पाना उचित न समझा । मगर अपनी आन और शान को राजनीतिक दांव–पेचों का शिकार भी न होने दिया अपितु अपनी विद्वता से अनेक रियासती राजाओं को चरण सेवक बनाया और राजदरबारों में सम्मानित हुए । मुख्य रूप से गुरुवाणी के व्याख्या ग्रन्थ ही रचे । सांसारिक के प्रति मोह न था । अतः युगीन सन्दर्भों का इनके काव्यों में अभाव ही है । इन्होंने कुछ ग्रन्थों की भी रचना की है, जो ऐतिहासिक थे । जिनमें निर्मल सम्प्रदाय के इतिहास के साथ–साथ प्रसंग वश तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धामिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का समावेश स्वतः हो गया है । राजनीति से इनका कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है । अपने डेरों में रहना पूजा–पाठ करना, गुरुवाणी के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करना ही इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है । सादा जीवन व्यतीत करने में इन्हें प्रसन्नता होती है ।

निर्मल सन्तों का साहित्य भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से उच्चकोटि का साहित्य है । प्रतिपाद्य की दृष्टि से विविध–विषयक साहित्य, इतिहास, दर्शन, पिंगल, ज्योतिष, वैद्यक एवं गुरुमत, किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है । इन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचना की है, शैली व्याख्या प्रधान होने के कारण इन्होंने अपने ग्रन्थों में एक विशिष्ट पद्धति को अपनाया है । इनकी भाषा शुद्ध ब्रज होने के साथ–साथ कालान्तर में पंजाबी से प्रभावित हो गई । इनकी भाषा और शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि इनकी व्याख्या प्रणाली निर्मला प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध हुई । पं. तारा सिंह नरोत्तम तथा भाई सन्तोष सिंह इस निर्मला व्याख्या प्रणाली के सूत्रधार कहे जाते हैं । विषय वस्तु की विविधता, भाषा और शैली को ध्यान में रखते हुए निर्मल सन्तों के सम्पूर्ण साहित्य का अगर पंजाब में रचित समूचे साहित्य के सन्दर्भ में मूल्यांकन किया जाए, तो पंजाब का हिन्दी साहित्य भक्तिकालीन साहित्य की समता करने में सक्षम होगा । पंजाब में रचित अन्य सम्प्रदायों का हिन्दी साहित्य गुण और परिमाण में इतना प्रौढ़ और सशक्त नहीं है जितना निर्मल सन्तों का साहित्य । कारण यह है कि निर्मल सन्त संस्कृत भाषा के

प्रकाण्ड विद्वान थे और हिन्दी प्रदेशों में अध्ययन करने एवं प्रचार करने के कारण ब्रज (हिन्दी) को आत्मसात् कर चुके थे । उनकी हिन्दी रचनाओं में दोनों ही भाषाओं का प्रभाव है । उनके गुरुमुखी लिपि में रचित ग्रन्थों में भी इस प्रभाव को देखा जा सकता है । अतः पंजाब के हिन्दी–साहित्य में भी निर्मल सन्तों का हिन्दी साहित्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है ।

निर्मल सन्तों के इस साहित्य का बाद में रचे जाने वाले साहित्य पर बहु आयामीय प्रभाव पड़ा । निर्मल सन्तों की गुरु शिष्य परम्परा ने इस प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखा । निर्मल सन्तों ने वेदों–उपनिषदों के जिस अमूल्य सन्देश से अपनी रचनाओं को अलंकृत किया तथा वैदिक साहित्य और संस्कृति को पुनः प्रकाशित कर गुरुओं की अमरवाणी को जन–जन तक पहुंचाने का जो अनुपम कार्य किया, वह आज भी अपनी विलक्षणता बनाए हुए हैं । निर्मल सम्प्रदाय अध्ययन–अध्यापन के विशिष्ट कर्त्तव्य भार से सुशोभित सिक्ख धर्म का सिक्ख (शिष्य) वर्ग है, जिसने अपने डेरों, विद्यालयों, सम्मेलनों द्वारा अनेक अज्ञानान्धकार में भटकते मनुष्यों को ज्ञान ज्योति प्रदान की । यह इस सम्प्रदाय के अतीत की उपलब्धि है । वर्तमान काल में भी अनेक आश्रमों, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पंजाब में भी और पंजाब से बाहर हिन्दी प्रान्तों में भी अनेक विद्यार्थी निर्मल सन्तों से शिक्षित होकर पी.एच.डी. तक की डिग्रियां एवं स्वर्ण पदक प्राप्त कर रहे हैं । ऐसे विद्वान वर्ग से भविष्य में भी बहुत सी आशायें हैं । पंजाब के अन्य साहित्यकारों के समान ही गुरुमुखी लिपि में निर्मल सन्तों की इस अमूल्य देन ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की सम्भावनाओं को उजागर किया है । हमने इस शोध–प्रबन्ध में निर्मल सम्प्रदाय का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन किया है । इनमें से अनेक कवि ऐसे हैं, जिनकी प्रतिनिधि रचनाओं का दार्शनिक एवं काव्यात्मक अध्ययन हो सकता है । हमने समूचे निर्मल सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रमुख निर्मल सन्तों की रचनाओं को ही लिया है । विषय की सीमा को ध्यान में रखते हुए अधिक विस्तार नहीं हो सका । केवल प्रमुख निर्मल सन्तों, कवियों, लेखकों, व्याख्याकारों की हिन्दी रचनाओं पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है, जिससे निर्मल सन्तों के हिन्दी साहित्य को योगदान सम्बन्धी जानकारी हो सके ।

हमारे इस शोध से कुछ नए तथ्य सामने आए हैं । निर्मल सन्तों की हिन्दी रचनाएं इतनी सशक्त और महत्त्वपूर्ण है कि अगर इन रचनाओं में से प्रत्येक प्रतिनिधि रचनाकार और उसकी रचना के प्रमुख पहलुओं पर शोधकार्य हो सके, तो अनेक कवि मध्यकाल के प्रमुख कवियों की पंक्ति में गिने जा सकेंगे ।

निर्मल सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी दूसरे सम्प्रदाय से इसका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है । रीतिकालीन साहित्य होते हुए भी यह साहित्य भक्ति भावनाओं से ओतप्रोत है । इस दृष्टि से इस साहित्य की तुलना पूर्व मध्यकालीन भक्ति साहित्य से की जा सकती है विशेष रूप से सन्त काव्य से ।

हमारे इस शोध कार्य से निर्मल सन्तों के हिन्दी साहित्य का रहस्योदघाटन निश्चय ही पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य को समृद्ध करेगा । निर्मल साहित्य के इन प्रमुख ग्रन्थों से ही निर्मल सम्प्रदाय की साहित्यिक परम्परा का अध्ययन सम्भव हुआ है, जिससे उनकी दार्शनिक, ऐतिहासिक सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक विचारधारा को जाना जा सकता है। निर्मल सन्तों के रहन–सहन, खान–पान, प्रचार पद्धति, अध्ययन–अध्यापन तथा गुरुवाणी की व्याख्या पद्धति का प्रभाव उनकी रचनाओं पर सहज ही देखा जा सकता है ।

ज्ञान असीम है, अनन्त है, पंजाब में रचित मध्यकालीन हिन्दी साहित्य विपुल मात्रा में बिखरा पड़ा है, यहां के अनेक कवियों, सन्तों का साहित्य अभी भी अन्धकार के गर्त में हैं । अकेले निर्मल सम्प्रदाय के सन्तों का साहित्य ही अनेक डेरों, पुस्तकालयों इस रूप में बिखरा है कि उसे सहज समेट पाना असम्भव तो नहीं कठिन अवश्य है । मैंने इस साहित्य का एक आयाम इस शोध में प्रस्तुत किया है । यह अन्तिम संवाद नहीं है । इससे आगे निर्मल सन्तों के हिन्दी साहित्य पर और भी शोधकार्य सम्भावित हैं ।

=========

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी पुस्तकें

1. अशोक, शमशेर सिंह, पंजाब का हिन्दी साहित्य, पटियाला : यूनिवर्सल ट्रेडिंग कम्पनी, 1957 ।
2. उपाध्याय, विष्णु देव, धर्म और दर्शन, नई दिल्ली, : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1973 ।
3. कबीर, कबीर ग्रन्थावली, सम्पा. अनन्त राम अनन्त, दिल्ली : रीगल बुक डिपो, 1973 ।
4. काशी, ईशर सिंह, श्री गुरमत दिग्विजय, लाहौर : श्री गुरबख्श प्रैस सम्वत 1760 ।
5. कौशिक, निर्मल कुमार, भाई गुरदास व्यक्तित्व और कृतित्व, दिल्ली : सूर्य प्रकाशन, 1984 ।
6. गंगाराम शोभा श्रृंगार, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, सन् अनुपलब्ध ।
7. गुप्त, जगदीश, रीतिकाव्य संग्रह, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1970 ।
8. गुप्त, गणपति चन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, चंडीगढ़ : भारतेन्दु भवन, 1965 ।
9. गुरदित्ता सिंह, नेष्क्रम्य सिद्धि की प्रभाख्या भाषा टीका, लाहौर : बाम्बे–मशीन मुद्राणालय, 1925 ।
10. गुरदित्त सिंह साधु, गुरु गिरा रूपान्तर, लाहौर : करकन टायल प्रैस, 1935 ।
11. गुलाब सिंह, मोक्ष पन्थ, प्रकाश, कनखल : श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1977 ।
12. गुलाब सिंह, भावरसाम्रित सम्पा. प्यारा सिंह पद्म, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब ।
13. गुणी, गुरदास, कथा हरि राझंनि की, सम्पा. सत्येन्द्र तनेजा पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब, 1961 ।
14. गैरोला वाचस्पति, भारतीय दर्शन, इलाहाबाद : लोक भारती, प्रकाशन, 1970 ।
15. गोबिन्द सिंह (गुरु) विचित्र नाटक, सम्पा. वी.एस. माघोवालीया, होशियारपुर, पीलीकोठी, 1978 ।
16. गोबिन्द सिंह (साधु) इतिहास गुरु खालसा, बम्बई, श्री वैंकटेश्वर सटीक यन्त्रालय, सन् अनुपलब्ध ।
17. गोयल, जयभगवान, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, 1970 ।

18. चतुर्वेदी, परशुराम, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, इलाहाबाद, : भारती भण्डार, सम्वत 2021 ।
19. चतुर्वेदी, सीताराम, भारत के उदासीन सन्त, काशी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, सम्वत 2024 ।
20. चौधरी भारत भूषण, गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि, दिल्ली : स्वस्तिक साहित्य सदन, 1979 ।
21. जार्ज, एम. भक्ति आन्दोलन और साहित्य, आगरा : प्रगति प्रकाशन, 1978 ।
22. जौहर, सुरेन्द्र सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह जीवनी (अनु. मोहन सपरा) जालंधर एशियन पब्लिशर्ज, 1969 ।
23. ठाकुर, देशराज, सिक्ख इतिहास, संगरिया : ग्रामोत्थान विद्यापीठ राजस्थान, सम्वत 2011 ।
24. तांघ, ईशर सिंह, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीतिकाव्य, पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, सन् अनुपलब्ध ।
25. तिवारी, रामचन्द्र, मध्ययुगीन काव्य साधना, गोरखपुर : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1958 ।
26. तुलसी दास, राम चरित मानस, गोरखपुर : गीताप्रैस, 20 38 वि. ।
27. कपिल देव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद : राम नारायणलाल वेणी प्रसाद, 1971 ।
28. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1969 ।
29. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, नई दिल्ली, राज़ कमल प्रकाशन, 1969 ।
30. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : आलोक पर्व : नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1972 ।
31. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, दिल्ली : राज कमल प्रकाशन, 1973 ।
32. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, मध्यकालीन धर्म साधना, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1978 ।
33. धर्मानन्द सिंह वैदिक गुरमत, जालन्धर : आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा 1965 ।
34. नगेन्द्र, सम्पा. हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1973 ।
35. पदम, प्यारा सिंह, ज्ञान त्रिवेणी, सम्पा. पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969 ।
36. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, वाराणसी : प्रसाद प्रकाशन, संवत् 1993 ।
37. पाठक, शिव सहाय, हिन्दी सूफी काव्य का समग्र अनुशीलन, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1973 ।

38. प्रेम शंकर, भक्ति काव्य की भूमिका, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1977 ।
39. बड़थवाल, पीताम्बरदत्त, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, लखनऊ : अवध पब्लिकेशन, संवत 2007 ।
40. बाली चन्द्रकान्त, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1962 ।
41. बिलखू, सुरैण सिंह, आदिग्रन्थ के परम्परागत तत्वों का अध्ययन, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1978 ।
42. बेदी, हरमहेन्द्र सिंह, हिन्दी साहित्येतिहास : पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन, होशियारपुर : प्रतिभा प्रकाशन, 1985 ।
43. भंटनागर, लाजवन्ती, धर्म सम्प्रदाय और मीरा का भक्ति भाव, दिल्ली, वाणी, प्रकाशन, 1980 ।
44. मजीठिया, सुदर्शन सिंह सन्त साहित्य, दिल्ली : रूपकमल प्रकाशन, 1962 ।
45. महीप सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1969 ।
46. मालविका, विद्यावती, सन्त साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, वाराणसी : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, 1966 ।
47. मिश्र, विद्या निवास, हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1979 ।
48. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु विनोद, लखनऊ : गंगा पुस्तकमाला, 1972 ।
49. मिश्र, जयराम, गुरु ग्रन्थ दर्शन, इलाहाबाद : साहित्य भवन, 1960 ।
50. मीतल, प्रभ दयाल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1968 ।
51. मुनि, अर्जुन सिंह, संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल : श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1974 ।
52. मेघ, रमेश कुन्तल, नवम गुरु पर बारह निबन्ध, अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1982 ।
53. मैनी, धर्मपाल, गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन, 1972 ।
54. मैनी धर्मपाल, शमीर सिंह, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थ, चंडीगढ़, हिन्दी परिषद्, 1984 ।
55. मोती सिंह, निर्गुण साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, वाराणसी : कांशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1962 ।

56. मोहम्मद मलिक, सम्पा. हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, 1977 ।
57. राजगुरु, कान्ता, सेवा पन्थ और उसका साहित्य, दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1981 ।
58. राजगुरु गोबिन्द नाथ, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1969 ।
59. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य पुनर्मूल्यांकन, नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो, 1973 ।
60. राजदेव सिंह, सन्त साहित्य की भूमिका, नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो 1974 ।
61. रेगुलपाठी, माधवराव, छन्द विश्लेषण स्रोत एवं विकास, हैदराबाद : दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, 1982 ।
62. लाल सिंह (सम्पा.) पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब, 1970 ।
63. वर्मा, राम कुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद : रामनारायण लाल, 1958 ।
64. वार्ष्णेय, लक्ष्मी सागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद : इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, 1952 ।
65. वे. वेंकट रमण राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, मथुरा : लोक साहित्य प्रैस, 1972 ।
66. वोहरा आशा नन्द, जपुजी का आलंकारिक सौन्दर्य, रोहतक जैन बुक डिपो, 1975 ।
67. शर्मा, हरिवंशलाल भारतीय दर्शन परम्परा और आदि ग्रन्थ, दिल्ली : नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1972 ।
68. शर्मा, श्रीनिवास, हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली : तक्षशिला, प्रकाशन, 1978 ।
69. शास्त्री, परमानन्द, श्री पिंगल पीयूष, दिल्ली : ओरियण्टल, बुक डिपो, 1957 ।
70. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, सम्वत 2035 ।
71. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, अमृतसर : शिरोमणि, गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1951 ।
72. श्री वास्तव, जगदीश सहाय, अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका, इलाहाबाद, किताब महल, 1978 ।
73. स्वामी विद्याराय, पंचदशी, बम्बई, खेमराज कृष्णदास, 1969 ।
74. सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद : भारती भण्डार, सम्वत 2024 ।
75. सहगल, मनमोहन, सन्त काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, चंडीगढ़, भारतेन्दु, भवन, 1965 ।

76. सहगल, मनमोहन, गुरु ग्रन्थ एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1971 ।

77. सहगल, मनमोहन तथा स्व. ओम प्रकाश शर्मा शास्त्री, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पंजाब का सन्दर्भ दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1985 ।

78. सहगल, मनमोहन, पंजाब का हिन्दी साहित्य, पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, सन अनुपलब्ध ।

79. सन्त सिंह, निर्मल आर्ति तथा निर्वचन विचार, कनखल, श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा सन अनुपलब्ध ।

80. साधु सिंह, गुरु ग्रन्थ प्रदीपका, कनखल, श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1952 ।

81. साधु सिंह, उत्थानका श्री गुरु साहिब जी, लाहौर, अकाल प्रैस, 1898 ।

82. सुमन राजे, साहित्येतिहास, आदिकाल, कानपुर : ग्रन्थम, 1976 ।

83. हरिभजन सिंह अद्वैतामृत, काशी, वाणिज्य प्रैस सन अनुपलब्ध ।

पंजाबी पुस्तकें

1. अर्जुन देव, सुखमनी साहिब, अमृतसर, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1981 ।

2. अमराफिकाना, क–ज–गुरु नानक अते उनां दा समां, सम्पा. गुरबक्श, मास्को : प्रगति प्रकाश,न 1977 ।

3. आहलुवालिया, जसबीर सिंह, सिक्ख फलसफे दी भूमिका, अमृतसर : रघुवीर रचना प्रकाशन, 1973 ।

4. कसेल, किरपाल सिंह, पंजाबी साहित दा इतिहास, पटियाला : भाषा–विभाग, पंजाब 1971 ।

5. करतार सिंह, जीवन कथा गुरु गोबिन्द सिंह लुधियाना, लाहौर बुकशाप, 1962 ।

6. कोहली, सुरेन्द्र सिंह, सिक्ख दर्शन, लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1969 ।

7. कोहली, सुरेन्द्रसिंह, पंजाबी साहित्य दा इतिहास, चंडीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी, 1973 ।

8. गणेशा सिंह, अध्यात्म प्रकाश सटीक अमृतसर, बूटा सिंह प्रताप सिंह सम्वत 1953 ।

9. गणेशा सिंह, व्याध विनाशक ग्रन्थ, अमृतसर : हरि सिंह गुरदित्त सिंह, सम्वत् 1873 ।

10. गणेशा सिंह, निर्मल भूषण, अमृतसर : गली बाग वाली, सं. 1964 ।

11. गिआनी, गिआन सिंह, पंथ प्रकाश, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।
12. गिआनी, गिआन सिंह, निर्मल पन्थ प्रदीपिका, कनखल : निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1962 ।
13. गिआनी गिआन सिंह तवारीख गुरु खालसा भाग–1, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।
14. गुरुदास (भाई) कबित्त भाई गुरदास (सम्पा. भाई वीर सिंह, अमृतसर : खालसा समाचार, 1980 ।
15. गुरुदास (भाई) वारां (ज्ञान रत्नावली) अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1981 ।
16. गुरुदित्त सिंह, गुरुमत सिद्धान्त सार, लाहौर : मदन प्रिंटिंग प्रैस, 1931 ।
17. गुरदित्त सिंह, जपु पदार्थ सम्बोधिनी, तरनतारन : गुरप्रीत प्रिंटिंग प्रैस, 1932 ।
18. गुरुमुख सिंह, सेवा पंथियां दी पंजाबी साहित नूं देन, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1987 ।
19. गोयल, जयभगवान, गुरु प्रताप सूरज संक्षिप्त पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1972 ।
20. जग्गी रत्न सिंह, साहित सौरभ, पटियाला : पेप्सू बुक डिपो 1976 ।
21. जगबीर सिंह, गुरु नानक वाणी विच नैतिकता दा संकल्प, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973 ।
22. जोगिन्द्र सिंह, सिक्ख धर्म ते सिक्ख पन्थ, दिल्ली : प्रीत प्रकाशन, 1971 ।
23. जोगिन्द्र सिंह, जपु जी दे टीके, जालन्धर । 1981 ।
24. जोध सिंह, गुरमत निर्णय अनु. धर्मपाल मैनी, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1975 ।
25. टहिल सिंह, जीवन प्रगास, गुरदासपुर : श्रद्धा सिंह डफरवाल, 1966 ।
26. तारण सिंह, भक्ति ते शक्ति, अमृतसर : फकीर सिंह एण्ड सन्ज़, 1976 ।
27. तारण सिंह, गुरुवाणी दीयां व्याख्या प्रणालियां, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1980 ।
28. दयाल सिंह, निर्मल पंथ दर्शन (चतुर्थ खण्ड), नई दिल्ली : जीवन निवास, सन अनुपलब्ध ।
29. नरोत्तम तारा सिंह, गुरमत निर्णय सागर, रावलपिण्डी रायबहादुर, बूटा सिंह, 1877 ।
30. नारा, ईशर सिंह, सफर नामा ते जफरनामा, दिल्ली : डी–लाईट प्रैस, 1971 ।

31. नारंग, गोकुल चन्द, सिक्ख धर्म दा परिवर्तन, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1973 ।
32. निरंकारी, मान सिंह, सिक्ख धर्म ते सिक्खी, अमृतसर : लोक साहित प्रकाशन, 1981 ।
33. पदम, प्यारा सिंह, संखेप सिक्ख इतिहास, पटियाला : कला मन्दिर, लोअर माल, 1979 ।
34. प्रीतम सिंह (सम्पा.) पारस भाग, लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1952 ।
35. प्रीतम सिंह, सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, 1975 ।
36. प्रीतम सिंह (सम्पा.) निर्मल सम्प्रदाय, अमृतसर गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय 1981 ।
37. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरु नानक निर्गुण विचारधारा, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1973 ।
38. बलबीर सिंह, श्री चरण हरि विस्तार, अमृतसर : खालसा समाचार, 1945 ।
39. बेदी, गुरनाम कौर, गुरुग्रन्थ साहिब बिच दर्ज कबीर वाणी दा आलोचनात्मक अध्ययन, अमृतसरः गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1987 ।
40. बेदी, त्रिलोचन सिंह, पंजाबी वारतक दा आलोचनात्मक अध्ययन, नई दिल्ली : मिसिज अमरजीत कौर, 1972 ।
41. बैनर्जी, इन्दूभूषण, खालसे दी उत्पति (अनु. प्रितपाल सिंह, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी : 1976) ।
42. भगत सिंह गिआनी गिआन सिंह, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1973 ।
43. भोगल, प्यारा सिंह, पंजाबी साहित दा इतिहास, जालन्धर हिरदेजीत प्रकाशन, 1971 ।
44. लांबा, गोबिन्द सिंह, पंजाबी हत्थ लिखित साहित, पटियाला : अमरजीत साहित प्रकाशन, 1981 ।
45. लाल सिंह, (सम्पा.) भाई गुरदास, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब 1969 ।
46. लाल सिंह, (संपादक) पंजाब का हिन्दी साहित्य को योगदान, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।
47. लाल सिंह, (सम्पा.) मध काली पंजाबी साहित, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।
48. लाल सिंह (सम्पा.) गुरुँ अर्जुन देव जीवनी ते रचना पटियालाः भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।

49. लाल सिंह (सम्पा.) भक्ति काव्य, पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब 1970 ।
50. विद्यार्थी, देवेन्द्र सिंह, श्री गुरु गोबिन्द सिंह, अभिनन्दन, अमृतसर : गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, 1983 ।
51. शेरगिल, सुरेन्द्र सिंह, पं. तारा सिंह नरोत्तम, जीवनी ते रचना, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1985 ।
52. शेर सिंह, गुरमत दर्शन, अनु. चमन लाल नारंग, लुधियाना : लाहौर बुक शाप, 1970 ।
53. सन्तोष सिंह, श्री जपुजी साहिब सटीक, (गरब गजनी टीका), नई दिल्ली : भाई सन्तोष सिंह, यादगार कमेटी, 1961 ।
54. सूरी, करतार सिंह, गुरु अर्जुन देव ते सन्त दादू दयाल चंडीगढ़ : पंजाबी लेखक सदन, 1969 ।
55. सीतल, मोहन सिंह, मनुखता दे गुरु गोबिन्द सिंह, लुधियाना : सीतल पुस्तक भण्डार, 1966 ।
56. हरबंस सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह, अनु. अतर सिंह चंडीगढ़, गुरु गोबिन्द सिंह, फाऊण्डेशन, 1966 ।
57. हरदेव सिंह, नारायण हरि उपदेश, अमृतसर : जवाहर सिंह किरपाल सिंह एण्ड को., 1982 ।

संस्कृत पुस्तकें

1. इषोघष्टोत शतोपनिषद्, बम्बई : निर्भय सागर, पेस, 1925 ।
2. ईशावास्योपनिषद्, गोरखपुर, गीता प्रैस गोरखपुर, सेंवत् 2014 ।
3. ऋग्वेद संहिता, चतुर्थ खण्ड, नई दिल्ली : वेद प्रतिष्ठान, 1977 ।
4. ऋकसूक्त संग्रह, सम्पा. हरिदत्त शास्त्री, मेरठ : साहित्य भण्डार, 1980 ।
5. गीता : गोरखपुर, गीता प्रैस, संवत् 2013 ।
6. तेत्तरीय उपनिषद, संपा. चुन्नी लाल शुक्ल, मेरठ : साहित्य भण्डार 1979 ।
7. धनंजय, दशरुपकम् मेरठ : साहित्य भण्डार, 1979 ।
8. मनु, मनुस्मृति, सम्पा., ज–ह–दवे, मुम्बई भारतीय विद्याभवन सम्वत 2017 ।
9. मुण्डकोपनिषद, गोरखपुर, गीता प्रैस, संवत् 2014 ।
10. सदानन्द वेदान्त सार, वाराणसी : चौखम्बा और पा. यलिया–1987 ।
11. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, दिल्ली : मोतीलाल, बनारसी दास, 1977 ।

12. वेदव्यास,–वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र) गोरखपुर : गीता प्रैस, संवत् 2017 ।
13. वैदिक मुनि, हरि प्रसाद, जपु संहिता, होशियारपुर : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, 1963 ।
14. हर सिंह (साधु) गुरु सिद्धान्त पारिजात, जम्मू, श्रीराम प्रकाशन, 1974 ।

अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. अवतार सिंह, एथिकस आफ द सिक्खम, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1970 ।
2. अकबर मोहम्मद द पंजाब अण्डर द मुगलज, दिल्ली : इदराह अदयाभिजात, 1974 ।
3. एम. अदरअली, द मुगल नोवलटी अण्डर औरगंजेब, बम्बई : एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1970 ।
4. खुशवन्त सिंह, ए हिस्टरी आफ द सिक्खस, दिल्ली : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1977 ।
5. तेजा सिंह सिक्खिज्म, लाहौर : लाहौर बुक शाप, 1938 ।
6. नारंग, के.एस. हिस्ट्री आफ द पंजाब, दिल्ली : यू.सी. कपूर एण्ड सन्ज़, 1969 ।
7. बैनर्जी, इन्दु भूषण, ए–आर मुखर्जी, एवोल्यूशन आफ खालसा कलकत्ता : 1962 ।
8. बैनर्जी, ए.सी. द खालसा राज, नई दिल्ली : अभिनव पब्लिकेशनज, 1985 ।
9. भगत लक्ष्मण सिंह, ए शार्ट स्कैच आफ लाईफ एण्ड वर्क आफ गुरु गोबिन्द सिंह, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1970 ।
10. शेर सिंह, फिलासफी आफ सिक्खिजम, लाहौर : सिक्ख यूनिवर्सिटी प्रैस 1944 ।

कोश : हिन्दी

1. भाषा शब्दकोष सम्पा. रमा शंकर शुक्ल रसाल, प्रयाग : राम नारायण माधव वैनी प्रसाद, 1936 ।
2. शब्द कल्प द्रुम, सम्पा. राजा राधा कान्त देव, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, 1961 ।
3. राम आप्टे, दिल्ली : मोती लाल बनारसी दास, 1984 ।
4. हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, वाराणसी : ज्ञान मण्डल, संवत 2020 ।
5. हिन्दी शब्द सागर, पंचम भाग सम्पा. श्याम सुन्दर दास वाराणसी : कांशी ना. प्रचारिणी सभा 1968 ।

6. हिन्दी धर्म कोश सम्पा. राजबली पाण्डेय : प्रयाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति, 1978 ।

पंजाबी कोश :

1. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा. प्यारा सिंह पदम, पटियाला पंजाबी यूनिवर्सिटी, 1969 ।
2. गुरु नानक शब्द रत्नाकर सम्पा. काला सिंह, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, 1969 ।
3. पंजाबी कोश, (तीसरा भाग) पटियाला : भाषा विभाग पंजाब 1967 ।
4. महान कोश गुरु शब्द रत्नाकर, सम्पादक कान्ह सिंह नाभा, (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब) 1960 ।

कोश : अंग्रेज़ी

1. इन्साइकलोपीडिया आफ रीलिजन एण्ड एथिकस, सम्पा. जेम्स हेस्टिंग्ज, न्यूयार्क, टी एण्ड टी क्लार्क, 1967 ।

पत्र–पत्रिकायें (हिन्दी)

1. जागृति, सम्पा. प्रेम विज, चंडीगढ़ : लोक सम्पर्क विभाग, अक्तूबर नवम्बर 1983 ।
2. जागृति, सम्पा. अशोक बांसल, चंडीगढ़ : लोक सम्पर्क विभाग, नवम्बर 1966 ।
3. परिशोध, सम्पा. जय प्रकाश, चंडीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी अंक 41, मार्च 1985 ।
4. पंजाब सौरभ, सम्पा. प्रेम प्रकाश शर्मा, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, जुलाई 1986 ।
5. दैनिक ट्रिब्यून प्र., सम्पा. प्रेम भाटिया, चंडीगढ़ : द ट्रिब्यून 12 अप्रैल 1986 ।
6. धर्मयुग, सम्पा. धर्मवीर भारती, बम्बई : टाइम्स आफ इंडिया, प्रकाशन, मई, 1985 ।
7. साहित्य मार्ग, सम्पा. मनमोहन सहगल, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी : अंक 12, 1981 ।
8. विश्व ज्योति, सम्पा. वेद प्रकाश, होशियारपुर : विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, सितम्बर 1984 ।

पत्र–पत्रिकाएं पंजाबी

1. आलोचना, सम्पा. गुरचरण सिंह, लुधियाना : पंजाबी साहित अकादमी, जुलाई–सितम्बर 1982 ।
2. आलोचना, सम्पा. गुरुचरण सिंह, लुधियाना : पंजाबी साहित अकादमी, जुलाई–सितम्बर, 1985 ।
3. खोज–पत्रिका, सम्पा. रत्न सिंह, जग्गी, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी अंक, 21, मार्च 1983 ।
4. नानक प्रकाश पत्रिका, सम्पा. बलकार सिंह, पटियाला, पंजाबी यूनिवर्सिटी, दिसम्बर 1984 ।
5. पंजाबी दुनिया, सम्पा. जीत सिंह सीतल, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, जुलाई 1985 ।
6. पंजाबी दुनियां, सम्पा. कुसुमबीरकौर, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, अगस्त 1987 ।
7. पंजाबी दुनिया, सम्पा. हरचरण सिंह केंबलपुरी, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, अप्रैल 1986 ।
8. पंजाबी दुनिया, सम्पा. अजीत सिंह कक्कड़, पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, फरवरी 1978 ।
9. सामाजिक विज्ञान, पत्रिका, सम्पा. अमरजीत सिंह, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, फरवरी 1980 ।

अंग्रेज़ी

1. सिंक्ख रिव्यू, सम्पा. मोहन सिंह कालरा, कलकत्ता : लिण्डे स्ट्रीट, फरवरी मार्च 1967 ।

अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध : हिन्दी

1. अर्चना, गुरु गोबिन्द सिंह के विचित्र नाटक का साहित्येतिहासिक अनुशीलन, निदेशक डा. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, अमृतसर : गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1980–81 ।
2. कालरा, शशि, रीति काव्य के सन्दर्भ में गुरुमुखी में लिखित शोभा–शृंगार का

पुण्यस्मृति ❀ श्रद्धासुमन

ॐ ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1918—1998

स्व. विद्या वत्ती

धर्म पत्नी स्व. संत सिंह कटारिया

भेंट कर्त्ता : डा. रमेश चन्द्र
एवम् कटारिया परिवार, कोटकपूरा ।

अतिथि सत्कार के पैत्रिक संस्कार को, लेकर प्रभावी कटारिया परिवार में पुज्य स. संत सिंह कटारिया के घर सह–धर्मनी बन प्रवेश करने वाले श्रीमति विद्या की दात्री विद्या वत्ती कटारिया (1918–1998)

लाखों तारे कर पाऐ क्या जो चाँद अकेला कर जाता। अतिथि सत्कार गुण ने थोडे समय में ही परिवार के साथ सम्बधित दूर निकट के रिश्तेदार, नगर, ग्राम से आने वाले परिचित भगनि बन्धू और धार्मिक वृति होने के कारण नगर की कथा कीतन सभाओं में आपने स्वभाव से श्रद्धा एवम स्नेह का स्थान बना लिया, जिससे परिवार की शोभा को चार चांद लग गये, एक अकेला दो ग्यारह की क्हावत अनुसार जहां गांव से कोटकपूरा आते ही स. संत जी ने अपने व्यवसाये के साथ व्योपारिक क्षेत्र में, सभा सोसाईटी में और धार्मिक सभाओं विशेष कर गीता भवन के निर्माण और प्रबन्ध में अपने साहस और योग्यता का परिचय दिया, वहा मातृ शक्ति ने सोने पे सुहागे का काम किया।

एक पथ के दो राही : स. सन्त सिंह जी के सब को छोड़कर चले जाने के पश्चात उनकी धर्म पत्नी एवंम उनकी सन्तान ने गीता भवन में मूर्ति सथापित कर उनकी इच्छा पुर्ण कर अपने कर्तव्य का भी परिचय दिया।

मातृ शक्ति की देन : अपने छोटे देवर को उच्च शिक्षा दे ब्रगेडियर बनाने और तीनों सुपुत्रों को योग्य बना, दो को डाक्टर, एक को व्यवसाय में निपुण बना और लड़की को योग्य अध्यापक की शिक्षा (B.Ed.) दे कर समाज में अच्छा स्थान दिलाना उनका काम था।

शास्त्रानुसार लोभ मोह से दूर योगी बन अपनी आवश्यक्ताओ को स्वंयं पूरा करते हुए घर से बाहर आकर सन्यासी जीवनं ब्यास में 15 वर्ष व्यतीत किये। अन्त के तीन वर्ष स्वास्थ के बिगड़ने पर परिवार में आकर अपने सुपुत्र डाकटर और डाक्टर पुत्रवधू की देख रेख में व्यतीत कर 1998 में ब्रहम लीन हो गऐ।

प्रर्वजों के आर्शीवाद और ईश्वर की अपार कृपा का पात्र समुह कटारिया परिवार नत मस्तक हो कोटि–कोटि प्रणाम करता है।

जो पा लेगा ज्योति यत्न करके यहां, अमर उसका युग–2 में प्रकाश होगा
नियम यह सदा से चेला आ रहा है, समय भागता भागता जा रहा है।

– डा. ग्रोवर

ॐ ੧ਓ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

– 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1884–1981

स्व. सेठ मुन्शी राम कटारिया

भेंट कर्त्ता : सेठ केदार नाथ
कटारिया परिवार, कोटकपूरा ।

सेठ मुन्शी राम कटारिया

कोटकपूरा में कटारिया परिवारों को संख्या का प्रभाव हर क्षेत्र में कुछ आकर्षण ही है। वह व्योपार, उदयोग हो या फिर समाजिक, धार्मिक या सेवा कार्य में हो दिखाई देता है। ऐसे ही एक रत्न श्री मुन्शा राम कटारिया हरी के कलां (मुक्तसर–कोटकपूरा लिंक रोड पर है) में 1884 में पैदा हुए। गांव के वातावर्ण में पले, फले फूले। मिडल तक की स्कूली शिक्षा ग्रहण कर परिवार के साथ लगभग 1902 में कोटकपूरा में आकर आढ़त की दूकान का महूतं किया। युवा अवस्था का जोश, घर में स्वतन्त्रता, निडर स्वभाव, गांव का निसंकोच बोलचाल और व्यवहार खुल कर किसानों और व्योपारियों के साथ व्योपार, सहायता, आवोभक्त और उस समय राजा फरीदकोट के भी कर्मचारी जो कोटकपूरा मण्डी में अनाज वगैरा लाया करते थे के साथ निकट का सम्बन्ध आया जिस से इन का प्रभाव सारे क्षेत्र में बढ़ता–बढ़ता राजा के साथ भी सम्बन्ध बना। पता चला कि उस घनिष्ट सम्बन्ध के कारण एक बार राजा पर आर्थिक संकट आया तो चौधरी मुन्शी राम कटारिया ने जैसे भामाशाह ने राणा प्रताप सिंह के सामने ध ान की थैलियां रख दी थी इन्हों ने भी राजा की बहुत मदद की। इस के परिणाम स्वरूप 1940 में कोटकपूरा में पहली आयल मिलएक लिमेटिड आदारा बना कर लगाई और उस के चेयरमैन बने। इस से भी और आगे राजा फरीदकोट इन को ओनरेरी मेजिस्ट्रेट नियुक्त किया जिसका कार्यालय पुलिस स्टेशन के भीतर बनाया, कचहरी लगती थी, फैसले होते थे जिस में छः मास का दण्ड और जुर्माना करने का अधिकार चौधरी साहिब को था। यह भारत विभाजन तक इस पद पर बने रहे। नगर पंचायत, नगर सुधार जनता की आवश्कताओं में भी यह कार्य करते थे।

गौशाला के अन्दर पानी का अभाव था इन्हों ने वहां से काफी दूर कूंआं बनवाया जहां से लोगों को भी पानी मिले। मुक्तसर रोड के नीचे से पाईप लाईन विछा कर गौशाला तक पानी पहुंचाना यह निजी और उत्साह प्रशंसनीय कार्य था। अपेक्षित लोगों, बेसहारा, गरीब लोगों की सहायता, प्रत्यक्ष और गुप्त सहायता करना, साधु समाज की सेवा, करना उनके स्वभाव में सदा बना रहता था। 1942 में एक ट्रस्ट बना कर जनता की आवश्यकताओं नगर में धर्मशाला का निर्माण किया और मोहन जगदीश आश्रम हरिद्वार में कमरे बनवाकर 18–3–1981 को चलते फिरते 96 वर्ष की आयु में अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर गये। उनकी सन्तान आज भी पुत्र–पौत्र आदि उनके आदर्शो पर चलते हुए सेवा कार्य कर रहे है। उन के पश्चात धर्मशाला का अधूरा छोड़ा हुआ कार्य करने में संलगन श्री मुन्शी राम कटारिया धर्मशाला एक अच्छी सुविधाजनक धर्मशाला चौधरी साहिब के नाम को बनाए हुए है।

ॐ ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंज़िल बन जाऐं

– 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1917 से 1980

स्व. श्री रूप लाल जी सेठी

भेंट कर्त्ता : अशोक कुमार सेठी
शास्त्री मार्कीट, कोटकपूरा ।

स्व. डा. रूप लाल सेठी

''होनहार ब्रिवान के होत चिकने पात''

किसी की चार दिन की जिन्दगी
सौ काम करती है
किसी की सौ वर्ष की जिन्दगी से
कुछ नहीं बनता ।

धर्मकोट तहसील जीरा से मास्टर खुशी राम सेठी के घर से निकला एक सुंगधित फूल पढ़ाई के साथ पिता जी जैसे सुयोग्य माली की देख रेख में फिरोजपूर–मखू से कोटकपूरा तक अपनी खुश्बू फैलाने पंहुचे। जहां भी रहे अपनी कार्यकुशलता से धार्मिक, राजनीतिक या फिर दु:ख सुख के नागरिक आयाजनों में प्रवक्ता के रूप में व्यवस्था की दृष्टि से प्रबन्धक और सलाहकार के नाते अपन्त्व की भावना से सब को पीछे छोड़ जाते थे। अपने परिवार, सगे सम्बन्धियों तथा व्यापार में अपनी श्रेष्ठ योग्यता का परिचय देते थे।

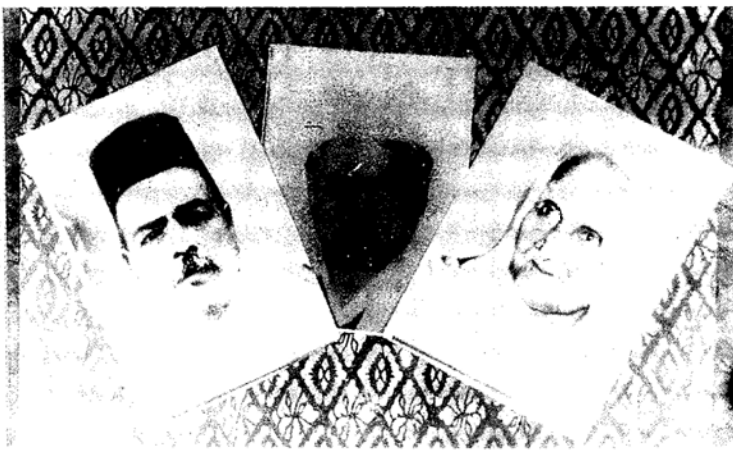
कोटकपूरा की कोअप्रेटिव सोसाईटी के व्यापार को चमकाया तथा निकटवर्ति ग्रामों में अपनी कौशलता का परिचय दिया। अपनी सन्तान को अपने पांवों पर खड़ा करने का श्रेय भी उनकी योग्यता को ही जाता है। एक बेटा डाक्टर बन जनता को ज्योति प्रदान कर रहा है, दूसरा दीन दुखियों के दु:ख के बांटने, अंगहीन, रोगी, बेसहारा बच्चों को विद्या पुस्तकें कपड़े आदि का सहयोग करने में और काई विधवा माताओं के बच्चों के विवाह में सहयोग देने में जुटे हुए है।

ॐ ੧ੳ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

– 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1893–1960

समाज सेवी परिवार के जन्मदाता चौ. घासी राम गर्ग (लहौर वाले)

1930–1987

माता पिता की गोद में पले जीवन के अन्तम क्षण तक धर्म उपदेश करने वाले 'स्व श्री शगुन चन्द निरकारी'

1900–1981

श्रीमति राधा देवी धर्म पत्नी चौ. घासी राम गर्ग (लाहौर वाले)

भेंट कर्त्ता : श्रीमति शकुन्तला रानी एवम् गेन्दा लाल गुप्ता
लाहौरिया हाऊस, बांसल गली, कोटकपूरा।

वटवृक्ष की हर टहनी फलदायक

श्रेषृता–आदर्शवादिता, सिद्धान्नमय जीवन व्यतीत करने वाले लाहौर छावनी के सुर्प्रासद्ध स्व. चौ. घासी राम गर्ग उनके धर्मप्रायण जीवन साथी श्रीमति राधा देवी योग्यमाली द्वारा सींचा बागीचा ही वायु मण्डल को सुन्दर सुहावना और सुगंधित बनाता है।

ऐसे ही शुद्ध विचारधारा के सुसंस्कृत परिश्रमी अपने तीन सुपुत्रों और दो लड़कियों के जीवन आर्दशवादी बना कर गौर्व यश प्राप्त कर जीवन सफल कर गये। उनके दो बच्चे (रोशन लाल और शगुन चन्द निरंकारी) माता पिता की अंकाक्षाओं और इच्छाओं के अनुरूप समाज सेवा धर्मउपदेश करते–करते ब्रहमलीन हो गये और उन की सन्तान और समस्त परिवार के बन्धू आज भी लगन उतसाह के साथ देहली–फरीदाबाद–जींद–कोटकपूरा में ''विश्व मानव परमात्मा'' की सेवा में दिव्य गुणों का परदर्शन कर रहे हैं।

देव नीति (संसार को कुछ देते रहने की नीति) मातृ–पितृ–देव गुरु समाज श्रृण को चुकाने के कर्तव्य में पीछे नहीं–ट्रस्ट के साथ भी सदा अटूट सहयोग रहता है।

ॐ ੧ੳ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1–7–1926 से 12–8–1993

पुज्य श्री मणी लाल जी जैन

भेंट कर्त्ता :- दिनेश जैन सुपुत्र श्री मणीलाल जी जैन
फरीदकोट रोड, कोटकपूरा ।

स्व. श्री मनी लाल जैन

पर पीड़ा से बेचैन–त्याग मूर्ति–जड़ चेतन–पशु पंक्षी एवम् मानव के साथ एक रस होकर समदर्शी भावों से ओत प्रोत जीवन के अन्तिम क्षणतक अपने वाहन पर सदा दौड़ते ही दिखने वाले कोटकपूरा के यह जीव स्व. श्री मनी लाल जैन एक आर्दश मातृ भूमि के सेवक निकटवर्ती क्षेत्र के लोगों में घुले मिले हित चिन्तक ही रहे। जानवारों को दाना डालना, नये बच्चों को जन्म देने वाली कुत्याओं को दूध पिलाना, मन्दिरों का निर्माण एवम् व्यवस्था में सहायता सहयोग। लायनज कल्ब, निरोग बाल आश्रम, जैन सभा स्कूल, गीता भवन, सेवा केन्द्र, धर्म क्षेत्र बिना भेद भाव श्री गुरु गोबिन्द सिंह के सेवक भाई कन्हैया के विचारों को प्रगटाते सेवा में लीन हर स्थान पर यदि कोई दिखाई देता था तो वह थे ''श्री मनी लाल जैन''।

सुनो बात ऐसी है मैं तुम को सुनाऊँ
कि हंसते हुए तुम को इस से रूलाऊं
संभलना जरा खुद को नर कहने वालो
सुनेगा वह आह उफ बस कहेगा ।
न आगे कहेगा न आगे सुनेगा
बहुत है चार दिन की जिन्दगी 'जैन'
यदि सीख ले तेरी जिन्दगी से जीने का सलीका।

ॐ ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1914 से 1992

पुज्य श्री प्यारे लाल मोंगा

भेंट कर्त्ता : डा. महेन्द्र प्रताप मोंगा
मोंगा नरसिंग होम, कोटकपूरा ।

''इक तू ही निरंकार तू ही, इक तू ही निरंकार''
पर उपकार, निस्वार्थ और गुमनाम कर्मठ पथ के राही

स्व. श्री प्यारे लाल जी मोंगा

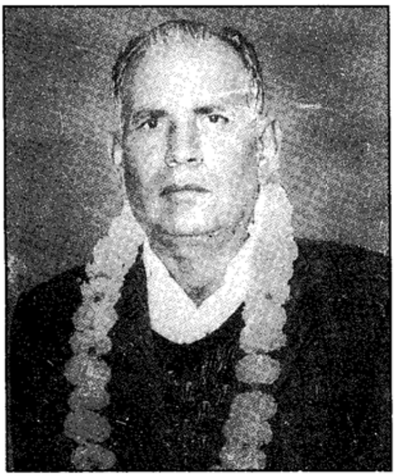
जनता के हरमन प्यारे श्री प्यारे लाल का जन्म 1914 को बठिंडा के श्री वीरभान मोंगा एवम् माता ठाकुरी देवी के घर हुआ। बाल्यकाल में माता जी का इनको छोड़ जाना ही परिश्रमी, साहसी और दृढ़ निश्चयी बनना कारण बना। आप आजीवन सत्य पंथ के राही बने रहे। निडर, व्यपार खेलकूद में अग्रसर, स्कूल की पढ़ाई के साथ कद काठ के पूरे स्वास्थ के घनी, अपने साथियों में हरमन प्यारे बने रहे। चिकित्सा विभाग में सरकारी कर्मचारी बन 35 वर्ष रोगियों की सेवा, हर एक के दु:ख सुख में शरीक, अधिकारियों में मान प्रतिष्ठा प्राप्त कर मुक्त हो एक छोटा सा दवाईखाना खोल नगर और निकटवर्ती ग्रामों के बन्धूओं की सेवा बिना किसी की प्राधीनता स्वीकार करते रहे। 1992 में जीवन यात्रा पूरी कर पीछे अपने पद चिन्हों पर चलने वाले 3 योग्य सुपुत्र और 3 सुशील पुत्रीयों को छोड ब्रह्मलीन हो गये। पूर्वजों के आर्शीवाद एवम् निरंकारी मिशन के अनुयायी सेवा संस्कार और सत्संग के कर्मठ कार्यकर्ता भोगी नहीं योगी महान आत्मा सभी के प्यारे गुदड़ी के लाल श्री प्यारे लाल जी को कोटि–कोटि प्रणाम।

ॐ ੧ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाएं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1912 से 1985

पुज्य श्री स्व. आत्मा राम जी सचदेवा

भेंट कर्त्ता : सौदागर मल आत्मा राम
हरीनौ रोड, कोटकपूरा ।

भूली बिसरी यादें

स्व. श्री आत्मा राम जी सचदेवा

हंसमुख चेहरा, विनोदी स्वभाव, पारिवारिक व्यापारिक नेक सलाहकार, हर छोटे बडे के साथ घुल मिलकर बैठने की योग्यता वाले पुज्य श्री आत्मा राम सचदेवा अपना समय अपना साभर्थ्य, अपना धन लगा दूसरो के काम आना उनकी विशेषता रही।

धर्म प्रचार समाजिक त्योहारों पर अग्रसर हो, जलूस झांकी आदि का आयोजन करना विशेषकर दशहरा, दिवाली पर ड्रामाटिक क्लब का निर्माण कर स्वयं पात्र बन मार्ग दर्शन करना, रामायण पर आधारित ड्रामें कई-कई दिन खेलना रोचक बनाना उनका ही काम था।

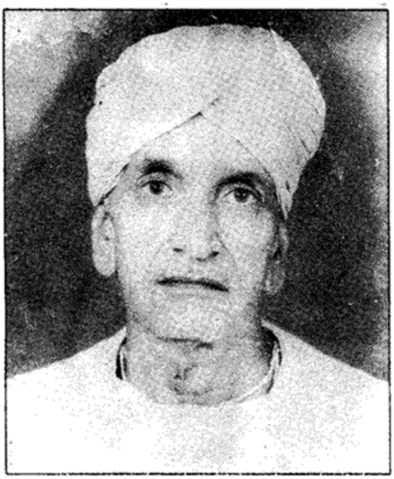
सेवा भाव्, अपेक्षित लोगों को सहयोग सहायता करना स्वभाव बन चुका था। आज भी उनकी सन्तानें उस राह पर चल रही है, संत सेवा, सतसंग सेवा और ट्रस्ट को भूमि दान देकर ट्रस्ट के सेवा कार्यो सिलाई केन्द्र, विद्यामन्दिर पुस्तकाल यादि को उत्साहित किया और कन्धे से कन्धा मिला कार्य में जुटे हुए है।

ॐ ੧ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंज़िल बन जाएं

– 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



27–7–1910 से 29–5–1993

स्व. महाशय केहर सिंह

सौजन्य से : चावला–छाबड़ा एवं बुद्धिराजा परिवार
डा. धर्मपाल चावला, मौहल्ला हरनामपूरा, कोटकपूरा

साहसी–परिश्रमी

स्व. महाशय केहर सिंह

पुज्य श्री हजारी मल जी एवं माता भगवान देवी के मानवता की रक्षा, सेवा, लगन और धार्मिक वृति के संस्कारों वाले घर में जन्म लेकर बाल्यकाल में ही अपनत्व की भावना, सेवा प्रतंत्र देश की पीड़ा से पीड़ित विचारों के कारण जनता के अति निकट आये और दीन दुखियों की सेवा में रूचि लेने वाले, तकदीर, तदबीर और भाग्य परिश्रम के टकराव से ईश्वरीय परीक्षा सोच, पिता जी के छोड जाने के कारण आठवीं कक्षा में ही पढ़ाई छोड़ कर दो बडे भाईयों के साथ परिवारिक व्यवसाय में सहयोग देने वाले घर के कार्य के साथ जनता के अनपढ़ व्यक्तियों के पत्र लिखकर गरीब असहाय जनता के सैंकडों पैंशन फार्म भरने वाले सब के सुख दु:ख में साथ देने वाले, सब की यथा योग्य सहायता करने में अग्रसर रहे। महाशय केहर सिंह जी आयु के बढ़ने के साथ साथ राजनिति, आर्यासमाज, नगर के अन्य समाजिक, धार्मिक नैतिक आयोजनों में भाग लेने से आप महाशय केहर सिंह के नाम से पहचाने जाने लगे। आर्या समाज के अनथक प्रबन्धक होने के नाते 1938 में कोटकपूरा के जत्थेदार बन हैदराबाद सत्यग्रह में कूद गये। दो वर्ष की कठोर कारावास की सजा हुई। भारत मां की सेवा के बदले भारत सरकार द्वारा दी जाने वाली पैंशन को ठुकरा दिया।

20.5.93 को अपने पीछे तीन लड़के और दो लड़कियों को छोड़ प्रभु चरणों में लीन हो गये। उनकी सन्तानें आज भी प्रत्यक्ष व अप्रल्यक्ष रूप में उनके पद चिन्हों पर चलने का संकल्प लिए हुए अग्रसर है। आर्य समाज का उन द्वारा लगाया गया पौद्धा आज भी इस परिवार द्वारा सींचा जा रहा है। उनका श्रृण चुकाया तो नहीं जा सकता मगर कोशिश करता रहेगा उनका परिवार ।

जो मर के भी जिन्दा रहते है
कुछ ऐसे इन्सान होते है ।

ॐ ੧ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाएं

– 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



2–12–1918 से 29–3–1992

स्व. पुज्य श्री रोशन लाल गुप्ता

भेंट कर्त्ता : ठेकेदार यश लाल गुप्ता
नजदीक शहीद भगत सिंह मार्कीट, बठिंडा रोड,
कोटकपूरा

स्व. श्री रोशन लाल जी गुप्ता लाहौर वाले

''कोषाध्यक्ष निरोग बाल आश्रम एवंम श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट कोटकपूरा'' बाल्यकाल से ही माता पिता से मिले संस्कार रंग लाये। लाहौर में शिक्षा प्राप्त करते समय में स्कूल के विद्यार्थीयों की सहायता करना, अपेक्षित दीन दुखियों की सेवा, धार्मिक कार्यें में अपने क्षेत्र में आगे–आगे रहना, आसपास के परिवारों में सहयोग सहायता करना, उनके नित्यप्रति के कार्य रहे। विभाजन के पश्चात् कोटकपूरा में निजी व्यापार में अपने छोटे भाइयों को साथ लगा परिवारिक व्यावस्था को ठीक करना, माता पिता जो कि वृद्धवस्था में लाहौर से पधारे सेवा करना प्रथम कर्तव्य निभाया। (उन देवता स्वरुप•माता पिता के चित्र भी इसी ग्रंथ में प्रकाशित है।) इस के साथ व्यापारिक क्षेत्र, समाज सेवा, राजनीति, मार्किट कमेटी, लोन एडवाईजरी कमेटी के सलाहकार बन जनता में नाम चमकाया। धार्मिक विचारों से ओतप्रोत होने के कारण गीता भवन कोटकपूरा के हर छोटे बडे आयाजनों में योगदान प्रंशसनीय रहता था। पं. भाग चन्द जी के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलने से इतना स्नेह बडा कि परमपिता परमात्मा ने उनकी इच्छा को पूर्ण किया, ये दोनो महान आत्माएं एक ही दिन में कुछ ही घण्टों के अन्दर अपने–अपने निवास स्थानों से निकल ईश्वर चरणों में जा पहुंचे। उनका छोटा भाई शुगन चन्द उनकी आंखों के सामने ही जीवन भर धर्म प्रचार करते–करते अचानक ही संसार से विदा हो गया (उस महान आत्मा का चित्र भी प्रकाशित है)

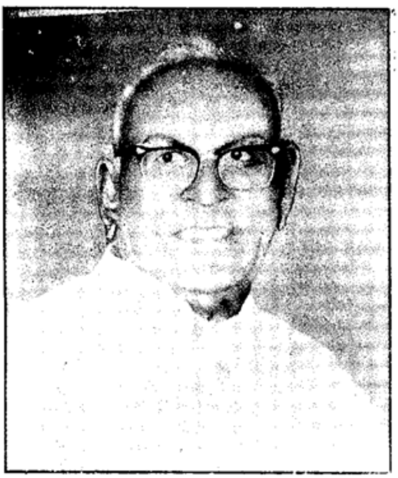
माता पिता से शुभ संस्कारों के सदके उनकी सन्तान आज भी मानवता की सेवा को जीवन का लक्ष्य बनाए हुए है।

ॐ ੧ਓ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1889 से 1972

स्व. श्री भाग मल सचदेवा

भेंट कर्त्ता : सुरेन्द्र कुमार राजिन्द्र कुमार सचदेवा
आनाज मण्डी, कोटकपूरा ।

स्व. श्री भाग मल जी सचदेवा

कोटकपूरा के व्यापार क्षेत्र के प्रभावी बन्धू व्यापार एवम् अन्य सम्बन्धित विषयों के झगडों को निपटाने में अपनी पंचायत के सुझवान सदसय, गौशाला कमेटी के सहयोगी, आढ़ती संगठन के योग्य व्यक्ति स्व. भाग मल जी सचदेवा आयुभर बिना भेद भाव न्यायप्रिय, सामाजिक कार्यो में कार्यरत रहे। परिवार में अपने जीवन साथी के धार्मिक विचारों के संस्कारों से ओतप्रोत होने के कारण सभी धर्म स्थानों, कथा कीर्तन, उत्सव त्यौहारों में सहयोग कर श्रेय भी इस परिवार को ही जाता है जो आज भी उसी प्रकार हो रहा है। उनकी सन्तान जाज भी गौशाला, गीता भवन तथा अन्य नगर के कार्यो में आगे–आगे है। ट्रस्ट भवन निर्माण एवम् दुसरे चल रहे कार्यो में रुचि ले रहे है। यह सब पुज्य श्री भाग मल जी सचदेवा के पदचिन्हों और आर्शिवाद का ही फल है कि परिवार सम्मानित जीवन व्यतीत कर रहा है ।

੧ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



1854 से 1932

स्व. सेठ केदार नाथ खेमका

भेंट कर्त्ता : श्री ओम प्रकाश

मै: सोहन लाल दीवान चन्द, अनाज मण्डी, कोटकपूरा

प्यासे की प्यास, भूखे की भूख, नंगे का नंगापन

दीन–दुखियों का दुःख मिटाने वाले :–

स्व. सेठ केदार नाथ खेमका

भिवानी के सेठ शंकर दास खेमका के घर जन्म लेकर 78 वर्ष जनता जनार्दन की सेवा कर 14 जून 1932 को परलोक सिधारे।

निष्पक्ष न्यायदाता–अन्याय के आगे कभी न झुकने वाले, महाराजा फरीदकोट स. विक्रम सिंह के विश्वासपात्र, प्रभावी व्यक्तित्व, आनरेरी न्यायधीश सेठ केदार नाथ खेमका पूर्वी द्वार विक्रम मण्डी का नीव पत्थर रख मण्डी निर्माण का श्री गणेश करने वाले, व्यापार गद्दी को इष्टदेव समझ सभी छोटे बडे, बिना भेदभाव पारिवारिक, व्यापारिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था में रात्रि को इस हेतु आये बन्धुओं के सलाहकार बन अपनी योग्यता से जीवन भर सभी समस्याओं का समाधान करते रहे।

सेठ जी द्वारा चलाये गये सभी सेवा संस्थान कार्य, पानी की छबीलें, मन्दिर, धर्मशाला, लंगर, बगीचे आदि आज भी खेमका परिवार द्वारा नगर की शोभा बढ़ा रहा है।

नोट :– नगर का कोई भी मन्दिर, गुरुद्वारा, शिक्षा संस्थान और सेवा केन्द्र ऐसा नहीं जहां खेमका परिवार का सहयोग और उनका नाम उस में अंकित न हो। मद्रास में भी खेमका मैमोरियल हाई स्कूल, विवेकानन्द सोसाइटी द्वारा संचालित स्वास्थ्य केन्द्र और सेवा कार्य देखने को मिलेंगे। इन सभी की व्यवस्था प्रबन्ध सेठ जीवन एवम् केदार नाथ धर्मादा ट्रस्ट अधीन है।

ॐ ੧ੴ

महान व्यक्तियों के सत्य कर्म सारे जग को राह दिखायें
उनके कदमों के निशान औरों की मंजिल बन जाऐं

— 'गीता'

श्रद्धा पुण्यस्मृति में सुमन



8–1–1917 से 29–3–1992

गुरुदेव स्व. प. भाग चन्द जी शास्त्री

भेंट कर्त्ता : बलदेव गौतम
अगवाड़ अठाड़ा, मोगा रोड, कोटकपूरा ।

प. भाग चन्द जी शास्त्री

'मार्ग दर्शक श्री गुरु गोबिन्द सिंह ट्रस्ट'' प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर फिरोजपुर, अमृतसर, बनारस और लाहौर से कर्मकाण्ड शास्त्री, वैदिकादि की परीक्षाएं पास कर अच्छे निपुण शिक्षक एवंम् चिकित्सक बन समाज में उभरे ।

सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा लाहौर में धर्म उपदेशक विभाजन के पश्चात देहली में आये और धर्म उपदेशक के नाते कार्यरत रहे।

पैप्सु काल में वैद्य मण्डल को संगठित कर संचालन करने का श्रेय भी इन को ही मिला और जीवन भर उसका मार्ग दर्शन किया।

सत्संग गीता भवन कोटकपूरा जो उनके पश्चात भी आज तक उनकी योग्य सन्तान द्वारा अखण्ड चल रहा है, उन की ही देन है । शास्त्री जी का जीवन भर जनता की निस्वार्थ सेवा करना, कार्म काण्ड की शिक्षा देना ही लक्ष्य रहा। विश्व हिन्दू परिषद के प्रधानपद की जिम्मेवारी निभाते हुये भी अपनी योग्यता का प्रर्दशन किया।



डॉ निर्मल कौशिक

एम.ए. (हिन्दी–संस्कृत–पंजाबी)
एम. फिल, पी. एच.डी. (हिन्दी)
आयुर्वेदरत्न, संगीत भूषण

सम्प्रति : विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
सरकारी बृजेन्द्र कालेज, फरीदकोट

(क) कृतियाँ :

1. भाई गुरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व
2. सिद्ध संस्कृत व्याकरण
3. इन्दु इक बिन्दु दो (पंजाबी भाषानुवाद)
4. सिद्ध जीवन गाथा
5. युग पुरुष : बाबा शेख फरीद
6. कबित्त–सवैये : भाई गुरदास
7. साहित्य विविधा
8. शब्दों की अर्चना (काव्य संकलन)
9. रघुप्रिया (खण्ड काव्य)
10. सूफी दरवेश : बाबा शेख फरीद (पंजाबी)
11. हिन्द रक्षक : श्री गुरु तेग बहादुर जी
12. शुभ चिन्तक (निबन्ध संकलन) प्रैस में
13. वाणी श्री गुरु तेग बहादुर जी
14. सिद्ध हिन्दी शीघ्र बोध – प्रैस में
15. श्री गुरु गोबिन्द सिंह और निर्मल सन्त परम्परा

(ख) पाण्डुलिपियाँ

1. निर्मल सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन
2. आस्था के फूल
3. मेरी पांच कहानियाँ
4. साहित्य सुगन्ध (पंजाबी निबन्ध)
5. टहकदें फुल्ल – (पंजाबी कविताऐं)
6. साहित्य सौरभ (हिन्दी निबन्ध)
7. सूफी साधक बाबा शेख फरीद
8. एकांकी चतुष्टय

(ग) विभिन्न पत्रिकाओं और संकलनों में कविताऐं और आलेख प्रकाशित।